सिंघी - ५१

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

Singhi Jain Series - 51

विज्ञप्ति लेख संग्रह - Pt. I

Ed. जिनविजय मुनि

Bombay, 1960

(1329)

(60)

Bill No. 2/07-08

132

2008 - 0145

By Pallavi Mittal

NEW DELHI: Cigarettes, soft drinks and chewing gums took a back seat as student loans stole the limelight and set many of them planning for a career abroad. "Wow, now I will be able to appear for my GRE," gushed Suman Yadav, a previous year student in M Sc Bio-medical Sciences. She wants to pursue higher studies in America.

Some others want to "utilise" the loans for getting an MBA degree.

The students will not be required to furnish any collateral or margin for loans up to Rs 4 lakh, the interest on

to three lakh," she said. "This is a very good step. I won't have to ask my parents for money," she added.

Some were, however, skeptical. "What is the repayment period? What about the interest rate?" questioned Payal Bhatia.

Hit them with the changed price graph of soft drinks, chewing gum, cigarettes and they are really not bothered much. "I do spend on cold

drinks but a differ... pees won't really... Vinay Ahuja, a II ye... Cigarettes are a diff... for him.

"As it is cigarette... sive...now I will hav... ing out with friend... smoke too much,"

smokes about 10 cigarettes a day.

According to Anand Kapai, who is appearing for his Board examinations, these variations in prices really do not matter for the upper and upper middle class.

"As it is people consume so many soft drinks at home...low price will only boost the sales," he said.

For some, the dip in car prices has only helped spur their dreams of getting a vehicle "as soon as possible." "Of course, that will be only after I get a job and am able to make some saving," said a student pursuing M Sc Chemistry. He plans to join a pharmaceutical company after completing his course.

Budget, cricket go for a six

NEW DELHI: Cricket, budget and books. But few could manage it in that order... TV option... and... Tuesday... stuck to their books and tried to... in their wandering minds.

Then there were those few "lucky" guys who actually managed to catch a few glimpses of the cricket field, but preferred to kick out the budget option entirely. "I did watch the match for about an hour, but that is all. I did not want to waste time on budget," said K Wasan, taking his Class X board exams.

"Watch the budget? You must be kidding," was the reaction of Rohit Majumdar, appearing for his C... matter to him at this point of time... rock bottom. "I am sleeping in the... the nights," he said. He would hav... "probably for an hour or so," but... him.

be a member of a few credit ca... clubs. Salwant is reported to be... frequent visitor to the World Trad... Centre in Connaught Place, Ne... Friends Colony and Nehru Plac... the police said.

The police said Salwant was pla... ning to start a phone service bus... ness in Chandigarh and had bee... frequenting Mumbai and Delhi f... recruiting staff for the purpose.

The couple's alleged fraud in Si... gapore was detected in June 19... when several subscribers of a tel... com service provider complain... that they were being billed for V... credit card transactions which th... had not authorised. In March 19... Salwant and his wife were reporte... ly fined in Singapore for providi... direct dial international phone s... vice without a licence.

सिं घी जै न ग्र न्थ मा ला

[ग्रन्थांक ५१]

संस्थापक

स्व० श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी

*

प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जि न वि ज य मु नि



अनेकविद्वदालेखित-नानाप्रकार-रचनानिबद्ध

विज्ञप्ति लेख संग्रह

•

(विज्ञप्तित्रिवेणी-विज्ञप्तिमहालेख-आनन्दप्रबन्धलेखादि समुच्चयात्मक)

[प्रथम भाग]

•

संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

(निवृत्त-सम्मान्य नियामक (ऑनररी डायरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बम्बई)

[प्रकाशनकर्ता]

सिं घी जै न शा स्त्र शि क्षा पी ठ

भारतीय विद्या भवन, बम्बई. ७

स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी



बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघीके पुण्यश्लोक पिता

जन्म–वि. सं. १९२१, मार्ग. वदि ६ 卐 **स्वर्गवास**–वि. सं. १९८४, पोष सुदि ६

दानशील - साहित्यरसिक - संस्कृतिप्रिय

स्व० बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघी



अजीमगंज-कलकत्ता

जन्म ता. २८-६-१८८५]   [मृत्यु ता. ७-७-१९४४

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

*********************[ग्रन्थांक ५१]*********************

अनेकविद्वदालेखित - नानाप्रकाररचनानिबद्ध

विज्ञप्तिलेख संग्रह

[प्रथम भाग]



SINGHI JAIN SERIES

*********************[NUMBER 51]*********************

VIJÑAPTI-LEKHA-SAMGRAHA

(A COLLECTION OF WORKS WRITTEN BY MANY AUTHORS RELATING TO PARYUSANAPARVA CEREMONY AND SIMILAR OCCASIONS)

कलकत्तानिवासी

साधुचरित-श्रेष्ठिवर्य **श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी** पुण्यस्मृतिनिमित्त

प्रतिष्ठापित एवं प्रकाशित

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

[जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, कथात्मक–इत्यादि विविधविषयगुम्फित प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, -राजस्थानी आदि नाना भाषानिबद्ध सार्वजनीन पुरातन वाङ्मय तथा नूतन संशोधनात्मक साहित्य प्रकाशिनी सर्वश्रेष्ठ जैन ग्रन्थावलि]

प्रतिष्ठाता

श्रीमद् - डालचन्दजी - सिंघीसत्पुत्र

स्व० दानशील - साहित्यरसिक - संस्कृतिप्रिय

श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी



प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जिनविजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

निवृत्त ऑनररि डायरेक्टर

भारतीय विद्या भवन, बम्बई

*

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा **श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी**

प्रकाशक

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

जयन्तकृष्ण ह. दवे, ऑनररी डायरेक्टर, भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड, बम्बई, नं. ७, द्वारा प्रकाशित
तथा – लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस, २६–२८ कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई, नं. २, द्वारा मुद्रित

अनेक - विद्वदालेखित - नानाप्रकार - रचनानिबद्ध

विज्ञप्ति लेख संग्रह

मूल लेख संग्रहात्मक

प्रथम भाग

अनेकप्राचीनहस्तलिखित - आदर्शानुसारेण

संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

(निवृत्त-सम्मान्य नियामक (ऑनररी डायरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बंबई)

संस्थापक एवं सम्मान्य संचालक - राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

[ऑनररी मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य-भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य सभा, अहमदाबाद; विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर, पञ्जाब; प्रधान संपादक - गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर ग्रन्थावली; भारतीय विद्या ग्रन्थावली; जैन साहित्यसंशोधक ग्रन्थावली; सिंघी जैन ग्रन्थमाला; राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला - इत्यादि, इत्यादि



प्रकाशनकर्ता

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

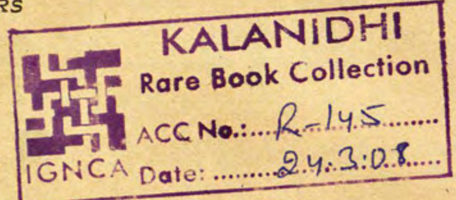
विक्रमाब्द २०१६] प्रथमावृत्ति [खिस्ताब्द १९६०

ग्रन्थांक ५१]

[[redacted]

SINGHI JAIN SERIES

A COLLECTION OF CRITICAL EDITIONS OF IMPORTANT JAIN CANONICAL, PHILOSOPHICAL, HISTORICAL, LITERARY, NARRATIVE AND OTHER WORKS IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRAMSHA AND OLD RAJASTHANI-GUJARATI LANGUAGES, AND OF NEW STUDIES BY COMPETENT RESEARCH SCHOLARS



•

ESTABLISHED

IN THE SACRED MEMORY OF THE SAINT LIKE LATE SETH

ŚRĪ DĀLCHANDJĪ SINGHĪ

OF CALCUTTA

BY

HIS LATE DEVOTED SON

DANASILA - SAHITYARASIKA - SANSKRITIPRIYA

ŚRĪ BAHADUR SINGH SINGHI

•

DIRECTOR AND GENERAL EDITOR

ĀCHĀRYA JINA VIJAYA MUNI

ADHIṢṬHĀTĀ, SINGHĪ JAIN ŚĀSTRA ŚIKṢHĀ PĪṬHA

(Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavana, Bombay.)

•

PUBLISHED

UNDER THE PATRONAGE OF

ŚRĪ RAJENDRA SINGH SINGHI

AND

ŚRĪ NARENDRA SINGH SINGHI

BY THE ADHIṢTHĀTĀ

SINGHI JAIN SHASTRA SHIKSHAPITH

BHARATIYA VIDYA BHAVAN, BOMBAY

VIJÑAPTI-LEKHA-SAṀGRAHA

(A COLLECTION OF WORKS WRITTEN BY MANY AUTHORS
RELATING TO PARYUSANA PARVA CEREMONY AND
SIMILAR OCCASIONS)

•

COLLECTED AND EDITED FROM VARIOUS OLD MANUSCRIPTS

BY

Acharya JINA VIJAYA MUNI, Puratattvacharya

(Ex. Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay)

Honorary Founder-Director,
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur;
Honorary Member of the German Oriental Society (Germany);
Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; Gujarat Sahitya
Sabha, Ahmedabad; and Vishveshvaranand Vaidic Research
Institute, Hosiyarpur, Punjab.



•

FISRT PART

•

PUBLISHED BY

Adhiṣṭhātā, Singhi Jain Śāstra Śikṣāpīṭha

BHARATIYA VIDYA BHAVANA
BOMBAY

V. E. 2016] First Edition [A. D. 1960

Vol. No. 51] *** [[redacted]

॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासंस्थापकप्रशस्तिः ॥

अस्ति बङ्गाभिधे देशे सुप्रसिद्धा मनोरमा । मुर्शिदाबाद इत्याख्या पुरी वैभवशालिनी ॥ १
बहवो निवसन्त्यत्र जैना ऊकेशवंशजाः । धनाढ्या नृपसम्मान्या धर्मकर्मपरायणाः ॥ २
श्रीडालचन्द इत्यासीत् तेष्वेको बहुभाग्यवान् । साधुवत् सच्चरित्रो यः सिंघीकुलप्रभाकरः ॥ ३
बाल्य एव गतो यश्च कर्तुं व्यापारविस्तृतिम् । कलिकातामहापुर्यां धृतधर्मार्थनिश्चयः ॥ ४
कुशाग्रीयया सद्बुद्ध्या सद्वृत्त्या च सन्निष्ठया । उपार्ज्य विपुलां लक्ष्मीं कोट्यधिपोऽजनिष्ट सः ॥ ५
तस्य मन्नुकुमारीति सन्नारीकुलमण्डना । जाता पतिव्रता पत्नी शीलसौभाग्यभूषणा ॥ ६
श्रीबहादुरसिंहाख्यो गुणवाँस्तनयस्तयोः । सञ्जातः सुकृती दानी धर्मप्रियश्च धीनिधिः ॥ ७
प्राप्ता पुण्यवता तेन पत्नी तिलकसुन्दरी । यस्याः सौभाग्यचन्द्रेण भासितं तत्कुलाम्बरम् ॥ ८
श्रीमान् राजेन्द्रसिंहोऽस्य ज्येष्ठपुत्रः सुशिक्षितः । यः सर्वकार्यदक्षत्वात् दक्षिणबाहुवत् पितुः ॥ ९
नरेन्द्रसिंह इत्याख्यस्तेजस्वी मध्यमः सुतः । सूनुर्वीरेन्द्रसिंहश्च कनिष्ठः सौम्यदर्शनः ॥ १०
सन्ति त्रयोऽपि सत्पुत्रा आप्तभक्तिपरायणाः । विनीताः सरला भव्याः पितुर्मार्गानुगामिनः ॥ ११
अन्येऽपि बहवस्तस्याभवन् स्वस्रादिबान्धवाः । धनैर्जनैः समृद्धः सन् स राजेव व्यराजत ॥ १२

अन्यच्च –

सरस्वत्यां सदासक्तो भूत्वा लक्ष्मीप्रियोऽप्ययम् । तत्राप्यासीत् सदाचारी तच्चित्रं विदुषां खलु ॥ १३
नाहंकारो न दुर्भावो न विलासो न दुर्व्ययः । दृष्टः कदापि यद्गेहे सतां तद् विस्मयास्पदम् ॥ १४
भक्तो गुरुजनानां स विनीतः सज्जनान् प्रति । बन्धुजनेऽनुरक्तोऽभूत् प्रीतः पोष्यगणेष्वपि ॥ १५
देश-कालस्थितिज्ञोऽसौ विद्या-विज्ञानपूजकः । इतिहासादि-साहित्य-संस्कृति-सत्कलाप्रियः ॥ १६
समुन्नत्यै समाजस्य धर्मस्योत्कर्षहेतवे । प्रचाराय च शिक्षाया दत्तं तेन धनं घनम् ॥ १७
गत्वा सभा-समित्यादौ भूत्वाऽध्यक्षपदान्वितः । दत्त्वा दानं यथायोग्यं प्रोत्साहिताश्च कर्मठाः ॥ १८
एवं धनेन देहेन ज्ञानेन शुभनिष्ठया । अकरोत् स यथाशक्ति सत्कर्माणि सदाशयः ॥ १९
अथान्यदा प्रसङ्गेन स्वपितुः स्मृतिहेतवे । कर्तुं किञ्चिद् विशिष्टं स कार्यं मनस्यचिन्तयत् ॥ २०
पूज्यः पिता सदैवासीत् सम्यग्-ज्ञानरुचिः स्वयम् । तस्मात् तज्ज्ञानवृद्ध्यर्थं यतनीयं मयाऽप्यरम् ॥ २१
विचार्यैवं स्वयं चित्ते पुनः प्राप्य सुसम्मतिम् । श्रद्धेयानां स्वमित्राणां विदुषां चापि तादृशाम् ॥ २२
जैनज्ञानप्रसारार्थं स्थाने शा न्ति नि के त ने । सिंघीपदाङ्कितं जै न ज्ञा न पी ठ मतिष्ठिपत् ॥ २३
श्रीजिनविजयः प्राज्ञो मुनिनाम्ना च विश्रुतः । स्वीकर्तुं प्रार्थितस्तेन तस्याधिष्ठायकं पदम् ॥ २४
तस्य सौजन्य-सौहार्द-स्थैर्यौदार्यादिसद्गुणैः । वशीभूय मुदा येन स्वीकृतं तत्पदं वरम् ॥ २५
कवीन्द्रेण रवीन्द्रेण स्वीयपावनपाणिना । रस[६]-नागा[८]ङ्क[९]-चन्द्रा[१]ब्दे तत्प्रतिष्ठा व्यधीयत ॥ २६
प्रारब्धं मुनिना चापि कार्यं तदुपयोगिकम् । पाठनं ज्ञानलिप्सूनां ग्रन्थानां ग्रथनं तथा ॥ २७
तस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे चैषा प्रारब्धा ग्रन्थमालिका ॥ २८
उदारचेतसा तेन धर्मशीलेन दानिना । व्ययितं पुष्कलं द्रव्यं तत्तत्कार्यसुसिद्धये ॥ २९
छात्राणां वृत्तिदानेन नैकेषां विदुषां तथा । ज्ञानाभ्यासाय निष्कामसाहाय्यं स प्रदत्तवान् ॥ ३०
जलवाय्वादिकानां तु प्रातिकूल्यादसौ मुनिः । कार्यं त्रिवार्षिकं तत्र समाप्यान्यत्रावासितः ॥ ३१
तत्रापि सततं सर्वं साहाय्यं तेन यच्छता । ग्रन्थमालाप्रकाशाय महोत्साहः प्रदर्शितः ॥ ३२
नन्द[९]-निध्य[९]ङ्क[९]-चन्द्रा[१]ब्दे कृता पुनः सुयोजना । ग्रन्थावल्याः स्थिरत्वाय विस्तराय च नूतना ॥ ३३
ततो मुनेः परामर्शात् सिंघीवंशनभस्वता । भा वि द्या भ व ना येयं ग्रन्थमाला समर्पिता ॥ ३४
आसीत्तस्य मनोवाञ्छाऽपूर्वग्रन्थप्रकाशने । तदर्थं व्ययितं तेन लक्षावधि हि रूप्यकम् ॥ ३५
दुर्विलासाद् विधेर्हन्त ! दौर्भाग्याच्चात्मबन्धूनाम् । स्वल्पेनैवाथ कालेन स्वर्गं स सुकृती ययौ ॥ ३६
विधु[१]-शून्य[०]-ख[०]-नेत्रा[२]ब्दे मासे आषाढसञ्ज्ञके । कलिकातानगर्यां स प्राप्तवान् परमां गतिम् ॥ ३७
पितृभक्तैश्च तत्पुत्रैः प्रेयसे पितुरात्मनः । तथैव प्रपितुः स्मृत्यै प्रकाश्यतेऽधुना त्वियम् ॥ ३८
सैषा ग्रन्थावलिः श्रेष्ठा प्रेष्ठा प्रज्ञावतां प्रथा । भूयाद् भूत्यै सतां सिंघीकुलकीर्तिप्रकाशिका ॥ ३९
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके श्रीसिंघी ग्रन्थमालिका ॥ ४०

*

॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासम्पादकप्रशस्तिः ॥

स्वस्ति श्रीमेदपाटाख्यो देशो भारतविश्रुतः । रूपाहेलीति सन्नाम्नी पुरिका यत्र सुस्थिता ॥ १
सदाचार-विचाराभ्यां प्राचीननृपतेः समः । श्रीमच्चतुरसिंहोऽत्र राठोडान्वयभूमिपः ॥ २
तत्र श्रीवृद्धिसिंहोऽभूद् राजपुत्रः प्रसिद्धिभाक् । क्षात्रधर्मधनो यश्च परमारकुलाग्रणीः ॥ ३
मुञ्ज-भोजमुखा भूपा जाता यस्मिन् महाकुले । किं वर्ण्यते कुलीनत्वं तत्कुलजातजन्मनः ॥ ४
पत्नी राजकुमारीति तस्याभूद् गुणसंहिता । चातुर्य-रूप-लावण्य-सुवाक्-सौजन्यभूषिता ॥ ५
क्षत्रियाणीं प्रभापूर्णां शौर्योद्दीप्तमुखाकृतिम् । यां दृष्ट्वैव जनो मेने राजन्यकुलजा त्वियम् ॥ ६
पुत्रः किसनसिंहाख्यो जातस्तयोरतिप्रियः । रणमल्ल इति चान्यद् यन्नाम जननीकृतम् ॥ ७
श्रीदेवीहंसनामाऽत्र राजपूज्यो यतीश्वरः । ज्योतिर्भैषज्यविद्यानां पारगामी जनप्रियः ॥ ८
आगतो मरुदेशाद् यो भ्रमन् जनपदान् बहून् । जातः श्रीवृद्धिसिंहस्य प्रीति-श्रद्धास्पदं परम् ॥ ९
तेनाथाप्रतिमप्रेम्णा स तत्सूनुः स्वसन्निधौ । रक्षितः शिक्षितः सम्यक्, कृतो जैनमतानुगः ॥ १०
दौर्भाग्यात् तच्छिशोर्बाल्ये गुरु-तातौ दिवंगतौ । विमूढः स्वगृहात् सोऽथ यदृच्छया विनिर्गतः ॥ ११

तथा च-

भ्रान्त्वा नैकेषु देशेषु संसेव्य च बहून् नरान् । दीक्षितो मुण्डितो भूत्वा जातो जैनमुनिस्ततः ॥ १२
ज्ञातान्यनेकशास्त्राणि नानाधर्ममतानि च । मध्यस्थवृत्तिना तेन तत्त्वातत्त्वगवेषिणा ॥ १३
अधीता विविधा भाषा भारतीया युरोपजाः । अनेका लिपयोऽप्येवं प्रत्न-नूतनकालिकाः ॥ १४
येन प्रकाशिता नैके ग्रन्था विद्वत्प्रशंसिताः । लिखिता बहवो लेखा ऐतिह्यतथ्यगुम्फिताः ॥ १५
बहुभिः सुविद्वद्भिस्तन्मण्डलैश्च स सत्कृतः । जिनविजयनाम्नाऽयं विख्यातः सर्वत्राभवद् ॥ १६
तस्य तां विश्रुतिं ज्ञात्वा श्रीमद्गान्धीमहात्मना । आहूतः सादरं पुण्यपत्तनात् स्वयमन्यदा ॥ १७
पुरे चाहम्मदाबादे राष्ट्रीयः शिक्षणालयः । विद्यापीठ इति ख्यात्या प्रतिष्ठितो यदाऽभवत् ॥ १८
आचार्यत्वेन तत्रोच्चैर्नियुक्तः स महात्मना । रस-मुनि-निधीन्द्वब्दे पुरातत्त्वाख्यमन्दिरे ॥ १९
वर्षाणामष्टकं यावत् सम्भूष्य तत् पदं ततः । गत्वा जर्मनराष्ट्रे स तत्संस्कृतिमधीतवान् ॥ २०
तत आगत्य सँल्लग्नो राष्ट्रकार्ये च सक्रियम् । कारावासोऽपि सम्प्राप्तो येन स्वातन्त्र्यसङ्गरे ॥ २१
क्रमात् ततो विनिर्मुक्तः स्थितः शान्तिनिकेतने । विश्ववन्द्यकवीन्द्रश्रीरवीन्द्रनाथभूषिते ॥ २२
सिंघीपदयुतं जैनज्ञानपीठं तदाश्रितम् । स्थापितं तत्र सिंघीश्रीडालचन्दस्य सूनुना ॥ २३
श्रीबहादुरसिंहेन दानवीरेण धीमता । स्मृत्यथ निजतातस्य जैनज्ञानप्रसारकम् ॥ २४
प्रतिष्ठितश्च तस्यासौ पदेऽधिष्ठातृसञ्ज्ञके । अध्यापयन् वरान् शिष्यान् ग्रन्थयन् जैनवाङ्मयम् ॥ २५
तस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे ह्येषा प्रारब्धा ग्रन्थमालिका ॥ २६
अथैवं विगतं तस्य वर्षाणामष्टकं पुनः । ग्रन्थमालाविकासादिप्रवृत्तिषु प्रयस्यतः ॥ २७
बाणे-रत्ने-नवेन्द्वब्दे मुंबाईनगरीस्थितः । मुंशीति बिरुदख्यातः कन्हैयालाल-धीसखः ॥ २८
प्रवृत्तो भारतीयानां विद्यानां पीठनिर्मितौ । कर्मनिष्ठस्य तस्याभूत् प्रयत्नः सफलोऽचिरात् ॥ २९
विदुषां श्रीमतां योगात् पीठो जातः प्रतिष्ठितः । भारतीय पदोपेत विद्याभवन सञ्ज्ञया ॥ ३०
आहूतः सहकार्यार्थं स मुनिस्तेन सुहृदा । ततःप्रभृति तत्रापि तत्कार्ये सुप्रवृत्तवान् ॥ ३१
तद्भवनेऽन्यदा तस्य सेवाऽधिका ह्यपेक्षिता । स्वीकृता च सद्भावेन साऽप्याचार्यपदाश्रिता ॥ ३२
नन्दे-निध्यङ्क-चन्द्राब्दे वैक्रमे विहिता पुनः । एतद्ग्रन्थावलीस्थैर्यकृते नूतनयोजना ॥ ३३
परामर्शात् ततस्तस्य श्रीसिंघीकुलभास्वता । भाविद्याभवनायेयं ग्रन्थमाला समर्पिता ॥ ३४
प्रदत्ता दशसाहस्री पुनस्तस्योपदेशतः । स्वपितृस्मृतिमन्दिरकरणाय सुकीर्तिना ॥ ३५
दैवादल्पे गते काले सिंघीवर्यो दिवंगतः । यस्तस्य ज्ञानसेवायां साहाय्यमकरोत् महत् ॥ ३६
पितृकार्यप्रगत्यर्थं यत्नशीलैस्तदात्मजैः । राजेन्द्रसिंहमुख्यैश्च सत्कृतं तद्वचस्ततः ॥ ३७
पुण्यश्लोकपितुर्नाम्ना ग्रन्थागारकृते पुनः । बन्धुज्येष्ठो गुणश्रेष्ठो ह्यर्द्धलक्षं धनं ददौ ॥ ३८
ग्रन्थमालाप्रसिद्ध्यर्थं पितृवत् तस्य कांक्षितम् । श्रीसिंघीसत्पुत्रैः सर्वं तद्गिराऽनुविधीयते ॥ ३९
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके जिनविजयभारती ॥ ४०

*

SINGHI JAIN SERIES

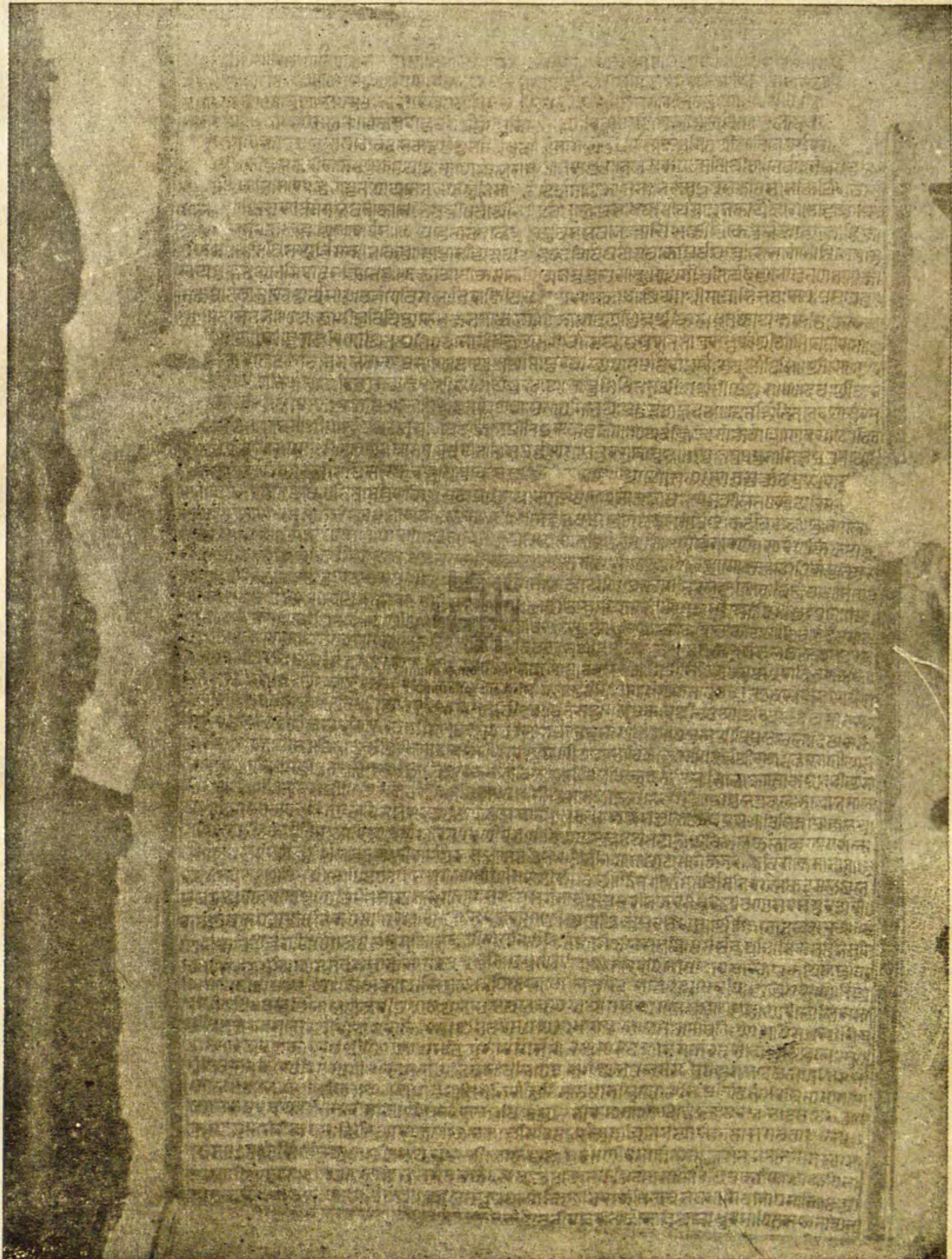
अद्यावधि मुद्रितग्रन्थनामावलि

Shri Bahadur Singh Singhi Memoirs

Dr. G. H. Bühler's Life of Hemachandrāchārya.
Translated from German by Dr. Manilal Patel, Ph. D.

संप्रति मुद्यमाणग्रन्थनामावलि

'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक विज्ञप्तिलेखकी पाटणस्थित प्राचीन प्रतिके आद्यन्त पत्र



बीकानेरीय श्रीपूज्यजीवाले 'विज्ञप्तिमहालेख' के टीपणेका आदिभाग

बीकानेरीय श्रीपूज्यजीवाले 'विज्ञप्तिमहालेख' के टीपणेका अन्तिम भाग

विज्ञप्ति लेखसंग्रह – किंचित् प्रास्ताविक

जिन अनेक विज्ञप्तिपत्रस्वरूप लेखोंका, प्रस्तुत **'विज्ञप्ति-लेख-संग्रह'** में संकलन किया गया है उनमें से सर्व प्रथम **'विज्ञप्ति-त्रिवेणी'** नामक लेख की प्राचीन हस्तलिखित प्रति, मुझे सन् १९१५ में, पाटण के वाडी पार्श्वनाथ मन्दिर स्थित प्राचीन ग्रन्थभंडार में उपलब्ध हुई। रचना को पढने से मुझे उसका बहुत महत्त्व अनुभूत हुआ और फिर सन् १९१६ में बडौदा में निवास करते हुए मैंने, प्रकाशित करने की दृष्टि से, उसका संपादन किया एवं भावनगर की जैन आत्मानन्द सभा द्वारा उसका प्रकाशन हुआ। मैंने उस पुस्तक की भूमिका बहुत विस्तारके साथ लिखी और उसमें **विज्ञप्ति लेख** का क्या तात्पर्य है और वे क्यों और कब लिखे जाते थे एवं उनका कैसा स्वरूप और वर्ण्यविषय आदि होता था, इन बातों पर यथेष्ट प्रकाश डाला था। तत्कालीन विद्वानों ने उस पुस्तक की बहुत प्रशंसा की। हिन्दी भाषा जगत् के महारथी और महागुरु स्व. पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदीने उसकी आलोचना करते हुए उसे, समग्र भारतीय वाङ्मय में, एक अपूर्व और अद्वितीय रचना कह कर उसका मूल्यांकन किया। मेरी वह सर्वादिम संपादित पुस्तक थी।

उसके बाद मैं वैसे विज्ञप्ति लेखों की खोज में बराबर लगा रहा और मुझे वैसे छोटे बडे अनेक लेख मिलते गये।

विद्वान् आचार्य और यतिगण द्वारा संस्कृत में लिखे गये विज्ञप्ति लेखों के अतिरिक्त, जैन श्रावक समुदाय के द्वारा स्थान विशेषों से देश भाषा में लिखे गये लेखों की प्राप्ति भी मुझे हुई और ये लेख तो इतिहास, साहित्य एवं चित्रकला की दृष्टिसे और भी अधिक महत्त्व के ज्ञात हुए। इनमें से एक सब से प्राचीन लेख जो मुझे मिला उसको मैंने अपने द्वारा संपादित और प्रकाशित **जैन साहित्य संशोधक** नामक त्रैमासिक पत्र (सन् १९२०) में प्रकाशित किया। उस लेख का प्रकाशन देख कर उस के जैसे अन्यान्य विज्ञप्ति पत्रों की खोज की तरफ, कुछ अन्य विद्वान्मित्रोंका भी लक्ष्य आकृष्ट हुआ और बडौदा राज्य के पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर स्व. पं. हीरानन्द शास्त्रीने गायकवाड राज्य की ओरसे वैसे कुछ विज्ञप्ति पत्रात्मक लेखों का एक सचित्र प्रकाशन प्रकट किया। इस प्रकारके संस्कृत एवं देशभाषा में लिखित विज्ञप्ति लेखों का संग्रह बहुत विशाल है और उनका सुन्दर रूप से प्रकाशन किया जाय तो जैन साहित्य, इतिहास और चित्रकला की दृष्टिसे एक महत्त्वका कार्य संपन्न होने जैसा है – यह विचार कर मैंने **सिंघी जैन ग्रन्थमाला** द्वारा ऐसे कुछ संग्रहों का प्रकाशन कार्य प्रारंभ किया जिसके परिणाम स्वरूप उसका यह **प्रथम भाग** आज विद्वानों के सम्मुख उपस्थित है।

प्रारंभ में मेरा विचार इस संग्रह में वैसे विज्ञप्ति लेख संकलित करने का था जो इस पुस्तक के पृ. ७० बाद, **द्वितीय विभाग** के रूपमें, 'आनन्द लेख प्रबन्ध' नामक आदि लेखों का मुद्रण हुआ है। मेरे पास ऐसे छोटे-बडे पचासों ही लेखोंका संचय हुआ पडा है।

सन् १९४० में, बंबई में मुझे बीकानेरके एक श्री पूज्यजी के पास वह बडा विज्ञप्ति लेख देखने को मिला जो इस संग्रह में सर्व प्रथम मुद्रित हुआ है। यह विज्ञप्ति लेख, सर्व प्रथम मुझे प्राप्त 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक लेख से भी कुछ प्राचीन और वैसा ही बहुत महत्त्वका लगा। मैंने इस की प्रतिलिपि करवा ली और प्रकाशित करने की कामना से संशोधनादि करना प्रारंभ किया। श्री पूज्यजी से प्राप्त यह लेख टीपणा के रूप में लंबे कागजों पर लिखा गया है। अक्षर तो इस के सुवाच्य थे पर भाषा की दृष्टि से अशुद्धियां बहुत दिखाई दीं। सद्भाग्य से इस की दूसरी प्रति मुनिवर श्री पुण्यविजयजी महाराज के पास पाटण में देखने को मिल गई। इस प्रतिका प्रथम पत्र नहीं है। बाकी संपूर्ण है। यह प्रति बहुत सुन्दर ढंगसे लिखी गई है और शुद्धिकी दृष्टि से भी उत्तम कोटि की है। इस प्रति के प्राप्त होते ही मैंने इस का मुद्रण प्रारंभ कर दिया। प्रथम मेरा विचार इस अकेले ही लेख को सुन्दर रूप से प्रकाशित कर देने का रहा और इस की प्रस्तावना भी 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' के समान विस्तृत रूपमें लिखने का था। पर पीछे से, ऐसे लेखों का एक समुच्चय संग्रह, इस दृष्टिसे प्रकाशित करने का हुआ, कि जिस से इस प्रकार के विशिष्ट और अभी तक अप्रकाशित

एवं अज्ञात स्वरूप साहित्यिक निधिका, विद्वानों को ठीक ठीक परिचय प्राप्त हो। इस विचार के अनुसार मैंने इस लेखके साथ, अपनी पूर्व प्रकाशित 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' का भी पुनर्मुद्रण कर देना उचित समझा। इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह में, 'विज्ञप्ति महालेख' एवं 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक दो बडी रचनाओं के साथ, 'आनन्द प्रबन्ध लेख' आदि अन्य उप-रचनाओं का संकलन किया गया है।

मेरा मनोरथ तो इन सब रचनाओं से संबद्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक बातों का विस्तृत विवेचन इनके साथ देने का था और जैसा मैंने 'विज्ञप्तीत्रिवेणी' के साथ विस्तृत उपोद्घातात्मक निबन्ध लिखा है वैसा ही निबन्ध, इसके साथ लिखने का रहा। पर सद्भाग्यसे या दुर्भाग्यसे मैंने ऐसे अनेकानेक ग्रन्थोंके संपादन का काम, एक साथ हाथ में ले रखा है, जिससे मनोरथानुकूल ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण विस्तृत भूमिकाएं या प्रस्तावनाएं लिखने का समय प्राप्त नहीं होता है।

इस संग्रह के छपवाने का प्रारंभ आज से कोई १७–१८ वर्ष पहले किया गया था और कोई १०–१२ वर्ष पूर्व ही यह सारा संग्रह, वर्तमान रूप में प्रकाशित होनेकी स्थिति में पहुंच गया था। पर मेरे हाथों में अन्यान्य संपादनों का भार, दिन प्रति दिन बढता ही रहने से, मैं अभी तक विस्तृत प्रस्तावना लिखने का सुयोग देख नहीं रहा हूं। अतः फिल हाल इस संग्रह को मूल मूल रूप में ही प्रकट कर देना मैंने अधिक उपयुक्त समझा है।

मनमें आशा तो बन्धी हुई है ही कि निकट भविष्यमें, मैं इसका दूसरा भाग भी तैयार कर सकूं और उसमें प्रस्तुत संग्रहसे संबद्ध विस्तृत विवेचना आदि लिख सकूं। इस विवेचना की बहुत सी सामग्री संगृहीत हुई पडी है। केवल दो-तीन महिनों का निराबाध और एकान्त समय मुझे मिल जाय, तो मैं उसे लिपि बद्ध कर सकूं।

मेरा मनोरथ तो यह भी रहता है कि जैसे संस्कृत विज्ञप्तिलेख इस संग्रहमें प्रकाशित किये जा रहे हैं वैसे देशी भाषाओं में लिखे गये विज्ञप्तिपत्रों का भी प्रकाशन होना चाहिये। ये भाषानिबद्ध विज्ञप्तिपत्र तो और भी अत्यधिक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सामग्री से परिपूर्ण है। गूजरात और राजस्थान की चित्रकला की दृष्टिसे तो इनका महत्त्व अत्यंत अधिक है। ये विज्ञप्तिपत्र ५-१० की संख्यामें नहीं, पर खोज करने पर, सेंकडों की संख्यामें उपलब्ध होंगे। इनमें का एक-एक विज्ञप्तिपत्र, एक-एक महत्त्वके निबन्धकी समग्रीसे भरा पडा है। यदि कोई विश्वविद्यालयों के उच्चाध्ययन करने वाले विद्यार्थी गण, इन विज्ञप्तिपत्रोंके विषयको ले कर ही अपने डॉक्टरेट (पीएच्. डी.) की डिग्री के लिये अध्ययन और अन्वेषण कार्य करना चाहें तो उनको बहुत महत्त्व की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सामग्री इनमें से उपलब्ध हो सकती है।



प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित सर्वप्रथम विज्ञप्तिलेख विक्रमसंवत् १४४१ में लिखा गया है। इस दृष्टिसे मुझे अभी तक प्राप्त ऐसे विज्ञप्तिलेखों में यह सबसे प्राचीन है। यह लेख खरतर गच्छ के आचार्य जिनोदय सूरि ने, गुजरातके पाटण नगर से, अपने पूज्य लोकहिताचार्यके प्रति, जो उस समय अयोध्या नगर में चातुर्मास निमित्त रहे हुए थे, भेजा था। यह पत्र बहुत ही सुन्दर एवं प्रौढ साहित्यिक भाषामें लिखा गया है। बाण, दंडी और धनपाल जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त गद्य शैली के अनुकरणरूप में यह एक आदर्श रचना है। आलंकारिक भाषा की शब्दच्छटा के साथ, इसमें ऐतिहासिक घटना के निदर्शक वर्णनोंका भी सुन्दर पुट सम्मिश्रित है।

जिनोदय सूरि और लोकहिताचार्य की परिचायक ऐतिहासिक साधन-सामग्री यथेष्ट उपलब्ध हो सकती है। खरतर गच्छ की पट्टावलीयों से तथा अन्यान्य ग्रन्थादि गत उल्लेखों से इनके समय आदि का सविस्तर इतिहास प्राप्त किया जा सकता है। हमारे संग्रहमें तथा बीकानेर आदिके ग्रन्थभंडारों में इस विषयकी सामग्री संचित है। इस सबका निर्देश करना या परिचय देना अभी मेरे लिये यहां पर शक्य नहीं है।

प्रस्तुत लेख में जिनोदय सूरि ने बहुत करके वि. सं. १४३०–३१ में जिस प्रदेश में विचरण किया और जिन तीर्थभूत स्थानों की यात्रा एवं प्रतिष्ठा आदि कार्य किये, उसका संक्षिप्त में वर्णन है। लोकहिताचार्य ने अयोध्या से एक

ऐसा ही विज्ञप्ति लेख जिनोदय सूरि को भेजा था जिस में उन्हों ने, पिछले वर्ष किये गये अपने प्रवास के वर्णन में, तीर्थ यात्रादि कार्यों का परिचय दिया था; उसी के उत्तर स्वरूप जिनोदय सूरि ने भी अपना यह विस्तृत एवं आलंकारिक विज्ञप्ति लेख लिख कर उन के पास भेजा था। इस से ज्ञात होता है कि लोकहिताचार्य का भेजा हुआ विज्ञप्तिलेख भी इसी प्रकार का एक उत्तम, सुन्दर साहित्यिक एवं वर्णनात्मक पत्र था। खोज करने पर, संभव है कि कहीं से वह पत्र भी किसी खोजी को मिल सके।

इस संग्रह में जो दूसरा बडा विज्ञप्ति स्वरूप लेख है वह 'विज्ञप्तित्रिवेणी' नाम का है जो वि. सं. १४८४ की रचना है। यह विज्ञप्ति पत्रात्मक लेख खरतर गच्छ के जयसागर उपाध्याय नामक विद्वान् ने, सिंध प्रदेश के मलिकवाहण नामक स्थान से, अपने गच्छाचार्य जिनभद्र सूरि को लिखा था, जो उस समय गुजरात के पाटण नगर में रहे हुए थे। इस पत्र विषयक सब ज्ञातव्य बातें, मैंने उक्त विज्ञप्ति त्रिवेणी नामक पुस्तक की विस्तृत प्रस्तावना में आलेखित की हैं।

मेरा विचार, उस प्रस्तावना को एवं अन्यान्य लेखों संबन्धी ज्ञातव्य बातों को भी, इस के साथ संकलित कर देने का रहा पर अभी समयाभाव से वैसा होना शक्य न जान कर, आज तो इस संग्रह को, वर्तमान रूप में ही, अपने हाथों में ले कर विद्वानों के सम्मुख उपस्थित हो रहा हूं। आशा है कि यह संग्रह इस रूपमें भी अभ्यासीवर्ग को आदरणीय होगा।

फाल्गुन पूर्णिमा, सं० २०१६
भारतीय विद्याभवन, बंबई
–[ता० १३.३.१९६०]–

– मुनि जिनविजय

विज्ञप्तिलेखसंग्रह – विषयानुक्रम

–: प्रथम भाग :–

द्वितीय विभाग

❋ ❋ ❋

खरतरगच्छीय
श्रीलोकहिताचार्यं प्रति श्रीजिनोदयसूरिणा प्रेषितं
विज्ञप्तिमहालेख
नामकं महद्विज्ञप्तिपत्रम् ।

[अथादौ मङ्गलार्थं जिनाशीर्वादाः –]

§ १. श्रीश्रेयांसि सतां दिशन्तु सततं ते स्वामिनस्तीर्थपा, यज्ज्ञानामृतपानतस्तनुमतां प्रज्ञावतां पर्षदि ।
गङ्गा-सिन्धुसरि·············सरला आश्चर्यदाः संपनी-पद्यन्ते हृदयङ्गमाः सहृदयश्रोत्रप्रियाः सूक्तयः ॥१॥
श्रीमत्काननमोदिताखिलजनः सद्दर्शन·········हृच्छायादृश्यतमः सुशालिवसुधः सारङ्गरङ्गावहः ।
दिग्······प्रबलप्रकाशशुभगः सानन्दपुण्याध्वगः, श्रीशान्तिः······स्स गमयेद् वः कल्मषं मूलतः ॥ २ ॥
कस्तूरिद्रवगर्भचं······मिलत्काश्मीरयूषच्छटा-शुक्तातुल्यविशाललोचन············क्षतम् ।
पक्ष्म······पुरोमदौर्बदलकं दृष्टं शुभायास्तु वः, श्रीमाङ्गल्यसुवर्णभाजनमिदं श्रीशान्तिनेतुर्मुखम् ॥ ३ ॥
················समुद्रसान्द्रलहरीराकण्ठमुत्कण्ठयन्, निःकम्पोज्ज्वलभव्यमानसधृतानेकस्वरूपाकृति ।
श्रीशान्तेर्वदनेन्दुमण्डलमलंकुर्वद् †दिशो[1]भाभरै,-[2]रद्वैतामृतपायनेन सफलं निर्मातु वो दर्शनम् ॥ ४ ॥
कान्ते! नाभिसमुद्भवं भज विभो! भक्तिर्विरञ्चौ न मे, सारङ्गाक्षि! [3]सुसार्वमङ्गलवरं कोऽभ्येति चण्डीधवम् ।
श्रीमद्[4]बाहुबलेः प्रसावकमये मुग्धे! न कार्यं हरौ, यद्दृष्टौ प्रिययोरियं चतुरताऽभूद् वः श्रिये [5]सैर्षभः ॥ ५ ॥
अद्वैतानन्दहेतुस्त्रिभुवनभवनोल्लासिसत्कीर्त्तिकेतु,-[6]र्लक्ष्मव्याजाद् विजित्य क्रमतलनिहितस्फूर्त्तिमन्मीनकेतुः ।
दृष्टो भव्यैस्तदीयद्विषदशिवघटासूचकोऽपूर्वकेतुः, संसाराम्भोधिसेतुः सुखयतु हृदयं नेमिराड् भक्तिनेतुः ॥ ६ ॥
आयाता क्रमतोऽपि येन मुमुचे सा युग्मिधर्मस्थिति,-र्यद्ध्यानामृतपानतोऽजनि जवाद[7]म्बासुखैश्वर्यभाग् ।
उत्तुङ्गे विमलाद्रिराजि विहितावासः प्रकाशः श्रियां, श्रीमा[8]न्नाभिभवः स वः प्रथयतु श्रेयः [9]शिवानन्दनः ॥ ७ ॥
यः स्वामी भुवि [10]विश्व[11]सेनजनताकल्याणकारोदय,-[12]श्छिन्नश्रीकलधूतकायजरुचिः कारुण्यपुण्याशयः ।
रङ्गद्दृग्[13]हरिणाश्रितः प्रतिपदं भोगीन्द्रचूडामणि,-[14]र्वामेयः प्रभुरातनोतु स सुखं [15]श्रीशान्तिनेता सताम् ॥ ८ ॥

---

† मूलादर्शभूतप्रतेः प्रथमपत्रस्य विनष्टत्वाद् एतत्पङ्क्तिपर्यन्तात्मकोऽयं प्रारंभिकभागोऽस्य 'विज्ञप्तिमहालेख'स्य बीकानेरीय-श्रीपूज्यसत्कलेखटिप्पणात् समुद्धृतः । १ कान्तिसमूहैः । २ पक्षे मोक्षः । ३ सुष्ठु सर्वेषु जिनेषु मङ्गलेन वरम्–इत्थं नाना-समासाः; पक्षे–सु = अतिशयेन सर्वमङ्गलायाः = गौर्या अयम्, 'अण्', स चासौ वरश्च तम् । ४ बाहुबलेः प्रसावकं = जनकं; पक्षे–श्रीमन्तौ बाहौ(हू) यस्य, स चासौ बलिश्च, तस्य प्रसावकं = प्रेरकं नोदकमित्यर्थः । ५ "तदः से स्वरे पदार्थाः" सन्धिः । ६ मीनाङ्कव्याजतः । ७ अम्बा = जननी मरुदेवा; नेमिपक्षे–अम्बा = अम्बिका । ८ नेमिपक्षे–न विद्यतेऽभिभवो यस्य, न अभिभव-नीतिकः । ९ ऋषभपक्षे–शिवेन आनन्दनः । १० समस्तः । ११ सस्वामिकः । १२ पार्श्वपक्षे–छिन्ना श्रीकला यस्य स तथा, एवंविधा अत एव धूता = कम्पिता कायजरुचिः = कन्दर्पाभिलाषो येन यस्माद् यस्य वा । १३ हरिणेन आश्रितः; पार्श्वपक्षे–हरिणा = सर्प्पेण इन्द्रेण वा । १४ शान्तिपक्षे–अमेयः । १५ पार्श्वपक्षे–श्रीशान्तिप्रापकः ।

यः पूर्वं करहेटकावनिमलङ्कृत्याथ भाग्योदया,-दायातः पुरकल्पपाटकधरां पूर्णः सुवर्णादिभिः ।
श्रीसौभाग्ययशोजयोन्नतिकरो दारिद्र्यमुद्राहरः, श्रीसंघाय सुखाय सोऽस्तु निधिवत् श्रीपार्श्वतीर्थेश्वरः ॥ ९ ॥
देवश्रीकरहेटकावनिमहाराजः प्रजावत्सलो, विश्वव्यापियशःप्रतापनिलयप्रध्वस्तशत्रूदयः ।
चेतश्चिन्तितपूरणे सुरतरुः संभेटितः साम्प्रतं, श्रीपार्श्वः प्रथयेत् सुसेवकजने प्रीतिप्रसन्ने दृशौ ॥ १० ॥
यदंह्रिकामाङ्कुशशोणरश्मयो, दिशन्ति काश्मीरविलेपनभ्रमम् ।
तनूषु नम्रामरसुन्दरीततेः, स वर्द्धमानः प्रभुरस्तु वो मुदे ॥ ११ ॥
पुष्णन्तु प्रभुनाभिभूप्रभृतयोऽर्हन्तः सतां ते सुखं, व्याख्यानावसरे क्षरद्रुचिमुचो रेजुर्यदीया रदाः ।
आत्मौन्नत्यधरान् सुकुन्दमुखरान् विस्मेरपुष्पोत्करान्, दृष्ट्वाऽधःपतितान् पुरः किमु मुदा प्रोद्भूतहास्या इवं ॥१२॥

*

[अथ अणहिल्लपुरपत्तनवर्णनम् –]

§ २. भा[2]स्वद्भावनदानशीलतपसां यस्मिन् जनं भाजनं, दृष्ट्वा संयममञ्जरीभरधृतौ सन्मा[3]धवं सा[4]धवम् ।
जैनेन्द्रं भवनोच्चयं च सुभगं बैम्बैः कदम्बैरहो !, दुःकालेऽपि लभन्ति धार्म्मिकदृशः पुण्यामृतैः पारणम् ॥१३॥
यत्रैतान् व्यवहारिणो निदधतः सौवर्णशृङ्गारणां, सारङ्गाक्षिकटाक्षचञ्चलपदैर्वाजिव्रजैर्दीव्यतः ।
दानं देवतरूनिव प्रददतो जेगीय्यमानान् गुणै,-र्दृष्ट्वा मोक्षहृदोऽपि संसृतिसुखे सत्तां मृशन्ति क्षणम् ॥ १४ ॥
स्त्रैणं यत्र सुवर्णकेतकनिभैरङ्गैर्मनोहार्यपि, प्रेक्ष्यामी तरलेक्षणाः कविजना जानन्ननङ्गास्पदम् ।
यत्र प्रेमरसानुविद्धमनसोः स्त्रीपुंसयोः सङ्गमं, कृत्वा चानु तयो रसं परिमृशन् ब्रह्माऽपि मोमुह्यते ॥ १५ ॥
यस्याऽऽवासिजने त्रिवर्गघटनाऽन्योन्याविरोधिक्रियां, बिभ्राणा वसति स्फुटं म[5]धुरिपोः काये त्रिलोकी यथा ।
चित्रं मे प्रथमा कदापि यदसौ मोक्षाय सम्पत्स्यते, काले भूरितरेऽपि किन्तु विवशा नेयं द्वितीया पुनः ॥१६॥

*

तस्मात्–सकलशैलशेखरतुषारधरणीधरादिव स[6]र्वमङ्गलाचरणप्रचाररमणीयनिवासात्, दक्षिणाशानिवासिविन्ध्यवसुधाधरादिव स[7]कलभवनराजिराजितप्रदेशात्, कस्तूरिकाकूटघटितगगनाङ्गणानुषङ्गिशृङ्गोत्तुङ्गाञ्जनावनीभृत इव साञ्जनसानुरागह[8]रिणेक्षणाक्षिप्तबहुविधविद्याधरनिकरात्, पूर्वदिशावतंसशृङ्गारप्रकारश्रीउदयाद्रेरिव उदयमानसहस्रक[9]रमण्डलात्, श्रीवैभारगिरेरिव श्रीगणधरस्तूपपरभागप्राप्तभूभागात्, श्रीविपुलश्रीविपुलाचलादिव समस्तजनतालोचनवितानक्रीडाविनोदमेदुरीकारस्पृहणीयशोभाविस्तारसमीपवर्त्तिश्रीरा[10]जगृहरमणीयात्, निस्सीमचतुर्दिगन्तमुद्रितसमुद्रसमुद्भूतविपुलकमलाविलासिनीविलासकुशलविलासिलोकास्तोकप्रदेदीय्यमाना[11]समानदानवितानसंप्रीणितानेकवनीयकनिकुरम्बजेगीय्यमानजाह्नवीतरङ्गिणीप्रोच्छलद्बहलकल्लोलमालाप्रक्षालितधवलकीर्त्तिमण्डलविमलसरस्वतीप्रवाहतथासुजात्यमत्तमतङ्गजकुम्भस्थलोत्पन्नप्रसन्नाविभिन्नप्रोज्ज्वलमुक्ताफलगुलिकागुम्फितहारिहारशृङ्गारितधरणीरमणीविशङ्कटहृदयतटात्, अविकलकलाकलापसंलापलोलुपल[12]पनलब्धवर्णलब्धवर्णक्षीरार्णवसमुल्लासनविभासमाननिशानाथायमानजनराजिविराजमानात्, पुरातनभवसमाराधितश्रीबोधिदपदपद्मयुगलपर्युपास्तिसमर्जितवर्योर्जितगर्जिततर्जितनिरर्गलकश्मल-

१ इति मङ्गलार्थं श्रीजिनाशीर्वादाः । २ अथ पत्तनपुरवर्णना । ३ वसन्तम् । ४ साधूनां समूहम् । ५ नारायणस्य । ६ सर्वमङ्गला = गौरी तस्याश्चरणप्रचारः, इत्यादि; पुरपक्षे – सर्वमङ्गलाऽऽचारः, इत्यादि । ७ समस्तगृहराजि; पक्षे – सकलभवनराजि०, इत्यादि । ८ पक्षे – नारी । ९ कराः = किरणाः, राजदेयभागाश्च । १० नगरविशेष; पक्षे – नृपमन्दिर । ११ सादर । १२ मुख ।

बलप्रबलपुण्यागण्यपुण्यवितन्तन्यमानाभङ्गभोगभङ्गीसुभगभावुकभूचरनिकरमधुरलावण्यभरभङ्गुरशरीरावयवरूपस्वरूपनिरूपणविस्मारितपुरन्दरपुरात् श्री अ ण हि ल्ल पु र वरात् ॥卐॥

*

[पत्रपेषकसूरेस्तदीयशिष्यमण्डलस्य च नामाभिधानपूर्वकं पर्युपास्तयः –]

§ ३. श्रीजिनोदयसूरयः–पं० तेजःकीर्त्तिगणि–पं० हर्षचन्द्रगणि–भद्रशीलमुनि–पण्डितज्ञानकलशमुनि–धर्मचन्द्रमुनि–मेरुनन्दनमुनि–मुनितिलकमुनि–ज्ञाननन्दनमुनि–सागरचन्द्रमुनिप्रमुखैरदोषाकरैरपि दोषाकरमुखैः, [1]प्रकाशग्रहपुषैरपि न [2]प्रकाशग्रहपुषैः, [3]अकलाकेलिसुखैरपि कलाकेलिसुखैः, [4]सद्वेषयुषैरपि अद्वेषयुषैः, स्निग्धदुग्धोदधिधवलविलोललहरीप्रवाहचलाचलबलक्षपक्षयामलजामलस्वच्छातुच्छच्छायारञ्छोलिसमाच्छादितसन्मानसैः श्रीराजमरालैरिव, अनवरतपापठ्यमानसुललितवर्णावलिग्रन्थसार्थमधुरध्वनिसुधावतारताराझङ्काररवप्रीणिताशेषभविकसारङ्गैर्भृङ्गैरिव, अमन्दज्ञानमकरन्दसन्दोहबिन्दुलोलुपैर्मुनिवरनिकरैर्वरिवस्यमानकोमलाङ्गुलिदलावलिपेशलमञ्जुलचलननलिनयुगलप्रबलकलिमलक्षालनजलोपमपर्युपास्तयः ॥ 卐 ॥

*

[अथ पत्रप्रेषणीयस्थानभूत-अयोध्यापुरीवर्णनम् –]

§ ४. [5]क्षेत्रार्द्धनाभिमभिसंस्थितिमादधाना, [6]पुण्यात्मभिः प्रतिदिनं परिचिन्त्यमाना ।
उद्द्योतरूपरमयाऽप्रतिभासमाना, या वर्ण्यतेऽत्र भुवि कुण्डलिनीसमाना ॥ १७ ॥
खण्डेन्दुसुन्दरललाटतटेन पुण्य,-कृत्त्यावृतेन जगतः स्थितिं[7]कारकेण ।
कैलाशभूमिरिव पूर्व[8]मुमान्वितेन, याऽलङ्कृता भगवता [9]वृषभध्वजेन ॥ १८ ॥
उल्लासिकान्तिगुणगुम्फितवैबुधाली,-लोलन्मनःसुरमणीरमणीयमध्या ।
सन्तान[10]तानसुखमास्पृहणीयवासा, या शाड्वला शुभति मन्दरकन्दरेव ॥ १९ ॥
उत्[11]केतकप्रियतमाणि [12]सचित्रकाणि, [13]छायाविभाजनकरञ्जकवालकानि ।
उत्कम्पपक्ष्मलतनु[14]प्रवयोऽङ्कितानि, राजन्ति यत्र भवनानि वनोपमानि ॥ २० ॥
आलिङ्गितानि लहरीभ्य [15]इवात्तकण्ठं, दृष्टिभ्रमान्मकरकम्पितनीरपूरात् ।
हंसोच्चयान्मधुरभाषितसङ्गताऽन्य,-भ्यस्यन्ति यत्र सरयूसरितस्तरुण्यः ॥ २१ ॥
यत्रोपकण्ठसरयूतटपट्टकेषु, मुक्तालि[16]चूर्णतनुवालुकयाऽङ्कितेषु ।
मन्द्रं ध्वनन्त इव सुक्रमकैर्लिखन्तो, [17]लेखाः पठन्ति [18]सुगमं किल हंसबालाः ॥ २२ ॥

किं बहुना –

विद्याविनोदचतुरं चतुरम्बुराशि,-प्रोल्लासि कीर्त्तिमधुरं मधुरञ्जि वाचम् ।
यस्यामुदारचरितं [19]चरितं गुणेषु, कृत्वा जनं विधिकरोऽधिकरोचिराप ॥ २३ ॥

---

१ प्रकाशेन सूर्यैः । २ प्रकटकदाग्रहग्रहैः । ३ कामकेलि । ४ प्रधानवेषैः । ५ अथ श्रीअयोध्यापुरीवर्णनम् । ६ पुण्यकृत्त्येनावृतः–पुण्या चासौ कृत्तिश्चर्म तदावृतेन । ७ पक्षे–कारकेण = विनाशकेन 'कॄ मॄ शॄस् हिंसायाम्' । ८ उमा = गौरीकान्तिकीर्त्तिप्रमुखाश्च । ९ वृषभध्वजेन = ऋषभेण ईश्वरेण वा । १० विस्तार । ११ उद्गताः केतकाः तैः; पक्षे–उत्का = उत्सुका अत एव इतका = आगताः प्रियतमाः = प्रिया यत्र । १२ चित्रसहितानि; पक्षे चित्राः = श्वापदविशेषाः । १३ छाया = शोभा, विभा = कान्तिः, ताभ्यां जनकानां = पितॄणां रञ्जका बालका यत्र; पक्षे–छायाविभाजनानि, करञ्जका = वृक्षविशेषाः, बालकानि = ह्रीबेरा यत्र । १४ प्रवयसो = वृद्धाः, प्रकृष्टाः पक्षिणश्च तैः । १५ ज्ञानार्थो वा । १६ चूर्णवत् तनु सूक्ष्मा इत्यर्थः । १७ रेखाः । १८ सुष्ठु गमनम् । १९ गुणेषु चरितं–प्रसिद्धम्, अथ–'च' इति पृथक् गुणेषु रितं = प्राप्तम् 'रिं पिं तु गतौ' ।

अपि च –

श्रीसू[१]र्यवामकमलोदयका[२]रिपादा, दोषान्धकारहरणा विहितप्रसादाः ।
पुण्यार्थिभि[३]र्मुनिजनैरभिनन्द्यमाना, यस्यां दिवीव पथमाशु पवित्रयन्ति ॥ २४ ॥

तस्याम् – अपारसंसारपारावारतारणतरण्डावतारश्रीमदार्हतागमपरम्परायामिव महार्थनै[४]गमव्यवहारमनोहरायाम्, बौद्धदर्शनानुरक्तजनतायामिव सु[५]गतचरणन्यासप्रलोभितमानवच[६]पलेक्षणायाम्, अक्षपादप्रवादभ[७]क्तप्रजायामिव शिवमार्गानुध्यानतत्परायाम्, का[८]पिलमतस्थापनायामिव सकलकर्म्मसाधनालङ्कर्म्मीणप्रकृतिप्रधानायाम्, जैमिनीयसमयसावधानजनपरिपाट्यामिव बहुवेदनया मुक्तमानवायाम्, सरोवरासन्नसरसरसायामिव सा[९]रसहितायाम्, समस्तमहीरुहसारसहकारलतायामिव पुंस्कोकिलसेवितायाम्, महीधरविपुलमेखलायामिव ना[१०]नारामाभिरामायाम्, विन्ध्याटव्यामिव कान्तारसाकुलपुरुषायाम्, चिन्तातुरमनुजमानसवृत्ताविव बहुलोहकारप्रकारायाम्, अलकायामिव धनदविराजमानायाम्, त्रिपथगापगायामिव सु[११]रवशालिजनावगाह्यमानसं[१२]पद्मरसभङ्गायामपि घ[१३]नवाहनाश्रितायामपि व[१४]नमालिपदशोभितायामपि शिवा[१५]विरोधिन्यामपि वि[१६]प्रकृतजलप्रवेशायामपि सच्छाय[१७]हिमालयजातायामपि तारणतीर्थसमन्वितायामपि भुवनत्रयविसारिकीर्त्तिनिर्म्मलप्रवाहायामपि न नीरसहितायाम्, रेवातरङ्गवत्यामिव ना[१८]नागजातिरुचिरपरिसरायामपि न कदापि दा[१९]नरसात्तगन्धायाम्, बहुलवनमालायामिव ह[२०]रिविनिर्म्मितायामपि न कन्दलाकुलायाम्, प्रसृमरघनपवनान्दोलितोपान्तवर्त्तिवनतरुलतावितानसमुड्डीनविलोलरोलम्बनिकुरम्बवदनकन्दरविसृत्वरकलकोलाहलव्याजेन वनदेवताभिरपि जेगीय्यमानवसुन्धरावलयालङ्कारसमग्राग्रिमग्रामग्रामनिगमसुन्दरेन्दिरास्पर्द्धिवर्द्धमानशोभासंभारसमर्जितरजनीजानिमण्डलोज्ज्वलकीर्त्तिकलापायाम्, गगनाङ्गणाग्रलग्नविसारिशाखाविसरशिखरिशिखरोन्मिषत्कुसुमस्तबकमिषेण समानश्रिया विमानश्रिया सहितां पुरन्दरपुरीमुन्नमय्य मुखं हसन्त्यामिव बहुविधकलाकुलसङ्कलनराकाविभावर्यां महेश्वरमानसाह्लादनगौर्याम्, सौववासप्रकाशविडम्बितकस्तूर्याम्, आसमुद्ररत्नगर्भाधिष्ठातृसुर्यां श्री अ यो ध्या पु र्या म् ॥ 卐 ॥

*

[अयोध्यापुरीस्थितसूरिवराणां तदन्तेवासिमुनिगणानां च वर्णनम् –]

§ ९. ''नित्यं वृत्तगुणप्रकाशनकृता नक्तंदिवा श्रीभृता, मैत्रालोकनजातसंमदवता येषां मुखेन ध्रुवम् ।
एष श्वेतरुचिर्विनिर्जित इति स्फारांशुजालच्छला,-ल्लात्वाऽऽस्येन तृणालिमेत्य कुरुते शून्ये दिनातिक्रमम् ॥१५॥

---

१ सूरीणां पादाः; पक्षे – सूर्यपादाः । २ कर्त्तारः । ३ पक्षे – मुनयो वालिखेल्याः । ४ नैगमो = नयविशेषः; पक्षे – नैगमा = वणिजस्तेषां व्यवहारस्तेन । ५ सुगतो = देवविशेषः; पक्षे – सुगतं = शोभनगमनम् । ६ चपलेक्षणा नार्यः; पक्षे – चपलानि ईक्षणानि । ७ नैयायिकलोक । ८ साङ्ख्यमतस्थापना । ९ सारसानां हिता, सारेण सहिता वा । १० आराम, रामाः = स्त्रियः । ११ शोभनो रवः सुरवस्तेन शालिनो जना इत्यादि; पक्षे – सुराणां वशालि जन स्त्रीपरम्परा लोक इत्यादि । १२ सह पद्मया वर्त्तन्ते एवंविधा ये रसाः शृङ्गारादयः; सकमलं रसः = पानीयम्, इत्यादि । १३ पक्षे – इन्द्रः । १४ वनमाली = नारायणस्तस्य पदस्तत्र शोभि०; वनानि मालन्ते एवंविधानि पदानि = स्थानानि तैः शोभि० । १५ गौरी । १६ विप्रकृतो = निराकृतो जडप्रवेशो यस्यां नगर्यां; गङ्गापक्षे – विप्रैः = ब्राह्मणैः कृतो जले = पानीये प्रवेशो यस्याम् । १७ हिमाः = शीतलाः आलया = गृहाणि । १८ नानाऽगानां = वृक्षाणां जातयस्ताभिः; रेवापक्षे – गजैरतिरुचिरः परिसरो यस्याः । १९ पक्षे – मदजलं । २० हरयो = वानराः, वयः = पक्षिणः; पक्षे – हरिरिन्द्रः । २१ अथ श्रीआचार्यमिश्राणां मुनीनां च वर्णना ।

सच्चक्रे विधुरेति जातकरुणं पक्षोदये श्रीचणं, पूर्वे दुःखिनि निर्दयेन कनता[1] पक्षावसानेऽधिकम् ।
येषामाननमिन्दुना तुलयतामेषां कवीनाममी, दोषज्ञा वितरन्ति हन्त ! निपतद्धीनोपमानोद्भवम् ॥ २६ ॥
एणं केचन वर्णयन्ति विबुधाः शंसन्ति चैके शशं, केऽपि प्रोषितवल्लभावधभवं पङ्कं कवन्ते[2] विधौ ।
मन्येऽहं तु न तानि किन्तु यदसौ[3] चक्रे यदास्यश्रिया, संस्पर्द्धां च तया जितस्तदयशो मूर्त्तं निदेधीयते ॥२७॥
जाने चिह्नमिषादवेक्ष्य विवरादस्माद् विधोर्मण्डलाद्, धाता यद्वदनं विधातुमखिलं जग्राह सारं खलु ।
येनाद्यापि तया रुषाऽस्य[4] सदनं क्लिश्नाति पादैः सदा, नित्यं चैष तदाप्तये[5] सुरगिरिं सारास्पदं सेवते ॥ २८ ॥
एते केऽप्यवतेरुरत्र भुवने नव्याः समुद्रा अहो !, येभ्यो हन्त[6] सरस्वतीयमतुला रङ्गद्रसोर्म्युज्ज्वला ।
निःसृत्योच्चतरे क्षमाधरभरे[7] चक्रिः समारोहणं, सद्यस्तं च भिदेलिमं प्रकुरुते दुर्भेदमप्यन्तरा ॥ २९ ॥
भास्वद्भाग्यरमाः प्रमाणरहिता[8] येषां पुनर्नो गिरः[9], कीर्त्तिर्येषु निरर्गला नहि पुनश्चित्तस्थितिस्तादृशी ।
यत्पादद्वितयी सदा [10]गुरुमहादेशाक्रमे विक्रमं, धत्ते नो रसना[11] तथा परमहो ! येषामपूर्वा स्थितिः ॥ ३० ॥
तापं चन्दनयूष एष हरते सोऽयं न माधुर्यभाग्, मिष्टश्चेक्षुरसो भवेत् परमसौ वैरस्यमेति क्षणात् ।
पीयूषस्य न दध्महे [12]श्रुतिपथख्यातस्य वाञ्छामपि, [13]ब्रूथानेकगुणं यदीयवचनं केनोपमेयं ददे ॥ ३१ ॥
[14]वारुण्या दिश उत्थितैर्घनपथं चङ्क्रम्यमाणैः क्रमात्, प्रौढोद्द्योतभरैरपि प्रणयिनां नेत्रैः सुखालोकितैः ।
कुर्वाणैः कुमुदालिकेलिकमलां संजातनित्योदयै,-र्यैर्वा[15]ऽपूर्वदिनेश्वरैः प्रथमिका पादैः ककुब् भूष्यते ॥ ३२ ॥

तान्—श्रीसूरिपदपदवी[16]कादम्बकुटुम्बिनीक्रीडातडागावतारशरीरान्, जननयनमेदुरामन्दमहानन्दकन्दकन्दलनालङ्कर्म्मीणाक्षीणागण्यपुण्यलावण्यरसराशि[17]करीरान्, अजीर्णा[18]ज्ञानमदप्रवाहगह्वरितदुर्वारप्रचारवादिवृन्दोद्दामस्तम्बेरमनिरर्गलसकलजीवमानसोत्पिञ्जलभावोद्भाविगम्भीरगर्जनसन्तर्जनप्रबल[19]करीरान्, [20]अविरतविततचित्तकुहरवितन्तन्यमानप्यानध्यानसन्धानविधानाध्यामधामधा[21]मज्वलज्ज्वालाकुलज्वलनज्वालितमनोऽरण्यवासिकषायवृक्षकोटरान्, अहर्निशपेपीय्यमानविविधजिनवचनरचनाविशुद्धसुधारसधारोद्गारनिरस्तविषमपरिणामगरलाकुलितजगत्त्रयजनचयदुर्जयमहारागोरगलहरीभरान्, आजन्मजातविष्टपत्रयविख्यातदुर्निरोधपरस्परविरोधबाधाविबाधितसहवासिकमलासनाक्रोशनिदेशादिव मुक्तकलहं श्रीश्रीशारदानिवाससदनीकृतवदनमण्डलान्, विश्वविस्मयविधायिभाग्येन्दिरासुन्दरी[22]तलमीकृत[23]नेमसुधाकराकारविपुलभालस्थलान्, सिद्धिमधुकरीकेलिकमलायितकरतलान्, अनवद्यविद्यामकरन्दास्वादलिप्सावशीभूतविनेयजनमधुकरनिकरकोलाहलविलीनप्रमीललक्ष्मीकचलननलिनदलान्, स्पृहणीयसौभाग्यकलान्, कमलदलमृदुलधवलपृथुलप्रच्छदपटानिव सर्व[24]गुणमयमूर्त्तीन्, समस्तमुनिमौलिमालावलीवन्द्यमानपदद्वय[25]महाव्रतिन इव मथितमन्मथमहास्फूर्त्तीन्, सकलविटपिकोटीरसुरतरूनिव पदतललुलितसुललितविनयकलितान्त-

१ दीप्यमानेन । २ 'उड् कुड् खुड् गुड् घुड् डुड् शब्दे' धातुः । ३ विधुः । ४ अस्य=धातुः, सदनं=गृहं कमलरूपम् । ५ सारप्राप्तये । ६ सम्बोधने । ७ पर्वतसमूहे, अथ च मुनिनिकरे । ८ इयत्तया रहिता । ९ गिरो न प्रमाणतर्करहिताः । १० गुरुषु महादेशेषु आक्रमणं=विहारस्तत्र । ११ रसना=जिह्वा तत्पक्षे गुरूणां यो महादेशो—महीयसी आज्ञा तदाक्रमणे लङ्घने इत्यादि । १२ शास्त्रमार्गेष्वेव विश्रुतस्य; अथवा कर्णेष्वेव श्रूयते न प्रत्यक्षं केनापि दृश्यते । १३ कथयत भो पण्डिताः ! यूयम् । १४ पश्चिमाया अन्यः, सूर्यो हि पूर्वदिश उत्तिष्ठति अत एव चित्रम् । १५ वा—इवार्थे, यैरपूर्वदिनेश्वरैरिव । १६ राजहंसी । १७ कुम्भान् । १८ आकुलता । १९ सिंहान् । २० निरन्तरम् । २१ अविध्यातदीप्तिगृह । २२ तलमं=शय्या । २३ अर्द्धचन्द्रावतार । २४ गुणा औदार्यादयः; पक्षे—तन्तवः । २५ ईश्वरानिव ।

वासिविबुधधोरणीयायाच्यमानपरमरसकलविशालफलपोपुष्यमाणपूर्त्तीन्, सुस्निग्धाञ्जनघनद्युतिकलधूतकषपट्टानिव दर्शितवर्णनीयसुवर्णवर्णोत्कर्षान्, वार्षिक[1]बलाहकानिव लोलूयितविनीतचातकोत्करभूरितर्षान्, सदुपदेशराशिसिता[2]रससारणीपानप्रदानसम्पादितभवद्वभवसन्तापविधुरजीवलोकहर्षान्, निजदर्शनेन्दुद्युतिनिर्मितसज्जननयनेन्दुकान्तामृतवर्षान्, सुजात्यसमदद्विरदरदविशदशारदजलदसितेन्दीवरकुमुदकुन्ददलकदलीस्तम्भच्छेदविमलविशालस्फाटिकशिलावाससप्रकाशकैलाशवसन्तमासजातोल्लासकुसमहासकाशविकाशखटिकाखण्डडिण्डीरपिण्डपाण्डुरपुण्डरीकमण्डलबहलक्षीरोदधिलहरिमालोज्ज्वालप्रत्यग्रनीरहीरशरीरविस्तारभूतिवारसारघनसारतुषारधरतुषारकरकरनिकरतारतारमुक्ताहारगौरयशःपूरपरिपूरितनिरन्तरकुक्षीकृतजगज्जनब्रह्माण्डभाण्डोदरान्; किं बहुना–

अपि समधिगतश्रुताधिदेवीवरकविकुण्ठितशेमुषीविलास,–
त्रिभुवनजनताश्रवोऽवतंसीकृतगुणसुन्दरपल्लवावलीकान् ॥ ३३ ॥

अपि च–

[3]रविकिरणमितानि [4]तुष्टवाचां, यदि वदनानि भवन्ति कोविदानाम् ।
तदपि न [5]संहिताम्बुराशिपाथः,-कणगणनाधिकसद्गुणप्रशंसान् ॥ ३४ ॥

आनन्दकन्दलविलासनचैत्रमासान्, श्रीसूरिमित्रकमलाकलकेलिवासान् ।
श्रीपू[6]र्व्वलोकहितसूरितभीविहारान्, श्रीपूर्व्वलोकहितसूरिवरान् सुसारान् ॥ ३५ ॥

उद्दामकामरसरङ्गतरङ्गभङ्गी, भङ्गार्पिजैनवचनाचलचूलसङ्गी ।
शुद्धक्रियाप्रकरसाधनधातुरम्यः, पुँण्यप्रधानगणिरेष मदैरगम्यः ॥ ३६ ॥

प्रातिभप्रवरदर्प्पणबिम्ब,-प्रेक्षितार्थनिचयप्रतिबिम्बः ।
मेरुवन्मथितशास्त्रसमुद्रः, शोभतेऽत्र गणिरत्नसमुद्रः ॥ ३७ ॥

सौहृदय्यरसचङ्गतरङ्गै,-र्यस्य मानसमपूरि सदैव ।
सैष नित्यसुभगास्यसरोजो, राजमेरुमुनिरत्र विभाति ॥ ३८ ॥

क्षीरनीरधवला अपि चित्तं, रञ्जयन्ति बत यस्य गुणौघाः ।
अस्तिवाङ्मयसुधारसकुम्भः, स्वर्णमेरुमुनिरेषविदम्भः ॥ ३९ ॥

इत्येवमादिभिः–विशिष्टशिष्टसमाचीर्णजीर्णचारुचारित्रपवित्रगात्रैः, साधुसाधुप्रगुणगुणमणिगणपात्रैः, महाजडिमजडराशिपरता[8]रसमङ्गीकाराय समाश्रितगुरुचरणसधरयानपात्रैः, संसारचारकसञ्चारप्रकारकारकातिचारवारश[9]ष्पसंभारलूनिसारदात्रैः, [10]वाहीकान्तरशुद्धिविधानसाधीयःपुण्यनिमित्तरचिततीर्थयात्रैः, ऐहिकामुष्मिकप्रथीयोऽर्थसार्थविवेचनसमर्थबन्धुरबुद्धिमात्रैः, श्री[11]भागवतप्रणीतशुभमयसमयसारसम्भारसङ्ग्रहनिर्विग्रहाध्ययनविधानप्रधानच्छात्रैः, सौवसुवर्णक्षमाप्रमोदितविबुधमण्डलांश्चामीकराचलानिव अतुच्छ-

१ मेघानिव । २ शर्करारसकुल्या । ३ रविकिरणमितानि = सहस्रसङ्ख्यानि । ४ तुष्टा वाक् = सरस्वती येषाम् । ५ मिलिता । ६ पूर्वलोकानां हितं सूते स तथा, रिता = गता भीर्यस्मात्, एवंप्रकारो विहारो येषाम् । ७ 'तदपि न विश्वसिमो वयं विधातुः, विधिविलसितं रसातलं यातु' ८ 'दिक्शब्दात्तीरस्य तारः' इति तारादेशः । ९ नवतृणविशेषः । १० बहिर्भवा बाहीका 'बहिषष्टीकण् च' । ११ भगवतां समूहो वा ।

स्वच्छपिच्छलच्छायागुच्छमनोरमैर्गीर्वाणद्रुमैः, सद्रुमानिव दिग्व्यापिभिः शिखि(ख?)रचयैः, शिखरचयानिव निजगुणवासविकासस्ववशीकृतसदालिपुष्पप्रकरैः, पुष्पप्रकरानिव संजातावदातपुण्यसमुदयैर्भोगपुरन्दरैः, पुरन्दरानिव सकलदिग्वलयविलासिविमलयशःप्रतापजालैर्लोकपालैः, लोकपालानिव सदा समुदायकीर्त्तनीयकीर्त्तिघटैर्विक्रमाक्रान्तविश्वम्भरातटैः प्रसिद्धसुभटैः, वन्दारुनरनिकरदारिद्र्यव्रणरोहणान् रोहणानिव वि[1]ज्जलनिजतेजःपुञ्जोज्ज्वालितरसारामै रम्यरत्नग्रामैः, भास्वरभास्करानिव विहितविष्टपस्तो[2]मैर्ग[3]भस्तिस्तोमैः, रोहिणीरमणानिव शुभराशिवासचणैर्ग्रहगणैः, [4]दानशौण्डानिव सदर्थप्रार्थनानिपुणैर्विचक्षणमार्गणैः, अश्रान्तकान्तनितान्तगतान्तशान्तरसोल्लोललोलितचित्तैः, संगृहीतनिर्णीतकुगतिपातविघातप्रभविष्णुतपोवित्तैः, महागहनरूपारोपितविषादप्रमादोद्यानदलनकुञ्जरैः, सुविहितयतिकुञ्जरैः सेव्यमानान् ॥ 卐 ॥

*

[पत्रप्रेषकसूरिकृतवन्दनावर्णनम् –]

§ ६. सादरं सबहुमानं सावधानं सैकतानं ससन्मानं सप्रीतिदानं साञ्जसं सोल्लासं सलोचनविकासं सप्रेमप्रकाशं सशरीरायासं सहर्षं सतर्षं सानन्दास्रु(श्रु)वर्षं सहृदयकर्षं परिगलितामर्षं सप्रणयं सनयं प्राप्तसदयं मानितमानसदयं चिन्तितश्रीमद्गुणलयं प्रसारित[5]शयं सोदीरिताह्वयं संजाताद्वैतमयं विस्मेरितेन्द्रियचयं अवगणित[6]स्मयं अङ्गीकृतविस्मयं स्फुरिताङ्गनिचयं नर्त्तितभाव[7]हयं आश्रितसर्वप्रकारतन्मयम्;–श्रीप्राचिकाचार्यनिर्णीतनीतिमार्गनिपुणैः, निःशेषसुरासुरकिन्नरनरनरवरमुनिवरविसरवराङ्गपरम्परारुचिभरभासुरहीरकर्मीरितकोरकितकिरत्कार्त्तस्वरसरलकरजालविशालशिखरश्रेणिरमणीयकोटीरायमाणसप्रमाणश्रीमदाज्ञागुणैः, श्रीजिनागमसारविचारविस्तारप्रगल्भितप्रज्ञाप्राग्भारसमवधारितकरमणीयप्रकारैः, विशुद्धबुद्धिबोधितविविधविधेयरोचिष्णुविधिज्ञविज्ञजनहृदयस्थलविभूषणविपुलगुणहारैः, निजसन्तानसुखविधानवाञ्छास्वच्छतया संस्थापिताविच्छेदिमर्यादावारैः, समस्तसंसारसारस्वर्गापवर्गावसानसुखनिदानपुण्यपुण्यप्रकारप्रथमाधारपरोपकारराजमरालकेलिसरोवरैः, आच्छादितजगज्जङ्घालधवल[9]कीर्त्तिजालरणझणायमानदोषषट्चरणप[10]द्मसर्वानर्थमू[11]लच्छद्मगुच्छ[12]तापिच्छोच्छेदनतीक्ष्णकुठारावतारवाणिविस्तारैः, नरकपुरप्रापणप्रवणवाहनायमानदुर्मदमदद्विरदविदारणसमदपञ्चवदनैः, प्रवर्द्धमानप्रोच्छलत्स्निग्धमुग्धदुग्धोदधिलहरिमालाविमलितपार्वणरोहिणीरमणमण्डलशोभालुण्टाकवदनैः, अभङ्गुरभाग्यसौभाग्यभङ्गीपराभूतभूतलाढ्यमदनैः, महीवलयमहनीयाहीनमहामहिमासदनैः, विष्टपप्रतिष्ठिताख्यानव्याख्यानावसरविसारिशारदीनसुधाकरकौमुदीकन्दलानुकारिसरसवाग्विलासगम्भीरधीरमहारवाधरितभद्राम्भोधरमधुरबन्धुरनादैः, प्रदलितप्रह्वप्राणिविषादैः, प्रणतभविकलोकविहितप्रभूतप्रसादैः, परमब्रह्मदिदृक्षुमुमुक्षुलक्षसमाश्रयणीयपादैः, सन्तापनिर्वापच्छायातरुभिः, शुचिकुलक्रमायातश्रीपूर्वगुरुभिरुपदिष्टां सज्जनमनोऽतिमिष्टां समानन्दितसमग्रशिष्टां अगण्यगुणगणनापरम्परास्पृष्टां नीतिरीतिकुशलजनमानसाभिनिविष्टां परमाह्लादचन्दनरसोर्मिसंघृष्टां परमसौभाग्यभावनासृष्टां गुरुजनविधीयमानगुरुसङ्गमावसरानुरूप-

१ पिच्छल। २ स्तोमः=श्लाघा। ३ मरीचिसमूहैः। ४ दानशौण्डो=बहुप्रदः। ५ हस्त। ६ अहङ्कार। ७ तुरग। ८ मस्तक। ९ पृथग्विशेषणम्। १० द्वितीयं विशेषणम्। ११ तृतीयम्। १२ तमाल।

क्रियोपक्रमोत्कृष्टां स्पृहणीयप्रणयनिर्यासामृष्टां तात्त्विकपुण्यरागनवमञ्जिष्टाम्, व्यञ्जितमाननीयजनानुवृत्तिं सौजन्यभावभव्यरूपकचित्रसमुचितभित्तिं अप्रतिपातिविच्छित्तिं श्रीप्रतिपत्तिं पुरःसरीं, निर्ममीय्य, वावद्यन्तेतराम् ॥ 卐 ॥

*

[अथ कार्यनिर्देशसूचनम् –]

§७. ज्यायसां श्रेयसां श्रेणय इह श्रीदेवगुरुगुरुचरणसुरभूरुहप्ररोहिमहाप्रासादात्, प्रभूतसंभूतवासरराशिमारभ्य हृदयान्तर्धार्यं वाचिकशतैरप्यहार्यं सभासदां समक्षं विस्तार्यं कार्यं चैतत् समाशेश्रायीत् ॥ 卐 ॥

*

[अथागतविज्ञप्तिवर्णनाप्रकाराः –]

§८. [1]धवलजादराम्बर[2]संव्यानपटीव प्रणतजन[3]सारदायाः श्रीशारदायाः, प्रतिकलं विलासशय्येव समस्तजगतीगतवस्तुगुणविमलायाः श्रीकमलायाः, विशुद्धसुधापङ्कधवलितविशालरङ्गशालाङ्गणभूमिरिव प्रेङ्खत्तनुमनोज्ञावयवविन्यासप्रोल्लासितप्रेक्षकेक्षणश्रेणिकायाः सल्लिपिनर्त्तक्याः, क्रीडापताकिकेव गुणिजनमनोमोहकर्याः सौभाग्यश्रीसुन्दर्याः, पृथुलविशदप्रासादवलभिरिव निखिलकलाकुशलकविकुलमनोरथपत्त्र[4]रथमालाखेला[5]नाम्, कमलाकरबहलजलावरणविस्तारमालिकमलिनीविपुलदलपालिरिव अखिलपौरनरनारीनयनचञ्चलचञ्चरीकनिकरपरिहासरसानाम्, निस्त्रासस्फाटिकाचलनिर्मलशिलामयासनचतुष्किकेव सकलाविकलसहृदयहृदयकुहरवासिन्याः श्रीविद्याविलासिन्याः, श्यामलसुवर्णमृगमदपङ्कपत्त्रवल्लरीविभूषिता पेशलकपोलपालीव लेखकमुमुक्षुप्रगल्भप्रतिभाभामिन्याः, श्रीतिलकमञ्जरीकथेव रुचिराक्षरपरम्परान्यासविचित्रसमासनिरन्तरोद्दण्डाखण्डडण्डकहृद्यानवद्यगद्यबन्धा, दमयन्तीचम्पूकथापद्धतिरिव विषमावताराष्टप्रकारनवनवोल्लेखव्यक्तश्लेषविशेषवन्दनीयमधुरसमधुरगद्यपद्यादिरचनाचातुरीरुचिरा, कालिन्दीनदीव [6]मलिनाम्बुकल्लोलतरङ्गिता [7]सुभानुतनया च, प्रतापिपृथिवीप्रभुप्रभूतपताकिनीव लब्धवर्णवर्णनीयबहुलरर्णप्रयोगा प्रेङ्खत्पदविन्यासवाहां च, कुमुदबान्धवकौमुदीव समानन्दितसच्चकोरा गलितकलङ्का च, निजागण्यपुण्यलावण्यलहरीसमाच्छोटितविदग्धस्निग्धमानससरोजरममाणमनोज्ञमनोरथविलोलरोलम्बमाला यौवनमदमेदुराङ्गरुचिर्मृगलोचनेव, सकलकलादक्षणविचक्षणलक्षेक्षणक्षीरोदधिसमुद्धर्षणक्षणदक्षणदाहरिणलक्षणसलक्षणलक्षणशास्त्राक्षीणशेमुषीककोविदशिरःकोटीरहीरेण, अनाहतप्रतिभहितसुविहितसाहित्यसन्ततिलताविततिवेल्लत्कवित्वपल्लवगुम्फाभिरामदामशृङ्गारिताकुण्ठकण्ठकन्दलेन, प्रगल्भसभाप्रभावितप्रमाणाप्रमाणवितर्ककर्कशाऽकृशप्रमाणग्रन्थग्रथितप्रज्ञाप्राग्भारेण, विश्ववल्लभसौभाग्यसुभगभावुकब्राह्मीस्निग्धेन पण्डितवररत्नसमुद्रमुनिना विरञ्चिनेव सरीसृजिता [11]सुललितवचनवृत्तमुखश्रीका [12]सलावण्ये-

---

१ अथाऽऽगतविज्ञप्तिवर्णनप्रकाराः। २ उत्तरीय। ३ सारं ददाति। ४ पक्षि। ५ क्रीडानाम्। ६ मलिनाम्बु = मषी मसी। ७ सुकान्तिः, नुतनया = स्तुतनया। ८ रकार–लकार–णकार। ९ वाहाः = तुरङ्गाः; विज्ञप्तिपक्षे – प्रेंखत्पदविन्यासानां वाहो यस्याम्। १० सरस्वती। ११ अथ मृगलोचनाया विज्ञप्तेश्च श्लेषेन साम्यविशेषणानि। नायिकापक्षे – सुललितवचनावृत्तमुखश्रीर्यस्याः सा; सुललितवचनैर्वृत्तैर्मुखे श्रीर्यस्या विज्ञप्तेः। १२ सलावण्ये ईक्षणे = नेत्रे यस्याः, सलावण्यम् ईक्षणं यस्याः।

क्षणा वि[1]पुलश्रवणा [2]वर्णनीयकपोला [3]पृथुकागलाभिरामा [4]परमाधरा [5]अमलकरा [6]गम्भीरस्तनघटा [7]मोहभावहृदया [8]सरलकायनाभिरम्या [9]सुगमक्रमा बहुलालङ्कारालङ्कृता प्रगुणगुणगणचणा दूरीभूतदूषणा प्रिय[10]ंच्छन्दोऽनुवर्त्तिनी अर्हणीयरीतिः[11] [12]आकल्पकीर्त्तनीया नित्य[13]ंमुदारा च । किं बहुना –

भवति गगनमेतत्तारताराभरोचि-र्यदि गगनरुचः स्युस्तारकाः सर्व एते ।
हिमकरविशदायाः कृष्णवर्णाङ्किताया:, [14]फलति खलु तदाऽस्यास्तुल्यरूपोपमानम् ॥ ४० ॥

मकरपवनहेलोल्लालनाऽभावहेतोः[15] स्तिमितजलतरङ्गं सर्वदा लक्ष्मिचङ्गम् ।
विकचकुवलयालीमण्डितं चेत् सरः स्यात्, फलति खलु तदाऽस्यास्तुल्यरूपोपमानम् ॥ ४१ ॥

विहितसुकृतराशेः कस्यचिद्भूमिभर्त्तु-र्भवति भवनभित्तिर्निर्मिता चन्द्रकान्तैः ।
यदि नवयुवतीनां लोचनैर्वीक्ष्यमाणा, फलति खलु तदाऽस्यास्तुल्यरूपोपमानम् ॥ ४२ ॥

क्वचिदपि यदि भूमी रोहणोर्वीधरस्य, स्फटिकमणिमयी स्यात् तत्र [16]काली क्रमेण ।
प्रसरति यदि सद्वैडूर्यरत्नाङ्कुराली, फलति खलु तदाऽस्यास्तुल्यरूपोपमानम् ॥ ४३ ॥

एवंविधस्निग्धबुद्धिधोरणीसमुत्पाद्योत्पाद्योपमाद्यनेकालङ्कारावलीप्रसाधितवचनरचनारमणीया, सुगन्धि[17]र्गन्धवाहप्रवाहप्रेङ्खोलनदिगन्तराकृष्टचञ्चलचञ्चरीककुटुम्बिनीव नवकेतककुसुमम्, समस्तजनतानेत्रकुवलयोल्लासनपटुप्रतिपन्निशारत्नलेखेव पूर्वदिक्कामिनीवदनमण्डलम्, बलक्षकटाक्षविक्षेपक्षोभितगीर्वाणवाणिनीव कामुककविहृदयस्थलम्, प्रभातप्रस्तावे महत्तमतमोमण्डलविदलनपेशलसहस्ररश्मिरश्मिराजिरिव विकसत्पङ्केरुहकुहरम्, वाङ्मयसन्ततिरिव सद्ध्यानधोरणीसमाराधितश्रीसरस्वतीवितीर्णप्रवरवरकवीश्वरवदनकन्दरम्, स्वेच्छापरिभ्रान्तमहावनगहनारण्यतडागतरङ्गवतीजलस्थलबहलमार्गपरिश्रमखिन्नसिंहीव पिच्छलच्छायाश्रयणीयतमहिमगिरिगह्वरम्, सायंसमयकुशेशयनिचयप्रस्थितलक्ष्मीरिव सुधाकरमध्यम्; श्रीखरतरगच्छातुच्छस्वच्छसुधाधवलप्रांशुप्रासादावष्टम्भमहास्तम्भायमानैः, अनवरतवितेतीर्य्यमाणाप्रमाणसप्रमाणविनमद्विनेयजनमहाविद्याधनदानैः, निरन्तरदेधीय्यमानापमानितसुधारसपानश्रीसूरिमन्त्रपवित्रप्यानध्यानैः, प्रत्यक्षोपलभ्यमानप्रधानगुणसहस्रैः श्रीमदाराध्यमिश्रैः प्रजेघीयिता, नभसि मासि लिखिता, [18]सुवर्णघटिता, श्रीनामधेया-

---

१ विपुलौ श्रवणौ = कर्णौ यस्याः स्त्रियः, पक्षे–विपुलं = प्रलम्बं श्रवणं = आकर्णनं यस्याः सा। २ वर्णनीयौ कपोलौ यस्या वशायाः, अन्यपक्षे–वर्णनीयस्य कस्य = ज्ञानादेः पोलो = महत्त्वं यस्यां सा तथा, 'पुल महत्त्वे' धातुः । ३ विज्ञप्तिपक्षे – पृथुना कागलेनाभिरामा तदक्षरसंस्कारः, स्त्रीपक्षे – पृथुका = विस्तीर्णा समचतुरस्रा, तथा गलेन = कण्ठेनाभिरामा च । ४ परमावधरावोष्ठौ यस्याः सा, तथाऽन्यपक्षे – परां मां = श्रियं धरतीति । ५ अमलौ = निर्मलौ करौ यस्याः सा, अन्यत्र – अमलं कं = सुखं करोतीति । ६ गम्भीरौ स्तनघटौ यस्याः, अन्यत्र – गम्भीराणां स्तनानां = शब्दानां घटा यस्यां सा । ७ स्त्रीपक्षे – मोहभावो हृदये यस्याः सा, अन्यत्र – मोहभावहृद् अयो = लाभो यस्याः सा । ८ सरलेन कायनेन = लेखबन्धनगुणविशेषेण अभिरम्या, पक्षे–सरलकायेन = देहेन नाभिना चाभिरम्या । ९ सुगमः क्रमः = परिपाटी यस्याः सा, स्त्रीपक्षे – सुगमौ = शोभनगमनौ क्रमौ = पादौ यस्याः सा । १० प्रियस्य=भर्त्तुश्छन्दोऽनुवर्त्तनशीला । ११ रीतयः – पाञ्चालीप्रभृतयः । १२ आकल्पं कीर्त्तनीया, स्त्रीपक्षे – आकल्पेन वेषेण कीर्त्तनीया । १३ नित्यमुदारातीति नित्यमुदारा स्त्रीः । १४ फलति=निष्पद्यते, 'फल निष्पत्तौ' । १५ निश्चल । १६ कृष्णा । १७ पवन । १८ शोभनवर्णैः = अक्षरैर्घटिता, मुद्रा च सुवर्णेन=काञ्चनेन घटिता ।

ङ्किता, मनोहरमुद्रावच्चिरकालात् [1]प्रस्फुरितस्कन्धकन्धरम्, कण्टकितप्रकोष्ठपरिसरम्, [2]कुरुविन्दशोणारविन्ददलबालकिङ्किल्लि[3]विद्रुमप्रत्यग्रविद्रुमं[4]सुकुमारमरीचिमञ्जरीराजिभासुरम्, जिघृक्षाविकस्वरीभूतप्रेङ्खदङ्गुलीमालाच्छलेनाभ्युत्थानमिव चेक्रीयमाणम्, प्रसृमरपद्मरागमणिगणारुणनखरकरप्रकरव्याजेन मूर्त्तिमन्तं प्रेमरसोद्गारमिव देध्रीयमाणम्, मृदुलप्रलम्बलक्षणलेखाविशेषलक्षेण प्रौढप्रमोदरसप्रवाहानिवोद्वहन्तम्, महान्तं विकस्वरं परमप्रीतिधरम्, आस्माकीनकरपञ्जरं मधुरम् ॥ 卐 ॥

[विज्ञप्तिलाभेन प्राप्तहर्षोत्कर्षवर्णनम् ।]

§९. तदीयलाभेन च वयं समामन्त्रिता रणरणकेन, समाश्रिताः प्रश्रयेण, सुखासिकां पृष्टाः स्वःश्रेयसेन, आलिङ्गिताः प्रीतिश्रिया, वाचालिताः श्रीमत्कुशलवार्त्तया–'भोः प्रभवः! बहुतिथीभ्यस्तिथीभ्यः संस्मारिता वयम्' इति भणित्वैव प्रमोदाद्भुतरसैः प्रनर्त्तिता हृदयेन; 'पश्यत! पश्यत! स्वाभीष्टानां शिष्टसमिष्टसमयवेष्टितानि पुण्यप्रभावनादिशुभचेष्टितानि' इति दर्शयन्त्येव विज्ञप्तिवाचितस्वरूपपरम्परया, विस्मेरिता नयनयुगलेन; 'बत! बत! प्राचीनभवाचीर्णाजीर्णमहातपस्यापरिपाकिमप्रादुर्भूतप्रभूतपूताभङ्गुरभाग्यसुभगता पुण्यवताम्' इति वर्णयतेव श्रीमतां महिमामण्डलेन पुलकिताःशरीरेण; 'अहो! अहो! असमयेऽपि श्रीजिनशासनप्रभावनाप्राग्भारप्रकाशनसाधीयःशक्तिरुपचितसुकृतसन्ततीनाम्' इति ज्ञापयितुं प्रेरयतेव यौष्माकीणारीणधर्मकार्यकरणस्मरणेन; धूनिता उत्तमाङ्गेन।

किं बहुना–गर्जद्भाद्रपदोदकमेदुरमहाम्भोधरसमागमेन कलापिकलापा इव, तरलतरलमरीचिमालाविमलितककुब्भामिनीलपनपङ्कजराजिविराजमानानर्घ्यमणिमाणिक्यताररजतकलधूतादिबहुविधधनाकीर्णप्रधानमहानिधानाधिगमेन दानभोगलालसविलासिपुरुषनिकरा इव, राकारजनीनायकजागरूकप्रग्रहसमूहविलाससम्पर्केण दुग्धोदधिस्निग्धकल्लोलनिवहा इव, अननुभूतपूर्वेण अनाकर्णितपूर्वेण अनवलोकितपूर्वेण अवाचितपूर्वेण अपठितपूर्वेण अनुपलक्षितपूर्वेण अनभ्यस्तपूर्वेण असंभावितपूर्वेण सर्वाङ्गीणसाप्तपदीनसूचनालङ्कर्मीणाक्षीणसंमदसमुदयेन प्रगल्भितहृदया अबोभूयिष्महि।

पुनरपि निःशेषविशेषरत्नराशिमञ्जूषा, अस्मन्मनोमयूरवासयष्टिः, बहुविधमनोरथकिसलयविलासलतिका, मार्दवगुणमुनिमनोवृत्तिः, मरुत्पथवीथीव प्रयोगराशीनाम्, राजधानीव नानार्थसार्थानाम्, क्रीडास्थलीव प्रेक्षकभविकेक्षणहारिहरिणानाम्, सरसीव निर्मलरसलहरीणाम्, कषाश्मशिलेव सुवर्णपरीक्षायाः, प्रशस्तिपट्टिकेव साधुसाधुश्लोकमालायाः, पत्रविधिरिव श्रीमन्मानसमध्यभूमिस्थितस्वरूपश्रेणिनिधानकुम्भिकायाः, संमोहनविद्येव मनस्विमानसानाम्, सीमन्तिनीसीमन्तसरणिरिवानुरागसिन्दूरपूरस्य, कदलीस्तम्भगर्भभूमिरिव स्वकीयगुणावर्जितसकलजनवारसदाचारघनसारस्य, विद्याधरीवक्षःस्थलीव स्निग्धवैदग्ध्यचारुहारस्य, वेणीव प्रीतिप्रवाहस्य, सा अस्माकं सकलश्रीसङ्घसमन्वितानां हर्षप्रकर्षवर्षिणी सदा प्रजेघीयि ॥ 卐 ॥

---

१ अथ करविशेषणानि। २ हिंगुल। ३ पल्लव। ४ प्रवालरत्न।

[आगतविज्ञप्तिसमुल्लिखितकृत्यवर्णनविज्ञापनम् ।]

§१०. तथा विजाज्ञायांचक्रिरेऽस्माभिः समस्तानि प्रशस्तानि अविहस्तानि – वैयुष्टवेलावसरे श्रीगुरुव्याहारशुश्रूषाश्रद्धालुश्रद्धालुसंसदासमक्षं तृष्णानिष्णभव्यजन्तुजातमधुव्रतव्रातलेलिह्यमानसरससदुपदेशमकरन्दबिन्दुकदम्बकसुन्दरगाथानिकरविकस्वरकुसुमप्रकरविशालमालां संवेगरङ्गावतारनाट्यक्रियारङ्गशालां श्रीमदुपदेशमालां व्याख्यानीकुर्वाणानां श्रीमतां कुशलेन श्रीचतुर्मासीसमयातिवाहनम् ।

मध्यंदिनसमये कुशाग्रीयशेमुषीकाणामपि विषमशास्त्रास्खलितधीराजितानाम्, भूतलक्षणानामपि न-भूतलक्षणानाम्, सुचरणवृत्तसाहित्यप्रौढिभाजामपि न-सुचरणवृत्तप्रौढिभाजाम्, प्रमाणसंस्कृतवाग्विलासानामपि अप्रमाणसंस्कृतवाग्विलासानाम्, अलङ्कारकविरमणीयभणितीनामपि नालङ्कारकविरमणीयभणितीनाम्, सदभ्यस्तच्छन्दःशास्त्राणामपि मुक्तसुललितभ्रमरविलसितोचितमनोरमाशोकपुष्पमञ्जरीचम्पकमालाकामबाणादिपरिचयाणाम्, सुदृढीकृतकर्म्मग्रन्थागमानामपि शिथिलीकृतकर्म्मग्रन्थागमानाम्, वैज्ञानिकमनोविस्मयविधायिविद्यानवद्यविनोदपश्चालिकारङ्गमण्डपानां गुरुचरणविनयवसन्तकलकोकिलानां पण्डितरत्नसमुद्रगणि – पण्डितराजमेरुमुनि – पं० सुवर्णमेरुमुनिवराणां प्रमाणातीतदुस्तरप्रमाणग्रन्थापारपारावारपरतारं स्वकीयद्रढीयःप्रसादप्रवहणेन प्रापय्य विशदश्रीकर्मग्रन्थार्थसार्थाप्रत्नरत्नश्रेणिग्रहणनिर्मापणम् ।

[आगतविज्ञप्तिप्रेषकसूरिकृततीर्थयात्रावर्णनम् ।]

§११. तथा वितथीकृतप्रबलकलिकालवेतालविलसितेन प्राग्भवाविर्भावितप्राणिरक्षण-जिनयात्राक्षणसुपात्रव्रातपवित्रद्रविणवितरण-शिक्षणदेवगुरुपदपद्मपरिचर्याकरण-निर्मलशीलालङ्कारधरण-दुस्तपतपश्चरण-साधर्म्मिकमनःकामितभरण-दुर्दमहृषीकसंवरण-श्रीजिनशासनप्रणीतमार्गानुसरण-नित्यसामायिकादिक्रियाकाण्डयतिजनाचारानुहरण-भागवतभाषितसमयसुधारसपान-प्रतिसमयश्रीपञ्चपरमेष्ठिप्रणिधान-विगलितनिदाननानाविधप्रत्याख्यान-गुणिलोकप्रशंसाविधान-परदोषोद्गारव्यतिकरतूष्णीकाश्चितान-शुभप्रणिधान-प्रमुखसङ्ख्यातीतशुद्धधर्म्मकर्म्मवितान-समुज्जृम्भितादम्भारम्भसंरम्भसंभूतप्रभूतलक्ष्मीविलासश्रीसार्वीयसमुपदिष्टविशिष्टोपाष्टोपनवक्षेत्रविन्यासप्रकाशीभूतमृगाङ्कमण्डलप्रसारिमरीचिवीचिविशदयशोराशिधवलितवसुमतीवलयेन श्रीमन्त्रिदलीयवंशविशालसरोवरविभूषणप्रफुल्लकुवलयेन ठकुरचन्द्राङ्गरुहेण, पुण्यकार्यसिद्धिविधिविबुधेन दारिद्र्योद्रेकविद्रावकेण ठकुरसङ्घपुरुषश्रीराजदेवसुश्रावकेण सोसूत्रितायाम्, पुरन्दरपुर्यामिव सुरचितविचित्रचित्रचित्रीयितचतुरगुरुचित्तपरमरामणीयकभूमिदिव्यदेवालयसमलङ्क्रीयितायाम्, सरस्यामिव स्वःप्रवाहमहिमविजिगीषयेव नभोमण्डलमभिप्रोच्छलद्भिः विदग्धसीमन्तिनीविसङ्कटकटाक्षचञ्चलविपुलविभ्रमानुकारिभ्रमणैर्बहुलहरिगणैर्मनोहरायाम्, दुर्मदकलिप्रत्यर्थिप्रमथनसमर्थायां पताकिन्यामिव श्रीधर्मभूपालस्य, राजधान्यामिव दानशीलतपोभावनाममहाप्रभावधामचतुराशाधिपग्रामविराजितस्य विशुद्धयशःशक्रस्य, सर्वप्रकारप्रभावनेन्दिराप्रीणितपात्रायां श्रीतीर्थयात्रायां प्रतेष्ठीय्य, पुरि पुरि ग्रामे ग्रामे श्रीमन्त्रिदलीयकुलालङ्करणावतंसैः श्रीदेव-

गुरुभक्तिपाथोजिनीक्रीडाराजहंसैः श्रीविधिमार्गसमाराधनबद्धरिरंसैः प्रभावकश्रावकजनवितानैर्वितन्तन्यमानां प्रवेशकमहामहोत्सवसविस्तरश्रीसङ्घपूजाविधानसाधर्म्मिकसन्मानप्रभावनादानप्रदानादिकां महामहिमां श्रीसङ्घस्य निजलोचनानां पीयूषपारणीकृत्य, श्रीमगधाभिधजनपदप्रसाधनहारे श्रीविहारे च श्रीसमुदायस्य मुदं समुत्पाद्य, श्रीराजगृहपुरेश्वरस्य श्रीमुनिसुव्रतजिनेश्वरस्य नमस्यां निर्माय, सं० ठ० श्रीराजदेवादिश्रीसमुदायसूत्रितां गविगरीयःकविजनवचनरचनावर्णनार्हणां श्रीअर्हणां च समभिनन्द्य, सप्रमदहृदयेन;-

तदनन्तरं श्रीचतुरसकलसङ्घसज्जुषः परमानन्दभावभरितवपुषः श्रीजिनशासनसेवाधन्यतापुषः आन्तरारिसर्वस्वमुषः सन्तो वयं श्रीचरमजिनवरचरणरेणुनिर्मलितोपत्यकाधित्यकापरिसरे असङ्ख्यपुण्यागण्यगुणप्रसाधितशरीरबहुलमुनिवीरमुक्तीन्दिरासुन्दरीपाणिपीडनसङ्केतमन्दिरे अहर्निशश्रीवर्द्धमानादिपुरुषोत्तमबन्धुरमधुरगुणगानमधुपानपरायणसहचरीसखसिद्धगन्धर्वकिन्नरनिकरसंसेव्यमानमनोहरकन्दरे, निःश्रेणिदण्ड इव श्रीस्वर्गापवर्गनिगममार्गयोः, मणिघृणिराजिविराजितशिखरे प्रकटकोटीरे इव श्रीमगधमण्डलरत्नगर्भादेवतायाः सर्वपर्वतोत्तरे श्रीवैभारविश्वम्भराधरे, तदीय इवाविच्छेदिसदनुचरे, तदीय इव परमप्रेमरसपरे च सहचरे, तदीय इव सरूपगुणधरे कनिष्ठसहोदरे श्रीविपुलश्रीविपुलाचलाधरे च श्रीतीर्थाधिराजजिनसमाजं नमोकृष्महि ।

तत्र च ठ० सं० श्रीराजदेवेन श्रीमन्त्रिदलीयापरश्रीसमुदायेन च महता श्रीसमुदयेन जन्यमानां विधिप्रधानां समयासमानां श्रीतीर्थपतिसपर्यां समनुमोद्य च, लभामहि मनुष्यजन्मनः फलम् । निर्मल्यभावि चिराचीर्णचरित्रशरीरेण । फलेग्रहिणा समपनीपद्यत अद्य विदूरदेशान्तरविहारकारिपदश्रमेण । धन्यम्मन्यतामगामि परिजनेन । अधिकतरकृतार्थतया प्रकर्षेण प्रानरीनृत्यत जीवातृकतया । पम्फुल्यते स्म पुरातनभवजनितपुण्यप्ररोहैः । चंचूर्यते स्माद्यभवभ्रमविधायिभिः कालकूटं प्रमादमदमदनमोहैः । समारोरुह्यते स्म सम्प्रति हृदयाध्यवसितकार्यसिद्धिसौधशिरोगृहं मनोज्ञमनोरथसमूहैः-इत्येवमादिभिर्विशदनिश्छद्ममानसिकभावसारैः प्रकारैरात्मानं प्रकृष्टपुण्यभाजनमसृज्यामहि च ।

पुनस्तत्र पवित्रातिशयरसानूपश्रीज्ञातिनन्दनजिनैकादशगणधरमहास्तूपप्रादुर्भावः । श्रीमदुपदेशमहाभिनिवेशवशंवदहृदयैः श्रीप्रभावकश्रावकनिचयैः कार्यमाणैः क्रियमाणमहाप्रमाणसुकृतसन्ततिप्रसूतगुणतरङ्गधौतमूर्त्तिमदकूटयशःकूटानुवादैर्नवीनश्रीजिनप्रासादैः श्रीवैभारश्रीविपुलधरयोः श्रीब्राह्मण-क्षत्रियकुण्डग्रामपुरयोश्च विशेषविभूषाविधानम् ।

ततो व्याघुट्य पुनर्विहारादिस्थानानि मध्येकृत्य कियन्तं पन्थानं गत्वा पुनर्व्यावृत्य, श्रीवैभार-विपुलाचलयोरधिरुह्य जिनप्रतिकृतीरकृत्रिमोत्साहेन नमसित्वा सविस्तरप्रतिष्ठां च जिनप्रतिमानां कृत्वा, भूयोऽपि यथागतानुसारिगतेन कुशलक्षेमेण श्रीपूर्वदेवगुरुसांनिध्येन च श्रीसङ्घसहिताः श्रीअयोध्यापुर्यां ठ० सं० राजदेवसुश्रावककारितप्रवेशकोत्सवपूर्वं श्रीपञ्चतीर्थीनमस्करणं निर्मितवन्तः । ततोऽपि श्रीपूज्यादेशगुणमवलम्ब्य मध्यदेशमनु विजिहीर्षवोऽपि भास्वरश्रीदेवगुरुभूरिभक्तियुक्तस्य पुण्यचिकीर्षयाऽऽभ्यन्तरकालुष्य-

मुक्तस्य श्रीशासनानुरागसुभगंभावुकस्य ठ० साधारसुश्रावकस्य महाग्रहरसनिघ्ना ऐषमश्चतुर्मासीमिहैवावास्थिष्महि ।–

[जिनोदयसूरिप्रदत्तसमागतविज्ञप्तिपत्रप्रत्युत्तरम् ।]

–इत्यादीनि पैशूषपीयूषरसायनायमानानि स्वरूपाणि तानि कथं प्रत्युत वर्णयामः, कथं श्रीमदाराध्यानां ठ० श्रीराजदेवसुश्रावकस्य च भाग्यभङ्गीं वाचि संभावयामः; तस्या एव दुर्लभत्वात् । यतः –

दृष्ट्वा श्रीभवतामनहतगतिं सौभाग्यभाग्यश्रियं, श्रुत्वा मन्त्रिदलीयवंशसुमणेः श्रीराजदेवस्य च ।
तां तां तीर्थसमुन्नतिं विरचितां स्फारीभवद्विस्मया, बुद्धिर्बालवशेन सङ्गमगता वाचं न नो यच्छति ॥ ४४ ॥

लिखामश्च किम्, यतः –

चेद् वैडूर्यमयी नभःस्थलतता क्वाप्याप्यते पट्टिका, गम्भीरः खटिकाम्बुभाजनमसौ क्षीराम्बुराशिर्भवेत् ।
शक्त्या वज्रमयं विधाय कलमं देवः स्वयम्भूर्यदि, प्रारब्धालिखितुं तदा व्यतिकरोऽसौ लिख्यते चेत् कियान् ॥४५॥

परं केवलं सपरिवारैरस्माभिः श्रीचतुर्विधप्रत्यक्षं व्याख्यापयद्भिः श्रुतिपुटैः श्रावं-श्रावं, मधुरवचनैः स्तावं-स्तावं, चमत्कृतचित्तैः शिरो धावं-धावं, लिखितं लोचनैर्दर्शं-दर्शं, हृदयाशयेन स्पर्शं-स्पर्शं, प्रणिधानेन स्मारं-स्मारं, हर्षिते हृदि धारं-धारं, विशिष्टचेष्टाभिर्भारं-भारं, किं बहुना सर्वेन्द्रियगोचरं कारं-कारं, वारं-वारं जन्मपावनपराः सुकृतभराः श्रेणिकृताः । विशेषतः "श्रीपूज्यानां सपरिच्छदानां कृते सर्वाणि श्रीतीर्थानि नमसितानि" इत्यक्षरपरम्परावलोकनेन घनसुधारसासारेण संसिक्ताः । अहो ! उत्तमानां किमपि जगदुत्तरं वर्णनातीतं सामान्यवचसां साधुव्यवहारनैपुण्यम्, यन्नवीनपुण्यवस्तुव्यापारे दवीयोभिरपि नेदीयोभिरिव सम्बन्धिसमुचितस्थाने लहनकविस्तारणं न कृतम् ।

अस्माभिरपि वाङ्मनसाभ्यां पुलकितवपुषा च तीर्थनमस्यां विरचयद्भिर्बहु मानितमिति । पठनीयं गुणनीयं गुप्तिसमितिभ्यां श्रीखरतरवरतररीत्या च प्रवर्त्तनीयम् ॥卐 ॥

*

[अथ जिनोदयसूरिलिखितं स्वकीयधर्मप्रवृत्त्यादिवर्णनम् ।]

§ १२. वयमत्र प्रातः पर्षदि पार्षद्यानां पुरतः प्रस्तावोचितं सदुपदेशं प्रदिशन्तो, मध्याह्ने पं० ज्ञानकलशमुनेः श्रीजैनागमवाचनां प्रयच्छन्तः, तं विद्वांसं निकषा च मेरुनन्दनमुनि-ज्ञाननन्दनमुनि-सागरचन्द्रमुनित्रयं साहित्य-लक्षणादिशास्त्राणि भाणयन्तः, सपरिवाराः श्रीदेवगुरुप्रसादेन विजयारोग्यभाजो वर्त्तामहे ।

तथाऽस्माभिः श्रीनागपुरपुरस्थैः श्रीमदाराध्यानां पार्श्वे लघीयो लिखितद्वितयं प्रजिघ्ये ।

तथा तदनन्तरं सविस्तरं वारत्रयं श्रीफलवर्द्धिकामहातीर्थमरुत्पथप्रसाधनदिनेश्वरं महाप्रभावविभूतिमहेश्वरं श्रीपार्श्वनाथतीर्थेश्वरं सादरं नमिकर्मीकृतवन्तः ।

पुनर्नागपुरे महामहोत्सवपूर्वमपूर्वं सा० मोहणसुश्रावककारितं मालारोपणं विहितवन्तः ।

[मेदपाटीयसाधुराजरामदेवकृतामन्त्रवर्णनम् ।]

§१३. अथ च प्रथीयोविश्वंभराभारधरणधौरेयप्रचण्डभुजादण्डप्रान्तावलम्बमानज्योतिर्जालजटिलमण्डलाग्रसमाक्रान्तव्यग्रितोदग्रशात्रवव्रातप्रणिपातपुरःसरोपायनीक्रियमाणसौवकमलाविलासिनीविलासव्यसनाविज्ञातविशुद्धकमनीयकीर्त्तिकामिनीनिर्मलगुणपरवशमुखरीकृतजगत्त्रयनिवासिजनविततिश्रीषे(खे)तजगतीपतिपरमप्रसादपात्रेण, भवानीप्राणप्रियेणेव मधुरसुधाकरजाज्वल्यमानतृतीयेक्षणाभ्यां, मुनिवरेणेव प्रशमरसदीप्रतपोभ्यां, शौण्डीर्यभ्राजिष्णुवसुन्धराशक्रेणेवाभिषेकानन्तरप्रसाधितनिजशरीरमनोहरशोभासंभारदिदृक्षाकरगृहीतप्रसन्नदर्पणभास्वरकृपाणाभ्यां, महावनसरोवरेणेव रिरंसारसलालसराजहंसपयःपिपासोपकण्ठीभूतकण्ठीरवाभ्यां, श्रीअर्हद्विशदगगनाग्रलग्नप्रासादशिखरेणेव धवलध्वजदेदीप्यमानगलितकलधूतकलशाभ्यां, सकलसाधववैदुष्यमानुष्यकराजकराजन्यकशात्रवब्राह्मण्यबन्धुताचित्तचमत्कारोत्पादनपटिष्ठाभ्यां भास्वद्यशःप्रतापाभ्यां विराजितेन, श्रीश्रेणिकाग्रजाङ्गजेनेव निजबुद्धिप्रपञ्चप्रह्वीकृतमण्डलभूपालचक्रवालेन, निःसीमखरतरनीतिमूर्त्तिमदधिदैवतेन, सामयिकप्रभावकपुरुषशीर्षशेखरेण, स्वयंकार्यमाणाभ्रंलिहशिखरसारश्रीजैनविहारनिजाजय्याक्षय्यप्रौढपराक्रमपरोपितश्रीकरहेटकाख्यश्रीपार्श्वनाथजिनचरणपरिचर्याप्राप्तप्रसादवरेण साधुराजलद्धूसुश्रावकोद्वहेन साधुराजरामदेवश्रावकवरेण, सुधाकरेणेव सदैव गुरुसङ्गमस्पृहयालुना, पुराकृतसुकृतसञ्चयोदयवशवशीभूतराज्यप्रधानप्रधानपदेन्दिरायाश्चापल्यमवधारयता सुगुरुवचनेन स्थिरस्थापनां तस्याश्चिकीर्षुणा, पूर्वं वर्षद्वय-त्रयमारभ्य श्रीसिन्धुमण्डलविहारं चक्राणामस्माकं समाकारणाय प्रेषितहृदयान्तर्निलीनमनोज्ञमनोरथमालाविर्भावकलेखप्रकरेणापि बहुशः, साम्प्रतं समासन्नतया वारद्वय-त्रयं प्रहितविवेकिश्रावकश्रेणिना बाढं समामन्त्रिता वयम् । तदनु च वारान् पञ्च षट् प्रस्थिता अपि शकुनदौर्बल्यान्न विहितवन्तः प्रस्थितिम् ।

[जिनोदयसूरिकृतमेदपाटदेशाभिमुखप्रस्थानवर्णनम् ।]

अनन्तरं पुनरपि तत्प्रहिताभ्यां समाकारणायास्माकं समागताभ्यां श्रीगुरुपरिचर्याविधिविवेकनिपुणाभ्यां प्रभूतसार्थसहिताभ्यां मुनिजनवचननिरताभ्यां मं० भीमुड-नाह० गजण-सुश्रावकाभ्यां सह प्रस्थाय, मार्गे समभिलषितप्रयोजनसंयोजनसाधीयोभिः भविष्यति किं विषमविरुद्धस्थानकेषु तेष्वित्यादिचिन्तालतावितानच्छेदनपरशुप्रायैः शुभशकुनसमवायैः संजनितप्रदक्षिणावर्त्तभ्रमणाभिप्रायैः प्रतिवासरं मनःस्थैर्यं बिभ्राणाः, अन्तरा पथक्रमायाते कुशमानपुरख्याते श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिगणेश्वरचरणकमलयुगलमुद्राविन्यासपवित्रतया अनुकृततुषारभूधरैकशिखरे तत्कालोद्ग्राह्यमाणाप्रमाणहरिणमदविशदघनसारकालागरुप्रोत्सर्पद्बहुलबहलधूमपटलपालीभिरकाण्डाडम्बरितनभःस्थलव्यापिसजलजलधरे सदा जाग्रदतिशयमहाभूपे श्रीस्तूपे नमस्करणस्मरणादिविधिभिः शुभयुतां परां प्राप्य, प्रतिग्रामं श्रावकलोकग्रामं प्रमोद्य, श्रीशुद्धदन्तीपुर्यां श्रीसमुदायमुदे दिनपञ्चकं स्थित्वा, शुचिमासप्रथमद्वादश्यग्रिमदिने श्रीनदकूलवत्यां मनोनयनसमानन्दनधीरं समग्रोपसर्गवर्गग्रहविग्रह-

निग्रहहेतुशरीरं श्रीसमुदायकारितसुधाधारावलीधवलप्रांशुशिखररामणीयकविसारितगगनचरविसरतुषारधरशृङ्गनादश्रीप्रासादविभूषणभूरमणधीरं श्रीमन्महावीरं जिनवरं सानन्दं नमश्चेक्रीयां चक्राणाः, श्रीसमुदायमनःप्रीतिं च बभ्राणाः, प्रभाते च सकलश्रीसमुदायपुरःसरेण श्रीमालकुलनभःस्थलविमलीकारदिवसकरेण गुरुजनमानसनिवासराजमरालसोदरेण अनुगुणानणुनिजगुणमहामणिमहिमवशीकृतसमस्तनागरव्यवहारिसार्थवाहमहीनाथप्रमुखमानसेन राजप्रसादप्राप्तप्रधानमहत्त्वेन सा० भादासत्पुत्रेण सा० तोल्हासुश्रावकेण महता विस्तरेण, श्रेणीभूतेषु नगरश्रेष्ठवर्णज्येष्ठश्रेष्ठिनैगममेलकेषु, मिलितेषु च मधुरगान्धर्वनव्यकाव्यगाथकभाणकेषु मार्गणबन्दिलोकेषु, वाद्यमानेषु मुखरिताम्बरेषु ढोल्लझल्लरीमृदङ्गतालकांस्यतालवेणुवीणादिनादवर्द्धितपूरेषु गम्भीरस्वरतूरेषु, उभयपार्श्वचाल्यमानेषु प्रतप्ततपनीयमयप्रसृमरकपिशरश्मिदण्डप्रलम्बदण्डमण्डितगोक्षीरबलक्षचारुचामरेषु सधवाङ्गनागीयमानेषु सरसधवलेषु, किं बहुना – प्रवर्त्तमानेषु तेषु तेषु कविजनवर्णनार्हेषु महाऽद्भुतरसाचारेषु, स्वकीयसौधं समाकार्य श्रीसङ्घसमन्वितानस्मान् श्रीवर्षग्रन्थिपर्वसमुचितसर्वविधिप्रकटीकरणेन श्रीजिनशासनप्रभावसौभाग्यं विशेषेण परमां कोटिमनेनीय्यत ।

तत्र च दैवसिकं पञ्चदशकं स्थितिरास्माकीना बोभूयाञ्चक्रे। बहूनामासन्नसंनिवेशवासिनां श्रावक-श्राविकालोकानां चिरकालीनगुरुसङ्गमसम्भवो महापुण्यलाभः प्रकटीबभूव।

[अथ आमन्त्रणार्थसमागत-स्वयंसाधुराजरामदेवेन सह जिनोदयसूरेर्मेदपाटप्रवेशवर्णनम् ।]

§ १४. अथ च माध्यंदिनार्ककर्कशदीप्रकरप्रकरसम्पर्कप्रवर्द्धिष्णुप्रग्रहजालजटिलीभवत्प्रचण्डदण्डशितकुन्तवेल्लद्भल्लपल्लवितहस्तैः परःशतैः पुरःसरानुचरपदातिसमाजै राजमानः, स्वकीयागमनसमुत्पादितभूजानिसमागमभ्रमः, उग्रैरपि मान्यसेवः साधुराजरामदेवः समाटाट्याञ्चक्रेऽस्माकं निनंसया जिघृक्षया च। ततस्तेन महताऽऽग्रहेण महता विनयेन महतानुभावेन महताभियोगेन महता प्रयोगेण वयं प्रास्थापयिष्महि। प्रहरद्वयेन समग्रं मार्गं सुखेनातिक्रम्य, सूचितमनःसंभावितपुण्यप्रयोगसंयोगघटनासमुद्घटितहर्षसमुत्साहजाते दत्तवति शुभशुभशकुनजाते जाते श्रीविभाते श्रीविभाते, विवेकपथागमसङ्गमोन्मूलनलालसतमस्तम्बस्तम्बेरमघटाविघटनपटिष्ठतेजस्विकेशरिकिशोराशौण्डीर्यभृति प्रतिमानसं निजविरहसङ्कुचितवदनस्वबान्धवसरोरुहश्रेणिसप्रणयमृदुलसरागकरस्पर्शनसमुल्लासकृति सकलजगल्लोककल्याणकारिसमुदयवति पूर्वाचलचूलिकामलङ्कुर्वति भगवति भास्वति, समधिरुह्यास्माभिरपि गरीयोगिरिशिखरं सम्मुखानीतनीतिप्रियप्रभूतप्रसिद्धक्षत्रियश्रोत्रियसूत्रकण्ठवणिग्जनप्रभृतिनानाजातिसङ्गमे मनोहारिसारस्फारशृङ्गारशृङ्गारिताङ्गावयवनवीनयुवतीजनोत्तमाङ्गरङ्गचङ्गशङ्खसुधारसधवलितविचित्रचित्रपवित्रपत्रावलीशालमानकण्ठपीठलुठत्कठोरकनककलिकाकारचम्पकमालोल्बणकल्याणकलशशोभमाने, परःसहस्रमानवनृत्यन्नवतुरङ्गमचराचरचरणप्रचारचञ्चूर्यमाणभूधराग्रभाविनानाविधधातुशकलोच्छलत्परमाणुपरागपुञ्जप्रेङ्खोलनाच्छलेन प्रसृत्वराद्वैतध्वाननिःस्वानशङ्खभेरीभरमधुरमृदङ्गझल्लरीप्रमुखमुखरतरानवद्यातोद्यप्रद्योतमानोल्लूलध्वनिरूपस्वकीयगुणैकमयप्राधान्यं जगति संभाव्येव मूर्त्तिधररागप्रमोदमेदुरीभूतगगनाङ्गणे, मधुमधुरगीतिगानसावधानसलावण्यवर्णनीयवर्णिनीजनगणे, प्रतिसदनशिखरा-

वनद्धप्रह्वुरवंशाग्रनरीनृत्यमानपञ्चवर्णचीरचारुध्वजव्रजे संशोधितपुरमार्गे, विपणिपथाग्रग्रथितमृदुलझलहलत्पट्टकूलमयतिलकिततोरणान्तरान्तरान्यस्तभास्वरमुकुरमण्डलावलीमिषेण दिदृक्षारसवशमिलितनानाद्वीपसागरविहारिदिनकरकुले, प्रतिमन्दिरद्वारपूर्यमाणकाश्मीरद्रवार्द्रगोमयगोमुखोपरि प्रस्तारितमुक्ताफलदलानुकारिबलक्षाक्षताक्षतचतुरस्रचतुष्कपूरे, प्रोद्भेभिद्यमानपौरजनमानसविस्मयाङ्कुरे; किं बहुना – विवक्षुवचनविलासप्रयासदासिनि, साधुराजरामदेवकारिते प्रवर्त्तमाने मनस्विमनोहरे प्रवेशकमहोत्सवे, श्रीकपिलपाटकपट्टनमध्यं प्रविश्य; प्रशस्यतमे श्रीआषाढचतुर्मासकदिने मूलार्कशोभने, श्रीमेदपाटकमण्डलकल्पद्रुहृदयस्थलालङ्करणकौस्तुभरत्नप्रायश्रीकपिलपाटकद्रङ्गचङ्गवसुन्धरासुन्दरीशृङ्गारहारे श्रीविधिबोधिदविहारे; सकलैहलौकिकपारलौकिकलोकत्रयलोकमानसिकामितकामितवितरणसुरद्रुमः, स्वदर्शनमात्रवित्रासितसंसारचक्रचारभ्रमः, अखिलनिकृष्टानिष्टदुष्टकष्टनिष्ठास्पृष्टिप्रष्ठप्रतिष्ठकष्टाभिनिविष्टारिष्टपिष्टप्रकृष्टसेवाक्रमः, तमालतालदलकुवलयकोकिलकज्जलालिकुलकोमलश्यामलपिच्छलप्रतिदिशविलासिवपुच्छविरञ्छोलीच्छलेन स्वीयनमस्यानिमित्तसमागतजनतामार्गवहनजन्ममहाश्रमक्लान्त्युपशान्तिकृते शिशिरं स्वच्छच्छायाभरमिव विस्तारयन्, शारदीनहरिणलाञ्छनसञ्चारिचारुचन्द्रिमाविमलधवलविलोचने कटाक्षच्छटाविस्तारणाव्याजेन दिदृक्षोपसारिणं सरणिसन्तापधारिणं प्राणिगणं सरलामृतरसलहरिभिरिवाप्लावयन्, उत्तमाङ्गातपत्रायमाणधरणाधिराजरचितस्फारफणावलीप्रान्तविश्रान्तनितान्तकान्तबहुप्रकारमणिसम्भारविस्तारिकर्बुरकिरणश्रेणिमिषेण नमश्चिकीर्षोपढौकितजन्तुजाताय पञ्चवर्णपट्टकूलसिचयनिचयं परिदिधापयिषुरिव विश्राणयन्; किं बहुना – मूर्त्तिरिव कल्याणपरम्परायाः, पयोधिरिव लावण्यरसस्य, निधिरिवाद्भुतप्रभावविभवस्य, मरकतमणिकुम्भ इव कारुण्यामृतस्य, मार्त्तण्डमण्डलमिव महोदयस्य, मन्दिरमिवामन्दभन्दस्य, आस्पदमिवैकान्तशान्तरसस्य, धामेव विशुद्धधर्माणाम्, दामेव विततगुणानाम्, प्रतिकृतिरिव प्रसन्नतायाः, पदमिव प्रसादस्य, कन्द इव कामनीयकस्य, स्तम्ब इव प्रेयकस्य, चरणनलिनरोलम्बायितसमस्तनरासुरदेवः श्रीकरहेटकपार्श्वनाथदेवः, सादरं सानन्दं समभिवावन्द्याञ्चक्रे। चक्रे च तदीयाविकलानुभावभासुरैस्तत्रातिसुखवृषक्षेमसमुदयेन श्रीचतुर्मासी।

[करहेटकमहातीर्थे सञ्जातदीक्षामहोत्सववर्णना ।]

§ १५. अनन्तरं च मार्गशीर्षप्रथमषष्ठ्यामेव समाहूतनानास्थाननिवासिश्रावकश्रेणिसमुल्बणः, साश्चर्यसमुचितकार्यविधानविस्मेरितपौरजनगणः, प्रतिदिनसंपद्यमानविधिज्ञधन्यजनविनिर्मापितसौवामेयस्वापतेयसफलताकारणरणतूर्यादिवर्यवादित्रप्रसृत्वरपरितोध्वनिवितानमुखरितगिरिगह्वरमूर्छितोच्छृङ्खलाप्रतिमप्रतिशब्दाडम्बरोद्रेकितबहुगुहाशायिसिद्धगन्धर्वमिथुनप्रकर्षितनोद्यवीक्ष्यमाणमनोरमनेपथ्यमणिमौक्तिककनकादिमयकमनीयसारतरतारपरिस्कारपरिस्कृतशरीरापघनघनकामिनीजनवदनेन्दुमण्डलक्षरत्पीयूषप्रवाहानुहारिहारिमङ्गलाचारसुकुमारगीतस्वरप्रकारपुरःसरवेल्लत्कुतूहलोत्फुल्लपुष्पाङ्कमहोपबृंहितमहाजनमहनीयमहिमः, गगनाङ्गणाग्राधिरोपितश्रीजिनधर्मः, पुराकृतशुभोदयसम्भूतविभूतिपुण्यक्षेत्रवपनचतुरेण साधुराजरामदेवेन कारितः, घनप्रकारसाकारालेख्यकर्मनिर्म्मितिनानाविज्ञानविनो-

दारम्भसरलकदलीस्तम्भावयवविरचित-विचित्रच्छत्राकारशिखरनिकरावलम्बिप्रलम्बपञ्चवर्णपताकाविततिविततशोभाभर-सर्वतोलम्बमानप्रधानकुसुमदामपरमसौरभभोगभृङ्गीकृतजननयनालिरुचिरकार्त्तस्वररजतरसरसितपत्रावलीविपुलविच्छित्तिचित्रीयितजनकीयचित्तपवित्रहाटकपत्रघटितशृङ्गकलशविसारिकरमालाविमलितसकलककुम्मण्डल-चतुर्द्वाराग्रभागसंकलितवन्दनमालाभिलषणीयतुङ्गतरतोरणरमणीय-सर्वमाङ्गल्यमूर्त्तिश्रीजिनराजमूर्त्तिमण्डितगवाक्षान्तरप्रदेशदिव्यविमानानुकारिश्रीनन्दिमन्दिरविराजितश्रीप्रासादमण्डपभूमिः, श्रीकरहेटकप्रभुपार्श्वजिनसौम्यदृग्विलासविन्यासविलीनसमस्तोपप्लवव्यूहः, अचिन्त्यप्रभाविभवः श्रीभागवतदीक्षामहोत्सवो बोभूयते स्म ।

§१६. तत्र च महोत्सवेऽस्मिन्नेव मण्डले चतुरशीतिग्रामकारितामारिघोषणाप्रकर्षितनिर्मलयशःपुण्यसमुदयसुभगंभावुकस्य मन्त्रीश्वरारसिंहसुश्रावकस्य सन्ताने बुत्थडागोत्रे श्रीजिनधर्मकाचकर्पूरवासितधातुसञ्चयस्य नैसर्गिकभद्रकतागुणशालिनो मन्त्रिधीणाकस्य बालकलाषापुत्रस्य, श्रीगुरुवचनाम्भोदरसस्यन्दलवमुक्ताफलीभावसम्पादनशुक्तासम्पुटसंवितमानसस्य काणोडागोत्रीयसा०जेहडस्य राणाभिधानोद्वहस्य,कुलक्रमायातस्वाभाविकाभङ्गुरगुरुचरणकमलभक्तिकेतकीकुसुमपरिमलसुरभितहृदयकच्छस्य गुरुवाक्यपालनतत्परस्य मन्त्रिश्रीछाजहडवंशयभीमडश्रावकवरस्य षेतासुतस्य च; पुरा प्राप्तादसीयदेशसाचिव्यैश्वर्यस्य सौववारककृतानेकसाधर्मिकोपकारावष्टम्भस्य श्रीमाल्हूविशालशाखाविभूषामणीवकस्य मन्त्रीश्वरडूंगरसिंहस्य दुहितुर्माऊबालिकायाः, निरवधिश्रीखरतरविधिबन्धुरानुरागभङ्गीतरङ्गितान्तरङ्गभावस्य व्यवहरिकवंशीयसा०महिपतिनामास्तिकस्य सुताया हांसूकुमारिकायाश्च । एवं निश्चितप्राग्भवाभ्याससञ्जातसर्वविरतिमैत्रीपरिणामस्य, सहजसंपन्ननयविनयविवेकादिगुणकदम्बकालङ्कृततानवावयवग्रामस्य,आबालकालादपि तत्तादृशपुण्यक्रियाकलापलोलुपस्य, अकाण्डेऽपि वैराग्यरसकल्लोलप्रोज्ज्वलितमानसिकरङ्गस्य, कौमारेऽपि तथाविधश्रीजिनशासनानुरागानुषङ्गिसुललितवचनविलासविस्मापितविदग्धजनस्य, सामायिकरूपलक्षणवर्णकलाप्रज्वालताशोभितस्य; किं बहुना – निःशेषजननयनकुवलयोल्लासनसुधाकरमण्डलमयस्य कुमारकत्रयस्य; साध्वीगुणानुगुणलक्षणचणस्य श्रीदीक्षाग्रहणपरिणामप्रणयितमान्तःकरणस्य प्रादुर्भूतपुरातनपुण्यसमुदयस्य कुमारिकाद्वयस्य च; अस्माभिः सकलसांसारिक्लेशावेशविनाशदक्षा दुर्गतिकटपूतनासमागमननिवारणाय मृत्युञ्जयारक्षा चिन्तातिगसमीहितसुखप्रदानप्रकारेणाधरीकृतैकभवसंभाविताभिमतवितानकल्पवृक्षा प्रीणितप्रतीक्षा श्रीआर्हती दीक्षा प्रादेदीयि । जाजायते स्म ज्यायसी श्रीजिनशासनप्रभावना । तेषां कुमारश्रमणानां च यथाक्रमं नामधेयानि तद्यथा – कल्याणविलासमुनि–कीर्त्तिविलासमुनि–कुशलविलासमुनि–मतिसुन्दरीसाध्वी–हर्षसुन्दरीक्षुल्लिकेति ज्ञातव्यानि ।

§१७. तदनु च साधुराजरामदेवेन दिनसप्ताष्टप्रकृष्टसाधर्म्मिकवात्सल्यदुर्बलश्रावकोपकारदिवसपञ्चामारिघोषणाव्यवहारव्यापार-याचकसञ्चयरुचिरसिचयनिचयचामीकरोर्म्मिकादि-

शृङ्गारप्रभूतसारप्रतरप्रदानादिविधिप्रकारेण श्रीजिनशासनमहिम्नः श्रीखरतरविधिविशेषस्य च यशःकलशाधिरोपणमचेक्रीयि ॥ 卐 ॥

*

§१८. अथ प्रवृत्ते च महोत्सवे स्वस्वस्थानं प्रस्थितेषु च सर्वलोकेषु, प्राप्तराजप्रसादेन दानशौण्डताशौण्डीर्यादिगुणविख्यातयशोनादेन श्रीशासनप्रभावकेण सेल्हहस्तषेमूसुश्रावकेण समाकारिता वयं सादरं शतपत्रिकादिस्वकीयग्रामेषु, विजेह्रीयाश्चक्रमहे च तत्र परिसरे पक्षकल्पमेकम् ॥ 卐 ॥

[साधुराजरामदेवकृतद्वितीयप्रतिष्ठामहोत्सववर्णनम् ।]

§१९. अनन्तरं पुनरपि साधुराजरामदेवेन महीयांसं श्रीप्रतिष्ठामहोत्सवं विदिधापयिषुणा समामन्त्रिता मध्ये राजधानि । वयं च तादृक्षप्रतिष्ठाविधिक्षमदिनलग्नादिसंयोगाभावेनाऽनिर्मित्सवोऽपि ताम्, श्रीगौर्जरधरामनु चिकीर्षितविहाराश्चापि, परं तेन समयवैषम्यं राजप्रसादचापल्यं कमलाचञ्चलत्वं प्रायेण भूयो भूयः श्रीसुगुरुसंयोगस्य दुर्घटत्वं च चेतसि चिन्तयता धीमता राजराजन्यराजलोकनिबन्धप्रबन्धेन द्रढीयसा समवातेष्ठीययिष्महि, प्रारारभि च महोत्सवः सामस्त्येन ।

§२०. पुनरपि प्राग्विधिना समामन्त्रिताशेषविषयविषयान्तरान्तरावर्त्तिपुरग्रामनिवासिसंख्यानविमुखहर्षसुमुखास्तोकलोकसङ्गमे, प्रागिव नानाभेदवाद्यवृन्दावच्छेदिशब्दाद्वैतमयीभूतवसुन्धराधरकन्दरान्तरिक्षोदरे, संजायमाने घनगीतस्फीतमङ्गलधवलकोलाहले, प्रत्यग्रभाग्योदयवशादल्पीयोभिरपि वासरैः संपन्ने समस्तविलोक्यमानवस्तुविस्तारे, श्रीकरहेटकाभिधश्रीपार्श्वनाथप्रसन्नदृष्टिसुधावेणिभिर्विरलीभूते निःशेषसन्तापकूटे, प्रवृत्ते च जलानयनादौ महीयसि महसि श्रीफाल्गुनवलक्षाष्टम्यां सुधाकरवारे श्रीअमृतसिद्धियोगे चासहिष्णूनामपि मानसविस्मयविकाशी श्रीजिनबिम्बप्रतिष्ठामहोत्सवः समबोभूयिष्ट सर्वोत्कृष्टः । प्रत्यतेष्ठीयिषत च तत्रास्माभिः श्रीचतुर्विधधर्मप्रत्यक्षमूर्त्तयः, चतुर्गतिकुहरगतजन्तुजातनिस्तारनिपुणसारस्फूर्त्तयः, आदिमद्वीपविहरमाणश्रीसीमन्धर-श्रीयुगन्धर-श्रीबाहु-श्रीसुबाहु-जिनचतुष्टयमूर्त्तयः, परा अपि श्रीजिनप्रतिकृतयः, सकलदुरितदुस्तटीप्रस्फोटनप्रमत्तद्विरदानां तत्तादृक्त्रिविष्टपोत्तरज्ञानदर्शनचारित्रप्रभृतिपवित्रगुणश्रेणिप्रकर्षेण परवादिपर्षदि प्राप्तसद्विरुदानां भास्वरताभूरीणां श्रीमज्जिनरत्नसूरीणां मूर्त्तिश्च । पुनरपि प्रतिष्ठामहं कारयता प्रभावकपुरुषेण सन्मानदानपुरःसरसाधर्म्मिकनागरापरपौरमानवनिवहभोजनताम्बूलप्रदानादिविधिना प्रभूतयाचनकनिकरमनोरथपूरणप्रकारेण च श्रीजिनशासनमहिमा जगति विशेषेण जाङ्गिकी कृता ।

§२१. तदेवं संजातमद्वैतप्रभं श्रीदीक्षाप्रतिष्ठामहोत्सवद्वयम् । परमनयोः श्रीमहसोः श्रीसङ्घलोकमिलनकुतूहलप्रभावनादिस्वरूपं कियद्वचनपथगोचरं बोभवीति । यतः–

यामाग्रहारनगरेतरमण्डलेभ्यस्तावन्त ऐयरुरिहाङ्गिगणाः सहर्षाः ।
यद्भाषणैः पुरमिदं हि नभश्चराणां भूयोऽपि वार्द्धिमथनभ्रममाततान ॥ ४६ ॥

सीमन्तिनीजनचया मिलितास्तथाऽत्र कौसुम्भचेलपटलीरचितोत्तरीयाः ।
जाता यथाऽवनिधरस्य सुभूमिरेषा सत्पद्मरागशिखरै रुचिरा सचित्रा ॥ ४७ ॥

अपि च–

ते केऽपि गीतविधयो नवनाट्यभङ्गास्ते केऽपि चाद्भुतरसा ननु हर्षरङ्गाः ।
यैर्विश्वविस्मयकरैरनया पुरापि स्वर्गायितं कतिपयानि दिनानि नूनम् ॥ ४८ ॥

किञ्च – श्रीजैनशासनमहो महिमानिधानं पुण्योऽसकौ खरतरस्य पथो विधिश्च ।
वर्ण्यं च साधुसचिवेश्वररामदेवविस्फूर्जितं बत बतेति न कैरनावि ॥ ४९ ॥

किं बहुना–

किं चिन्तयाम च दधाम च चाम किं वा किं वर्णयाम च नवाम लिखाम किं वा ।
बुद्धिर्महाद्भुतरसाम्बुनिधौ निमग्ना संगाहते न हि कथञ्चिदपि स्वरूपम् ॥ ५० ॥

अतः स्वल्पमात्रमेवात्र लेलिखाञ्चक्रे इत्यवसेयम् । तथा यदेवं म्लेच्छसंकुलसंनिवेशेभ्योऽपि दूरं विषमेऽपि अनेकपुण्यविधिपथप्रत्यर्थिखलकुलसङ्कीर्णेऽपि दुष्टव्यन्तरप्रचाराकुलेऽपि अस्मिन् विषये निरातङ्कं निराबाधं निःशङ्कं निःप्रत्यूहं निःकलङ्कम् अभूतपूर्वाणि श्रीदीक्षा-प्रतिष्ठामहोत्सवादीनि पुण्यकर्म्माणि सिद्धिसौधशिखरमधिरूढानि तत्सर्वं जाग्रत्प्रभाववसतेः प्रौढप्रतापतीव्रदीधितेः प्रसन्नाकृतेः श्रीकरहेटकश्रीमत्पार्श्वनाथदेवाधिदेवस्य विशदप्रसादस्य विजृम्भितमिति ।

श्रीमद्भिरपि सपरिवारैः सश्रीसमुदायैरिमानि मनःसंमदप्रदायीनि श्रीशासनप्रभावनादिस्वरूपाणि समधिगम्यैतद्देशप्रवृत्तानि स्वीयमानसमरालः प्रमोदतरङ्गभङ्ग्या सह क्रीडयितव्यः ॥ 卐 ॥

*

[पत्तननिवासिमन्त्रिवीरा-मन्त्रिसारङ्गकृतामन्त्रणपूर्वं जिनोदयसूरेर्गूर्जरधरां प्रति प्रस्थानम् ।]

§२२. अथाग्रिमो वृत्तान्तः किञ्चिल्लिखितपद्धतावधिरोप्यते । अनन्तरं च–

अस्ति स्वस्ति समस्तश्रीनगरसरःश्रेणिक्षीरसागरावतारश्रीमन्नरसागरपुरवरनिवासिविलासिव्यवहारिरत्नराशिसातिशयपुण्यप्रभाप्राग्भारभ्राजिष्णुमूर्त्तिः, परमपुरुषाभिलषणीयपुरुषार्थत्रयसंसाधनयथापूर्वप्रवर्द्धमानमत्यतिशयः, निजगतागतभ्रमविप्रतारितानेकमानुष्यकदुर्धरचपलकमलाकरेणुकासङ्कलनालानस्तम्भः, पुरातनजन्मसम्यक्परिचरितश्रीजिनवरोपदर्शितश्रीधर्ममार्गप्रसादप्राप्तप्रभूतविभूतितया पुनरपि तमेव मार्गं प्रत्युत समुन्नतिं नेतुकामितया जगति विख्यातकृतज्ञतागुणः, स(श)चीवरयितेव विबुधसंसदुपश्लोक्यमानगुणगणोऽपि गोत्रपालनसाह्लादहृदयः, वैश्रवण इव श्रीदोऽपि न कुबेरतया प्रसिद्धः, प्रचेता इव समुद्रस्थितिरपि न पुण्यसंप्रयोगे पश्चिमाशानुषङ्गिहृदयः; किं बहुना – गणनीयोऽग्रणीर्गुणिनाम्, वर्णनीयो वरीयाँल्लब्धवर्णानाम्, स्पृहणीयः प्रथमः प्रगल्भानाम्, अभिनन्दनीय आदिम उदाराणाम्, मार्गणीयो धुरीणः सन्मार्गगामिनाम्, कीर्त्तनीयो धुरि धीराणाम्, प्रशंसनीय आदौ प्रसन्नानाम्, बोद्धव्यो धौरेयोऽनुद्धतानाम्, ग्रामणीः शमशालिनाम्, सुधाकरमय इव यशसि, सुधामय इव वचसि, सौभाग्यमय इव महसि,

कारुण्यमय इव हृदि, तन्मय इव मुदि, आलस्यमय इव रुषि, सर्वगुणमय इव वपुषि, परीक्षानिरीक्षणीयसङ्घपुरुषपदवीदक्षणक्षमलक्षणविभूषणः मन्त्रीश्वरमूञ्जापरमश्रावककुलकनकाचलधरणीसमलङ्करणकल्पकारस्कराङ्कुरः श्रीशासनप्रभावकः मन्त्रीश्वरवीरासुश्रावकः स्वकीयपूर्वजसहोदरमन्त्रिमण्डलिकवचनानुपालनप्रवीणः श्रीमहातीर्थद्वयाद्वैतयात्रां झगिति संसुसूत्रयिषुरपि, महाराज्यस्थितिरिव सधरधीसखान् विना श्रीसुगुरूननन्तरेण महीयः श्रीसङ्घयात्रादिधर्म्मकार्यविधिः समुन्नतिभाक् कल्याणाभ्युदययुग् अविनश्वरपुण्यसम्पत् सकललोकचमत्कारकृत् समस्तसंकटघटाभित् परश्रीहृत् सर्वथापि न संपनीपद्यते – इति हृदयालुः स्वहृदयेऽवधारयन्, परारिपरदैषमःप्रहितनानाप्रकारसभक्तिकविज्ञप्तिसंभारोऽपि, समाकारणायास्माकं सम्प्रति विशेषेण प्रस्तावं समधिगच्छन् समानेतुमस्मान्, प्रकृतिविनीतात्मानं समानन्दितसज्जनवितानं साधुजनमानसकुलेशयकेलिसारङ्गं श्रीगुरुवदनाम्बुदक्षरद्वचनामृतबिन्दुसङ्ग्रहस्पृहासारङ्गं प्रसन्नतागुणानुकृतसारङ्गम् उदारतासहोदरीकृतसारङ्गं मन्त्रिमण्डलिकाङ्गजं निजभ्रातृव्यं मन्त्रिसारङ्गं प्राजेघीयिष्ट । समागतश्चासौ तत्र नमस्कृत्य श्रीकरहेटकाधीश्वरं श्रीपार्श्वजिनवरम् । भेटयित्वा च पुरपुरन्दरं सादरम्, समावर्ज्य च समग्रं श्रावकनिकरं तत्क्षणमेवास्माकं वन्दननमस्करणपूर्वं श्रीतीर्थयात्रायै प्रस्थापनक्षमाश्रमणं प्रदेदीयाश्चक्राणः । वयमपि बहुवासरेभ्यः श्रीतीर्थयात्राकरणेनात्मानं पवित्रयितुकामाः, सम्प्रति प्राप्तप्रस्तावाः, तत्रत्यं महाग्रहपरं श्रीगुरुदर्शनविरहकातरं परमपुण्यभक्तिसमवायं साधुराजरामदेवप्रमुखं श्रीसमुदायं भूयसा प्रयत्नेन संबोध्य, तदामन्त्रितश्रीतीर्थयात्राप्रस्थितसकुटुम्बगीतार्थप्रभूतश्रावकसङ्कुलेन मन्त्रिसारङ्गसूत्रितनिराबाधसार्थेन सह श्रीकरहेटकप्रभुपार्श्वजिनप्रसादमुररीकृत्य शिरसि प्रधानशकुनसन्तानदत्तानुमतयः फाल्गुनशुक्लदशम्यां प्रतस्थिवांसः ।

*

[मार्गागतप्रसिद्धतीर्थनमस्कारवर्णनपुरस्सरं, पत्तनपुरप्रवेशवर्णनम् ।]

§ २३. अन्तरा च नवखण्डमेदिनीविदितमहिमानं सर्वातिशयनिधानं सकलकल्याणमूलनिदानं नागहृदमहास्थाने जिनवरं श्रीनवखण्डपार्श्वनाथनामानम्; श्रीमदीडरगिरिमहादुर्गशृङ्गशोभाकारिशातकौम्भकुम्भं युगादिप्रदर्शितलोकद्वयोपकारिधर्म्म-कर्म्मसंसर्गप्रारम्भं युगादिभग्नमोहसंरम्भं युगादिजनमनःकामितकामकुम्भं श्रीचौलुक्याधिपविधापितोत्तुङ्गतोरणरमणीयविहारविहितवसतिं महोदारमूर्त्तिं श्रीयुगादिजिनपतिम्; श्रीबृहति नगरे च सौवोत्तुङ्गमण्डपद्वारशिखरस्तम्भादिश्रीचमत्कारितसनातनायतनविभ्रमाभिरामप्रासादोदरविभ्राजमानौ विलोकनमात्रसम्भावितभङ्गुरीभवद्भवाभिमानौ पुण्यप्रलेपमयौ जीवत्स्वामिप्रथमतीर्थनाथ-श्रीमद्वर्द्धमानौ; श्रीसिद्धपुरे च श्रीसिद्धचक्रवर्त्तिश्रीजयसिंहमहीपकारिते शाश्वतिकचैत्यावतारे विधिवदनसङ्ख्यद्वारे विलोककलोकलोचनावलीसमानन्दनकाचकर्पूरशिलाकानुकारे बहुविधपञ्चालिकामालिकादिविच्छित्तिभङ्गीसकलायतनसारे रम्ये श्रीविहारे सन्निविष्टाश्चतुर्दिशाभिमुखोपविष्टाः श्रीपरमेष्ठिचतुष्टयमूर्त्तींश्च नमस्कृत्य; तथा आ श्रीकरहेटकपार्श्वजिनभवनं सर्वेषु श्रीतीर्थस्थानेषु मन्त्रिसारङ्गेण श्रीमहातीर्थयात्राविधास्यमानप्र-

भूतविभवव्ययोदारतावर्णिकां दर्शयतेव कारितं सविस्तरं श्रीमहापूजाध्वजारोपनृत्यगानदानाटोपप्रमुखप्रभावनाविधिम् । संदृश्यानुमोद्य च सम्मुखागतसंख्यातीतश्रावकलोकमयश्रीपत्तनीयश्रीसमुदायसमन्विताः, प्रातः समुदयश्रियं शेश्रीयमाणे मङ्गलकलशशालिनि श्रीमदंशुमालिनि मधुमासप्रथमद्विगुणषष्ठीवासरे श्रीपत्तनपुरवरे भासुरसमुदयरमाभ्राजं श्रीशान्तिनाथतीर्थराजं नमश्चकृमः स्म । तत्रत्यं श्रीसमुदायं बहुदिवसदर्शनोत्सुकं प्रमोदयाश्चकृम च ॥ 卐 ॥

[अथ मन्त्रिवीराप्रारब्धतीर्थयात्रोपक्रमवर्णनम् ।]

§२४. तदनु मन्त्रीश्वरवीरेण वज्राद्रिणेव मनसि धीरेण स्वमनोरथावलीं महतीं फलेग्रहीं कर्त्तुमुपायनीकृतामितस्वापतेयराशिना भेटितः प्रकटविसङ्कटदुःसहाभिमानः श्रीखानः । तेनापि पुरपरिवृढेन निरन्तरं समाराध्यमानस्वीयश्रीदेवगुरुचरणप्रसादातिरेकात्तदीयपुरातनपुण्यपुण्यभाग्यसौभाग्यसदाकृतिसौम्यतादिरमणीयगुणप्रसन्नीकृतमानसेन तस्य कृतः प्रसादः । समभिनन्दितो बाढं मधुराभाषणादिना । व्यतारि च चतुःशिखरमिषचतुष्ककुब्विलासिकमनीयकीर्त्तिकन्यिकापृथक्पृथक्क्रीडापर्वतकविराजितेन दीप्रतरसुवर्णसूक्ष्मतन्तुजालसर्वतोग्रथितेन शिरस्त्राणेन सहिता कलकनकमयकिङ्किणीश्रेणिमिषमूर्त्तिमन्नेतृप्रकटप्रतापलवकृतालङ्कृतिः पट्टकूलमया समस्तोत्तमजनमनोजनितधृतिः प्रशस्या कायावृतिः । प्रसादीकृतं च कृतसुकृतकर्मान्तरायदुर्जननिकायमनोरथमालानिद्राणं सकलमहीवलयप्ररोपितप्रमाणं श्रीफुरमाणम् । तदनन्तरं तदनुज्ञातस्तत्प्रदत्ताकल्पसमलङ्कृतवपुः, पुरुषोत्तम इव त्रिविष्टपजनतामनोमोहकारिण्या तया श्रिया समालिङ्गितः, सहस्रलोचन इव जयेनान्वितः सरलशालिहोत्रारूढः, पुरमुख्यव्यवहारिमानवलक्षानुगम्यमानः, गर्जज्जीमूतस्फीतध्वनिविडम्बिना तारस्वरितस्वरेण मङ्गलपाठकघट्टैरुपस्तूयमानः, सावधानगन्धर्ववृन्दैः प्रत्यग्रसर्वाग्रिमरम्यग्रामगान्धर्वोद्गारैर्गौरवातिरेकं प्राप्यमाणः, वाद्यमानानवद्यवाद्यवृन्दोदात्तस्वरैः स त्रिजगति प्रख्याप्यमानः, कुतूहलरसनिभालनधावमाननगरलोकवनितावितानविस्मेरनेत्रकच्चोलकैः पीयमानसौभाग्यलावण्यरसः, मध्ये पुरं प्रवेशकमहोत्सवपूर्वं प्रविश्य श्रीविधिमन्दिराधीश्वरं श्रीशान्तिजिनवरं नमश्चकार मन्त्रीश्वरवीरः । श्रीपुण्यशालायां श्रीगुरूंश्च सादरं प्रणम्य समासादिततदुपदेशादेशः सौवावासमयासीत् ।

*

§२५. ततश्च पूर्वमेव प्रगुणीकृतसमग्रसामग्रीकोऽसकौ सज्जीचकार चारुदारुमयं मनोहारिविचित्रचित्रनिचयम्, व्योमाग्रोल्लेखिशिखरप्रान्तवर्त्तिकान्तकनककलशविसारिरश्मिवारभासुरितसप्तहयम्, भग्नसकललोकचञ्चलविलोचनरयम्, दिव्यभवनमिव विचित्रपुत्रिकाभ्राजिष्णुमहारम्भस्तम्भम्, तुलितायामविष्कम्भम्, देवलोकभूवलयमिव क्वणत्किङ्किणीकुतूहलकोलाहलायमानचतुरसखीश्रेणिपरिकरितया चतसृषु दिक्षु यदृच्छया खेलन्त्या दिविचरमनांसि भ्रमयन्त्या वैजयन्त्या शोभमानम्, प्रायो मिथ्यादृशामपि समदृशां मनोमृगकदम्बककेलिगिरिम्, गरीयोगिरिमिव क्वचित् कनीयःशिखरराज्या राजितम्, क्वचिन्नभोभ्रमणश्रमखिन्नैरिव निश्चलोपविष्टैः कलविङ्ककुलैः कलितैः समीराभावान्निःकम्प्रैरिव विनीलघनभेदसान्द्रद्रुम-

समूहैर्विहिताह्लादम्, क्वचिद् द्विरदविशदरदखण्डैर्मण्डितम्, क्वचिद् भूरिरसरमणीयकटककाम्यम्, क्वचिल्लयस्तिमितैरिव समकलापटुभिर्विद्याधरवनितावृन्दैर्विधीयमाननाट्यरङ्गम्, क्वचित् केसरिकरिहरिप्रभृतिभिर्वनमृगपूगैर्विभ्रमकरम्, क्वचिच्च परितोरणप्रसक्तमत्तवारणम्, किं बहुना – संसारार्णवनिमज्जज्जन्तुजाततारणपोतायमानम्, मूर्त्तिमयपुण्यस्कन्धायमानम्, आकल्पविकल्प्यमानवर्णनाभिरपि लेशतः स्तूयमानगुणवितानम्, विचक्षणवर्णनार्हविविधवस्तुविस्तारालयं श्रीदेवालयम् ।

*

§ २६. ततश्च तस्मिन् श्रीदेवालये नानावनराजिमण्डलीलताग्रभागविकसितसितासितहरितपीतकुसुमस्तवकप्रसरदस्तोकविरोकपञ्चवर्णीभूतभासि श्रीमधुमासि, कुमुदिनीप्राणप्रियप्रस्मरपीयूषभरवर्षिकौमुदीसमुदयप्रमोदितजन्तुलक्षे प्रथिमपक्षानुगामिगुणबहुलक्षे द्वितीयपक्षे, सकलदुरितप्रवासरे षष्ठीवासरे, विस्तारितविततकल्याणसुधाधारे श्रीसोमवारे, समाह्वानमिलितासु अविकलपुरप्रधानज्ञातिषु कुतुकाकृष्टचित्तवृत्तिप्रेरितासु पिण्डीभूतासु तासु तासु जातिसु, समुच्छलिते पञ्चविधातोद्यप्रपञ्चितोदये महति ध्वनिलये, निभृतस्वरसञ्चारितचतुर्वर्णकर्णामृतधारे प्रवर्त्तमाने च श्रीदेवगुरुसम्बन्धिनि कुशलकारिणि मङ्गलगीतोद्गारे, निर्मिताशेषसुरासुरनरनिकराक्षेपः श्रीवासक्षेपश्चेक्रीयते स्मास्माभिः। ततश्च तत्र सविशेषश्रीवासक्षेपपूर्वं पूर्वप्ररोपितधर्मपथः विहितमहाविघ्नौघमाथः कलिकश्मलक्षालनाद्वितीयपाथः श्रीप्रथमतीर्थाधिनाथः सविस्तरं निवेशयामहे ।

तदनु च मन्त्रीश्वरवीरा-मन्त्रिसारङ्गसुश्रावकयोः श्रीजिनधर्मप्रभावकयोः श्रीसङ्घाधीश्वर्याविर्भावको वासक्षेपः समसूत्र्यत ।

[*मन्त्रिवीरा-मन्त्रिसारङ्गसंचालितशत्रुंजयतीर्थयात्रासंघप्रस्थानवर्णना ।*]

§ २७. अनन्तरं ताभ्यां सङ्घपुरुषाभ्यां निजौदार्यगुणसमुत्पादितसुपर्वपादपरुषाभ्यां परःसहस्रैर्महार्घयोग्यैरीश्वरलोकोपभोग्यैर्विशिष्टवसनैः, समतिक्रान्तगणनाप्रकारैः प्ररोप्यमाणयशःप्रासादानुरूपवृत्तस्वरूपकलसा(शा)कारैर्मञ्जुलसरसनालिकेरवारैः, अकीर्त्तिवर्त्तिकावित्रासनगुलिकोपमानैः समुल्लङ्घितप्रसृतिमानैः प्रत्यग्रैः क्रमुकवितानैः, कीर्त्तितरुणनर्त्तकीहरितांशुकपरिधानैः समस्तपत्रजातिप्रधानैः सारमरकतमणिपत्रविमलैरखण्डितैर्नागवल्लीदलैश्च सत्कृत्य सकलं महाजनलोकम्; सविशेषपूजाप्रकारैरुचिताधिकोपचारैः श्रीचतुर्विधश्रीविधिसङ्घं च समाराध्य बहुविधप्रचुररुचिरचीरचामीकरालङ्कारप्रभूतसारासारैः अनुगृह्य च याचकनिकरम् श्रीनरसमुद्रं विमुद्रोन्निद्रैर्यशोराशितरङ्गैर्विलङ्घितमर्यादं व्यधीयत ।

ततश्च तस्मिन्नेवाहनि यामत्रयानन्तरं प्रसन्नतामुपेयुषि वासरातपे प्रशस्यवेलावसरे, नगरत्रिकचतुष्पथचत्वरशृङ्गाटकविसङ्कटीभूतेषु, हर्षायल्लकाकुलकलकलकलारवोन्मुखीकृतगगनचरेषु, पृथुलाभिख्यनेपथ्याभरणरमणीयेषु, मण्डलायितेषु परोलक्षेषु प्रजाव्रजेषु; पौण्ड्रकिकेण भालस्थलेन, काज्जलिकेन नयनयुगलिकेन, पात्रलतिकेन कपोलमण्डलेन, कौण्डलिकेन कर्णयुगेन, दैसिजालिकेन नासावंशेन, वार्त्तगुणिकेन वदनेन्दुना, मौक्ताहारिकेण हृदयस्थलेन, काङ्कणिकेन करकमलप्रकोष्ठद्वितयेन, आङ्गुलीयकिकेन प्रदेशिनीसमूहेन, माञ्जीरिकेण चरणयामलेन, पारिकर्म्मिकेण कामनीयाकल्पिकेन, औदाराकारिकेण लावण्य-

रसिकेन च शरीरेण समीक्षिषु पौरपञ्चजनराजिविलोललोचनेषु; देवभूयं देशतः कुर्वाणासु राशीभूतासु सीमन्तिनीमालासु वामकरकमलदलतलपिहितलपनेषु, दक्षिणकरैरूर्द्धप्रलम्बितैरन्तरिक्षपथायाममिव प्रमातुं प्रवृत्तेषु, दानशौण्डपुरुषमुखाभिमुखपुनःपुनःप्रेष्यमाणेक्षणेषु, गाथार्यागीतिसुरीतिवृत्तकवित्वषट्पदादिबन्धुरबन्धमुक्तकप्रबन्धविचक्षणेषु विततोदात्तस्वरेण पापठ्यमानेषु मङ्गलपाठकेषु, बहुतरकाम्बविक-तौरिक-दौन्दभिक-झार्झरिक-पाणविक-मार्दङ्गिक-वैणविक-वैपञ्चिक-सौरनारिक-ढौल्लिक-प्रमुखशिल्पिसङ्घाताहन्यमाननिजनिजानवद्यवाद्यवृन्दपरिस्फुटदस्फुटसाटोपध्वनिडम्बरप्रमुखरितपौरसुधाकुट्टिमहर्म्येष्वपि–*–'साध्विदं साध्विदं; क्रियत इदं क्रियत इदं; समुचितमिदं समुचितमिदं; पुण्यमिदं पुण्यमिदम्'*–इत्येवमनुमतिदातृत्वमाश्रितेषु, प्रतिपदं मेदुरानन्ददायिषु लास्यताण्डवादिनृत्यं नरीनृत्यमानेषु कलाशालिषु खेलकेषु; अन्तरेण सङ्घपुरुषमन्दिरं पुरगोपुरं च सम्मर्दविगलितोष्णीषादिवसनशिरःकरोरःप्रभृतिनानाभरणेषु भूमितलभागमनुपेयिवत्सु, मिलिताभितजनतातोद्यकोलाहलारवप्राचुर्याद् विफलीभूते वचनव्यापारे, केवलं प्रवृत्ते भ्रूविक्षेपकरशिरःकम्पादिप्रकारेण प्रयोजनसञ्ज्ञाव्यवहारे, अहमहमिकया त्वरमाणभूचरतुरगरथनिकरचरणचालितपुरःसञ्चारिधूसरबहलरेणूत्करव्याजेन कौतुकधावमानस्खलितमानिनीजनत्रुटितहारविकीर्णमुक्ताफलप्रवालकलधूतरजतादिमणिकजालव्याजरचितविभूषायां सहप्रस्थितायां तीर्थयात्रानुरागेण नगरवसुन्धरायाम्, क्रमेणान्तःपुरमेव विगलितेषु दिनकालकलालवकलापेषु, चिरं कुतूहलमवलोक्य साद्भुतं वृत्तान्तं चिकथयिषाविव द्वीपान्तरं जिगमिषिते गभस्तिमालिनि, पुष्कराजिरावलोक्यमानपरिमण्डराकालसरच्छददलश्यामलबहुलमायूरातपत्रमिषेण विहितवेषपरावर्त्तेषु समायातेषु श्रुतमहोत्सवनिदिध्यासासमुत्सुकेषु द्वीपान्तरविहारिहरिणलाञ्छनेषु, प्रसृमराशोकपल्लवारुणसायंतनरागदम्भेन निभालनाध्यवसितासु धृताङ्गरागासु विचित्राम्बरधारिणीषु दिग्वधूषु, क्षणेनास्ताचलचूलान्तरिततरणिपश्चिमारुणकिरणकिञ्चिदवकाशकुवलयमालामलिनाङ्कुरिततिमिरवर्त्तिव्यासस्तोकोल्लसितसितकरोदयपिशुनपूर्वककुब्भासविलासिविचित्रयोपदेशेनान्तरितदर्शनैः श्रीजिनशासनप्रभावनाप्रहृष्टैः साधर्मिकानुरागिभिर्नभश्चरैः, श्रीसङ्घमहोत्सवसमवेतमानवश्रेणिपरस्परसम्बाधादिवातपवर्त्मश्रमसमुद्भूतोष्मस्वेदादिसन्तापनिर्वापेप्सया मोमुच्यमानासु गालितकुङ्कुममृगमदचन्दनद्रवसर्वतोधारासु, तदनु क्रमेण पूर्वदिग्वर्णिनीललाटपट्टरजततिलकायमाने प्रस्थितलोकसंमुखीनाजिगमिषु, शुभायतिसूचिसुधारसधारावलीधवलितकल्याणकलशायमाने श्रीदेवालयप्रथमार्चिचिषया प्राग्दिग्वनितया सहेलं गृहीतसचन्दनरसशुक्तीयमाने, सुमुदिते श्रीताराधिपतौ विमलोदयं समासेदुषि प्रस्फुरितवति च प्रतिदिशं प्रकाशायमाने, मूर्त्तिमति प्रतापानलकणोत्करे इव जागरूकदीपिकाविताने; किं बहुना–

लोकास्तोकतया प्रवृत्तवति चासंघर्षभावेत्युरःपेषं वीक्ष्य विसंस्थुलाः प्रियतमाः सौवीः पराश्लेषतः ।
क्रुद्धा यत्र निवारिताः सहचरास्ताभिः प्रियाः साम्प्रतं, युक्तायुक्तविचारणा यदि भवेत् स्नेहाय दत्तं जलम् ॥५१॥

भावाः केऽपि बभूवुरत्र ननु ते जाते यदीयस्तवे, तावन्तो घटिता नु वाद्यविधयो येषामुदारैः स्वरैः ।
ते केऽप्युत्सवराशयोऽजनिषत प्रेक्ष्यात्र यान् किञ्चिदामूको जल्पति संशृणोति बधिरः पङ्गुर्नरीनृत्यते ॥ ५२ ॥

तावल्लोकघटा निशम्य चलिता यस्मिंस्तडागस्थिता मार्गे झोषणदुःखिताः प्रतिदिनं सङ्घोज्यलाभोत्सुकाः ।
क्षुद्रैः श्रीव्ययशङ्किभिर्विघटिताः सेर्ष्यं ततो दुर्घटं मत्स्यी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥५३॥

तत्र क्षणे संमुखमागतायाः कस्या मुखं दर्पणचारुदृष्टम् ।
दृक्खञ्जनौ हास्यदधीनि सिद्धिं ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते मृगाक्ष्याः ॥ ५४ ॥

अपि च – क्रमात् –

रेणूत्करे प्रौर्णुवितार्थजाते नावीक्ष्य तं दीपकिकाव्रजेन ।
चोत्पादितेऽहर्मुखविभ्रमेऽपि चन्द्रोदये नृत्यति चक्रवाकी ॥ ५५ ॥

आलोकिताशेषकुतूहलेंशावस्तंगते वीक्षकदेहभाजाम् ।
प्रदर्शिताल्पोत्सवकस्तदानीमयं शशी वह्निकणान् प्रसूते ॥ ५६ ॥

लोके विचित्रे मिलितेऽपि यत्रासमञ्जसत्वं न यशः प्रपेदे ।
किं वा मृगाक्षीशतमेलकेऽपि रामामुखं चुम्बति कार्त्तिकेयः ॥ ५७ ॥

किं भूयसा –

तं देशं न मृशामि सौवमनसि प्रायो यदीया जनाः, अस्मिन् संमिलिता नहि व्यतिकरे सत्कौतुकान्वेषिणः ।
नूनं तानि न कौतुकानि भवने जातानि यानीह नो, किं ब्रूमः किमु कुर्महे किमपरं लेखे लिखामोऽथवा ॥ ५८ ॥

*

इत्येवं प्रवर्त्तमानबहुविधप्रशस्यसमस्यापदपोषणार्थोल्लेखिस्वरूपनिकुरम्बप्रवर्द्धितसुधीजनधिषणोन्मेषप्रसरे प्रकर्षं गतवति समस्ताश्चर्यप्रकरे –*'अहो अहो ! भाग्यम्, अहो अहो ! सौभाग्यम्, अहो अहो ! पुण्यप्रकर्षः, अहो अहो ! साहसोत्कर्षः, अहो अहो ! श्रीतीर्थयात्रारसतर्षः, अहो अहो ! सुगुरुवचनसंघर्षः । बत बत ! यशस्विता, बत बत ! मनस्विता, बत बत ! महस्विता, बत बत ! प्रवीणता, बत बत ! उदारता, बत बत ! चारुता, बत बत ! अगर्वता, बत बत ! आर्जवाखर्वता । कटरि कटरि ! राजप्रवादः, कटरि कटरि ! साधुवादः, कटरि कटरि ! प्रागल्भ्यम्, कटरि कटरि ! श्रीशासनप्रभावनावाल्लभ्यम्, कटरि कटरि ! वचनमाधुर्यम्, कटरि कटरि ! विवेकिता, कटरि कटरि ! विदग्धता, कटरि कटरि ! स्थैर्यम्, कटरि कटरि ! धैर्यम्, कटरि कटरि ! गाम्भीर्यम्, कटरि कटरि ! उद्भटता, कटरि कटरि ! पूर्वकृतसुकृतप्रकटता'* – **इत्येवं प्रतिजनं प्रतिवदनं प्रसर्पति श्रीसङ्घपुरुषस्य श्लाघोद्घोषे, सीमानं जग्मुषिरं सर्वरसपोषे श्रीशत्रुञ्जय-श्रीउज्जयन्तमहातीर्थद्वयारोहणार्थप्रस्थितश्रीसङ्घपतिप्रकटितरूपद्वयनिर्मलयशःपुञ्जानुकारिदधिदुग्धवार्द्धिडिण्डीरपिण्डपाण्डुरभद्रकरिकलभानुहारिदुर्द्धरभारधरणधौरेयधवलसबलकलकार्त्तस्वरच्छुरितसुस्वरघर्घावलीवलयितगलकन्दलकौसुम्भांशुकशृङ्गारितशृङ्गाग्रभागमहाभागसुभगदर्शनार्हस्पर्शनार्हवर्णनार्हबृहद्देहश्रीगेहस्थूलवृषणयुगलाकृष्यमाणस्य निजजातिलब्धसर्वगुणप्रमाणस्य स्वरूपसारङ्गलोचनाशरीरस्येव दक्षिणावर्त्तभ्रमरमणीयनाभिचक्रस्पृहणीयस्य महारथस्य मध्यमारोपितस्य सुप्रसाधितमनोहरनेपथ्यसुघटितसुवर्णरत्नालङ्कारभासुरीकृतप्रतीकप्रतानप्रधानसुरकुमारावतारमहेभ्यव्यवहारिकुमरचतुष्टयस्थूलामलकतुलितप्रमाणसरसमुक्ताफलकणाकलितकनककङ्कणक्काणवाचालसुकुमारकरकमलप्रतिदिशचाल्यमानज़ाह्नवीसमुच्छलदधोगलज्जलकल्लोललीलावलम्बिनिकुरम्बीकृतसूक्ष्मतन्तुमृणालजालाभधवलकुन्तलविशेषसंगुम्फितरोमगुच्छविक्षेपप्रख्यापितसकलमहीवलयवर्त्तिसुविज्ञानविच्छित्तिविचित्रदेवालयकुलैकातपत्रैश्वर्यस्य असंभाव्यशोभालयस्य श्रीदेवालयस्य निष्क्रमणमहोत्सवो बोभूयाम्बभूव ।**

*

[पत्तननगरादारभ्य शत्रुञ्जयगिरिं यावत् मार्गगतप्रयाणस्थानवर्णनम् ।]

§ २८. निष्क्रम्य च श्रीनरसमुद्रपुरगोपुरात् क्रमक्रमेण पुरतः पुरःसरैस्तन्नियोगनियुक्तैः सावहितैः पुरुषनिकरैः, ततोऽप्यग्रतो बृहद्भानुदेदीप्यमानदीपिकाप्रकरैः, ततोऽपि रोहिणीरमणमधुरसान्द्रचन्द्रिकाप्रसरैश्च प्रदर्श्यमानमार्गः, कुमरगिरिग्रामपरिसरे प्रथमप्रयाणमकार्षीत् । अनन्तरं सङ्घपुरुषप्रहितमूर्त्तिमयात्मीयहृदयङ्गमसाधर्म्मिकानुरागतरङ्गोच्छलच्छीकराकराकारकाश्मीरजरसच्छटाच्छोटनलगितशोणबिन्दुमण्डलीकर्बुरितनयनाह्लादकारिकज्जलजमलिनाम्बुधाराविरचितवर्णावलीपवित्रसप्रणयलिखितकुङ्कुमपत्रिकापङ्क्तिसमाहूत–गौर्जरमरु-मेदपाट-सपादलक्ष-माड-सिन्धु-वागड-श्रीकौशलादिमहामण्डलनिवासिलोकसमायातकतिपयविषयजनपरिवृतेन, कणेहत्यभोजितसमस्तनागरजनजातिविततवासोवितरणप्रीणिताशेषदर्शनप्रदेदीप्यमानप्रशस्याशीर्वचनपीयूषप्रवाहस्नप्यमानभाग्यसौभाग्यपुण्ययशोमण्डलेन सङ्घपुरुषमन्त्रीश्वरवीरासुश्रावकेण सह वयमपि सपरिवारा माधवमासप्रथमतृतीयादिने तत्रैव प्रथमप्रयाणे प्रबभूवांसः ।

§ २९. ततस्ततः प्रस्थितः श्रीसङ्घः श्रीसलक्षणपुरे मन्त्रि-सं० गेहाङ्गज-मन्त्रिडूंगरकारितसविस्तरतरश्रीप्रवेशकोच्छ(त्स)वपूर्वं प्रविश्य समुच्चशृङ्गस्खलितनिरवधानगगनचरखैरिताविहारे बहुसमाकारितसर्वजन्तुजातामारिघोषणापोषिताकल्पानल्पकीर्त्तिकीर्त्तनीयसं०सा० कोचरविरचितोद्धारे श्रीविधिविहारे तत्पुण्यपुरुषविशदयशोमुक्ताहारशृङ्गारणोदारेन्द्रनीलमयनायकमणिसोदरं प्रभावभरितब्रह्मस्तम्बोदरं सैन्धवाभिधानं श्रीपार्श्वजिनवरं नमस्कृत्य, स्नानविलेपनमहापूजामहाध्वजावारितशत्रुमार्गणद्रविणपोषणादिप्रकारैः श्रीजिनशासनं समुन्नतिं प्रापय्य, दिनद्वयानन्तरं श्रीशङ्खपुरवरे वरेण्यलावण्यपुञ्जविराजितनिरन्तरजागरूकप्रौढराढाकेलिसदनसौवदनविडम्बितपार्वणसुधाकरमण्डलम्, लोचनपथविषयीभावमात्रेण विद्रावितोपद्रवमण्डलम्, अहर्निशदासायमानमानवदानवदेवम्, सुरभूरुहमिवावन्ध्यसेवम्, श्रीपार्श्वनाथदेवं सादरं नमस्यित्वा, तद्भवने महाध्वज-महार्चा-गीतनृत्यावारितशत्रुसकलार्थिसन्तोषणादिविधिभिरगण्यपुण्यरोचिष्णुयशोराशीन् समतिक्रान्तसीमासमुद्रान् समचेचायीत्, अनेनायीच धन्यतां दिनचतुष्टयीं तत्र ।

§ ३०. ततश्च श्रीपार्श्वजिनसौम्यदृष्टिप्रसादविहिताङ्गरक्षः श्रीसङ्घः श्रीपाटल-श्रीपञ्चासरग्रामयोः श्रीनेमिजिन-श्रीवर्द्धमानजिनौ साहमहमिकं प्रणम्य, प्रातर्मण्डलग्रामे साटोपमावेशनिकां व्यरीरचत् । तत्र च महाविस्तरेण बलाधिकसा० कडुयासुश्रावकस्य पाश्चात्यपदवीप्ररोपः, तथा वाग्भटमेरवीयपरीक्षिविक्रमसैन्धवसा०राजा–पत्तनीयसा०कान्हड–स्तम्भतीर्थीयश्रे०गोवलसुश्रावकाणां च महाधरपदसंस्थापकः श्रीवासक्षेपोऽस्माभिश्चेक्रीयाम्बभूवे । तदनु सं० वीराकेण पट्टकूलकायावृतिप्रभृतिशृङ्गारप्रदानेन सम्मानितास्ते विशेषश्रीदेवगुरुभक्तिसाधर्म्मिकाराधनतर्षकतोषणादिमहिमाभिः श्रीशासनयशः साधिकं सम्प्रकाशमकार्षुः । तथा सस्वकीयवर्गानुयायिलोकसङ्कुलसधरलक्ष्मणापरपक्षीयमुख्यश्रावकत्रयस्य सङ्घपत्तिपदसंसूचकं श्रीतिलकं विधाय मन्त्रिसङ्घपुरुषवीरासुश्रावकेण सङ्घपतिपदस्थापना-

चार्यबिरुदोपार्जना सहचरीचक्रे। तथा सकलजनमनोरञ्जकस्य निर्भरश्रीदेवगुरुश्रीगच्छभक्तिकान्तानितान्तैकान्तवशीकृतमनोभावस्य श्रीखरतरसङ्घसुवर्णसुवर्णप्रभावप्रकटीभावपरिज्ञानकषपट्टस्य ऐषमस्त्याधुनिकश्रीसङ्घविशेषयशःसौभाग्यस्योत्तेजकस्य श्रीशत्रुञ्जयाचलचूलाचूडायमानश्रीमानतुङ्गविहारभूहारायमाणश्रीयुगादिजिनसंस्थापनसञ्चितसुकृतसम्भारस्थिरीभूतयशःशरीरसाधुतेजःपालसुश्रावकाङ्गजन्मनः प्रतिप्रभातप्रभूतसन्मानदानपूर्वभोजनादिप्रकारप्रीणितवनीपककलापकलापिमण्डलाभिनन्द्यमानसुवर्णवादाम्बुदस्य सा० कडुकसुश्रावकमधुरस्य सर्वश्रीसङ्घस्य मध्ये सर्वकार्येषु प्राधान्यमजनिष्ट। एवमभूत् सकलोऽपि रङ्गः प्रकृष्टः, बत श्रीखरतरश्रीसङ्घः सर्वत्रोत्कृष्टः। ततः प्रत्यूषे सामस्त्येन प्रस्थितो म्यानद्रापदेशस्योपकारं बहुदिनानि निर्मायात्र मिलितोऽनुपदीनोऽस्माकमुद्यतविहारी पं० हर्षचन्द्रगणिः।

§३१. अथानन्तरं च प्रचलदुच्चैस्तरशिखरचारुदेवालयचतुष्टयोपरिवर्त्तिनीभिर्वैजयन्तीभिः शब्दायमानकिङ्किणीकोलाहलच्छलेन स्वसखीप्रायतारकदिव्यविमानशृङ्गसङ्गतवैजयन्तीनां वर्त्तमानस्वरूपाणां वाचिकानीव पुनः पुनः कथयन्तीभिर्नभश्चरैः सातिशयशोभः, चलच्चक्रचीत्कारमिषेण–'धन्योऽसौ यत्प्रसादेनास्माकमचेतनानामपि श्रीतीर्थयात्रा जघटे'–इत्येवं परस्परस्पर्द्धयेव तद्वर्णनचर्चां कुर्वाणैः शकटसञ्चयैः संकुलः, विस्तारितसच्छायमन्दिरोदरैर्बहुलशय्यापालैर्विपुलः, अनवस्थितजनाशाभिरिव दूरंधावमानाभिर्वाहिनीभिरभिलषणीयः, चिरकालचित्तसञ्चितश्रीतीर्थयात्रामनोरथैरिव सवपुलैर्नृत्यच्चतुरतुरङ्गमैः प्रथमं गन्तुं पुरः प्रसर्पद्भिः प्रोत्साह्यमानः, सशिरस्त्राणैर्वर्म्मितवपुर्भिः क्षत्रियसुभटैर्विघटितपरबलशङ्कः, प्रतिमुहूर्त्तवाद्यमानभेरीढोल्लोल्बणस्वरसुरनारिकादिवाद्यनिनादोत्पादितपर्यन्तग्रामाकस्मिकातङ्कितायातपताकिन्यातङ्कः, प्रभूतसर्वाभिसारसञ्चरिष्णुविकरालकरवालशेल्लतरवारिप्रमुखहेतिविततिविस्फुरत्तेजःपुञ्जतरलिततनुलतिकपादातिकव्रजैः पुरोऽनुगम्यमानः, प्रतिग्रामकुतुकावलोकनागतजनताप्रथमनेत्रविप्रतारणचतुरविकटप्रकटोन्नतावयवसमवयैः श्रीसङ्घसौभाग्यासहिष्णुदुर्मनायितागतदुर्जनमनोरथस्खलनमूर्त्तिमदपायैः निजदर्शनस्पर्शनपरिमलघर्घरस्वरादिभिः श्रीसङ्घस्य निर्धारितपरकृतचक्षुर्दोषादिकोपप्लवोपायैः प्रतिदिनसमग्रश्रीसङ्घसामग्रीभारवहनाध्यवसायैः क्रमेलकनिकायैर्विस्मयं विदधानः, प्रतापाकृष्टैरिव सौभाग्यवञ्चितैरिव प्रतिप्रयाणं नगरग्रामग्रामणीभिरुपनीयमानप्रधानतुरगादिकौशलिकेन स्वोत्तमनायकेन प्रकर्षप्राप्तप्रतिष्ठां वहमानः, कविवाणीभिरिव मधुररसवर्षिणीभिः सुरभिसैरिभीभिरभिसार्यमाणः, प्रष्ठौहां समूहैर्विस्तार्यमाणायामः, प्रतिसंनिवेशं प्रतिवासरं श्रीदेवालये सविस्तरताष्टाह्निकापूजाभिषेकगीतनाट्याहर्निशहल्लीसकादिमहामहिमाविलासैर्विशेषाभिरम्यभावं बेभ्रीयमाणः, सत्कीर्त्तिमण्डलैरिव गुणविधीयमानविस्तारैः विशालवंशाधारैः बहुप्रकारैः शारदाभ्रशुभ्रदेहद्युतिवारैः केवलं परिमितमेदिनीप्राप्ताच्छादनप्रचारैः प्रधानपटकुटीपटमण्डपपटभित्तिप्रतिसीराप्रमुखमार्गोपयोगिहर्म्यनिकरैर्द्विधापि सच्छायः; विशेषतोऽभिमुखागतेन सौराष्ट्रमण्डलतः अन्तरा भडियाउद्रस्थानमिलितेन सुराष्ट्रामण्डलाधीशमनःप्रसादपुण्डरीकसरोवरेण परोपकारादिबहुप्रकारगुणव्रजावर्जितनिखिलप्रजेन स्वकीयस्वापतेयव्ययकरणसमुद्धारितश्रीअजागृहपुरश्रीपार्श्वजिनप्रासादसत्कमण्डपदेवकुलिकादिबहुविधस्थानेन

सरलताधिष्ठितगात्रेण उदारतापूरितमनःपात्रेण सन्तापोच्छेदनिमित्तसंसेव्यमाननिरन्तररससामोदशिशिरश्रीदेवगुरुभक्तिचारुचन्दनेन मन्त्रीश्वरमूंजालदेवनन्दनेन सं० वीराग्रजेन तत्कालशुभंयुतयाऽक्षततृतीयादिने मुख्यसङ्घपतिप्राग्भाराविर्भावकास्सत्कृतश्रीवासक्षेपप्ररोपिताधिकप्राभवेण सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्णसुश्रावकेण सम्पूर्णां सनायकतां दधमानः श्रीसङ्घः सुखंसुखेन प्रयत्नेन पथि वहन् श्रेणीभूतप्रवररथसमाजव्याजविरचितजङ्गमसेतुबन्धबलेन समुत्तीर्य दुर्गमदुस्तरमहारणार्णवम्, श्वस्तनेऽहनि घोघावेलाकूलस्थाने महत्तरप्रवेशकमहोच्छ(त्स)वपुरस्सरं श्रीनवखण्डपार्श्वजिनाधिराजं प्राणंनम्यत ।

[श्रीशत्रुञ्जयगिरिपरिसरकृतसङ्घशिबिरनिवेशवर्णनम् ।]

§ ३२. एवंविधेषु हर्षकल्लोलेषु जायमानेषु, विशेषतस्तत्र गोक्षीरपानान्तःशर्कराशिलाकागमोपमः, रसारूढव्याख्यानान्तःप्रस्तुतार्थपोषिमधुरसुभाषितोल्लापसमानः, आह्लादभन्दजनकः, श्रीगच्छकार्यप्राग्भारनिर्वाहणविहितास्मत्साहायकानां समग्रविद्यानदीनदीवल्लभप्रायाणां श्रीविनयप्रभमहोपाध्यायानां सङ्गमो घनतरदिनेष्वभवत् ।

§ ३३. तदनु च प्रस्थाय ततश्चारुदारुकरिदन्तरचनाविशेषशंसनीयसुखासनचामीकरच्छुरितदण्डचामरावलीविशालमायूरातपत्रादिनानाचिह्नैः सम्भावितमहाराजसैन्यविभ्रमः श्रीसङ्घ उपश्रीविमलाचलपरिसरं शिबिरमकरोत् । जातश्च प्रभातसमये चारिमास्पदं तत्कालमहीवलयान्तराविर्भूत आनन्दकन्द इव, संसारसागरपरिभ्रमणखिन्नप्राणिगणविश्रामान्तरीपावतार इव, चातुर्गतिकदुःखपारावारपरपारप्रापणसेतुबन्ध इव, दुर्गमभीष्मभवारण्यविहारिरागद्वेषकषायहृषीकमहादस्युपेटकवित्रासितानां जन्तुजातानां शरण्यदुर्ग इव, शिखरावसानसमासीनपीनसुधापङ्कशुक्लिततुङ्गविहारवारनिभेन निःसीमात्मीयमहिमाधरीकृताखिलवसुन्धराधरजयार्जिते धवलयशःपुञ्जमिव नित्यं मूर्त्तिमन्तं निदेधीयमानः, दूराद्वेक्ष्यमाणश्वेतप्रान्तवर्त्तिसार्वमन्दिरनिकुरुम्बेण समुदयमानतुषारमयूखमण्डलेनोदयभूधर इव दृश्यमानः, उज्वलकेवलिमहालयच्छलेन भोगीन्द्र इव विकासिकुसुमशेखरं शिरसि संयमितं वहमानः, किं वा योगीन्द्र इव बहुसमयाभ्यस्तं प्रकटीभूतं मूर्त्तिधारिणं शुक्लध्यानपिण्डमिव ग्रसमानः, किं वा सङ्ख्यातीतस्वकीयवित्तव्ययीकरणेन विक्रीषूणां महीयोव्यवहारिपुरुषाणां मुक्तिक्रयाणकं तद्वर्णिकामिव प्रांश्वकृतशृङ्गकरेण प्रदर्शयन्, किं वा श्रीसङ्घसमागमसमुत्थं हर्षप्रकर्षं बहिः किरन्, किं वा स्वं प्रति लोकत्रयीलोकविहितेन सादरपूजासन्मानेनात्मानं बहुमन्यमान इवापरपर्वतानामवहीलनाय स्फुटाट्टहासमिवोद्गमन्, ईषदुन्मिषदभ्रदर्भाङ्कुरप्रकरदम्भेन स्वसमीपवर्त्तिनं श्रीसुविधिसङ्गमवलोक्य प्रीणितान्तर इव रोमाञ्चसञ्चयं विष्वकदु(?)द्वहन्; किं बहुना–देवदानवमानवमनोऽसम्भाव्यप्रभावविभवः; यतः–

अस्य प्रभावजलधेरपरं पराप्यते, पारं कथं कथमहो ! नु नृदेवमात्रैः ।
ख्यातिं गतस्त्रिभुवनेऽत्र दृषन्मयोऽपि यः, सर्वाङ्गिलोचनसुखाय सुधारसायते ॥ ५८ ॥
मन्येऽहमस्य महिमा परमाणुदृश्वनामप्यास्पदं नहि करोति धियं ह्यचिन्त्यभूः ।
सन्तारणाय जगतामचलाश्मकोऽपि यः, पोतायते निपततां भवभीष्मसागरे ॥ ५९ ॥

सर्वत्र सन्ति बहुधा जिनराजमूर्त्तयो, लोकाः परं यदिह सर्वदिगन्तवासिनः ।
हर्षात् समेत्य रचयन्ति तथा प्रभावनां, शङ्के तदस्य सकलं महिमाविजृम्भितम् ॥ ६० ॥

एवंविधः समग्राग्र्यजाग्रदद्भुतातिशयवसतिः श्रीशत्रुञ्जयोर्वीधरः सकललोकलोचनाम्भोजगोचरः स्फारीबभूव चास्य मनसि तत्तादृशाह्लादोत्करः । विशेषेण स्निग्धलपनेप्सितासरसनालिकेरक्रमुकादिभिः पूजाविधानेन प्रथमोत्साहविधीयमानामितवित्तदानेन च परमहृदयङ्गमभावोल्लासनेन च अकृतसुकृतराशीनां दुर्लभं श्रीसिद्धाचलदर्शनं फलिनं चकार श्रीसङ्घः ।

§ ३४. तदनु च क्रमेण श्रीपादलिप्ते पुरे त्रिकरणविशुद्धिकारिणं त्रिभुवनसाम्राज्यवितारिणं श्रीमूलविहारस्थश्रीपार्श्वजिन-ललतासरःकण्ठस्थायिप्रासादप्रसाधिश्रीवर्द्धमानप्रभुपर्वतपद्यामुखविभूषिश्रीनेमीश्वरार्हत्त्रयसङ्गमं वन्दननमस्करणस्नपनपूजनमहाध्वजारोपनिरन्तरजनभोजनादिविधानैः फलदायिनं यशोदायिनं निरमासीत् ।

[सङ्घकृतशत्रुञ्जयपर्वताधिरोहणवर्णनम् ।]

§ ३५. ततश्च श्रीसङ्घः प्रमथ्य प्रथीयःकलिकालबलं मृदित्वा दुर्दमवाहीकान्तरासहनानां च बलम्, प्रबलप्रमदाकुलितहृदयः प्रगुणीकृतमहोद्यमहयः सज्जितप्रायोगिसदुपकरणनिचयः श्रेणीकृतबालवृद्धतरुणजनचयः करगृहीतसधरभारक्षमसरलसुकुमालयष्टिकावलीविरलीभूतविषममार्गस्खलनभयः प्रतिपदप्रवर्द्धमानजिनदर्शनस्पृहालयः क्षणक्षणनिरावरणीभवज्जिनदर्शनान्तरायक्षयविधायिपुण्यसमुदयः प्रेङ्खत्पदन्यासैरचिरेणैव प्रभुगुणैराकृष्यमाण इव श्रीभूधरमूर्द्धानमध्यारुक्षत् ।

§ ३६. तदनु समतिक्रान्तपुरःस्थशृङ्गोऽकस्मादुन्नमितग्रीवसमुदाक्रान्तबहुलशैवलपटलः सारसमत्स्य इव शारदपूर्णमासीनिशीथशोभिनं तारतारकनिकरपरिवारितं सुधामयूखमण्डलम्, दूरीकृतावरणपरिच्छदनवोत्पन्नगीर्वाण इव नानाप्रकारसारविहारशालागवाक्षादिचक्षुष्यस्थानादिहृदयङ्गमं दिव्यविमानम्, विघटितघातिकर्मचतुष्टयमुनीन्द्र इव सानन्तालोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकम्, अनेकदेवगृहिकामठमन्दिरगवाक्षचतुष्किकादिव्यदेवकुलावलीचारुप्राकारतोरणादिसुन्दरम्, दर्शिताद्वैतवादं श्रीमूलप्रासादं समीक्ष्य; किमेतत् किमेतदिति हर्षाश्चर्यकुतूहलकलितमनाः प्रथमं प्रथमकारणं सकलतीर्थानां सकलजगज्जननीं भगवतीं मरुदेवीं धुरीणकेवलज्ञानसिद्धिस्थाननिमित्तास्थानावस्थितां समुपास्य;ततश्चाग्रतोऽभ्रंलिहविहारोदरविराजिनम्, समस्तविद्यामन्त्रौषधरसरसायनसाधनविधिसाधीयःप्रतापिसौम्यलोचनविलासम्, महाप्रभाविततया प्रतिप्रभातं प्रभाभर्त्रापि प्रथमं करजालाश्लेषमिषेण प्रत्यग्रप्रसूनमालाभिरिवाभ्यर्च्यमानम्, प्रतिशुक्लपक्षं राकाबलक्षत्विषापि सौवचन्द्रिकाचयादिमपरिचयव्याजेन सुधारसधाराभिरिवाभिषिच्यमानम्, कलौ कल्याणाकरम्, अद्भुताकृतिधरं श्रीशान्तिजिनवरं सादरं समाराध्य च; क्रमेण नानाविधमनोहरप्रासादसौन्दर्यामृतरसं नेत्रपुटकैरास्वादयन् कुकर्म्मभिः सह नृत्यमानचञ्चच्चरणैः पद्यापथकर्करोत्करं परिचूर्णयन् क्षणात्परमपदपुरप्रतोलीमिव प्राकारद्वारमविक्षत् । ततोऽपि वामदक्षिणपृष्ठपुरोभागविभ्राजिष्णुश्रीखरतरविहार-श्रीनन्दीश्वरेन्द्रमण्डपोज्जयन्तावतारादिश्रीस्वर्गारोहण-त्रिलक्षतोरणादिस्थानरामणीयक-

निरीक्षणेन निजनयनानि वचनागोचराद्भुतरसामृतदीर्घिकासु चेक्रीडयमानः पुलकाङ्कुरपक्ष्मलवपुर्महानन्दमन्दिरारोहणारोहणपद्धतिष्विव सोपानपङ्क्तिषु स्पर्द्धया चटन् विहारमण्डपाङ्गणभूमिषु जगाम ।

[शत्रुञ्जयतीर्थाधिष्ठितश्रीयुगादिजिनदर्शनजाताह्लादादिवर्णनम् ।]

§ ३७. दृष्टश्च सकलेन्द्रियाप्यायकः सकलत्रिलोकीमूलनायकः सकलश्रेयःश्रेणिप्रायकः सकलशर्ममालाप्रदायकः सकलापायनिकायत्रायकः सकलकलाधायकः वर्णनीयरूपः अवर्णनीयस्वरूपः सुखेन प्रणेमुषां प्राणिनां रागद्वेषद्विषन्तौ निग्रहीतुम्, इहलोकपरलोककामितार्थौ समर्थयितुम्, लोकद्वयभये निराकर्त्तुम्, बहिरन्तः पवित्रयितुम्, स्वर्गापवर्गमार्गौ प्रदर्शयितुम्, द्रव्यभावपूजे अङ्गीकर्त्तुम्, गृहीतरुचिरोद्धरद्विरूपो जगदादिमभूपो मारुदेवः श्रीयुगादिदेवः । ततश्च–

वरप्रणामैः पञ्चाङ्गैरष्टाङ्गैरपि कैश्चन । दण्डप्रणतिभिः कैश्चित् स्पृशद्भिर्मेदिनीतलम् ॥ ६१ ॥
जैनदर्शनपाथोधिहर्षोल्लोलैर्विलोलितैः । सर्वतो लुठनैः कैश्चिद् बालकैरिव भूतले ॥ ६२ ॥
कोशीभूताम्बुजाकारैः करैः शिरसि रोपितैः । नमो नमो जिनायेति जल्पद्भिर्भासुरैः स्वरैः ॥ ६३ ॥
नामं नामं निजं शीर्षं भूयो भूयः प्रहर्षुलैः । कैश्चिदेवं प्रणम्योच्चैर्भावभङ्गीतरङ्गितैः ॥ ६४ ॥
सौरभाभोगसंयोगभरिताशेषदिङ्मुखैः । चारुवल्लीद्रुमोद्भूतैः कौसुमैर्मालिकाचयैः ॥ ६५ ॥
प्रत्यग्रनागवल्लीनां दलैः पूगीफलैः कलैः । सारगन्धरसाकारैर्नालिकेरैर्मनोहरैः ॥ ६६ ॥
सञ्जातपुलकाङ्कूरैर्भक्तिपूरैर्भृतान्तरैः । बीजपूरैर्गुणादूरैः परैश्च विपुलैः फलैः ॥ ६७ ॥
नवाङ्गयुक्तैरप्येकैरद्वैतोदारतान्वितैः । नवाङ्गमुक्तैः सुव्यक्तैरन्यैः सौवर्णटङ्ककैः ॥ ६८ ॥
प्रसूनैः काञ्चनैः काम्यैर्लोकलोचनषट्पदैः । मुक्तातारैर्महाहारैर्वृत्ताकारैर्विशेषकैः ॥ ६९ ॥
अहो ! नयनसौम्यत्वमहो ! आस्यप्रसन्नता । अहो ! भालविशालत्वमहो ! नीरागता तनोः ॥ ७० ॥
अहो प्रभावप्राकट्यं विश्वैश्वर्यमहो ! अहो ! । अहो ! जगति पूज्यत्वमहो ! जगति गौरवम् ॥ ७१ ॥
अहो ! दयालुता काऽपि काऽप्यनिद्रालुता रुचि । शरण्यजनरक्षार्थं काऽप्यहो ! स्पृहयालुता ॥ ७२ ॥
इत्थं यथास्थितस्थूलगुणाविर्भावनापरैः । अर्थच्छन्दोऽक्षरन्यासविद्वज्जनमनोहरैः ॥ ७३ ॥
शुश्रूषुजनताश्रोत्रपीयूषरसवर्षिभिः । मेघगम्भीरनादेन कविभिश्च स्तवैर्नवैः ॥ ७४ ॥
संसारवासनापूरहृत्पूरापहृतात्मनाम् । सशर्करपयःप्रायदृग्विलाससमुखप्रभः ॥ ७५ ॥
ऐहिकामुष्मिकानेककामितार्थसुरद्रुमः । श्रीसङ्घेनैवमाह्लादाद् भेटितो भुवनाधिपः ॥ ७६ ॥

[सङ्घपतिमन्त्रिपूर्णमन्त्रिवीराकृततीर्थमहिमा-मालारोपणमहोत्सवादिवर्णनम् ।]

§ ३८. अनन्तरं च सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्ण-वीराभ्यां सकलश्रीसङ्घसहिताभ्यां निरन्तरं सुगन्धिजलस्नपनचारुकाचघनसारमृगमदमिश्रितचन्दनद्रवविलेपनबहुलपरिमलाकृष्टासंनिकृष्टदिगन्तरसञ्चारिचञ्चरीकगणगीयमानगुणगणविकचचम्पककेतकविचकिलबकुलमालतीकुन्दमचकुन्दकल्हारह्रीवेरकशतपत्रिकासहस्रपत्रिकाविकस्वरेन्दीवरप्रमुखपुष्पप्रकरकृतमहापूजननिजकीर्त्तिनर्त्तकीदिवारोहणार्थप्रलम्बितगुणायमानमहामूल्यमहाध्वजप्रदानप्रासादद्वारशृङ्गारतोरणायमानजगतीजनवितानमनोनयनविनोदनविच्छित्तिविज्ञानमनोज्ञहृदयहारि-

पापोपतापनिराकारिपुण्यवद्गुणश्रेणिप्रशंसाविस्तारिभरितश्रीचतुर्विंशतिजिनमूर्त्तिधारिप्रधानपट्टसूत्रमयसुरचितप्रधानपरिधापनिकावितरणश्रीजिनमज्जनावसरपरोपकरणरूपसुरूपरसितकलशभृङ्गारवारविश्राणननिःशेषसुषमास्पदालेख्यश्रीविशेषितरङ्गमण्डपसौभाग्योदयपट्टांशुकमयरुचिरचन्द्रोदयप्रदेशनादिघनतरप्रकारैर्विशेषतः श्रीमहातीर्थमहिमा स्फारीचक्रे ।

§३९. तदनु विदधिरे मनोहृत्यभोजितामितमानवज्ञातिप्रकारा यथेच्छदीयमानाहारा अवारितशत्रुवाराः । प्रददिरे चतुर्दिग्वलयमेराविलासिधवलयशःप्रसरप्राप्तिप्रथमनिदानानि, त्रिलोकीतलनिलीनलोकमनोवशीकरणसातिशयरक्षाविधानानि, समूर्द्धकम्पं चमत्कारितस्थूललक्षलक्षहृदयानि, कम्पितमितम्पचानि, द्विविधरजतशृङ्गारसुकुमारचारुचीवरसंभारप्रभृतिप्रभूतदानानि मार्गणगणेभ्यः। प्रववृते श्रीमूलप्रासादादाप्राकारप्रतोलीं समन्तादेहिरेयाहिराप्रवृत्तैर्दिव्यशृङ्गारधारिभिः समृद्धलोकैस्त्रिदिवायिताधिकभूधराधित्यिकः श्रीइन्द्रमहोत्सवः। तथा पुनरपि श्रीमूलविहारे श्रीमूलनायकामृतमयप्रसन्नलोचनविलासविस्तारे सकलस्वपक्षपरपक्षहृदयाक्षेपकारी द्विजिह्वजिह्वास्तम्भकारी समस्ताधिष्ठायकमनःप्रीतिविस्तारी शब्दायमानमहावाद्यविताननादोत्पादितप्रतिनाददम्भेन जयवादप्रदानमुखरीभूतप्रासादमण्डपस्तम्भशिखरविवरदेवगृहिकादिस्थाननिकरः, विवर्णयिषुलब्धवर्णरसनाश्रमविधायी श्रीप्रतिष्ठामहोत्सवो ज्येष्ठवदितृतीयायां कारयांबभूवे ताभ्यां सङ्घपतिपुरुषाभ्याम् । प्रतेष्ठीयाश्चक्रिरे तत्रास्माभिरष्टषष्टिबिम्बानि, प्रभाते च प्रशंसापदं महासविस्तरः श्रीमालारोपणमहोत्सवश्च व्यधीयत । तथा –

भूयोभिः किमु भूरियोजनमिताः पञ्चाप्यमी मेरवो, यत्र स्तम्भतुलां धरन्ति स कथं भो मानतुङ्गो बुधाः ।
आ ज्ञातं समतीर्थधारकतया सौभाग्यलक्ष्म्या तया, तुङ्गोऽसौ भुवि पूजया तनुभृतां तेनास्तु सत्याभिधः ॥७७॥

प्रासादाः प्रतिपर्वतं प्रतिपुरं सन्ति प्रभूताः परं, सौभाग्यं भुवि मानतुङ्गभुवनस्यैवाद्भुतं मन्महे ।
यस्मात्स्थानकरामणीयकदिदृक्षार्थं विसृष्टं मनो-नेत्राभ्यां सहितं मुदा प्रथमतो दाधाव्यते तं प्रति ॥ ७८ ॥

§४०. एवंविधे निखिलतीर्थावतारे सर्वत्र प्रभविष्णुप्रभावभास्वरश्रीमत्खरतरगच्छमहामहिमसमुल्लासिपरमपूर्वपुरुषाधारे युगप्रधानश्रीजिनकुशलसूरिसुगुरुसुगुणयशोराजकुमारक्रीडाराजधानीप्रकारे श्रीमानतुङ्गाभिधानश्रीखरतरविहारे श्रीमूलप्रासादावतंसविशेषाः पूजादिमहिमविधयो विनिर्मिमिरे सङ्घपुरुषाभ्याम् । प्रसादिताः सपर्याप्रकारैः समाराधकभविकाबन्ध्यप्रसादाः श्रीमज्जिनरत्नसूरिपादाः । अनन्तरं सर्वश्रीविमलाचलालङ्कारजिनविहारेषु महाध्वजारोपादिपूजा चक्रे । तथाऽस्माभिरपि पुलकाङ्कुरकोरकिताङ्गवारैः सपरिवारैः प्रतिप्रसादं प्रतिबिम्बं प्रतिदिनं पञ्चशक्रस्तवदेववन्दननमस्कारस्तुतिस्तवनप्रणिधानविधानैस्तत्तादृशविशदपुण्योदयनिबन्धनश्रीसङ्घसहितसङ्घपतिविहितमहामहिमानुमोदनैश्च पवित्रपानीयस्नानैरिव निजात्मा विमलयांबभूवे ।

इत्थं दिनाष्टकं यावत् प्रमदोत्सुकैः सहर्षकोलाहलैः सुशृङ्गारोल्वणैर्यात्रागतलोकगणैः श्रीविमलाचलः श्रीतीर्थङ्करस्नपनावसरमिलितैः सुरासुरसमूहैः सुराचल इव शुशुभे ।

*

[शत्रुञ्जयतीर्थयात्रानन्तरं गिरिनारतीर्थं प्रति प्रतिष्ठासोः संघस्य प्रयाणवर्णनम् ।]

§४१. तदनन्तरं श्रीसङ्घः समुत्तीर्य श्रीशत्रुञ्जयात् तत्प्रेमविरहकातरः श्रीउज्जयन्ताचलं प्रति प्रतिष्ठासुः पितृगृहात् सुदुस्त्यजात् श्वशुरगृहं प्रति प्रस्थितस्य वधूजनस्य भावं मानसे दधानः प्रचचाल। श्रीविनयप्रभमहोपाध्यायाश्च प्रत्यासन्नकाले श्रीतीर्थनमस्करणात् तदा शरीरस्यापि तादृक्सबलताया अभावाच्च पुनरपि प्रति श्रीस्तम्भतीर्थं प्राचाल्यन्त।

§४२. प्रस्थितश्च श्रीसङ्घः प्रतिप्रयाणं नानास्थानमिलल्लोकव्राजैरन्तरा पुरग्रामस्वाम्युपनीयमानतुरगादिवाहनसमाजैश्च प्रतिदिनं वलक्षपक्ष इव नवनवकल्लोलैरिव समुद्र इव वर्द्धमानः, प्रतिपदं श्रीखरतरगच्छमहिमानं प्रकर्षपदवीं प्रापयन्, वेगेन सरलसरससारसहकारादिकारस्करप्रमदवनविनीलितपरिसरे श्रीअजागृहपुरे प्रभूय प्रोत्तुङ्गतोरणमण्डपवातायनादिपदरमणीये जनमोहनशोभासुन्दरे श्रीशिखरबद्धजिनमन्दिरे जीर्णमूर्त्तिं तरुणीयमानमहिमस्फूर्त्तिं सेवकजनसाहाय्यकरं श्रीपार्श्वजिनवरं दिनत्रयं सादरं समुपास्य; तदनु संमुखायातऊर्णापुराधिपानुमतः सविस्तरप्रवेशकोत्सवपूर्वं तन्नगरमतिक्रम्य; तदनु कोटीनारपुरे श्रीगिरिनारमहातीर्थाधिष्ठायिन्यास्तत्पथाध्वनीनश्रीसङ्घरक्षाविधायिन्याः श्रीनेमिनाथभक्तभव्याम्बिकायाः श्रीअम्बिकाया आराधनं विधाय; श्रीगौरवद्वारेण तत्साहायकं च समधिगत्य; ततोऽपि च निरन्तरं सागरोत्तरोत्तरतरङ्गवृन्दविनोद्यमानप्राकारे श्रीदेवपत्तनपुरे पुरसारे जाज्वल्यमानमणिगणमण्डितमस्तकानामपि परमैश्वर्यराजिनामपि गर्वपर्वतप्रान्तविश्रान्तमनसकेशरिणामपि तृणायितेतरनराणामपि सङ्घस्याभूतपूर्वं श्रीसोमनाथविहारद्वाराग्रतो गणनमार्गातिक्रान्तक्षत्रियभूदेवजटाधरधोरणीवर्ण्यमानयशःप्रभावम्, तया रीत्या, तया स्फीत्या, तया विच्छित्त्या, तया विभूत्या, तया स्फूर्त्त्या, तया कीर्त्त्या, मध्येपुरम् अन्तरा राजपथं श्रीप्रवेशकमहामहं समनुबोभूय्य, श्रीप्रासादेषु भीष्मभवव्यालमहादुःखगरलमूर्छनाकुलभविकुलसमाश्वासनाय श्रीचन्द्रकान्तप्रक्षालजलसदृशदृष्टिविलासान् श्रीचन्द्रप्रभस्वामिप्रमुखजिनवरान् प्रणम्य सहर्षम्; तदनु श्रीमाङ्गल्यपुरे संमुखागततदधिपानुज्ञातप्रवेशकमहःपूर्वं विप्रतिपित्सुमिथ्यादृष्टिजनश्रीजिनशासनाचिन्त्यशक्तिव्यक्तनाय प्रकटितमूर्त्तिमत्प्रभावपल्लवं श्रीनवपल्लवपार्श्वनाथं नमस्कृत्य; वयं च श्रीविधिसमुदायं श्रीसमुदायसहितसं॰मन्त्रिपूर्णेन कारितायां चारुदारुसुधारसादिप्रसाधितायां श्रीविधिमार्गपौषधशालायां दिनत्रयावस्थानेन समनुगृह्य च; ततः प्रस्थाय प्रत्यूषे–

आ ! किं सारमसाररत्नघटितः किं वा सदाब्दावृतः, किं वा क्रन्दितसालिभोजतनया नेत्राञ्जनैः पङ्कितः।
किं दाह्यागरुभोगजन्मभिरहो ! श्यामायितोऽग्निध्वजै,-रित्थं संशयमावहन्तमचलं रैवन्तमालोकत ॥ ७९ ॥

[गिरिनारपर्वताधिरोहण - तदधिष्ठितश्रीनेमिजिनपूजा-महोत्सवादिवर्णना ।]

§४३. तदनु श्रीजीर्णदुर्गस्थानके सुधारसमिश्रितघनसार-चूर्णनिर्म्मितं नयनानन्ददायिनं श्रीपार्श्वप्रभुं सविस्तरमभ्यर्च्य, प्रायो देवानामपि दुर्लभसङ्गमस्य सुकृतप्राप्यदर्शनश्रीदिव्यतीर्थविभूषितस्य विनीलवनराजिविराजितभूवलयस्य परोलक्षाभिश्चक्षुर्भिरिव विकस्वरकारस्करप्रसूनप्रकरैः श्रीसङ्घमार्गं सरलमूर्त्तेः पश्यतः, वृक्षाग्रशाखासक्तसरससुरभिपुष्प-

मकरन्दपिपासामिलितरोलम्बकोलाहलच्छलेन गम्भीरस्वरेण श्रीसङ्घं समाकारयतः, मन्दानिलान्दोलितलताप्रतानचलत्पल्लवव्याजेन यात्रिकजनानामागमनसञ्ज्ञां प्रददतः, जाज्वल्यमानमणिधातुजातोद्गच्छन्मयूखजालमिषेण समागततीर्थपथपथिकसन्माननायाभ्युत्थानमिव विरचयतः श्रीरैवताचलस्य शृङ्गं रङ्गेण समारुरोह । अद्राक्षीच तत्र तत्रभवतामादिमं श्रीयादवकुलजलनिधिसुधाकरं करकमललावण्यजितविद्रुमं द्रुममिव च्छायाभूषितभूवलयं सदा पूर्वाशाभिमुखमपि पश्चिमाशाभिमुखम्, किं बहुना – दृष्टमात्रमपि सकलकल्याणोदयप्रदायिनम् । यतः–

अहर्पतिध्वान्तघटाभिरस्तं, नीतोऽप्यसौ यज्झटिति प्रभाते ।
महोदयं संलभते तदन्ते, मन्ये प्रभोरास्यदृगत्र हेतुः ॥ ८० ॥

तथा–

दोषाकरोऽसौ क्षतकोऽपि लब्ध्वा, महोदयं यत्प्रतिपक्षसंस्थः ।
परां समृद्धिं भजतेऽनिशं स, पूर्वेक्षितस्वामिमुखप्रभावः ॥ ८१ ॥

एवंविधसद्यःफलेग्रहिमहिमाकरं श्रीनेमिजिनवरम् । तदनु तत्रापि महत्या भावनया महत्या द्रव्यपरम्परया समाराधितः श्रीसङ्घलोकेन प्रभुः । विहितास्तत्रापि सावशेषाः सर्वेऽपि विधयोऽहमहमिकया श्रीशत्रुञ्जयवत् सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्ण-मन्त्रिवीरासुश्रावकाभ्याम् । प्रवर्त्तिताः श्रीशत्रुञ्जयावतारश्रीयुगादिजिनश्रीकल्याणत्रयाम्बिकाभुवनावलोकनाशृङ्ग-शम्बुप्रद्युम्नशृङ्गसहस्राम्रवणादिस्थानेषु महापूजाध्वजादिमहिमाः । तथाऽस्माभिरपि सपरिच्छदैः समुच्छलद्भावनालहरीसमुल्लोलितहृदयैरवन्दि प्रण्यधीयत संतुष्टुवे च श्रीनेमीश्वरः । समाराध्यते स्मापरोऽपि सर्वप्रासादेषु तीर्थकरनिकरः । एवं प्रारोपि श्रीसङ्घपुरुषाभ्यां द्वयोरपि महातीर्थयोर्महारङ्गः । समजनिष्ट दुष्टासहनमनोरथभङ्गः । लेभे सकलेऽपि भूमिवलये यशोनादः । प्राकाशि लोकत्रयान्तः श्रीखरतरश्रीविधिसङ्घजयवादः । प्रोत्सर्प्पिताः प्रतिपदं काम्यकीर्त्तिध्वजाः । प्रीणिताः सर्वेऽपि मन्त्रिमूञ्जा-मन्त्रिमण्डलिकप्रभृतिपूर्वजव्रजाः । किं भूयसा पञ्चदिनानि महतीं प्रभावनां विधाय श्रीमन्नेमीश्वरश्यामलधवलतनुकटाक्षप्रभापूरकलिन्दतनया-जाह्नवीसङ्गमस्नानेन बाह्यं शरीरम्, निर्मलश्रीस्वामिभक्तिसुधाप्रवाहपानेन चान्तरं वपुः पवित्रयित्वा, श्रीसङ्घलोकः श्रीउज्जयन्ततीर्थात् समुदतारीत् ।

[गिरिनारतीर्थात् स्वस्थानं प्रति प्रयियासोः-सङ्घस्य प्रस्थानवर्णनम् ।]

§४४. ततः श्रीतीर्थाद् वियोगाक्षमः श्रीसङ्घो गृहं प्रति प्रचिचलयिषुः स्वर्गलोकाद् भूलोकं प्रति प्रयियासोर्गीर्वाणस्याभिप्रायं पुष्यन्नपि नियतिबलात् प्रास्थात् । प्रभूतः श्रीमाङ्गल्यपुरे । स्थापयाम्बभूविरे तत्र तत्रत्यश्रीसमुदायाग्रहेणास्माभिः श्रीललितकीर्त्त्युपाध्यायाः पं० देवकीर्त्तिगणि-साधुतिलकमुनियुताः ।

§४५. ततः प्रस्थाय श्रीदेवपत्तनपरिसरेऽवस्थानमचकल्पत् । तत्र च बभूव भूयसा विस्तरेण श्रीदीक्षामहोत्सवः । तस्मिन् अविनश्वरश्रीदेवगुरुभक्तिभाण्डागारस्य, प्राय आधुनिकश्रावक-

श्रेण्यां स्थिरश्रीगच्छगुरुपुण्यभावसारस्य, समाष्टकं समारभ्य श्रीगुरुपार्श्वप्राप्तमहातीव्रब्रह्मव्रतकौक्षेयकविक्षिप्तमन्मथभटविकारस्य, पूर्वमेव श्रीगच्छेन सह विहितसखिकारस्य, वर्षचतुष्टयमभिव्याप्याभ्युपजिगमिषितदीक्षाप्राग्भारस्य, तदर्थग्रथितवर्षद्वयश्रीगुरुचरणपरिचर्याव्यापारस्य, अस्माभिरपि सकलकुटुम्बानुज्ञामुत्तरयद्भिर्बाढं विहितनिर्वारस्य, पुनरपि कियन्त्यपि दिनानि दुर्मनायितेन निजकर्म्मसुस्पृष्टकर्म्मदृष्टान्तेन कृतगृहप्रचारस्य, साम्प्रतं भूयोऽपि श्रुत्वा श्रीतीर्थयात्रायां सर्वसङ्गमं संबोध्य स्वं कुटुम्बं लात्वा चानुज्ञां कृतश्रीसङ्घपथानुसारस्य, श्रीसङ्घेन सह विशेषेणान्तरा लाभायितश्रीतीर्थयात्रासमर्जितपुण्यपुण्यसंभारस्य, निरुद्धकलत्रपुत्रवित्तबान्धवादिमूर्च्छोद्गारस्य, दर्शितभावसूरपुरुषाचारस्य, समर्थितसर्वपरीक्षाप्रकारस्य, मं०सीहाकुलालङ्कारस्य अभङ्गुरसंवेगाधारस्य तितीर्षितसंसारार्णवपारस्य मन्त्रीश्वरदान्दूपुत्रमन्त्रिखेतसिंहसुश्रावकस्य, श्रीमाल्हूशाख्यचाम्पासुश्रावकसुतस्य पद्मसिंहबालकस्य चास्माभिः श्रीआर्हती सर्वविरतिर्व्यतारि। तयोर्नाम्नी 'क्षेममूर्त्तिमुनि-पुण्यमूर्त्तिमुनि' इति। तथा–

शङ्के श्रीविमलाचले गिरिवरे श्रीउज्जयन्ते तथा, जातो निष्क्रमणोत्सवो न यदिहाभूत् तत्र हेतुर्ह्यसौ।
सौराष्ट्रे विषये सदुत्तमतमा तीर्थत्रयी गीयते, तस्याः श्रीऋषभेश-नेमिशशिनामत्रैव यत्सङ्गमः ॥ ८२ ॥

§४५. तदनु पदे पदे श्रीसङ्घपूजनसाधर्म्मिकवात्सल्यरात्रिजागरादिमहोत्सवरङ्गैः सविशेषनृत्यगीतवाद्यविनोदैश्च दक्षिणपूर्वायै मुग्धायायिव कियत्यै प्रजायै स्थितौ, नूनं तथा संरम्भाटोपौ यथा श्रीतीर्थमन्वथ प्रचलत्येष इति भ्रममावहन् केषाञ्चित् परस्परोभयभ्रान्तिवलनप्रचलनपाक्षिकीं च समुत्पादयन्, नवलक्षद्वीपेनावासजलखातिकां समुत्तीर्य श्रीअद्भुतादिजिनादिजिनान् नमस्कृत्य, क्रमेणातिक्रम्य श्रीजिनरत्नसूरि-श्रीजिनकुशलसूरि-श्रीतरुणप्रभसूरिसुगुरुपादप्रसादसाहाय्येन जनमनश्चमत्कारिणा जङ्गलभूवलयमिव दुस्तरमपि स्वोचितविरचनायाभ्यर्णीभूतप्रभूतभीष्मकाष्ठिककटमपि, अनभिज्ञाध्यवसितासहनहसनावकाशमपि गृहाङ्गणवत् सुखेन दुर्गमं रणं श्रीशेरीषकपत्तने जगदेकजाग्रन्महिमानं श्रीलोडणपार्श्वजिनमनंसीत्। तत्र च सं० वीरेण महातीर्थवन्महामहिमां वर्णनीयतमविस्तारां कृत्वा पूर्वतीर्थविहितप्रभावनाविधीनामुपरि शातकौम्भश्रीकलशाधिरोपणं चेक्रीयाश्चक्रे।

[पुनरागतसंघस्य पत्तननगरप्रवेशवर्णनम्।]

§४६. तदनु श्रावणमासाद्यैकादश्यां श्रीसङ्घः सङ्घपतिवीरकारितनिष्क्रमणमहोत्सवाधिकतरमहिमश्रीप्रवेशकमहोत्सवपूर्वं श्रीनरसमुद्रपत्तनमध्यं प्रविवेश। तदस्य श्रीप्रवेशकोत्सवमहिमा निस्सीमा कियती लिख्यते ?। यतः–

ते केऽप्युत्सवमेलिलोकविहिता आनन्दकोलाहला,-स्ते केऽपि द्रविणव्ययाः प्रतिपदं सुस्थानके स्थानके।
ते केऽप्युन्नतिभावभावकतमा रीतिप्रकारा अहो !, ते केऽप्यन्वयसङ्घपत्तिसुगुरुश्रीसङ्घभाग्यस्तवाः ॥ ८३ ॥
प्रावर्त्तन्त नु यान् निमेषरहितैर्बाष्पाकुलैर्लोचनै,-र्धूर्तैश्चापि मुहुर्मुहुः स्वकरणत्राणैः किमु ध्यायिनः।
एते साधुजनास्तथा खलजनाश्चित्ते विभिन्नाः परं, स्मारं स्मारमिहान्तरायममितं प्रावर्द्धयन्त द्विधा ॥ ८४ ॥

किं भूयसा—

तावन्ति संघटितवन्ति नु पौरुषाणि, वृद्धिं भजन्ति लहरीकुलवत्क्षणेन ।
यैर्लौकितैर्नरसमुद्रपुरं तदानीं, सत्याहृतां गतमवैक्षि विलोचनैः स्वैः ॥ ८५ ॥

इत्थं सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्ण-मन्त्रिवीर-मन्त्रिसारङ्गैर्महान् प्रारोपि श्रीजिनशासनरङ्गः । कस्य [न] गोचरोऽस्य श्रीविधिसङ्घस्य महिमा ? । किं लिख्यते औदारिकशरीरैः ? । परम्—

ऐन्द्रं स्थाम विपोस्फुरीति करणे चेद् वाक्पतेः प्रातिभं, चेच्चेतोऽप्यधितिष्ठतीदमपि चेदायुर्द्रढीयो भवेत् ।
एतत् श्रीविधिसङ्घसम्भवमहः किञ्चित् तदा वर्ण्यते, जिह्वाग्रे च सरस्वती भगवती स्वैरं नरीनृत्यते ॥ ८६ ॥

इति रहस्यम् ।

[अथ विज्ञप्तिलेखप्रेषकश्रीजिनोदयसूरिकृतोपसंहारवर्णनम् ।]

§ ४७. तथा—पुरालिखितास्मद्धेतुतीर्थप्रणामलहनकप्रहितिं प्रति श्रीमतां सपरिवाराणां ससमुदायानां कृते श्रीमेदपाटदेशस्थनानाविधापूर्वश्रीतीर्थनमस्याकरणं धवलाक्षताः, श्रीशत्रुञ्जयमहातीर्थे श्रीयुगादिजिनादिजिननमस्कृतिर्नागवल्लीदलानि, श्रीउज्जयन्तादिमहातीर्थेषु श्रीनेमीश्वरप्रमुखजिनपदवन्दनं पूगीफलानि च प्रहितानि सन्ति साह्लादमङ्गीकार्याणि । तदेवंविधानि श्रीप्रभावनास्वरूपाण्यधिगम्य श्रीमदाचार्यैः सपरिवारैः स्वमानसे महाहर्षप्रकर्षो धारणीयः । एषा चतुर्मासी श्रीपत्तने क्षेमेण कृता । तत्रत्यानां सर्वसाधुश्रावकश्राविकाणां नामग्राहमस्मदीयानुवन्दना-धर्मलाभौ वाच्यौ । अत्रत्यः श्रीचतुर्विधोऽपि श्रीसङ्घः सादरं श्रीमदाराध्यानां पादौ द्वादशावर्त्तवन्दनया वन्दते । अस्मदुचितं ज्ञाप्यम् । विशेषाश्चिष्टिकातो ज्ञेयाः । श्रीपञ्चकल्याणिकैकादशीदिने ॥ 卐 ॥

*

श्रीमल्लोकहिताचार्यपादपद्मे गुणोल्बणे । भृङ्गायते सदा साधुर्मेरुनन्दननामकः ॥ १ ॥

श्रीजिनोदयसुसूरिभिरेष प्रैषि सूरिहृदयङ्गमलेखः ।
श्रीशलोकहितसूरिवराणां विश्वविश्रुतयशःप्रसराणाम् ॥ २ ॥

*

॥ श्रीलेखलेखराजशीर्षोपरि परिष्कारशेखरश्रीधरं काव्यम् ॥

सँव्वत् १४३१ वर्षे जिनपञ्चकपञ्चकल्याणकपवित्रैकादशीदिवसे श्रीपत्तनपुरवरस्थितेन श्रीखरतरगच्छाधिपतियुगप्रधानश्रीजिनोदयसूरिसुगुरुसार्वभौमराजादेशेन तच्छिष्यलेशेन मेरुनन्दनगणिना श्रीअयोध्यापुरीसंस्थितानां श्रीलोकहिताचार्यवर्याणां निमित्तमयं महालेखाधीश्वरः समर्थितः ॥ 卐 ॥

*

॥ श्रीचतुर्विधश्रीविधिसङ्घस्य लेखकवाचकानां च शुभमस्तु ॥

*

॥ अस्मिन् लेखे ग्रन्थाग्रमुद्देशेन श्लोक ११०० ॥ श्रीः ॥

*

सँव्वत् १४३७ वर्षे आश्विनपूर्णमास्यां श्रीकपिलपाटकपुरे
पुस्तिकायां लिखितः श्रीलेखः ।

परिशिष्टम्।

॥ श्रीलोकहिताचार्यस्तुतयः ॥

सच्छायागमविश्रुताः सुमनसां श्रेयोगुणानां मताः, सर्वत्रास्खलितैर्विहारविधिभिः पुंस्कोकिलानां हिताः ।
विद्यामोदलसद्विनेयमधुपा दृष्टा वसन्तश्रियः, श्रीआचार्यवरा न कस्य सुदृशः स्युः सम्मदालीकराः ॥ १ ॥
यैः श्रीसूर्यसहोदरैर्दरहरैर्नानातमःसंहतेः, श्रीसङ्घस्य विकाशिभिः प्रतिपदं जाड्यापहैः प्राणिनाम् ।
अन्यैः श्रोतुमपि क्षमा न जगती पादैर्निजैः पाविता, ते नन्दन्तु दिगन्तवित्तमहसः श्र्याचार्यवर्याश्चिरम् ॥ २ ॥
ध्यानज्ञानचरित्रदर्शनमहासौभाग्यभाग्यश्रियां, प्रासादा बहुलक्षमा मुनिवरा नन्दत्वमी केलये ।
सोपानन्ति गुणाः सुधाभयशसा शुभ्रेषु येषूज्वल,-स्तप्तस्वर्णघटेत् प्रतापनिवहः कीर्त्तिः पताकायते ॥ ३ ॥
प्राच्यालोकततेर्हिताचरणतो दुष्प्रापपुण्यागतै,-र्यैर्दध्रे भुवि नाम सान्वयतया चन्द्रेन्द्रमेघादिवत् ।
प्रागूबुद्धस्य न शङ्खशुक्लनतया रूढ्येव केषां न ते, श्रीमल्लोकहिताभिधानमधुराः श्र्याचार्यवर्या मुदे ॥ ४ ॥

॥ शुभं भवतु, मङ्गलं भवतु ॥

*

॥ गुर्वावली ॥

उद्योतनः सूरिरभूत् क्रमेण, **श्रीवर्द्धमानो** रहितश्रमेण ।
जिनेश्वरो रोपितसाधुधामा, सांवेगिकः श्री**जिनचन्द्र**नामा ॥ १ ॥
जज्ञेऽ**भयः** सूरिरथाङ्गदक्षश्चैत्यप्ररोपी **जिनवल्लभा**ख्यः ।
योगीन्द्रचक्री **जिनदत्तसूरि**र्नरोत्तमः श्री**जिनचन्द्रसूरिः** ॥ २ ॥
वादीन्द्रजेता **जिनपत्त्य**धीशः सौभाग्यभूः सूरि**जिनेश्वरः** सः ।
जिनप्रबोधः श्रुतहेमसानुर्भव्याम्बुजेऽभूज्जि**नचन्द्र**भानुः ॥ ३ ॥
गुरु**जिनकुशलेशः** स्थापितश्र्यादिमेशः, प्रभुरथ **जिनपद्म** शारदाकेलिसद्म ।
समजनि **जिनलब्धिः** सूरिराट् संविदब्धि,-स्तदनु च **जिनचन्द्रः** श्रेयसे मेऽस्ततन्द्रः ॥ ४ ॥
समस्तसूरीन्द्रविराजिनो दयारसालया मोहभटाजिनोदयाः ।
द्विजावलीप्रीतिकृते जिनोदयाः शुभाय मे श्रीगुरवो **जिनोदयाः** ॥ ५ ॥
भविकपङ्कजबोधदिवाकरः, शुभकलावलिकेलिसुधाकरः ।
जयति सम्प्रति रूपरतीश्वरः, प्रभुरयं **जिनराजयतीश्वरः** ॥ ६ ॥

॥ इति व्याख्यानश्रीगुर्वावली ॥

वर्षे नाम शते चतुर्दशमिते[१४] युक्ते त्रयस्त्रिंशता[३३], श्रीमत्पत्तनपत्तने शुभदिने षष्ठ्या सिते फाल्गुने ।
यैः श्रीलोकहिताभिधानगुरुभिः पट्टे स्थिरं स्थापिता,-स्तेऽमी श्रीजिनराजसूरियतिपा नन्दन्तु सङ्घान्विताः ॥ १ ॥

*

॥ शत्रुंजयतीर्थस्तुतिः ॥

सिद्धिक्षेत्रेऽत्र यस्मिन् सकृदपि निजहस्तार्जितं वित्तबीजं सद्बुद्ध्यारोपितं सत् प्रथमजिनदृशोल्लासपीयूषसिक्ते ।
उद्गच्छेन्मन्दिरेषु प्रतिभवमपि तद् वर्द्धमानर्द्धिसौख्यैश्चित्राली तत्र तीर्थे भवति सुकृतिनः कस्यचिद् साङ्गपत्यम् ॥१॥
ये दक्षाः क्षितिपालदस्युदहनादिभ्यो धनं रक्षितुं, कुर्वन्ति व्ययनच्छलेन जगतां व्यासं प्रभोः साक्षिकम् ।
अत्र श्रीविमलाचले भवशतेष्वप्याप्यते तत्सुखा,-चित्रं प्रत्युत वर्द्धमानमपि तैस्तीर्थप्रभावो बत ! ॥ २ ॥
स्पृष्टा यस्य रजःकणा अपि भुवः शुद्धिं श्रितां तादृशीं, सृज्यन्ते किल नान्यतीर्थपयसाऽप्युत्पद्यते यादृशी ।
तत्र श्रीविमलाचले शुभवतां लभ्ये युगादीश्वरं, धन्याः केऽपि समेत्य सङ्घसहिताः कुर्वन्ति नेत्रोत्सवम् ॥ ३ ॥
यद्ध्यानं हरतेऽङ्गिपातकततिं यद् यात्रयाऽभ्यागमः, शक्तिं यच्छति मोक्षमार्गवहने यस्येक्षणं च क्षणम् ।
शुद्धानन्दरसस्य यत्र घटनं विश्वाधिपत्ये किला,-रोहस्तं विमलाचलं भजत भो त्यक्त्वाऽन्यकृत्यं जनाः ! ॥ ४ ॥

॥ इति शत्रुञ्जयवर्णनाकाव्यं समाप्तम् ॥

*

भो भव्याः ! सुजनप्रिया वयममी पुण्याध्वपान्थाः कियत् ,-कालं युष्मदुपाश्रये सुखमये विश्रम्य हृष्टा गुणैः ।
यामः सम्प्रति कार्यसिद्धिविषये स्यान्नौ पुनः सङ्गमः, कर्त्तव्या गुणचिन्तनेन शुभगैर्नान्योन्यविस्मारणा ॥ १ ॥
श्रीरामोऽयमवैति सर्वमनघं सीता सतीत्वं पुरा, सन्तश्चापि तथा हुताशनजलीभावाज्जगुस्तद्व्रतम् ।
यत्तस्याः कथमप्यभूत् परमहो ! तै राक्षसैः संस्तव,-स्तेनान्या विचिकित्सतीह जनता कष्टं तदार्यात्मनाम् ॥ २ ॥
भावी मे स कदा पवित्रदिवसः कल्याणकेलीरसः, श्रीमद्धर्म्मगुरोर्मते सुरतरोर्यत्रास्यचन्द्रं मुदा ।
वीक्षिष्ये स्मितलोचनैः कुवलयैः पाता च तद्गीः सुधां, तत्पादैः पविता शिरश्च हृदये चिन्ता सतामीदृशी ॥ ३ ॥
यैरत्यन्तपरोपकारनिपुणैर्निःस्वामिकाङ्कूरवन्नीत्वाऽहं निजकाश्रयं किल तथा वात्सल्यकुल्यारसैः ।
सिक्तः संजघटे यथा ननु जनेच्छायाः फलाद्यैर्गुणैः, किञ्चित्सेव्य इवाभिनौमि किमहो ! तेषां प्रभूणामिह ॥ ४ ॥
या नित्यं कमलाश्रयैकसुतनुर्युक्ता महातेजसा, स्वाधीनप्रमदोल्लसन्मुखगुणा गोलीनचित्तस्थितिः ।
कामोत्पत्तिविवर्द्धनातिनिपुणा वन्द्या क्षमाभृद्व्रजैः, सा भूयात् तव पद्मयोनिगिरिशोपेन्द्रत्रयी प्रीतये ॥ ५ ॥
सौवप्रतापभरकुग्रहलासनाशी, सन्मार्गबोधचतुरः कमलावकाशी ।
लोकैस्त्रिसन्ध्यमहितो भुवि सर्वदर्शी, हन्यात् तमांसि भवतां सविनायकोऽयम् ॥ ६ ॥

॥ इति विज्ञप्तिमहालेखपरिशिष्टरूपाणि काव्यानि ॥

***

खरतरगच्छालंकारहारभट्टारकश्रीमज्जिनभद्रसूरिं प्रति
महोपाध्यायश्रीमज्जयसागरपण्डितप्रवरैः लिखितो

वि ज्ञ प्ति त्रि वे णि

नामको विज्ञप्तिपत्रस्वरूपो महालेखः ।

१. प्रस्तुतार्थप्रस्ताविका प्रथमा वेणिः ।

*

[आदौ मङ्गलवाचका जिनादिनमस्काराः ।]

॥ नमः सर्वविदे ॥

जयति लसदनन्तज्ञाननिर्भाससान्द्रो निरुपममहिमत्वादार्हतः कोऽपि भावः ।
त्रिभुवनजनभाग्यागोचरो यत्र नित्यं विलसति कृतवासा निर्भरं सा शिवश्रीः ॥ १ ॥
जगन्नित्यं किञ्चित् तदितरदनित्यं च सदियं यदज्ञानाद् भ्रान्तिः स्फुरति मृगतृष्णेव भुवने ।
क्षणेन क्षीयन्ते दुरितनिवहा यत्परिचयात् तदेवाङ्गीकुर्म्मो निरभिविधि जैनेश्वरमहः ॥ २ ॥
दौर्गत्यदोषमुच्छेत्तुं विबुधा यामुपासते । कल्पवल्लीव सा जैनी चतुर्विंशतिरिष्टदा ॥ ३ ॥
विश्वाशाः परिपूर्णतामुपगता वाञ्छार्थलाभांशुभि,-र्नष्टा तामसमण्डलीव विलसद्वैरादिवार्त्ताऽपि हि ।
मार्गामार्गविचारचारिमधरा जाता समस्ता मही, यस्यैवाभ्युदये स **शान्तिसविता** सुप्रातराविष्क्रियात् ॥ ४ ॥
योऽद्विष्टचित्तोऽपि रिपूञ् जघान, विरक्तचित्तोऽपि भुनक्ति मुक्तिम् ।
सदाऽभिजातोऽपि हि **नाभिजातः**, स कामितं कामितमातनोतु ॥ ५ ॥
महामृगाङ्कः सततं प्रजानां सन्तापनिर्वापकपादसेवः ।
विस्मेरयन् कौमुदमादरेण जिनेन्द्रचन्द्रो**ऽजित** एष पायात् ॥ ६ ॥
यैः क्षिप्तानि जगन्त्यपायकुहरे प्राप्तावकाशैः पुरा, स्थानं नश्च हृतं प्रणेशुरधुना पापाः क्व दोषा इति ।
तानन्वेष्टुमिव भ्रमन्ति भुवने प्राप्तोदया यद्गुणाः, स श्रीमाञ् जिन**सम्भवो** भवतरुच्छेदे कुठारायताम् ॥ ७ ॥
नन्दत्वसौ श्रीजिनपो**ऽभिनन्दनो** यद्दानशौण्डीर्यगुणैकलिप्सया ।
प्रविश्य हेमाद्रिदरीं सुरद्रुमा भृङ्गस्वरेण प्रसभं जपन्ति किम् ? ॥ ८ ॥
भ्रूभङ्गं न बभार भालशिखरे नो शोणिमानं दृशोः, प्रागल्भ्यं हृदये नवा शममये नाङ्गे तथोत्सेकताम् ।
हत्वा मोहभटं तथापि युधि यो निर्द्धाटयामासिवान्, भव्यस्वान्तपुराज्जिनः स **सुमतिर्द्धर्म्मे** मतिं वर्द्धयेत् ॥९॥
शशधरकरैः सायं दूये दिवा तु विहङ्गमै,-र्विदलितमहं स्थानं हेयं तदेतदशर्म्मदम् ।
इति सरसिजं तोयं हित्वा किलाङ्कतयाऽभज,-ज्जगदभयपदं पादं **पद्मप्रभस्य** स शर्म्मणे ॥ १० ॥
भक्तिरागनिभृतेषु मुनीनां मानसेषु चिरवासवशात् किम् ? ।
रक्तकोकनदरङ्गदभी(भां?)शुः स्पष्टयत्वभिमतं जिनषष्ठः ॥ ११ ॥

अन्तर्दीप्रसुबोधदीपकलिकोद्भूताञ्जनौघा इव, श्रीसंवेगसमुद्रवीचिविलसल्लीलाप्रकारा इव ।
रेजुर्यस्य शिरस्युदंशुमणयः पञ्च स्फुरन्तः स्फुटा, भद्रालीं द्रढयेदघं विघटयेद् देवः **सुपार्श्वः** स वः ॥ १२ ॥

विलसदतुलशुक्लध्यानसद्दुग्धसिन्धोरविरललहरीभिः प्रोद्गताभिः प्रकर्षात् ।
हिमहिमकरगौरा यत्तनुः प्लावितेवाऽशुभदशुभभिदे स्याद् देव**चन्द्रप्रभो**ऽसौ ॥ १३ ॥

कृपामृताब्धिः **सुविधिः** समाधिं सन्धातुमुत्साहयतां मनो वः ।
यस्माद् बुधाश्चिन्तितवस्त्ववाप्य तृणाय चिन्तामणिमप्यमंसत ॥ १४ ॥

अभ्रान्तवृत्तिमधुरो हरिणाश्रितोऽयं भव्याञ्जनानवतु **शीतल**शीतलांशुः ।
यद्बिम्बमुज्ज्वलकलं भृशमीक्षमाणा लोकत्रयी प्रमदतः कुमुदांबभूव ॥ १५ ॥

श्रेयांसः श्रितवत्सलः सृजतु वो नित्यं श्रियं श्रायसीं, पञ्चाङ्गप्रणिपातनिर्म्मितिवशाद् यत्पादपीठाग्रतः ।
रेजुर्मञ्जुरजोऽवगुण्ठननिभाद् भालेषु भव्यात्मना,-मेते योग्यतमा इतीव तिलकाः पुण्यश्रिया निर्म्मिताः ॥ १६ ॥

स्वर्भूर्भुवःस्थायुकलोकपूज्यः **श्रीवासुपूज्यो** जयताज्जगत्याम् ।
सस्पर्द्धयेव श्रमणत्वलक्ष्म्या यस्मिंस्तनुश्रीरपि भाति रक्ता ॥ १७ ॥

कलियुगतया भीष्मग्रीष्मे प्रसर्प्पति भूतलेऽजनिषत कृशा आशानद्यो मदीयमनोभुवि ।
विमल! तदलं वर्षत्वेषा प्रसादपयोभरं तव पदपरीष्टिस्तत्पूरं सुवृष्टिरिवोच्चकैः ॥ १८ ॥

सभाजनप्रीणनकृत्सभाजनो महोदयस्थो विलसन्महोदयः ।
यकः सदाऽनन्तगुणालिनिर्मलो मनःकपिं पातु नता**ननन्तजित्** ॥ १९ ॥ (–गूढैकक्रियम् ।)

त्रैलोक्यलोकतिलकोऽस्ति जिनो गुणाढ्यो तस्याऽप्युपर्यहमिति प्रमदादिवोच्चैः ।
नृत्यत्यशोकविटपी चटुलैर्दलैः किं? यद्धर्म्मसद्मनि स **धर्म्मजिनः** शिवाय ॥ २० ॥

भवाभ्यन्तरे कर्म्मधर्म्माकुलत्वाद् गुणश्रेणिनिश्रेणिमालम्ब्य योऽलम् ।
सुखं मुक्तिवातायनं प्राप्य शेते सदा निर्वृतः शान्तये स्तात् स **शान्तिः** ॥ २१ ॥

कुन्थुं कान्त! नमस्कुरु, प्रियतमे! कः क्षुद्रजन्तुं नमेत्?
भर्त्तः! श्रीतनयं वदामि, मदनः किं? नैष सूरात्मजः ।
किं मन्दोऽयमयि प्रभो! नहि जगत्प्रद्योतकस्तीर्थकृत्;
दम्पत्योरिति वक्रवाक्यविषयः पुष्यात् सुखान्येष वः ॥ २२ ॥

पूर्वोपार्जितपापकर्मपटलान्येधन्ति यत्राङ्गिनां, खद्योतन्ति मृगाङ्कचण्डकिरणाद्या यत्र तेजस्विनः ।
विश्वव्यापकमप्यनक्षविषयं यद्भासते सर्वतः, तज्ज्योतिः प्रणिदध्महे भयभिदे **देवारतो** नापरम् ॥ २३ ॥

देवो वाङ्मनसातिगोचरगुणोऽर्वाचीनदृग्देहिनां, **मल्लिः** पल्लवयेन्मतिव्रततिकां सोऽयं वसन्तोपमः ।
यस्माद् विश्वजनप्रमोदजननीमासाद्य रम्यां रमां, भव्यारामगणा इह प्रतिदिनं सेव्या न कस्याभवत् ॥ २४ ॥

यो ध्यायमानोऽपि हि कृष्णवर्णस्तनोति सद्धर्म्मधियं बुधानाम् ।
सुश्यामलश्रीजलदायमानो जयत्यधीशो **मुनिसुव्रताख्यः** ॥ २५ ॥

तापं तापमपारदुस्तपतपःसद्ध्यानशातासिना, छिन्दानं तरसात्मकर्म्मगहनं दृष्ट्वेनमादीक्षणात् ।
आत्मोच्छेदभियेव नो ववृधिरे केशा नखा यस्य वै, श्रामण्ये विरहन्न**मिर्जिनपतिः** सम्पत्तये जायताम् ॥ २६ ॥

मोहाख्यो नृपतिर्विकीर्णहृदधिष्ठानाद् विनिर्द्धाटितो, देवेनेति ततो विभग्नसकलोपायान्तरोऽयं किल ।
स्थानप्राप्तिकृते दिवानिशमसौ रागच्छलात् पिच्छलं, यत्पादाब्जयुगं भजत्यभिमतं दत्तां स **नेमीश्वरः** ॥ २७ ॥

किं भाद्राम्बुधरा अमी समुदिता आश्वासयन्तो जगत् ?, किं वैताः फलभारमुन्नतनवः प्राप्ता भुवं स्वर्लताः ।
श्रीवामेयशिरस्थयत्नजनितां छत्रश्रियं बिभ्रत, इत्थं भ्रान्तिकराः स्फटाः सुमनसां कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ २८ ॥

कीदृक्षे हि विधौ भवन्ति विफलाः पुंसा प्रयासाः कृताः ?,
भानोरुत्तरदक्षिणोभयगतौ के कारणं वर्णिते ? ।
का विश्वं निजसङ्गमात् प्रकुरुते सौभाग्यभाग्योज्वलं ?,
को वा सेवकसत्फलः कलियुगे वामेयनेता जयी ॥ २९ ॥ (–प्रश्नोत्तरम् ।)

श्रीवीरः पुरुषोत्तमः क्षपयतात् पापं नृपश्रेणिका,-सेव्यांह्रिद्वितयः क्षमाभरधरः कल्याणकायं दधत् ।
यः सत्त्यागदयान्वितः प्रविलसत्सद्दर्शनोत्सर्प्पणात्, तं क्षिप्त्वा नरकं समाधिमुदितं स्वस्थं जगत् संव्यधात् ॥३०॥
अर्हन् सिद्धः प्रबुद्धः प्रकटगुणगणः पारगोऽनङ्गभेदी, वीरो विश्वाधिनाथः किशलयतु स वोऽतुल्यमाङ्गल्यमालाम् ।
व्योमेवाद्यापि यस्य प्रविदितमहिमोल्लासनं शासनं तत्, चित्रं सूर्याढ्यमप्युज्ज्वलसुशशिकुलं भाति निस्तारकं यत् ॥३१॥
वर्द्धमानजिनेशस्य वचनाय नमोनमः । अज्ञानध्वान्तविध्वंसाद् तदेव दिवसायते ॥ ३२ ॥

*

दिन्नादितापसहितोऽपि हि तापहारी रुद्धप्रमादविसरोऽप्यमितप्रमादः ।
यो निर्द्धनोऽपि धनधान्यसमृद्धिहेतुनामस्मृतिर्नमत तं गुरुमिन्द्रभूतिम् ॥ ३३ ॥
नमः क्षमाधरोद्दाय श्रीसुधर्म्महिमाद्रये । जज्ञे गौरीदृशी यस्मान् महाव्रतिमनःप्रिया ॥ ३४ ॥
श्रीमद्वीरजिनेशवंशविशदप्रासादशृङ्गाङ्गणे, रङ्गच्चारुसिताम्बरप्रविलसत्कीर्तिध्वजाबन्धुरे ।
सद्वृत्तः कलधौतकुम्भतुलनामुच्चैर्दधे यश्चिरं, प्रज्ञां पल्लवयत्वसौ गणधरः श्रीमान् सुधर्म्मा मम ॥ ३५ ॥

जयति जगन्ति पुनाना वाङ्मालाभिः सरस्वती देवी ।
करकृतमणिमिव कवयो विश्वं पश्यन्ति यदनुभवात् ॥ ३६ ॥
सदुक्तिमुक्ताफलताम्रपर्ण्यै नमोनमः श्रीगुरुराजवाण्यै ।
जडस्वभावोऽपि हि यत्प्रसङ्गात् सिन्धुः स रत्नाकरतामवाप ॥ ३७ ॥

यदीयवागञ्जनस्य मनोदृशि निवेशनात् । विन्दन्ति गूढमप्यर्थं जनास्तं गुरुमर्थये ॥ ३८ ॥
तदेवं सम्यगाराध्याऽऽराध्यपादान्महादरात् । लेखोऽयं लिख्यते किञ्चिद् गद्यपद्यमयो मया ॥ ३९ ॥
क्व मे तुच्छतमा बुद्धिर्महान् क्वायमुपक्रमः ? । तदहं मातुमिच्छामि कुम्भैरम्भोऽम्बुधेरपि ॥ ४० ॥
गुरुप्रसादतो यद्वा ममाप्यत्रास्ति योग्यता । भेकोऽपि हि भुजङ्गास्यं चुम्बेन्मान्त्रिकयोगतः ॥ ४१ ॥

विश्वाम्ब ! मे हृदि सरस्वति ! सन्निधेहि स्या[द् येन] सम्प्रति फलेग्रहिरुद्यमोऽयम्* ।
यद्वा चकास्ति गुरुभक्तिरचिन्त्यशक्तिः सैव प्रमाणमखिलार्थविधौ ममास्तु ॥ ४२ ॥

*

[श्रीजिनभद्रसूरिसमधिष्ठित - गूर्जरदेश - तदीयराजधानीभूत - अणहिल्लपुरवर्णनम् ।]

§१. अस्ति समस्तशास्तवस्तुवास्तुभूतभारतविश्वम्भराविस्तारस्फुरत्तिलकायमानः स्फायमानः सकलसम्पत्त्या समानः स्पृहणीयतया स्वर्गलोकस्य, सत्पुरुष इव बहुलक्षणभासुरः, नाकलोक इव सुधर्म्मास्थानसुन्दरः, शब्द इव प्राग्ग्रहरः सर्वविषयाणाम्, नदीपतिरिवेन्दिरासङ्गोल्लसदङ्गमहाशेषनागाधिरूढप्रौढपुरुषोत्तममहनीयाभ्यन्तरः, सगरभूपालमूर्तिमद्य-

* अस्मिन् पादेऽक्षरद्वयं त्रुटितमस्ति । तच्चादौ 'स्याद्येन' इत्येवं सम्भवेत् ।

शोविलासायमानलसद्वीचिवितानेनोदन्वता परिचितपरिसरः, सारः सकलसंसारविस्तारस्य, आकरः सदाचारव्यवहाराणाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, सङ्केतास्पदं समस्तशस्यदिश्यसम्पदाम्, आपणो नयनैपुण्यादिक्रयाणाम्, रोहणो विनयविवेकविचारादिगुणमणिगणानाम्, मध्यप्रदेशस्फारहारायमानार्हद्धिहारोदारो गूर्ज्जरो नामा जनपदः। यस्मिन्नश्रान्तसुकृतकर्म्मक्षणनिर्म्माणात्युत्सहिष्णुवर्द्धिष्णुधर्म्मपुरुषार्थप्रदत्ताशाः प्रशान्तदुरितोपप्लवाः श्रीआर्हतधर्म्मराजराजधान्यः पुरुषायुषजीविन्यः प्रजाः। अपि च वर्णविनाशो व्याकरणेषु, क्षणक्षयिभावस्ताथागतसिद्धान्तेषु, भूतविकृतिवादः सांख्येषु, जडस्वभावात्मजल्पस्तथा छलकौशलोद्भावनं निग्रहस्थानानि चाक्षपादमतीयसिद्धान्तेषु, वक्रचारिता ग्रहगोचरे, ग्रहावेशो राशिषु दृश्यते श्रूयते वा, न च वास्तव्येषु लोकेषु। यत्र तुरङ्गशोभिताः प्रासादा इव मन्दुराः। यत्र च लहरिसङ्कुला नद्य उद्यानभूमयश्च। यत्र च कौटुम्बिकगृहा इव बहुधाना विपणिभागाः, व्याकरणप्रबन्धा इव विलसद्बहुव्रीहयः, क्वचिद् दृश्यमानद्विगवश्च, अव्ययीभावानुभावोत्सर्पितक्षेत्रिप्रमोदाः सद्वन्द्वाश्च वप्रप्रदेशाः। किं बहुना?–

व्योमोपमा व्योम्न एव सुधायाश्च यथा सुधा। तथा गूर्जरदेशस्योपमानं यदि गूर्जरः॥ ४३॥
यत्र ग्रामा इवारामाः सदाशुकविराजिताः। निवासा इव कासारा लक्ष्मणश्रेणिसङ्कुलाः॥ ४४॥

तत्र लसल्लक्ष्मीदेवीनिवासकमलोपमानं अणहिल्लपाटकं नाम पत्तनम्।

अश्रान्तोद्भवदुत्सवोत्थतमुदुल्लोलावलीसङ्कुलं, रङ्गद्भूरिसितच्छदं शुभति यत्पद्माकराम्भो भुवि।
यत्रोच्चैः स्फुटपुण्डरीकपटलभ्रान्त्या भ्रमच्चेतना, रम्ये हर्म्यगणे सुधाधवलिते नूनं निलीना रमा॥ ४५॥
मुक्तामणीविद्रुमशुक्तिशङ्खान् राशीकृतान् वीक्ष्य यदापणेषु। लोकैर्वितर्क्येत जलावशेषश्चित्रीयमाणैर्हृदये पयोधिः॥४६॥
अनेकसूर्यावलिशालिमध्यं नानाबुधाढ्यं बहुमङ्गलं च। श्रीदैर्महेशैरमितैः परीतं यत् पत्तनं खं प्रति जाहसीति॥४७॥
सन्नरागमना यत्र मुनिपर्षच्च भूभृताम्। राजहंसा इव जनाः सर्वदा मानसङ्गताः॥ ४८॥

यत्र च–

कलाकीलालकल्लोला लोकाः केलिकुलाकुलाः।
कलिकालेऽकलङ्काला लीलां ललुः कलां किल॥ ४९॥ (द्विव्यञ्जनचित्रम्।)
बुधा इव जना यत्र चित्तरङ्गोपशोभिताः। मनुष्येशा इवावासा मत्तवारणराजिताः॥ ५०॥

किं च–

§ २. चिरन्तनपुरुषातिशायिभविष्यत्सम्भप्रभावकश्रावकहृदयशयाखर्वगर्वसर्वस्वापहारिहारिचरितत्रिभुवनप्रशंसनीयत्रिभुवनपालदेवकुलकाननोल्लासभासनसुरभिसमयानुकारिकाश्मीरदेवीमहासतीसदुदरस्फारवैडूर्यवर्यवसुन्धराखनिसम्भवदतुल्यामूल्यमहार्घ्यप्रातिहार्यावार्यार्यजनस्तुतप्रत्नरत्नायमानश्रीकलिकालकेवलिबिरुदविशदावतारप्राप्तचातुर्विद्यमाद्यदनिन्द्यपारावारपारश्रीजिनशासनाम्बराम्बरमणिसुगृहीतनामधेयसिद्धश्रीहेमसूरिमुखोच्छलदतुच्छाच्छपिच्छलोन्मूर्च्छच्छुचिरुचिरुचिरामृतच्छटायमाननिस्समाननिरुपमाननिर्विगानध्यानज्ञानवर्द्धमानपरमतत्त्वमयसमयवितानव्याख्यानविशेषनिःशेषनिर्वासिताऽनादिकालालीनानवीनसादीनवपीनाहीनदुर्वासनाविषापस्मारसारसकलजगज्जन्तुजीवातुकल्पनिर्विकल्पामारिघोषणामिषोद्घोषिताऽऽकल्पान्तकालकालावस्थाय्यनिवर्त्तनीयकीर्त्तनीयकी-

त्तिकमलाकटाक्षसाक्षात्कृतश्रीकुमारपालभूपालसम्भावितनव्यनव्यभव्यभव्यजनस्पृहणीयतत्तदुत्तमकरणीयजातिप्रतिभूभूतप्रभूततत्तादृक्षविशदप्रासादस्थाननिध्यानवशोद्भिद्यमानरोमाञ्चनिकायाऽऽधुनिकधार्म्मिकनिकायविधीयमाननानाविधधर्म्मोत्सवारम्भसुभगं यज्जयति जगत्पुराणि पराणि । किञ्च–

यत्र हर्म्येषु धर्म्येषु पञ्जरस्थाः शुकादयः । नमस्कारं पठन्तः स्युः पुत्रेभ्योऽपि सतां प्रियाः ॥ ५१ ॥
सहस्रलिङ्गाख्यसरःसलिलेन शुचित्विषा । यत्रापूर्णं सदाप्याभाद् धनेनेव पुरं च तत् ॥ ५२ ॥
न्यायमार्गान्वितो यत्र राजा राजेव तज्जनः । तद्वत्प्रामाणिको लोकोऽप्येवमेव व्यवस्थितः ॥ ५३ ॥
साधवो यत्र मान्यन्ते दानश्रद्धालुभिर्जनैः । साधुभिश्च यथाकालं तेऽपि धर्म्मानुशिष्टिताः ॥ ५४ ॥
विमानानीव यत्रोच्चैर्धर्म्मस्थानानि निश्चितम् । नित्योत्सवानि राजन्ते विबुधप्रीतिदानि च ॥ ५५ ॥
माणिक्यमौक्तिकस्वर्णराशीन् विपणिगाञ् जनः । वीक्ष्य चक्रे रोहणाब्धिमेरूणामागमभ्रमम् ॥ ५६ ॥
सधना यत्र च जनाः सदाचाराः ससम्मदाः । स्वर्गभुक्तावशिष्टस्य धर्म्मस्यांशा इवाङ्गिनः ॥ ५७ ॥
सलज्जाः सदयाः सौम्याः सरूपाः समहोदयाः । लोका यत्र निरीक्ष्यन्ते सुषमाकालजा इव ॥ ५८ ॥

[अणहिल्लपुरसमवस्थितश्रीजिनभद्रसूरिगुणवर्णना –]

तत्र पवित्रसुत्रामपुरापारस्मयचयव्ययकरे पुरे–

जडपरिचयोद्विग्ना नूनं विहाय कुशेशयं, कमलनिलया देवी येषामवाप पदद्वयम् ।
स्फुरति नितरां तस्मादेवेन्दिरोल्लसदाशया, तदतिवरीवस्यासक्तानां गृहेषु तनूभृताम् ॥ ५९ ॥
सत्यं सन्ति सितोपलाशशिकलासद्धारहूरादयो, मिष्टाः किन्तु यदीयवाग्मधुरिमा कोऽप्यद्भुतो वर्त्तते ।
संक्लृप्तामृतभोजना इव जना यां कूणिताक्षाः सकृत्, पीत्वा सार्वदिकं लभन्ति सततं सन्तोषपोषं परम् ॥६०॥
शाणोत्तीर्णमणीव कान्तिकलिता दातेव चौदार्यभाक्, रम्भावन्मृदुला शरद्विमलिताऽऽशेव प्रसन्नाऽधिकम् ।
सन्माधुर्यगुणा सितेव सुधया सिक्ता नु सूक्तावली, येषामाननसम्भवा श्रुतिगता काँस्कान्न संमोदयेत्॥६१॥

जगद्दृगानन्दरसैकसत्रं येषां मुखं निश्चितमिन्दुबिम्बम् ।
निपीय तद्वागमृतं किमन्यथा सचन्द्रकान्ता बभुरार्द्रितान्तराः ॥ ६२ ॥

अग्रे सत्यमरूरुपन् सपदि ये स्याद्वादवादद्रुमं, यस्याध्यक्षपरोक्षमानयुगलं मूलं प्रकाण्डं कृपा ।
शाखाः ससनया जिनप्रवचनं पत्रप्रकारं विदुः, तत्त्वज्ञानमुशन्ति पुष्पपटलं मोक्षं तु सम्यक्फलम् ॥ ६३ ॥
यैः कुन्देन्दुतुषारहारधवलैर्ब्रह्माण्डमाभूष्यते, यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरिह जनो मूकोऽपि वाग्मीयते ।
यैः कर्णातिथिभिः प्रमोदजलधिश्चन्द्रैरिवोल्लास्यते, तेषामद्भुतसम्पदां गुणगणानामास्पदं ये परम् ॥ ६४ ॥
लोकालोकमहीधरप्रतिहतो भानोः प्रकाशोऽपि हि, विस्फूर्जद्द्युतिवज्रिणोऽपि कुलिशं पाथोधिना स्खल्यते ।
सर्वत्रास्खलितप्रचारमतुलं विभ्राजते यद्यशो,-दुग्धाम्भोध्यवगाहनादिव चिरं गौरं जगल्लङ्घनम् ॥ ६५ ॥
ज्योत्स्नोच्छ्रायविनाकृतेव मलिनच्छायेव मुक्तावली, साशङ्केव हि दुग्धसिन्धुलहरी स्वर्गापगा निम्नगा ।
शुक्ता त्यक्तमुदेव तुच्छगरिमैवोच्चैस्तुषारावली, नैर्मल्यातिशयात् परादिह जिता यत्कीर्त्तिकान्त्या किल ॥६६॥
क्षारो वारिनिधिर्बुधैर्निगदितो दोषाकरश्चन्द्रमा, विष्णुश्चापलतान्वितोऽपि चपलासङ्गाधिकश्रीर्घनः ।
देवेन्द्रस्तु सुराधिपोऽपि बहुरुग् भास्वान् विषादी हर,-स्तत् केनात्र समं विशुद्धगुणिनो यत्कोपमा कल्प्यते॥६७॥
गिरो येषां मुखोद्भूताः कतकक्षोदसोदराः । कालुष्यक्षपणाक्षेपाच्छोधयन्ति जडाशयान् ॥ ६८ ॥
व्याख्याक्षणे मुखे येषां स्फीतदन्तद्युतिच्छलात् । माधुर्यं शिक्षितुं वाचः प्रत्यासीदति किं सुधा ? ॥ ६९ ॥

सुस्निग्धां मधुरास्वादां येषां दौर्गत्यहारिणीम् । पीत्वा वाचं सुधां चापि युक्तं स्युर्विबुधा जनाः ॥ ७० ॥
द्राक्षाः सङ्कुचिताः काष्ठं जग्राहास्ये सितोपला । यदीयवाक्यमाधुर्यजिता नष्टा सुधाऽपि हि ॥ ७१ ॥
अन्तःस्थज्ञानकल्पद्रुकुसुमानीव यन्मुखे । सुस्निग्धा मधुराकारा राजन्ते रदनद्युतः ॥ ७२ ॥
व्याख्याक्षणे मुखे येषां नूनं नर्नर्ति भारती । तन्नूपुरध्वनिरिव लक्ष्यते देशनाक्रमः ॥ ७३ ॥
दोलीकृत्य यदीयं तु जिह्वाञ्चलं चलाचलम् । तथाविधवचोव्याजाद् वाग्देवी खलु खेलति ॥ ७४ ॥
सुधा बुधा मुधा नूनमनूनाऽपि गुणैः परम् । यद्वचःपानसंतृप्तश्रोतुरेष वचःक्रमः ॥ ७५ ॥
मन्ये सरस्वती तावद् येषां जिह्वाधिदेवता । तत्रानुकूलवृत्तीनां यस्मात् सर्वार्थसिद्धयः ॥ ७६ ॥
येषां सिद्धरसौपम्यं दधाति वचनक्रमः । सुबुद्धिस्वर्णतां याति यत्प्रसङ्गात् कुबुद्ध्ययः ॥ ७७ ॥
मुखं शुक्तिपुटं येषां वचनानि तु मौक्तिकाः । तल्लाभे प्रयतन्ते तु पुण्याढ्या एव केचन ॥ ७८ ॥

यद्वाग्वल्ली सप्तभङ्गी रङ्गन्मण्डपगोत्सृता ।
सुभाषितफलैः कस्य करोत्युत्कण्ठुलं न हृत् ? ॥ ७९ ॥ (–वाणीवर्णनम् ।)
महानुभावा निहताङ्गितापस्तोमा निरुद्धाधिविधा निकामम् ।
पुण्यप्रकाशा नियतेन्द्रियाणां जगन्मुदे गीश्च यशांसि येषाम् ॥ ८० ॥ (–महाद्भुतम् ।)
दौर्गत्यभेदिनी रङ्गद्विभावभासिनी रयात् ।
येषां वाणी च पादाब्जे शिवर्द्धिं तनुतां सताम् ॥ ८१ ॥ (–अद्भुतम् ।)
ऋते येन नो भूपतिर्नापि रङ्कः, सजीवोऽप्यजीवोऽस्त्यहो ! जीवलोके ।
तदेवानुभूतं यदीयं जनानां, मुदे कारणं तत्र ही सत्प्रसङ्गः ॥ ८२ ॥ (–प्रहेलिका ।)
तपोभिर्दुस्तपैर्यत्तु दुरापं योगिनामपि । तत्सिद्धात्ममयं ब्रह्म येषां वाक्यादपीक्ष्यते ॥ ८३ ॥
तार्किकाणां मते ख्याताः ख्यातयः सदसन्मुखाः । सत्ख्यातिरेव येषां तु सिद्धा प्रमाणिनामपि ॥ ८४ ॥
यद्वाणीवारिदोऽपूर्वो राजते विश्ववल्लभः । हरत्येव जगत्तापं शंवरं तु न मुञ्चति ॥ ८५ ॥
सत्यातपत्रमिव पादयुगं यदीयं सच्छायमेत्य गततापभरा महीयः ।
सातत्यतोषमवगत्य भवन्ति सन्तः सातान्विता भुवि नृपा इव संशुभन्तु ॥ ८६ ॥ (–छत्रबन्धः ।)
स्फीतसातं वितन्वन्तं शान्तस्वान्तं मतश्रुतम् । गीतव्रातततं कान्तं सन्तनं तं नुत द्रुतं ॥ ८७ ॥
(–गौमूत्रिकाचित्रं षोडशदलपद्मं च ।)
वरारावरसासार ! नवराजजरावन ! । रसानुत तनु सारं दयया ततयायद ! ॥८८॥ (–अर्द्धभ्रमः ।)
महनीया मतिमतां महामहिमसंगताः ।
मतं नतानां ददतां महात्मानः समाहिताः ॥ ८९ ॥ (–बीजपूरबन्धः ।)
मरालीवातिविमला मनोवृत्तिर्यदीयका ।
मनुते बहुनालीकं कस्मान्न मानसं गता ॥ ९० ॥ (–आसनबन्धः ।)
स्वयं क्षयं नयन्तो ये कुप्रावचनिकाङ्गिनाम् ।
सम्यग्धर्म्मोपदेशेन पुनन्त्येनं जनं पुनः ॥ ९१ ॥ (–चामरबन्धः ।)
वारम्वारं हरन्ते ये सूर्या इव वचोंऽशुभिः ।
जगद्दुर्वासनाध्वान्तव्रातं ततं द्रुतन्वतः ॥ ९२ ॥ (–चामरबन्धः ।)

॥ इति चित्राणि ॥

§३. अपि चाविकलसकलसकलमञ्जुलकविकुलविमलमुखपद्मपद्मनदोद्गच्छदतुच्छपिच्छलबहुलरसपेशलसरस्वतीसुरसरस्वतीविलसत्सरलतरलसमुज्ज्वलाविरलगद्यपद्याद्यमयलक्षणान्वेषिकीप्रकटनाटकालङ्काराद्यानवद्यहृद्यविद्याविलाससुस्थूलकल्लोलमालारङ्गत्तुङ्गतरङ्गततितरत्कान्तकीर्त्तितरुणकलहंसिकाश्लाघ्यतमा ये[१]शोभन्ते। [२]यांश्च निर्मलगुणपरीतान् सदामलकोपमानभुक्तान् समुज्ज्वलान् सद्वृत्तान् हारानिव हृदयावनिभागान्नापसारयन्ति क्षणमपि गुणगृह्या महान्तः। [३]यैश्च चित्रकृच्चरित्रैर्जगज्जैत्रातिमात्रतरः सम्पदन्धम्भावुकसर्वजनीनस्वास्थ्यभरलुण्टाको विवेकोत्सेककुट्टाकदुर्विधः कुसुमायुधः शान्तदान्तैरपि पराजित्यानङ्गीकृतः।[४]येभ्यः सदभ्यस्तप्रशस्तवास्तवस्तुत्यपवित्रचरित्रविचित्रशतपत्रपद्मपद्महृदेभ्यः प्रभूतां परिस्तृतस्वर्भूर्भुवोऽन्तरालां विशालामुत्कल्लोलमालां स्फुरत्कीर्तित्रिदशशैवलिनीं स्थाने स्थाने श्रुतिपुटाञ्जलिभिः पायं पायं प्रायः के के विबुधविसरास्तुष्टिपुष्टिजुष्टा न समापनीपद्यन्ते। [[५]........[६]......?] [७]येषु च वर्यचातुर्यगाम्भीर्यौदार्यस्थैर्यार्जवमार्दवमहिमगरिमादिमा रमणीयास्तत्तद्गुणगणाः कलियुगभयत्रस्ता इव युगपद्वासं विदधति। अपि च–

लब्धप्रतिष्ठा नवसु ग्रहेषु ये सूरभूता अपि भूतलेऽस्मिन्।
चित्रं न सार्द्धं विबुधैर्विरोधं वहन्ति विश्वं न च तापयन्ति ॥ ९३ ॥

§४. ते नवीनपीनशारदेन्दुसुन्दरकुन्दकुमुदकेतकोदरसोदरदरद्विचिकलकुलकुवलयदलधवलसकलजगज्जङ्घालनिस्तुलस्थूलयशःपटलधवलीक्रियमाणत्रिभुवनभवनभित्तिभागा गगनप्रदेशा इव सन्मङ्गला अपि बुधसेविता अपि चन्द्रोदयभासि वसतौ शोभमाना अपि नभोगसम्पन्ना अपि घनाश्रया अपि न च ये ग्रहान्विताः, पुरुहूता इव नाकविख्याताः, वैनतेया इव नागमाधिक्षेपकराः, पद्माकरा इव नालसहिताः, शब्दशास्त्रप्रदेशा इव नामसम्पन्नाः, सुकविकृतकाव्यप्रकारा इव नानायतिश्रितपादाः, आर्यानुगताश्च; सत्तमाः शान्तचेतसाम्, विशिष्टाः प्रतिष्ठावताम्, अग्रेगण्या गणवताम्, आश्रयाः श्रेयःसंयमश्रियाम्, आद्या विद्यावताम्, वर्या आर्याणाम्, सारसूरीन्द्रपट्टकमलाकमलिनीकमलिनीवल्लभा जगदुर्लभशुभप्रभावप्रकटश्रीसूरिमन्त्रप्यानध्यानसन्धानविधुतसबाह्याभ्यन्तराधिव्याधिप्रसराः सर्वाङ्गसुन्दराः सुगृहीतनामधेयाः परमध्येयाः श्रीजिनभद्रसूरिसुगुरुसार्वभौमाः, पं० पुण्यमूर्त्तिगणि–पं० मतिविशालगणि–वा० लब्धिविशालगणि–वा० रत्नमूर्त्तिगणि–पं० मतिराजगणि–वा० मुनिराजगणि–पं० सिद्धान्तरुचिगणि–पं० सहजशीलमुनि–पं० पद्ममेरुमुनि–पं० सुमतिसेनगणि–विवेकतिलकमुनि–क्रियातिलकमुनि–भानुप्रभमुनि–प्रमुखसुमुखकल्मषपराङ्मुखसुखसन्तोषविशेषप्रेङ्खत्प्रेक्षोल्लेखकृतपातकनिष्पेषदूरापसारितद्वेषविशुद्धवेषविधुतविगाननिस्समानन्यत्कृतमानसम्यग्ज्ञानविनीतदोषवितानदूरञ्जनीयजनरञ्जनसार्थजन्यसर्वाङ्गीणगुणोड्डामरक्रियाकाण्डशौण्डीरधीरिमोद्दामप्रकामसंयमारामविहारदक्षमुमुक्षुसितपक्षशिरोविसरशेखरीक्रियमाणक्रमणराजीवरजोविस्तारा वर्णनातीतगुणप्राग्भारा विजयन्तेतमाम् ॥卐 ॥

[विज्ञप्तिपत्रप्रेषक - उपाध्यायश्रीजयसागरसमुल्लिखितस्वकीयस्थानादिवर्णनम् –]

§५. अन्यच्च, अस्ति विविधवसुधावलयभालभूषणललामोपमानो नानाग्रामाकरपुरपत्तनसन्निवेशसरित्सरोवरघनविपिनाद्यास्थानरामणीयकस्पृहणीयतमोद्देशः प्रस्तमरामेयश्रीनिवे-

शसम्पन्नशर्मदेशः, विमलतरतुरङ्गरङ्गत्तरङ्गशृङ्गतरत्तरुणलक्षणचटुलचक्रवाकचलद्बकोटकारण्डवमण्डलीमण्डितोपान्तया पुण्यागण्यपानीयया पश्चिमपयोधिमभिसरन्त्या स्थूलोल्लोलमालाविलासच्छलाद्दूरात्सङ्गमोत्कण्ठया कोमलभुजलताः स्वपतिं प्रति विस्तारयन्त्येव नदीमातृकजनोज्जीवनजीवनया लालसहंसया विपाशया, चन्द्रभागया, ऐरावत्या, सिन्धुमहानद्या च सर्वतोऽधिभूमि प्राप्तप्रसरयोपेक्षितजलदप्रवेशः सिन्धुनामा देशः।

अपि च–

नानाकेलिकलाकुतूहललसत्कल्लोलरत्नाकरो, देशः कस्य स सम्भवेन्न रतये प्रोन्निद्रभद्रावनिः।
क्रीडाक्रीडविहारिणो रचितबिब्बोकानशोकानलं, लोकान् यत्र निरीक्ष्य वेत्ति जनता स्वर्गोऽयमेवास्ति किं!॥९४॥

किञ्च–

यो धनैः सङ्कुलोऽप्युच्चैः सदाऽऽयोधनवर्जितः। वनानि यत्र पान्थानामवनानि भवन्त्यहो!॥ ९५॥
सदम्भा यत्र तटिनी सकुरङ्गा वनावनिः। सक्षया च पुरी ख्याता जनता न तु यत्र हि!॥ ९६॥
धनानि यत्र लोकानां विपुलानि मनांस्यपि। परार्थकरणेष्वेव रमन्ते सर्वदाऽपि हि॥ ९७॥

तस्य महामण्डलस्य मुखमण्डनं श्रीमन्मल्लिकवाहनाभिधानं श्रीनिधानं पुटभेदनं वरीवर्त्ति।

तथा च–

रङ्गद्गौरीगणश्लाघ्यं श्रीदपुण्यजनाश्रयम्। महेश्वरकृतास्थानं यत् कैलासायते पुरम्॥ ९८॥
वनानि नन्दनायन्ते विमानन्ति महागृहाः। दातारः स्वर्द्रुमायन्ते यत्रामरावतीसमे॥ ९९॥

जना धनैर्यत्र परं जयन्ति दानेन सर्वानपि रञ्जयन्ति।
कलिप्रभावं परिगञ्जयन्ति देवान् गुरूँश्चापि सभाजयन्ति॥ १००॥
कूलङ्कषाशालितसन्निकर्षेऽत्राभ्रंकषावासलसद्ध्वजेषु।
विसृज्य चापल्यगुणं स्वकीयं श्रियः स्थिरा आढ्यगृहेष्वभूवन्॥ १०१॥

यस्मिन्नन्यान्यदेशीया नैगमा लाभकाङ्क्षिणः। निवसन्ति सुखं पद्माकरे मधुकरा इव॥ १०२॥

तत्र श्रीजिनमतप्रभावकश्रावकसङ्कुले श्रीजयसागरोपाध्यायाः, मेघराजगणि–सत्यरुचिगणि–पं० मतिशीलगणि–हेमकुञ्जरमुनि–पं० समु(मय)कुञ्जरमुनि–कुलकेशरमुनि–अजितकेशरिमुनि–स्थिरसंयममुनि–रत्नचन्द्रक्षुल्लकपुरोगप्रोत्सर्पत्परमार्थसाधनाभियोगसुस्थितमनोवाक्काययोगसारानगारपरिवारप्रसाधिताध्याया वर्त्तन्ते।

तान् श्रीजिनभद्रसूरीश्वरांस्तथाभूताँस्ते श्रीजयसागराभिषेकाः सादरमप्यपास्तदरं सबहुमानमवमतमानं साञ्जसमप्यनसमञ्जसं सप्रश्रयं सविनयं सहर्षं सरोमोद्धर्षं सानन्दं सविस्मयं त्यक्तस्मयं सोल्लासं सप्रकाशं दिवसकरसम्मितावर्त्तवन्दनेन सुखसम्पत्तिसाधनेन शिवाध्वस्यन्दनेन दुष्कर्म्ममर्म्मशिलोच्चयच्छेदनसङ्क्रन्दनेन घनाघनेनेव विनयाङ्कुरविपिनसुल्लास्य आलस्यं च परास्य सुस्फीतिपुण्यप्रीतिस्यूतसद्युक्तिभक्तिभावं प्रकाशसञ्जवो गलितमन्यवो विज्ञपयन्ति। पुनरेतदर्थसङ्ग्रहश्चेत्थम्–

नम्यान् प्रणम्य सम्यक् श्रीअणहिल्लपत्तनाभिधानपुरे ।
संस्थायुकान् सतत्रान् श्रीमज्जिनभद्रसूरिवरान् ॥ १०३ ॥
श्रीसिन्धुदेशमध्यगमल्लिकवाहणपुराज्जगत्ख्यातात् ।
जयसागराभिषेका वन्दित्वा ज्ञापयन्तीत्थम् ॥ १०४ ॥

*

[*श्रीजयसागरोपाध्यायज्ञापितस्वकीयकार्यप्रवृत्तिवर्णना –*]

§६. तथा च – इह हि मिहिरकरस्पृष्टानि पुण्डरीकाणीव सदुपकारतुष्टानि सज्जनजनमनांसीव धाराधरधाराहतकदम्बवृन्दानीव च विलसदुल्लासपेशलानि सुखविजयारोग्यसुभगम्भावुकानि भविकानि श्रीमत्पादप्रसादसम्पदोत्सर्प्पमाणानि प्रोज्जृम्भन्तेतमाम् । दूरापसारितामितशोचनं तमस्तोमविरोचनं सुखसम्पत्तिसंयोजनं प्रीणितसज्जनजनं अकाण्डामृतकुण्डमज्जनं प्रयोजनं चादः – यथा, समायासीदसीममहिमप्राज्यश्रीपूज्यराजप्रहिता सर्वजनमहिता हितावहस्वरूपपक्षभरं विस्तारयन्ती सन्मानसप्रिया नालीकवदना मधुरवाक्यपेशला कोमलपदपङ्क्तिर्लिखितिकलहंसिका चिरकालादस्मत्करकुड्मलकमलाऽलङ्करिष्णुभावमिति । सा च तत्रत्यतत्तदशेषविशेषप्रख्यापनकूजनेनास्मन्मनःपरितोषमपुषत् । सा कथमिव वर्णनातिगगुणा वर्ण्यते ? – [1]या कुमुद्वतीवातीव विमलसितपत्रप्रतिष्ठिता नालसहिता च लसन्नीलमणिवर्णनीयसुवर्णसवर्णाक्षरदक्षरभ्रमरमालालङ्कृतमध्यभागा निरुपमतमनवनवलसद्रसमकरन्दबिन्दूद्भावनेन भव्यालिं तर्प्पयामास । [2]यां चात्यद्भुतप्रचितसुरचनवचनचातुरीचारूक्तियुक्तसूक्तवर्ण्यवर्णक्रमन्यासमञ्जुलां निभालयन्तो विस्मयविस्मृतनिमेषतया निवातनिश्चलनीलोत्पलपलाशायमानलोचनास्तत्तदर्थकौतुकाकूततरलितमनसो विद्वांसो बोभूयांचक्रिरे । [3]यया च पर्जन्यवृष्ट्येव विविधबन्धुरमधुरसद्युक्तिप्रकारसमाचारामृतासारं वर्षन्त्या तुष्टिपुष्टीश्चतुरचेतश्चातका निरातङ्काश्च चेक्रीयांचक्रिरे । [4]यस्यै च शरद इव नाना सहृदयजनहृदयजलाशयपङ्कशोषिण्यै सर्वजगत्तोषिण्यै कुवलयोल्लासपोषिण्यै समस्तशस्ताशाप्रसन्नीकुर्वन्त्यै स्पृहयन्ति साधुराजहंसाः । [5]यस्याश्च चञ्चद्वल्ल्यां इवोद्वृत्तैः सरससदुक्तिसूक्तफलपटलैर्मनोबालकं रमयन्ति सन्तः । [6]यस्याश्च बहुलरत्नापूर्णायाः परमोदकानुभावाया विलसद्गाम्भीर्यगुणवर्यायाः उल्लसदविरलोज्ज्वलानवद्यगद्यमालामाद्यत्कल्लोलायाः स्फुरद्धेतुयुक्तिजातसम्पातवक्रनक्रचक्रदुरधिगमायाः पयोधिवेलाया इव मध्यं कथमप्यवगाह्य विबुधबुद्धिबेडाकष्टेन कथञ्चित् पारीणभावमनुबोभूयते । [7]यस्यां च सरस्यामिव मधुरघनरसप्रशस्यायां जगज्जन्तुतापव्यापनिर्वापपरायां चातुरीलहरीभिरुल्लसन्त्यां भारती भगवती हंसीव हसन्तीवोल्लसन्तीव वसन्तीव स्नान्तीव मज्जन्तीवोन्मज्जन्तीव किलन्तीव क्रीडन्तीव साक्षादिव नित्यं लक्ष्यते ।

किं बहुना ? –

विनाञ्जनं लोचनयोर्विकाशनं ह्यनभ्रवृष्टिश्च वपुष्यतर्किता ।
विनापि राज्यं सुखसम्पदासीत् किमप्यपूर्वा गतिरेतदीया ॥ १०५ ॥

अपि च –

नयनसुखदां पायं पायं मुहुर्नयनाञ्चलैः, सुचिरमपि यां ग्राहं ग्राहं मुदा करकुड्मलैः ।
हृदयनिहितां कारं कारं स्फुरत्पुलकाङ्कका, वचनविषयातीतं तोषं परं स्म लभामहे ॥ १०६ ॥

§७. सा तादृक्षा क्षपितजगत्तापा स्वसुखावस्थानभव्यजनतत्तद्गण्यपुण्योपकारविधाननवनवस्थानविहरणमज्जैनमतप्रोत्सर्प्पणतत्तदन्तिषदध्यापननानाधर्मोत्सवविधापनवरव्याख्यानविधानादिरूपशुभरूपस्वरूपनिरूपणदीपिका यथावसरं तदनागमहिमागमसुकुलितास्वान्मानसानन्दमाकन्दवृन्दोल्लासिनी वसन्तर्तुरिव सदाऽह्लाय प्रसह्य प्रसाद्या। तथा वयमत्र विघटमानकमलकोशमध्यनिर्गच्छदतुच्छोत्साहवशमाद्यन्मधुकरझङ्कारकृतप्राभातिकमङ्गलध्वनौ सङ्घटमानचटुलचक्रमिथुनपृथुप्रमोदौजस्विमञ्जुकूजनकोलाहलिनि सञ्जायमाने विभातसमये, अपराशासंसर्गरङ्गद्रागात्मपत्यवलोकनोत्पन्नमन्युवैमुख्यां प्राचिदिग्विलासिनीं कोमलतरैः स्फुरत्कश्मीरजरजोराजिमञ्जिमजित्वररङ्ग्यत्कौङ्कुमाम्भःशुभत्कौसुम्भकुसुमकिंशुकशुकचञ्चुचञ्चुरचलत्किङ्किल्लिपल्लवहिङ्गुलप्रवाललीलामनुभवद्भिः प्रसृत्वरैः करप्रसरैः प्रसादयितुमिव प्रसाधयति स्पृशति जगत्प्रबाधिप्रबोधप्रथमप्रारम्भमङ्गलकलशायमानमण्डले मार्त्तण्डे कलहंसशावकेषु प्रथमोन्निद्रेषून्मुद्रितलोचनेषु तत्कालोज्जृम्भमाणकमलाकरकेशरैः कल्पवर्त्तं कुर्वत्सु सद्भक्तिभावोल्लासभाजनजनितजिनसभाजनसभाजनस्वान्तपोतकान् मधुमधुररसेक्षुरसपायसमाधुर्यजैत्रश्रीवामेयचरित्रगतोपदेशपेशलपृथुलप्रातराशप्रदानेन पुण्यपुष्टिभाजः सम्भावयन्तः, मध्यंदिने मतिशीलगणि–सम[य]कुञ्जरमुनि–स्थिरसंयममुनीन् अधीतज्येष्ठक्षेत्रसमासादिधर्मप्रकरणान् कर्मग्रन्थं कर्म्मविपाकाख्यमध्यापयन्तः, तद्द्वयं चाभिनवकाव्यशिक्षायां योजयन्तः, रत्नचन्द्रक्षुल्लकं चाधीयमानस्वाध्यायं शब्दब्रह्मव्याकरणमधिजिगापयिषन्तः, परान् निर्ग्रन्थानपि तत्तल्लक्षणान्वेषिकीनिघण्टुस्वाध्यायादिग्रन्थपाठनेन यथासमयं सग्रन्थानादधानाः; वनीपाला इव नवनवागमान् कदाचित् सारयन्तः प्रमादपिशुनोपप्लवाच्च निवारयन्तः, कदाचिदुच्चावचाभिग्रहोपचितपवित्रव्रतजालविटपिनो भव्यजनस्वान्तमृदुलतमक्षितितलप्ररूढान् सदुपदेशशंवरयोगेन प्रौढिं प्रापयन्तः, कदाचिदन्तिषन्मतिव्रततिकाः शास्त्रतात्पर्यपर्यालोचनप्रकारमण्डपोन्मुखीः समारचयन्तः, कदाचिदवनीपाला इव विविधविषयनयस्वरूपसात्म्यं परिभावयन्तः, कर्हिचिच्चापणिका इव प्रमाणप्रमेयव्यवहारचातुरीं परीक्ष्यमाणाः, कदापि महासुरसेनाश्रितं नव्यं काव्यं देवा इव निबध्नन्तः, कदाचिद् बुधवद्देवगुरुसान्निध्यात् तुष्टिपुष्टिभाजः सांयमानाचारणीयान् योगान् समग्रानपि यथाकालं यथार्हं प्रयुञ्जानाः, आवश्यकेषु तेषु तेषु धर्म्येषु कर्म्मसु कृतावधानाः, कदाचित् संयममयात्मारामे मनोमयूरं रंरमयन्तोऽनूपदेशा इव सर्वतः कुशलताप्रधानाः श्रीपरमेष्ठिवर्द्धमानमहामन्त्रविद्याबीजाक्षरस्मरणत्रिषवणेन सर्वाङ्गीणं पापतापं न्यक्कुर्वाणाः, श्रीमच्छ्रीपूज्यराजवर्यपादप्रसादसौधमध्यासीनाः प्यानशुभध्यानं दधानाः, सपरिच्छदा विशदसमाधिनिस्तुषसुखविजयारोग्यसमाधिशुद्धा वेविद्यामहेतमाम्। तथा शुभवद्भिस्तत्र भवद्भिर्भदन्तमहत्तरैर्यल्लिलिखानमासीद्–

"यद्युष्माभिः केषु केषु स्थानेषु पुरेषु ग्रामेषु वा विहृतम्? क्व वा तीर्थे यात्राविशेषधर्म्मकर्म्म शर्म्मकार्यर्जितम्? आगन्तुकलोकवार्तया तु भवन्तो नगरकोट्टाय प्रतिष्ठासवः शोश्रूयांचक्राणास्तत्त्वं तु सम्यक्तया न जानीमः, तेन स्वकीयविहारयात्राप्रकारादिविशिष्टज्येष्ठपुण्यात्मकः समाचारोऽस्मच्छ्रुतिशष्कुलीवलयागावही विधेयः" – इति।

तत्रार्थे क्षणमेकं दत्तावधाना अवधारयन्तु गच्छेशाः, यथोत्तरार्हा भवामः।

*

[श्रीजयसागरोपाध्यायकृतमरुकोट्टतीर्थयात्रासूचनम् –]

§८. तथा च – इतः पूर्वमपूर्वसुपर्वश्रेणिरमणीये श्रीदत्तपुरुषोत्तमाश्रमे स्वःसमे श्रीमम्मणवाहणपुरोत्तमे पुरातनीं चतुर्मासीमसीमसुखसम्पत्त्या सूत्रयांचक्रिम। तदनु च सं० सोमाकस्तत्पुत्र – सं० अभयचन्द्रमेलितेन सङ्घेन समं श्रीमरुकोट्टमहातीर्थं भवाम्भोधितीर्थं पृथ्वीभक्तयो वयमवन्दिष्महि। ततश्च क्षेमेण मम्मणपुरे परमं प्रवेशोत्सवमनुभवन्तः ससङ्घा वयं प्राप्ताः।

इतश्च –

फरीदपुरमित्यस्ति पुरं परमवैभवम्। बहुधान्यधनसम्पन्नं सम्पन्नोज्झति यत् क्षणम्॥ १०७॥
यदेव देवगुर्वाज्ञासज्जसज्जनसङ्कुलम्। पदं मुदामुदाराणां ताराणामिव पुष्करम्॥ १०८॥
दीनदर्शं दयन्ते ये दयन्तेऽर्थिजने धनम्। दीयते दुरितं तेषां धर्म्मध्यानानुभावतः॥ १०९॥
श्रीमज्जिनेन्द्रशासनप्रभावकाः श्रावकाः शुचिमनस्काः।
निवसन्ति तत्र बहुला बहुलाभा लसितलक्ष्मीकाः॥ ११०॥ (– युग्मम्।)
तदा च लब्धवासराः स्फुरत्सद्भावभासुराः। तेऽस्मानभ्यर्थयांचक्रुर्विहर्त्तुं स्वपुरं प्रति॥ १११॥
प्रास्थिष्महि ततस्तस्मात् तदाग्रहवशाद् वयम्। साधु-भानु-समीराणां स्थितिर्नैकत्र युज्यते॥ ११२॥
क्रमेण द्रोहडोट्टादीन् ग्रामानुद्दामवैभवान्। मध्ये कृत्योत्सवे प्राप्ताः श्रीफरीदपुरं पुरम्॥ ११३॥

तत्र च विविधधर्म्मोपदेशामृतसेकेन भव्यलोकविवेकाङ्कुरानुज्जीवयतां जिनमतं प्रभावयतां कांश्चिद् ब्रह्मक्षत्रियब्राह्मणादीन् जिनमतानुभक्तीन् कांश्चिद् भद्रप्रकृतीन् तैस्तैर्द्धर्म्मोपदेशैः कृतार्थयतां सतां सपरिच्छदानां समाधिसमृद्धो बंहीयाननेहा व्यतीयाय।

[नगरकोट्टमहातीर्थपरिचयप्राप्तिनिवेदनम् –]

§९. अन्यदा च प्राचीमुखमण्डने भानुमति जायमाने जगद्व्यवहारहेतौ प्रत्यूषसमये आसीनायां राजन्यवाणिज्यब्राह्मणादिपरःशतोत्तमजात्यजनपर्षदि धर्म्मोपदेशक्षणं क्षणादासूत्र्य निवृत्तेष्वस्मत्सु गायनेषु च कलस्वरताललयमानबन्धुरां गीतिमुद्गायत्सु अकस्मादतर्कितः कुतोऽपि –

धूलिधूसरितकूर्चकुन्तलो वामहस्तविलसत्कमण्डलुः।
क्षामकुक्षिरतिवीथ्यतिक्रमात् कोऽपि जीर्णवसनोऽध्वगोऽभ्यधात्॥ ११४॥

आगत्य चोचितं विनयं व्यञ्जयन् समुदितमना मनागुन्नमितोत्तमाङ्गः पुरस्तादासांचक्रे। वयमपि सदाकृतिरिति तमाभाषयांचकृम – *"भोस्तीर्थयात्रिक! पथिक! कुतः प्रष्टव्योऽसि? केषु केषु तीर्थेषु दृष्टपूर्वीभवान्? 'नानादेशविहारिणः खल्वपूर्वापूर्वस्थानदृश्वानो भवन्ति' – तत्कथय काञ्चिदपूर्वामृतायमानां किंवदन्तीम्। परितोषय क्षणं पर्षदम्।"* असावपि – *"श्रूयतां महाभागाः"* – इत्यभिधाय सुधाकिरा गिरा भणितुमारभत। तथा च –

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि सञ्चितः श्रिया स्त्रीपुंसरत्नोत्कररोहणाचलः।
देशस्त्रिगर्तोऽर्त्तिहरोऽधिवासिनां तीर्थैर्गरीयानचलैरिवात्र यः॥ ११५॥
तत्रापि पावनं तीर्थं श्रीसुशर्म्मपुरे परम्। दृशोरध्वन्यतां याति पुण्यैरेव हि देहिनाम्॥ ११६॥
देवाधिदेवनाभेयादिकान् नत्वाऽऽलयास्थितान्। द्वेधापि परमानन्दप्राप्तं स्वं मन्यते बुधाः॥ ११७॥

तीर्थमनादियुगीनं वाङ्मानसागोचरप्रभावाढ्यम् । यैर्दृष्टं दृष्टिभ्यां तैर्द्रष्टव्यं जगति दृष्टम् ॥ ११८ ॥
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्तेषां वर्ण्या च वैदुषी । गत्वा जालन्धराधीशानानर्चुर्ये जिनेश्वरान् ॥ ११९ ॥
म्लेच्छव्याप्तेषु देशेषु निखिलेषु कलौ युगे । निरत्ययं हि तत्तीर्थं मराविव सरोवरम् ॥ १२० ॥
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कियद् वच्म्यपटिष्ठधीः । तदुपास्य ततः पश्चाद्धन्यंमन्योऽत्र चागमम् ॥ १२१ ॥

तदेतदत्यद्भुतं स्वदृष्टमुक्तं वाच्यं न्यक्षेण तद्विदांकुर्वन्तु । गन्तव्यो नोऽद्यापि महानस्ति पन्थाः ।" – इत्यभिधाय स प्राचालीत् । तदनु च तया वार्त्तया हृतमनस्का इव चित्रलिखिता इव सञ्जातरणरणका इव आग्रहग्रहिला इव वयं ससभ्या बभूविम । मनसीत्थं विचारितवन्तश्च – यदुत म्लेच्छाकुलेऽस्मिन्नपि नीवृत्यभ्येत्य तत्तादृङ्मिथ्यादृग्दुष्टजनाननिभालनोत्पन्नमालिन्यमलस्पृशो दृशोर्विमलतानिदानतत्तथाविधतीर्थदर्शनसुधासरःसम्पर्केण विशदता नापादयिष्यते तर्हि 'भृते सरसि तृषा, सिद्धे परिवेषितेऽप्यन्ने बुभुक्षा, सति विभवेऽपि दारिद्र्यं, समुदिते भानौ तमः' – इति न्याय आयातः । ततो येन केनापि प्रकारेण यथाकथञ्चिदेषा यात्रा समासूत्र्यते तदा साधु, अन्यथा पुनः क्व वयं क्व च श्रीनगरकोट्टाख्यं महातीर्थमिति मनोरथोऽस्मन्मनःपूर्वाद्रौ हिमांशुरिवोदैषीत् । एवं च ते ते श्रावका अपि यात्रायां जातोत्कण्ठा वयमिव भृशं बभूवुः । विशिष्य च तदा –

साधुराणासुतश्रेष्ठाः शिष्टाचारानुसारिणः । निवसन्ति त्रयस्तत्र त्रयो वर्गा इवाङ्गिनः ॥ १२२ ॥
तेषु प्रथमकः **सोमो** धर्म्मकार्यधुरन्धरः । द्वितीयः **पार्श्वदत्तो**ऽस्ति **हेमस्तु** गरिमास्पदम् ॥ १२३ ॥
तत्र तद्योग्यतां मत्वा तत्कार्यं तेभ्य एव हि । उपदिष्टं तदाऽस्माभिरुत्तमं ह्युत्तमोऽर्हति ॥ १२४ ॥
ते चैवं चिन्तयांचक्रुस्ततः शुद्धाशया रहः । यायावरैर्धनभारैः स्थावरं पुण्यमर्ज्यते ॥ १२५ ॥
गुरूपदेशाचेद्यात्रां कुर्म्मोऽत्रावसरे वयम् । निर्म्मलं सुकृतं कोशे विश्वे कीर्त्तिश्च तादृशी ॥ १२६ ॥
इति ध्यात्वा स **सोमेन्दुः** सबन्धुः साहसाग्रणीः । क्षमाश्रमणदानेन यात्रोपक्रममादधे ॥ १२७ ॥

[सा० सोमास्वीकृतनगरकोट्टतीर्थयात्रोपक्रमवर्णनम् –]

§ १०. ततश्च सुमहर्द्धिकः सपरिच्छदो यावता तत्तत्सन्निवेशेषु सङ्घमहाजननिमन्त्रणमहामन्त्रप्रणिधानपुरस्सरं तत्तत्सङ्घसम्महनिकायां प्रवृत्तः, तावता वयमपि तत्रत्यसङ्घाग्रहेण श्रीमाबारषपुरं श्रद्धालुगृहशतसङ्कुलं समुपेयूम । तत्कीदृशम् –

धार्मिकोऽपि जनो यत्र चित्रं जीवार्दको न हि । न चापविद्याकुशलो मार्ग्गणानपि नास्यति ॥ १२८ ॥

तत्र च वर्त्तमानाः कांश्चन परतीर्थ्यानपि जिनशासनानुकूलमनस्कान्, कांश्चन नवनवाभिग्रहविशेषप्रदानैश्च श्राद्धानिव वाडव-क्षत्रिय-वैश्यान् कृतार्थान् कुर्वन्तः, तथाविधधर्म्मोपदेशोल्लसद्देशनाप्रदीपकलिकोज्जृम्भणेन कापथसञ्चरिष्णून् जनान् सत्पथपान्थतां कांश्चन प्रापयन्तः, पुण्यफलाः कियतीरपि कालकलास्तत्रैवातिवाहयांबभूविम । अन्यदा च, तथाविधसर्वविकृतित्यागमयाभिग्रहग्रन्थिं समाप्तिसत्यंकारानुरूपवस्तुक्रयविक्रयव्यवहारिणा पितृहरिश्चन्द्रसहचरेण सा० शिवराजसुश्रावकेण परमनैष्ठिकेन समाचर्य्यमाणे सङ्घवात्सल्येऽनुतेष्ठीयमाने च सङ्घसत्कारे तोष्यमाणे यथौचित्येन याचकस्तोमे गायत्सु सर्वलोक-

प्रकटं गायनेषु परिसर्प्पत्याकाशं स्वर्गिगणामिदं वृत्तं निवेदयितुमिव वादित्रनिनादे शुभवेलायां ग्रामठक्कुरादिलोकसमक्षं श्रीआदिजिनप्रतिमां प्रत्यतिष्ठिपामतमाम्; एवं तोष्टूयांचकृम च –

तंतंतुतातो तीतेतिः, तांतांतांततोंतुत । नूनांनिनुन्ननानैना अन्नेनो न इनो ननु ॥ १२९ ॥

सम्पन्नमोक्षावसथो विकल्मषः समापयंस्तामसमर्यमोपमः ।
सनातनोद्दामसमृद्धिशस्यः स वः प्रदत्तामसमं शमुद्धरम् ॥ १३० ॥

वन्दितो वृषभेश ! त्वं महामहिममन्दिर ! । महाशयस्य भक्तस्य समाधिभरमीश्वर ! ॥ १३१ ॥

(–अष्टारचक्रम्, परिधिश्लोकः, क्रियागूढश्च ।)

तदित्थं सङ्घकार्यमाचर्य तत्कालागत – सा०रामा-सा०सोमा-हेमा-सा०देवा दस्सू – पुरस्सरफरीदपुरीयसङ्घामन्त्रणेन ततो विहृत्य पद्धत्यन्तरालायातेषु तेषु तेषु बहलभक्तिभावमञ्जुलविपुलश्रद्धालुकुलमण्डलाभिरामेषु ग्रामेषु तत्रत्यजनकारितानुत्साहोत्स्रुतपताकापल्लवान् पदे पदे प्रवेशोद्भवान् साक्षात्कुर्वन्तः, क्रमेण प्रस्तुतास्पदमलमकार्ष्म । ततश्च सङ्घो गणकमुपवेश्य सङ्घयात्राप्रस्थानमुहूर्त्तं निश्चिकाय । तदा चावसरे गुर्वास्थास्थेमभाजः सुबहवो बहुमन्यन्ते स्म । यदुतेदृशे विषमदेशकालादिभावेऽप्यचिन्त्यादृष्टसामर्थ्यादमूदृशं नाम कार्यं सरेदपीति । केचन पुनः कथञ्चित्तथाविधव्यवहारेण यात्राकारिष्वगारिषु साभ्यसूयास्तदुन्नतिं भाविनीमसहिष्णवोऽन्यथाऽन्यथा व्यब्रुवन् । केऽपि च मध्यस्थाः कालादिभाववैषम्यं ज्ञापितवन्तः – 'यदेतादृशेन सङ्घेन दूरदेशान्तरप्रस्थानं न युज्यते' इति । महाकार्यारम्भे सुलभे एवंविधे लोकवादे क्षणं दोलारूढमिव नश्चेतः समभूत् । ततः पारिणामिक्या बुद्ध्येति मीमांसामहे स्म – यदुत, लोकः खलु परविघ्नसन्तोषी; यद्वा लोकवाक्यानां नैकः प्रकारः, यदि तादृग् लोकवाङ्मात्रेण स्थीयते तदा द्वयोरपि न शोभा; न स्वयशो नापि परयशो रक्षितं स्यादित्येतत् कर्म्म निर्मितं वरम्, अनिर्म्मिते तु कृत्ये मनोमनोरथासिद्धेरसमाधिः सार्वदिकः, परेषां च प्रस्थायुकानां कलौ कालमुख्यमाविर्भविष्यति । ततश्च मनो यावन्मनाक् सत्त्वे प्रतिष्ठाप्य श्रीदेवराजपुरमण्डनकुशलशब्दाङ्कितगुरोर्वाञ्छितकल्पद्रोः प्रणिधानजं स्फुटरूपमुपदेशबलमासीसदाम । तदेतत् पिपासितस्य सुधापाननिमन्त्रणं नृत्येच्छोर्घर्घरस्रग्बन्धनं भृशमुन्मनीभावमुदपीपदत् । ततश्च तदादेशेन सन्नाहेनेव स्वचेतःशरीरं सन्नह्य साध्यसिद्धौ नितरां बद्धाध्यवसाया जातवन्तः । धर्मो जयति । त एव पूर्वगुर्वादयः शरणमिति कृत्वा । इत्यलं विस्तरेण । प्रकृतं प्रस्तुमः ।

अथ च शोभने दिने प्रशस्ते मुहूर्त्ते शुभकर्म्मप्रायोग्ये च योगे प्रियंकरणे, उच्चैर्गृहस्थेषु ग्रहेषु, सौम्यस्वामिदृक्सम्पन्ने लग्ने, यात्रार्हे च नक्षत्रे वर्त्तमाने, सा० सोमाकेन श्रीतीर्थप्रणिनंसया च प्रेरितपरमप्रमोदोल्लासेन चोत्साहितः श्रीसङ्घः प्रस्थानमङ्गलमसाधयत् ।

मङ्गलं भगवान् धर्म्मो मङ्गलं जिनशासनम् । मङ्गलं तन्मतः सङ्घो यात्रारम्भोऽतिमङ्गलम् ॥ १३२ ॥

*

॥ इत्येषा विज्ञप्तित्रिवेण्यां प्रस्तुतार्थप्रस्ताविका सरस्वतीकल्लोलाख्या प्रथमा वेणिः ॥ १ ॥

*

२. अथ तीर्थयात्रार्थसमर्थिका द्वितीया वेणिरारभ्यते ।

*

[तीर्थदर्शनार्थकृतप्रयाणावसरे संजातशुभशकुनवर्णनम् –]

§ १. तथा च, श्रीसङ्घस्य प्रयाणावसरे शुभोदर्कसम्पर्कशंसिभिः शकुनैश्चेत्थं विजृम्भितम् – यथा सङ्घस्य प्रस्तुतपुण्याशासाफल्यं सम्भावयन्त्य इव सावशेषा आशाः पुण्यप्रकाशा आसन् । परमाराध्यसान्निध्यकृतमार्गविघ्नभञ्जनस्य यात्रिकजनस्य भाविसुखव्यञ्जना इव प्रभञ्जना अनुकूलं ववुः । नास्ति किञ्चिद् युष्माकमवामदैवानां दुर्गममिति कथयन्तीव दुर्गा वामा शब्दं चकार । शङ्कुकर्णोऽपि स्वात्मनि प्रस्तावदक्षतामिवारोपयन् वामदिग्भागमाश्रित्य कोकूयामास । मौक्तिकाख्यः श्वा सव्याह्वां श्रयन् साधूनां प्रस्थानमङ्गले सान्निध्यमिव व्यधात् ।

अपि च–

कुम्भोऽम्भोनिभृतोऽभ्यगादभिमुखं शङ्खो जुघोष क्षणं, क्षोणीशाभिगमः सवत्ससुरभेरीक्षा च ढोलध्वनिः ।
फेरुर्वामरवश्चुकूज मधुरं जातत्वरस्तित्तिरि-रेवं सच्छकुनावलीद्विगुणितोत्साहा वयं प्रस्थिताः ॥ १ ॥

[विपाशातटिनीतीरकृतप्रथमप्रयाणवर्णनम् –]

§ २. ततश्च नाऽतिदूर एव जम्बूकदम्बनिम्बसर्ज्जार्जुनखर्जूरीप्रभृतिवनस्पतिश्रेणिसच्छाये बहुलकमलकिञ्जल्ककल्ककलितसौरभभास्वरेण सरित्तुङ्गाभ्रंलिहलहरिलीलान्दोलनोद्धूतपृषतशीतलेनानिलेन सेवनीयतया मनोहारिणि मुक्ताकणशङ्खबलक्षसिकतोल्लसद्भासि विपाट्तटिनीरोधसि सङ्घः प्रथमप्रयाणविराममकरोत् ।

ततश्च –

विकचकुवलयास्या सम्भ्रमद् भृङ्गमालोज्ज्वलबहलकटाक्षी पीनचक्रस्तनाढ्या ।
जललवणिमरम्या दर्शिताऽऽवर्त्तनाभिश्चललहरिभुजाभ्यामाह्वयन्तीव दूरात् ॥ २ ॥
कासहंसपरिहासलीलया तं रिरंसुजनमुत्सुकयन्ती ।
नव्यशष्पवसना व्यलोकि सा सिन्धुदम्भवशतो वराङ्गना ॥ ३ ॥
सन्मार्गरोधिनीं सर्वपथीनां तां च निम्नगाम् । शुद्धामिव मन्यमाना अतिचक्रमिम क्रमात् ॥ ४ ॥

[तदनन्तरमार्गगितान्यान्यस्थानप्रयाणसूचनम् –]

§ ३. तामुत्तीर्य च क्रमेण श्रीसङ्घो नानाग्रामानिवाऽऽरामानुल्लङ्घयन् श्रीजालन्धराननु प्रचचाल । चलिते च तस्मिन् विस्मितान्यलोके सकलमहीवलयलङ्घनजङ्घालाः करकृतकरवाला महाभुजा भुजावलग्नबलसम्पत्तयः पत्तयः केचिद् याष्टीकाः केचिद् बलाधिकाः पारश्वधिकाश्च, केऽपि दृढवपुष्का धानुष्काश्च, केचन वीरकोटीराः काण्डीरा नैस्त्रिंशिकाश्च, प्रोल्ललन्तः कूर्दन्तः पुरःस्फुरन्तो गर्जन्तो नानारूपप्राप्ता मूर्त्ता वीररसांशा इव स्वामिकार्यदक्षा बद्धकक्षाः पुरस्तादुचेलुः । तत्पृष्ठे च स्थौरीप्रष्ठा विशिष्टा भूयिष्ठास्त्वरया तुरगानपि मन्दगतिकानिव सम्भावयन्तः प्राचालिषुः । इत्थं च ते ते सङ्घजनाः केचिद् वाहनारूढाः, केऽपि गुरुदेवभक्त्यतिशयात् पादचारिणः, केऽपि मुक्तोपानहश्च वयमिव प्रस्थितवन्तः । तदा च प्रचलत्सङ्घजनान-

नोल्लसद्दहलकोलाहलनिनदैरासन्नवननिकुञ्जेष्वकाण्डकल्पान्तापातातङ्कशङ्काशङ्कुशल्यितमनसः सम्भाविताापदः श्वापदाः कान्दिशीकाः कथञ्चित् क्वापि निलीयावतस्थिरे । अन्यच्च तीर्थयात्रामनोरथप्रथितपृथुप्रभावास्ताघस्यानघस्य श्रीसङ्घस्य क्रमस्पर्शवशोल्लसत्सुकृतेन निराकृतांहोव्रजं तु रजोऽप्युच्चैर्विचचार । तथा च–

नियतं सङ्घलोकाङ्घ्रिलत्तोद्धूतो रजोव्रजः । धन्यंमन्यतया मन्ये नृत्यति स्म नभोऽङ्गणे ॥ ५ ॥

एवं चाविच्छिन्नैरेव प्रयाणैर्निर्वृतिस्थानानि पुराणीव वनानि मुञ्चन्, वल्लभारागोचितानि तरुणचित्तानीव वप्रान्तराणि साक्षात्कुर्वन्, पच्यमानगोधूमसङ्कुलानन्त्यजपाटकानिव क्षेत्रसीम्नः सुदूरं त्यजन्, क्रमेण निश्चिन्दीपुरीपरिसरसरोवरान्तर्वर्त्तमानोद्दामविपिनोद्दण्डपद्मखण्डान्तरे कलहंसकलामनुभवन्निवासांचकार श्रीसङ्घः ।

अपि च–

कृताश्रितपरित्राणः सुरत्राणोऽस्ति भूधवः । परन्तपः पुरे तस्मिन्नाके नाकपतिर्यथा ॥ ६ ॥
सोऽथाऽऽकर्ण्य सकर्णानामग्रणीः सङ्घमागतम् । चित्रीयमाणहृदयो द्रष्टुं सोऽप्यौत्सुकायत ॥ ७ ॥
तुङ्गाङ्गतुरगारूढः प्रौढामात्यादिसङ्गतः । अदृष्टपूर्वीनिर्ग्रन्थानुपेत्योचितमाचरत् ॥ ८ ॥
अपूर्वदर्शनान् साधून् दर्शं दर्शं नरेश्वरः । विसिष्मिये समं पौरै राजहंसान् मरुर्यथा ॥ ९ ॥
तैस्तैस्तथाविधैर्धर्म्यैरुपदेशैः सुरञ्जिताः । प्रमोदमेवं मनुजास्तदा पुरीश्वरादयः ॥ १० ॥ (–गुप्तक्रियः ।)
"वनमप्यभवद्धन्यं नगरी तु गरीयसी । प्रदेशोऽयं प्रशस्तोऽभूद् येन यूयमुपागताः ॥ ११ ॥
पुरा श्रुताः स्थ गोष्ठीषु श्रुतिभ्यामभ्युपायतः । पुण्योदयेन नः प्राप्ताः साम्प्रतं दृष्टिगोचरम्" ॥ १२ ॥
एवं स्तुत्वा च नत्वा च भूमानानन्दतुन्दिलः । सम्मान्य सङ्घं वेगात् ततो धाम जगाम सः ॥ १३ ॥
विपाशापयसा छिन्नपिपासाः सङ्घपूरुषाः । स्वगेहनिर्विशेषेण सुखेन प्रस्थितास्ततः ॥ १४ ॥

सर्वतो विसारिणीं सरिल्लक्ष्मीं वामतः साक्षात् कुर्वतामधोऽधो विविधपादपान् सञ्चरतां तेषाम्, व्यतीते कियत्यपि पथि साधुरिव परमोदकः सचित्तप्रकाश इवालब्धमध्यः स्त्रीचरित्रप्रकार इवासुगहनः क्षत्रिय इव महासत्त्वाढ्यः क्रीडत्कुररुकेकिबकचक्राङ्कचक्रवालशालितपरिसरः विस्मेरारविन्दवृन्दो महानेको नदः पुरो दृग्गोचरमवततार । दृष्ट्वा चेत्यूहांचक्रुवांसः–

नूनं यानतया निषेव्य सुचिरं धातारमाऽऽतूतुषद्, हंसः स्वीयकपक्षिजातिनियतस्थानाय चाभ्यर्थयत् ।
तुष्टोऽसौ तदिदं पदं हि विदधे व्याधाद्यगम्यं क्वचित्, तस्मादत्र पतत्रिणः प्रमुदिताः क्रीडन्त्यहो निर्भरम् ॥१५॥

परितोऽपि विसारिणा परितं पयसाऽत्यच्छगभीरभावभाजा ।
वनमेतदुदग्रराजधानीमिव सेवन्ति सुखं विहङ्गराजाः ॥ १६ ॥

अपि च–

स्मितकोकनदं नदमभि रभसा सम्भूय सारसा एते ।
बिशमकरन्दास्वादनमत्ताः क्रीडन्ति निर्व्रीडम् ॥ १७ ॥
अभिकजमकरन्दमापतन्तीं स्थूलोन्नीलसशब्दभृङ्गमालाम् ।
अवलोक्य शिखी घनभ्रमेणोत्केको नृत्यति भासयत्कलापम् ॥ १८ ॥

एवं च समन्तान्नदश्रियं केनचिद्वनेचरेण वर्ण्यमानां श्रुत्वा द्रष्टुमिव रविरुच्चैः पुष्करदेशमारुरोह ।

तदा च–

सारङ्गास्तरुकोटराणि शरणीकुर्वन्ति तापार्दिताः, हित्वा रङ्गममी विहङ्गमगणाः कुञ्जं भजन्तेऽञ्जसा ।
वीथ्यः पान्थनखंपचोच्चरजसा जाता अमूर्दुर्गमाः, तेजोराशिभिरुत्सृते दिनपतौ जाते ललाटंतपे ॥ १९ ॥

अयं नदपरिसरः, एते च सान्द्रद्रुमच्छायाः प्रदेशाः, एते च तुङ्गतरङ्गोद्गृहीतपृषतशीतला अनिलाश्च, यथासमयोपपन्ननिरुपाधिसुखसाधनं तदस्य वचनं तथ्यं सम्भावयंस्तत्रैव सङ्घजनः समग्रोऽपि स्थितिं व्यरचयत् ।

अथ च–

प्रदेशे सजले केऽपि तस्थुः केऽपि तरोस्तले । आर्द्रदूर्वावणे केचित् पान्थानामीदृशी दशा ॥ २० ॥
हंसवत्सुचिरं कृत्वा जलकेलिं नदाम्भसि । केऽपि निर्वापयामासुर्मनांसीव वपूंष्यपि ॥ २१ ॥
समाधिमानसौ जातः प्रयाणमकरोत् ततः । अथ क्रमात् समायातस्तलपाटकसन्निधिम् ॥ २२ ॥

तत्पुरोपवनेषु चतुष्पथेष्विवोद्गन्धिसौगन्धिकेषु मन्दमृदुमरुदन्दोलिताभिर्लताभिर्वीज्यमान इवातुच्छगच्छच्छायाच्छलेन च्छत्रेणाऽऽभूष्यमाण इव पिककोकचाषादिपक्षिकैंकारैः स्वागतं तद्वनाधिष्ठात्र्या पृच्छ्यमान इव क्वापि महाशोणाभ्यर्णे कीर्णकमलमकरन्दबिन्दुवृन्दसौगन्ध्यस्पृहणीये भूभागे प्रयाणविच्छेदमकरोत् सः । तत्र च पवित्रविकसितपद्मवनरामणीयकमनालोकितपूर्वं निर्वर्णयन्तो जना एवमूहांचक्रुः–

किममी सलिलाधिदेवतानां प्रत्यक्षाः प्रसरन्त्यहो ! कटाक्षाः ? ।
किमु वा शुचि तन्निवासयोग्या तासां सौधपरंपरा जलान्तः ? ॥ २३ ॥

किमन्यत् ? एके पद्मवनं दृशा निपिबन्तोऽङ्गुलिभिः पार्श्वगान् सौत्सुक्यमाहुः–"*पश्यत पश्यत भोः ! कथममीषु कमलेषु सुगन्धलाभलोलुपा मधुपाः पतन्ति ? । कथं चाकृतपरपीडाः साध्वापीडा इव रसमाहरन्ति ? । अस्माभिरहो ! कूपमण्डूकप्रायैरियद्यावद्यन्नानुशीलितं तदपि गृहान्निर्गतैर्दृष्टम्*" **–इति । अन्ये तु दाडिमीफलेषु तेष्विव बीजपूरेषु फलितपुष्पितेषु तद्वदाम्रेषु द्राक्षाखर्जूरीषु च चक्षुः क्षिपन्ति स्म, तदभिलाषपराङ्मुखं नतु मुखम्; इत्येवं यावत्तदभिनवदर्शनोत्पल्लवितचक्षुरानन्दः सङ्घस्तत्र प्रदेशे यावदास्ते, तावता–**

"अभिगमणवंदणनमंसणेण पडिपुच्छणेण साहूणं । चिरसंचियं पि कम्मं खणेण विरलत्तणमुवेइ ॥ २४ ॥"

–इत्याद्यर्थजातं कृतार्थयन्निव श्रीदेवपालपुरीयः सङ्घो गुरुवन्दको ढुढौके तथाविधातर्कितगुरुसमागमोत्कण्टकितः । तदा चास्माभिरपि तथाविधोपदेशरसायनेन सम्भावितः परमास्थास्थैर्यं तथार्जिजत् स्वशासने यथा मिथ्यात्वकन्दकुद्दालेषु पुरुषेषु प्रथमां रेखां खल्वात्मनः समपूपुषत् । ततश्च–"*भवन्तोऽस्मदास्पदं पवित्रयन्तु स्वपादावधारणेन*" **–इत्यवितथकृताग्रहं तं कथञ्चित् सम्बोध्य पुरः प्रचेलिवांसः ।**

[मध्यदेशप्रयाणवर्णनम् –]

§४. ततश्च विपाशाकूलंकषायाः कूलमनुव्रजन्तः क्वचिद्वेतखतः, क्वापि कुमुद्वतः, कुत्रापि नडकीयाननूपदेशान् शाद्वलान् सरसान् दृग्गोचरयन्तो मध्यदेशं प्रापाः ।

यत्र गोसङ्कुला ग्रामाः बहुक्षीराश्च धेनवः । क्षीराणि प्रचुराज्यानि नक्रपेयानि तान्यपि ॥ २५ ॥

अपि च–

कोमलचनकाहारः कनकमयाभरणजातपरिहारः । मुग्धगतिर्व्यवहारो ग्राम्यजनेष्वेष आचारः ॥ २६ ॥
अदेयराजभागास्ते निरङ्कुशैकवृत्तयः । ग्रामीणा नागराँस्तस्मात् कथंकारं हसन्ति नः ॥ २७ ॥
चिरायुषः सुसंस्थानाः सुबद्धदृढसन्धयः । ते हि कृतयुगोत्पन्ननरेभ्य उद्धृता इव ॥ २८ ॥

अपि च–

कृतनापितकर्म्माणो हलकर्षादिकर्म्मभिः । पाणिपादेषु नैधन्ते नखास्तेषां शिखा इव ॥ २९ ॥
महाकूपसमुद्रेभ्यो जलाकर्षणशेमुषी । दृष्टा ग्रामेयकेष्वेव यदि वा धूमयोनिषु ॥ ३० ॥
कृष्णोर्णामयवस्त्राणि वसाना ग्रामवासिनः । माञ्जिष्ठेष्वपि वस्त्रेषु दृष्टा नित्यमनादराः ॥ ३१ ॥
शास्त्रशिक्षां विनाऽप्येषां मतिः स्फुरति निस्तुषा । आजन्मक्षीरपुष्टानामिदं लक्षणमादिमम् ॥ ३२ ॥

यत्र च–

यासां वराशयश्चोला वराशयश्च सुन्दरः । अतोऽल्पधनयोगेऽपि पौरीभ्योऽप्यधिकाः सुखैः ॥ ३३ ॥
चण्डातकैस्तु पामर्य आपादतललम्बिभिः । यान्ति सन्मार्जनीकार्यं कुर्वन्त्योऽध्वन्ययत्नतः ॥ ३४ ॥
ग्रामस्त्रीणां न शृङ्गारो न संस्कारश्च तादृशः । तथापि तासां सौन्दर्यं गुणाः प्रकृतिजाः खलु ॥ ३५ ॥
उच्चाश्चूडाः शिरस्युच्चैर्दधाना ग्रामयोषितः । या विनापि तदाधारं घटानुत्पाटयन्त्यलम् ॥ ३६ ॥
पशूनां परमा पुष्टिः क्षेत्रेषूत्पत्तिरुत्तमा । नव्यं रसायाः साद्गुण्यमहो ! देशस्य सौष्ठवम् ॥ ३७ ॥
पीयूषपानपर्याप्तिर्ग्राम्याणां द्युसदां तथा । तद्वासस्थानं यो ग्रामः स किं मन्येऽमरावती ॥ ३८ ॥
स्तन्यपानमबाल्येऽपि यथेच्छं दधिभोजनम् । घृतं च सलिलन्यायाद् ग्राम्याणामप्यहो ! सुखम् ॥ ३९ ॥

तदित्थं देशचर्यानुभवपारदृश्वरीं शेमुषीं सङ्घटयन्तस्तज्जानपदमध्यगा एव यावत्कतिचिद्दिनानि स्थाने स्थाने विलम्बितवन्तः, तावदकस्मादेकतः षोषरेशयशोरथानीकस्य, अन्यतस्तु तुरुष्काधीशशकन्दरानीकस्य च सर्वतः–"*इदमागतं कटकम्, इदमागतं कटकम्, नश्यते पलाय्यते*"–इत्यादितुमुलारवो विश्वभयंकरो वीप्साबहुलः सर्वत्र प्रसारमापेदानः । ततश्च क्षणं किंकर्त्तव्यताविमूढाः, पुनः प्रणिधेयप्रणिधानप्रधानीकृतमानसोत्साहबलाः, कथञ्चिदुपलब्धतादृशोपायनिरपायास्तमस्काण्डमिव तादृगुदग्रभयं विड्वरडम्बरं सूर्योदयेनेव सङ्घपुण्योदयेन दूरमुज्ज्वास्य सहसा पुनर्विपाशास्तटमुपसस्रुपिम । नाव्यां तां च क्षणात् सममापदा पारयित्वा कुङ्कुदाख्यं घट्टं सङ्घट्टयन्तो मध्यदेश–जाङ्गलदेश–जालन्धरदेश–काश्मीरदेश–सीमासन्धिभूतं स्वाचारनिष्ठमहाजनपूतं हिरियाणाख्यमहास्थानमध्यासामासिम ।

[हिरियाणाख्यस्थाने कृतानां संघाधिपत्यादिपदानां वर्णना –]

§५. तत्र च शुचिभूप्रदेशे प्रधानधान्यक्षेत्रे महाजलाशयं समया कानुकयक्षायतनस्य नातिदूरे शाद्वलसच्छायशाल्मलिमहासालमूले माधवमासि धवलैकादशीवासरे सर्वोत्तमवेलायां प्रस्तुतशाखापुरवास्तव्येषु मिलितेषु महाजनमेलापकेषु, परःशतैर्भट्टचट्टादिभिरुद्घाष्यमानेषु पुण्यपुरुषावदातेषु, मञ्जुलधवलमङ्गलप्रवृत्तासु तासु तासु नितम्बिनीषु, खेलनलीलामाकलयत्सु निखिलखलोच्छृङ्खलग्रामखेलकेषु, गन्धर्वविद्यां विशदयत्सु गन्धर्वजनेषु, दानधर्म्मायोद्घुषितरोमसु जायमानेषु दातृजनवपुष्षु, पुष्यमाणेषु तैस्तैः कालोचितेषु तेषु

तेषु रसेषु; सुश्राद्धाचारधुरीणस्य तथाविधोदारकार्यप्रवीणस्य साधुश्रेष्ठसोमाकस्यानिच्छतोऽपि सङ्घाग्रहात् तथाविधां योग्यतामवधारयद्भिर्विधिवत्सङ्घाधिपतिपदं न्यदायि। तेनापि पात्रापात्रसापेक्षं दानमदायि। विशिष्य सङ्घोऽपि मुत्कलकरकुड्मलनिर्गतेन ताम्बूलादिना देयवस्तुप्रकारेण तथा रञ्जितो यथा प्राचीनानपि सङ्घपुरुषान् विस्मारितवान् यदि भविष्यतीति। किं बहूच्यते, ह्युत्सवोऽयं सर्वाङ्गसुन्दरः संवृत्तः।

तदा च मल्लिकवाहननिवासिना साधूद्धरेण पाश्चात्यवाहनपदं गृह्णता कुलमप्युद्धृतम्। अपि च सं० मागटपौत्रः साधुदेवाङ्गजो महाधरपदमुद्धरः सम्मदात् समुपादात्। अन्येऽपि साधुनीवा–साधुरूपा–साधुभोजाख्यास्त्रयो महाधरतामेवाधार्षुः। सैल्लहस्त्यं तु बुचासगोत्रीयसाधुजिनदत्तसुश्रावके निदधे। एतैश्च सङ्घपत्यादिभिर्यदवदानमाधायि तद्वयं वक्तुं न शक्ताः, परन्तु तत्करणीयचिन्तनप्रभावजः पुलकस्त्वद्यापि नोदास्ते।

किन्तु –

साधर्म्मिकवात्सल्यप्रमुखो यो विधिस्तदा। चक्रे वक्रेतराकूतैः स तैरेव भवेद् यदि ॥ ४० ॥

अथ कृतकृत्येषु तेषु तेषु सङ्घपुंस्सु द्वितीयदिने तदवदातं दृष्ट्वा गर्ज्जनव्याजेन [त]द्गुणानुद्गृणन् तद्दानस्पर्द्धयेवानिवारितप्रसराभिः साराभिः सलिलधाराभिः ग्रीष्मताडितां पृथिवीमाश्वासयन्नदृष्टपूर्वमहावर्षोपलवर्षेण पान्थान् यथा कथञ्चित् कातरयन्नतिप्रचण्डपवननिपातेन पटकुटीकुटीरकादि विसंस्थुलयन् माधवोऽवर्षीदिति हेतोस्तत्र महाव्रतमिता वासरा अवस्थानमवेक्ष्य लग्नाः।

[सपादलक्षपर्वतमालागतप्रयाणवर्णनम् –]

§६. अथ सपादलक्षपर्वतभुवं सह सङ्घेनोल्लङ्घयितुं यथावत् प्रवृत्ताः।

यत्र च –

षट्खण्डान्यतमं खण्डं यद्वा द्वीपान्तरं किमु। परदेश्या विकल्पन्ते दृष्ट्वा शिलोच्चयानिति ॥ ४१ ॥
उच्चगां तारकश्रेणिं परिचेतुमिवोच्छ्रिताः। शैलाश्चाभ्रंकषैः शृङ्गैर्निर्झरोद्गारनिर्मलैः ॥ ४२ ॥
वीथ्यां वितस्तिमात्रायां सञ्चरन्नतियत्नतः। जनोऽधःपातभीत्यापि साधुचर्यां श्रयत्यहो ! ॥ ४३ ॥
दिवापि सिद्धाञ्जनवन्नेक्ष्यन्ते भूमिगैर्नरैः। वीक्ष्यन्तेऽधित्यकासंस्था वानरा इव वा नराः ॥ ४४ ॥
दुर्लभाम्रफलावाप्त्यै कर्क्करैः कोपयन् कपीन्। फलं तैरम्रतां नीत्वा जनश्चक्रे समाहितः ॥ ४५ ॥
भूमिदेशोद्गता वृक्षाः ये चाद्रिशृङ्गसङ्गताः। शीर्षे द्वयेऽपि ते साम्याद् बद्धस्पर्द्धा इवावृधन् ॥ ४६ ॥
उच्चैः शाखाशिखालग्ना इव तारा निशागमे। वृक्षाधस्तात् सञ्चरतां कुर्वन्ति कुसुमभ्रमम् ॥ ४७ ॥
विचित्रवर्णैः कुसुमैः सम्पन्ना वनराजयः। प्रादुष्कुर्वन्त्यकालेऽपि सन्ध्याभ्ररागसम्भ्रमम् ॥ ४८ ॥

अन्यच –

तादृक्षतीर्थमाहात्म्यवृष्टिप्रतिहता इव। दवाग्नयो वनप्लोषा नोत्तिष्ठन्ते कदाचन ॥ ४९ ॥
मालतीयूथिकाजातिप्रमुखास्तरुजातयः। पुष्पगुच्छैरभुर्नम्रास्तरुण्यः स्वस्तनैर्यथा ॥ ५० ॥
प्रफुल्लैः कुसुमैर्वल्ल्यः समीरावेगवेल्लिताः। अवाकिरन्ति श्रीसङ्घं गुरुं लाजैरिव स्त्रियः ॥ ५१ ॥
मल्लिकाफुल्लकल्हारकेतकाख्याश्च शाखिनः। शाखाभङ्गेऽपि मधुरा ददुः पुष्पाणि सार्थिनाम् ॥ ५२ ॥

अपि च–

क्वापि–जम्बीरदाडिमाम्राणि नारङ्गबदराणि च । पाकिमानि विलोक्य स्याल्लोला कस्य न लोलुपा ? ॥ ५३ ॥
फलानां कुसुमानां च कालाकालानपेक्षया । प्रसूतिः परमा दृष्टा तत्तीर्थातिशयादिव ॥ ५४ ॥
खर्जूरीदाडिमीद्राक्षारम्भाभम्भायिकादयः । छायां कुर्वन्ति सङ्घस्य खाद्यं च ददते तथा ॥ ५५ ॥
विनापि जालदीं वृष्टिं निर्झरौघाः पदे पदे । मन्ये तैर्गिरयः सङ्घातिथ्यं कर्तुमुपस्थिताः ॥ ५६ ॥

अपि च–

वहज्झरे चूतमहीरुहस्तले विश्रामयन् पान्थजनः पदे पदे ।
फलानि मिष्टानि यथेच्छमाहरन् स्वगेहसाध्यं सुखमश्नुते क्षणम् ॥ ५७ ॥

एकतश्च–

उदुम्बरवटप्लक्षाः परोलक्षाः पुरः स्थिताः । विश्रामस्थानमार्त्तानां सज्जना इव मानिताः ॥ ५८ ॥
श्रीफलाश्च फलैः स्वीयैर्निजपादतलस्थितम् । टाचक्यभग्नशिरसं त्रासयन्ति खला इव ॥ ५९ ॥
अस्पृष्टमध्याः सूरस्य करैः क्वापि प्रसारिभिः । बिभ्रते कुलनारीणामाचारं किल कन्दराः ॥ ६० ॥

अपि च–

अभयामलकीमुख्यवृक्षावांसफलैः क्वचित् । गान्धिकापणनामापि शङ्के विस्मारितं जनैः ॥ ६१ ॥

अपरं च–

पाद्याः कर्करिकाः क्वापि पत्सुखा वालुकाः क्वचित् । दृषत्खण्डाश्च तीक्ष्णाग्राः स्वोचितं चलतां व्यधुः ॥६२॥
क्वापि समा विषमा वा क्वापि नीचैस्तथोन्नताः । नैकरूपा भुवः शैले दशा इव भवेऽङ्गिनाम् ॥ ६३ ॥
क्वापीक्षुशाकटस्तोमः तिल्यं भागीणमेकशः । कौद्रवीणं च मौद्गीनं शालेयं क्वापि शाल्यते ॥ ६४ ॥

तदित्थं स्थाने स्थाने नवीना नवीना वनराजीः परिचिन्वन्तस्तदीयाभिः पिच्छलाभिश्छायाभिस्तपनातपप्रसरागोचरीभवन्तः पर्व्वतीयान् जनानिव तदाचारान् शुचीन् साक्षात् कुर्व्वन्तः, अतिभीष्मग्रीष्मर्तुमपि तथाविधदेशस्वाभाव्याच्छिशिरर्तुमिव मन्वानाः, सुखेन विपाशातटिनीं भूयोऽप्युत्तीर्य, पदे पदे समृद्धान् महाग्रामान् सम्भावयन्तो दर्शनेन तदधीशांश्चाभिमुखमायातानुचितालापैश्च रञ्जयन्तः क्रमेण पातालगङ्गातटमन्वसार्ष्म ।

अपि च–

यस्यां हि जलयन्त्रेषु दृष्ट्वा सक्त्वादिपेषणम् । के नाम न प्रशंसन्ति दाक्ष्यं पर्व्वतवासिनाम् ॥ ६५ ॥
पानीयमतिमुक्ताश्रि जानुदघ्नाऽम्बुवाहिता । सान्द्रो ध्वनिः प्रवाहस्योन्निद्रयेद् दूरगानपि ॥ ६६ ॥

तां च तथाभूतामनिहितेष्वपि स्वयोगसन्निहितेषु सुश्लिष्टश्लक्ष्णतलेषु निश्चलेषु गण्डशैलेषु परमयतनया क्वापि पादन्यासमुपकल्पयन्तो निरायासमुत्तीर्णाः ।

[नगरकोट्टपुरप्राप्ति - तदन्तःकृतप्रवेशवर्णनादि –]

§७. ततश्च पुनरकुण्ठानि गिरिशिरांसि त्वरितपादचारेण कुण्ठयन्त इव क्वापि तुङ्गतरगिरिशृङ्गमधिरूढा हेमकुम्भमालोपशोभितप्रभूतप्रासादपङ्क्तिदर्शनीयं विविधस्थानमनोरमं नेत्रानन्दामृतप्रपोपमानं श्रीमन्नगरकोट्टापरपर्यायं श्रीसुशर्म्मपुरमहातीर्थं दृग्गोचरीकृतवन्तः ।

तथा च –

आः किं व्योम्नश्च्युतमिदमहो ! स्वर्गखण्डं प्रचण्डं ?, किं वाप्युद्भिद्य हृद्यः क्षितितलमसकौ निर्गतो नागलोकः ? ।
रङ्गद्राङ्गेयकुम्भावलिकलितमहोद्दामहर्म्यातिरम्यं, दर्शं दर्शं पुरमिति वितर्कास्पदं सम्भवामः ॥ ६७ ॥

तदनु सङ्घेन प्रथमतीर्थदर्शनप्रभवन्महानन्दानुसारेण दानधर्माद्युचितमनुल्लङ्घयता-तीर्थभक्तिर्व्यक्तीचक्रे । शनैः शनैरयत्नोपस्थितां कृत्रिमां सजलां नगरस्य परिखामिव पातालगङ्गाज्ञातिजामिव बाणगङ्गां – "एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा" – इत्यादिपदानि यतनाङ्गान्यनुसरन्त उल्लाघा उल्लङ्घितवन्तः । तदा च सङ्घागमनमाकर्ण्य चम्पकस्रक्कलापकलितमौलयो मसृणघुसृणरसाक्तोज्वलाच्छपीनवसनाः, नागवल्लीदलचर्वणेनेव विमलवचनेन रञ्जितवदनाः, काञ्चनमयशृङ्खिकया वर्ण्यस्वर्णालङ्कारेणेव भासुरितकटितटाः, स्वर्णशृङ्गारा निजरूपशृङ्गारितस्वर्णा वा, निरुपाधिप्रीतिगौराः पौरास्ते तेऽभ्यागतवात्सल्यविधित्सया सङ्घस्याभिमुखीना बभूवुः – इति ।

ततश्च तान् गूर्जरेभ्योऽप्यधिकितविवेकाँल्लोकान् साधूचितभाषया सम्भावयन्तस्तैरेव सह महत्युत्सवे जायमाने पुरं प्रवेष्टुमुपक्रान्ताः । चित्रमिव बहुवर्णोपशोभितं, धर्मागारमिव बहुगणिकं नगरान्तरं मध्ये कुर्वाणाः, सङ्घसामाचारीविद्भिः पौरैः सङ्घार्थे क्रियमाणं प्रवेशमङ्गलं तत्साहचर्याद् वयमप्यनुभवन्तः, शनैः शनैरपूर्वापूर्वस्थानावलोकनाद् विस्मितविस्मिताः, पताकापीतगगनं हट्टश्रेणिसङ्कुलं राजमार्गमतिक्रम्य शनैर्हृषितहृषिता इव किञ्चित्त्वरितत्वरिताः, प्रेरिता इव परमोत्साहेन, आकृष्टा इव सुकृतलक्ष्म्या, कटाक्षिता इव भाग्यमृगाक्ष्या, आहता इव सन्मत्या, विधृता इव धृत्या, आहूता इव सद्गत्या, रमिता इव रत्या, विस्मारिता इवारत्या, उपेक्षिता इव बुभुक्षया, अनवलोकिता इवातङ्केन, अचिन्तिता इव चिन्तान्तरेण, विस्मारिता इव मार्गश्रमेण, अस्पृष्टा इव तृषया, अभिगमिता इव परमानन्देन, किमप्यतितरमानन्दतुन्दिला उद्भिद्यमानरोमकन्दला महामदनभेर्यादिवादकेषु शब्दब्रह्माद्वैतमिव वितन्वत्सु सर्वार्थसिद्धिद्वारमिव श्रीशान्तिनाथजिनप्रासाद-सिंहद्वारमनुप्राप्ताः – "निस्सही निस्सही नमो जिणाणं" – इत्यादित्रिस्तारस्वरेणोच्चरूर्यमाणा रोमाञ्चकञ्चुकितगात्राः, तृषिता इव सुधासरः, क्षुधिता इव परमान्नं, निर्द्धना इव रत्नसम्भृतनिधिलाभं, द्रमका इवैश्वर्यम्, काञ्चनकलशोपशोभितं साधुक्षीमसिंहकारितप्रासादे परमखरतरश्रीजिनेश्वरसूरिप्रतिष्ठितं श्रीशान्तिजिनपतिं भेटितवन्तः परया भक्त्या । ततश्च त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य कृत्यविदा सह सङ्घेन पुराणाभिनवैः स्तवैर्गृहस्थोचितैः पुष्पैरिव संवत् १४८४ वर्षे ज्येष्ठमासे ज्ञानपञ्चमीदिवसे सम्भावितवन्तः ।

ततश्च सफलमिव जन्म मन्वाना मार्गप्रयासमपि पूरिताशमिव गणयन्तस्तत्तन्निर्विकृत्याद्यभिग्रहग्रन्थिं छुटितमिवावधारयन्तस्तदा तदा च पूज्यान् युष्मादृशान् पुण्यपुरुषानप्यविस्मारयन्तो द्वितीयस्मिन् विहारे नरेन्द्ररूपचन्द्रकारितं शाश्वतप्रतिमानुकारि जात्यजाम्बूनदमयप्रतिममत्यद्भुतं श्रीवर्द्धमानस्वामिनं तमस्युद्योतमिव, तथाविधकान्त्यतिशयान्नेत्रामृतप्रवाहमिव, परमकर्प्पूराणुनिर्म्मितमिव, परमानन्दमयमिव, दर्शं दर्शं चिरं चेतसि कारं कारं

प्रागवन्नमस्कृतवन्तो भगवन्तम् । ततोऽपि देवलादिदर्शिताध्वानश्चमत्कृतचेतसो विगलितरेफसः कवलितालस्याः प्रमादातिरेकादुज्जृम्भमाणास्या बाह्याभ्यन्तररजः शिशमयिषयेव नयनेभ्यो हर्षाश्रुधारा वर्षन्तस्तृतीयभवनगान् युगादिजिनपादानन्ववन्दिष्महि पूर्वन्यायेनेति ।

[कङ्गदकमहादुर्गस्थयुगादिजिनदर्शन - वन्दनस्तवनादिवर्णना –]

§८. ततश्च द्वितीयेऽह्नि कङ्गदकमहादुर्गमध्ये माधववक्षोलङ्कारकौस्तुभायमानानादियुगीनश्रीयुगादिजिननिनंसयोत्पिञ्जलितहृदयान्तरालाः, प्रभवद्धर्षाश्रुप्रणालाः, क्रमेण नभोऽङ्गणलम्बिकपिशीर्षमालाविलसत्सप्तशालालीनसप्तप्रतोलीद्वाराणि सप्तसुखानीवाक्रामन्तः, स्वर्णकम्बाकरेण प्राक्कथंचिदावर्जितेन महर्द्धिना मौलभूपालप्रतिशरीरभूतेन हेरम्बाख्यप्रतिहारेण सोपानसहस्रसङ्कुलं राजपथं परिचाय्यमानाः, पदे पदे जायमाने दानोत्सवे नृपकारितमानोत्सवे च प्रकाशमाने राजाङ्गरङ्गद्वाद्यनिनादे उच्छलद्धवलमङ्गलध्वनिभिः प्रतिशब्दमुखरीक्रियमाणेषु सप्तप्राकारेष्विव, नृपतिसौधमध्येषु वीक्षणापन्नकुतूहलिराजलोकैः पाणिन्धमतां नीयमानेषु, पृथुष्वपि पथिषु निरङ्कुशैरपि दौवारिकैश्चानवारिताः, अनवरतप्रणयपरिचितमिव राजसमाजजनसमूहमूहमानाः श्रीनाभेयं प्रीत्या प्रणिपेतिवांसः ।

तदा च–तत्र वृद्धास्तत्तीर्थैतिह्यमित्थमाहुः–

यथाहि–"इदं किल कमनीयकनककुम्भोपशोभितोत्तुङ्गशृङ्गरङ्गत्प्रासादमयं महातीर्थं विजयिनि भगवति श्रीनेमिजिनपतौ श्रीसुशर्म्मभूमीभुजा संस्थापितम्, तदिदं चाघटितमटङ्कितं स्वयंभूतमिवानादियुगीनं श्रीमद्युगादिदेवबिम्बमचिन्त्यचिन्तामणिमवृतकल्पपादपममितमाहात्म्यमनन्तातिशयं जानन्तु । इयं च भगवच्चरणारविन्दमकरन्दचञ्चच्चञ्चरीककुटुम्बिनी श्रीमदम्बिका, यस्याः किमप्यसामान्यमतिशयं व्यावर्णयन्ति सन्तः । अस्या हि प्रक्षालाम्भः कुम्भसहस्रप्रमाणमपि जगद्गुरोस्तावत्प्रमाणेन स्नात्राम्भसा सह तदाशातनभीत्येव तुल्यस्थानस्थितमपि नैकीभवति । प्रत्यक्षं चाधुनापीदम् । अथवाऽसम्भावितकीटिकाप्रवेशनिर्गमे लघुन्यप्यसुष्मिन् गर्भागारे कृतकपाटसम्पुटे भूयोऽपि स्नात्रतोयं सङ्घदुरन्तदुरितमिव क्षणादकस्मादूर्द्ध्वशोषं शुष्यति । इह हि कृतं स्तोत्रादिपूजाद्यं सत्कृत्यं सत्क्षेत्रे निहितं बीजमिवैकान्तेनाविसंवादि फलं स्यादित्यागमः ।" तदिदमुत्कण्ठितस्याऽऽह्वानं घटितसुवर्णे वर्णिकाधानमित्याभाव्य स्ववाग्वल्लेः प्रकामफलभूतामिमां स्तुतिमित्थमाविरबीभवाम ।

तद्यथा–

जगज्जीवनं पावनं यस्य वाक्यं महोक्षध्वजं चङ्गगाङ्गेयकायम् ।
तिरस्कृत्य कर्म्मस्थितिं जन्तुतातं श्रये तं मतिश्रीकृते तीर्थराजम् ॥ ६८ ॥
गलन्त्याशु पापान्यनन्तानि तानि प्रसर्पन्त्यगण्या मुदश्चावदाताः ।
महासिद्धिरायाति कीर्त्तिश्चकास्ति प्रभो ! त्वां नमस्कुर्वतां शान्तमूर्त्तिम् ॥ ६९ ॥
छेकः कष्टोच्छेदने दीप्तिभानुर्भक्तस्यातुच्छेष्टदो भीतिभेदी ।
युक्त्या युक्तः स्वागमागाधवाक्यः सिद्ध्यै रोद्धा युग्मिधर्म्मं क्षतागाः ॥ ७० ॥

दिष्ट्या दृष्टे तेऽम्बुजोजिष्णुवक्त्रे दूरं नष्टाऽऽदिप्रभो ! क्लेशराजिः ।
नन्वारूढे भास्करे पर्वतं तं ध्वान्तं किं न क्षीयते निष्कलापम् ? ॥ ७१ ॥
रयापारसंसारनिहारसूरं रजोभारसंहारणासारनीरम् ।
कृपालुं रसालं महाधीवरं सत् प्रभावं महामोऽञ्जसाऽधीश्वरं तम् ॥ ७२ ॥ (—नायकमणिः ।)
तरन्ति सन्तो विपदर्णवं ते पोतायितं येऽनुसरन्ति तेऽदः ।
नतं पदाब्जं भुवि सावधाना यस्मान् मनुष्येष्वथ शर्म्म भावि ॥ ७३ ॥
जगत्प्रभुः सत्यनयः स्वयम्भूः स्याद्वाद्यजन्मा निहतान्तरायः ।
तेजोमयस्तात्त्विकयोगगम्यो जीया गतेह ! त्वमघाद्रिवायो ! ॥ ७४ ॥
गीर्वाणपद्माप्यतिशायिनी सा तावच्च गीयेत मरुद्भवीशा ।
बुधैर्न यावद् बहुधांह्रिभक्तेः शक्तिः प्रबुद्धा जिन ! तेऽस्तबाधा ॥ ७५ ॥
जन्मभूषितनिजायतवंशं देशनाजनितभव्यशिवायम् ।
साधितेष्टसुखसङ्गमरङ्गं भद्रसान्द्रमभिनौमि सदङ्गम् ॥ ७६ ॥
राकाशशाङ्काननमादिदेवं वन्दे युगादौ जगदुद्धरन्तम् ।
तं रङ्गदुत्तुङ्गयशःसुरंहं हरत्तमं लोकभवोरुकाराम् ॥ ७७ ॥
नय प्रभो ! सेवकमात्मसङ्गं जय प्रभावोद्दलितान्यपङ्क ! ।
नमन्महाराजकृतोरुभागधेय ! प्रयच्छाऽविकलं चरित्रम् ॥ ७८ ॥
वरं गृहं हाववती च नारी वर्ण्या च लक्ष्मीर्भवतोऽनुभावात् ।
वरेण्यलावण्यवचास्ततोऽहं वहे तवाज्ञां भव मे शिवाय ॥ ७९ ॥
दर्शनं दुरितरोधि तावकं नाभिनन्दन ! भवेद् भवावधि ।
मज्जतान्मम मनोहिमरश्मिस्त्वद्गुणामलमहाम्बुनिधौ हि ॥ ८० ॥
महामोहमाद्यत्तमस्तोमभानोरखण्डोत्तमज्ञानसङ्केतवास्तो ! ।
त्रस-स्थावरप्राणिमोहान्तकस्य स्तवासूत्रणात् ते जनः स्यादनंहाः ॥ ८१ ॥
रवीन्दुप्रदीपप्रभूतप्रभाभ्योऽधिकं विस्फुरद्दर्शनं तेऽद्य जातम् ।
दयार्द्रां स्वदृष्टिं त्वमातिष्ठिपश्चेत् सुधाम्भो मदङ्गे न चित्ते विभाति ॥ ८२ ॥
षडंह्रिवत्खेलतु पादपङ्कजे तवाऽरुषं मे हृदयं सभन्द ! ।
कृताश्रयार्थे हि कृतिप्रकाण्डा यत्रासकृत् स्वर्द्रुमतां वदन्ति ॥ ८३ ॥
दलन्तं दरं भन्दमाकन्दराधं दयाकन्दलीकन्दमानन्दसारम् ।
नतस्त्वां शुभंयुः कुकर्माण्यधस्तात् प्रकर्त्ताऽस्मि कर्हीश नम्रामर ! श्राक् ॥ ८४ ॥
धराधीशधीरं महोदध्यगाधं निरस्तक्रुधं प्रावृषेण्याब्दनादम् ।
लसन्मुक्तिलक्ष्मीवरं मुक्तमोहं महामोऽमलज्ञानमानन्दतोऽमुम् ॥ ८५ ॥
रोचीर्वीचीप्रोल्लसद्देहदेशे सौम्याकारोत्प्रेक्षितान्तःप्रमोदे ।
शेषस्फूर्जद्योगलम्भप्रविष्टे दृष्टेऽधीशे जायतामिष्टलाभः ॥ ८६ ॥
व्योम्नो मानं वेत्ति यौऽजः प्रकारैर्बुद्ध्या काव्योऽप्येषु ते तीर्थराज ! ।
नो सोऽपीशो यद्गुणान् जल्पितुं ही ! तत्को मानो मेऽत्र मूर्खत्वभाजः ॥ ८७ ॥

यदाहुश्चिदानन्दसन्तानरूपं श्रितानां भयघ्नं परब्रह्मयाताम् ।
दयालो ! तदेव त्वदीयं प्रपद्ये शरण्यं पदद्वन्द्वमाविष्कृतायम् ॥ ८८ ॥

जयति जयतामर्त्तिच्छेदी **युगादिजिनः** परं, तदनु विजयन्ते योगीशा बुधा **जयसागराः** ।
तदधिमहिमस्तोत्रं हारं तदन्तिषदः कृतिं, दधदलमुरोदेशे भव्यो जनो जयतादयम् ॥ ८९ ॥

जन्मजीवितगिरां सफलत्वं मङ्गलं च वृषभेश ! ममाद्य ।
यत्नतोऽसमसमांसनितान्तं यन्महावृषगतेऽधिगतोऽसि ॥ ९० ॥

इति हि **नगरकोट्टालङ्कृतेरादिनेतुः**, स्तवनमजनि पूर्णं हारबन्धाभिधानम् ।
अहह ! सुकृतयोगः कोऽपि मे स्फातिमागा-दिति वदति यथावत् प्राञ्जलिर्मेघराजः ॥ ९१ ॥

तदित्थं यावता प्रस्तुतस्तवनादिविधानेन कृतकृत्या इव जाताः ।

*

[नगरकोट्टाधिपनृपतिकृतस्वागतादिवर्णना –]

§९. इतश्च–श्रीचन्द्रोज्वलसोमवंशविशदमुक्ताफलायमानावतारेण षट्त्रिंशद्राजकुलीशृङ्गारसारेण चपलोच्छृङ्खलभूपाललक्ष्मीकरेणुकाचापलसंयमननिस्समानालानस्तम्भभूतोद्दण्डदोर्दण्डेन विषमविविधविकटसपादलक्षपर्वतमालाबलगर्विष्ठाक्षोदिष्ठविपक्षक्षोणीनाथशिरोनिवेशितनिजाज्ञास्फारप्राग्भारेण प्रबलातुलशक्तिनृपतिमतल्लिकाविनयवेल्लच्छिरःकमलपुपूजयिषितचारुचरणेन्दीवरेण धनसमृद्ध्यपहसितधनदेन सौराज्यजनितजनानन्देन सर्वषड्दर्शनविश्रामच्छायापादपेन विशिष्य श्वेताम्बरभिक्षुबलक्षपक्षपातोपलक्षितचिचक्षुषा पितृपर्य्यायागतस्वसौधमध्यस्थितश्रीयुगादिजिनभक्तिपुषा निजमुखकोमललावण्यापहसितचन्द्रेण भूभुग्नरेन्द्रचन्द्रेण, आत्मीयप्रधानपुरुषैः सबहुमानमाहूताः सङ्घसङ्गताः, ततश्चातुर्वर्ण्यजनमहत्तरैः परितोऽलङ्कृतं विचित्रमपि सचित्रमतुलमपि सतुलं विशालमपि सुविस्तीर्णशालं निजशोभापराभूतपुरहूतास्थानं तदीयसभास्थानं प्राप्ताः । ततश्च वीज्यमानवरचामरं स्वरूपान्तरावस्थितं चामरमिव वरेण्यहिरण्यमणिमयसर्वाङ्गीणाभरणशृङ्गारसौन्दर्यापहसितमारं सकलकलाकुशलं ग्रहगणमध्यवर्त्तिनं निशावल्लभमिव राजसभावस्थितं पुरुषोत्तममिव तमद्राक्ष्मोऽक्षाममुदः ।

अथैषन्नम्रशिरसं तमधिकृत्य निर्ग्रन्थभाण्डागारसर्वस्वभूताशीर्वादसन्दर्भगर्भमुद्वाहवः पद्यमिदं स्वोदाहरामः –

तद्यथा –

श्लाघ्ये जन्म कुले तनौ सुभगता हृद्या कला सद्वधूः, सन्तानर्द्धिसमृद्धिसौख्यमतुलं भोज्यं च राज्यं परम् ।
चक्रित्वं त्रिदशाधिपत्यमपि ही ! प्राप्नोति जन्तुर्यतः, सोऽभीष्टार्थविशुद्धसिद्धिजनकः श्रीधर्मलाभोऽस्तु वः ॥९२॥

अपि च –

कङ्गदककोट्टकन्दरमध्यासीनो रिपुद्विपान् हत्वा । श्रीमान्नरेन्द्रचन्द्रक्षितिपतिहरिणाधिपो जयति ॥ ९३ ॥

अथ च जलार्थं कस्मिन्नपि जने कृतभ्रूसञ्ज्ञमाभाव्य नृपतिं प्रस्तुतमिदं स्माचक्ष्महे –

वक्त्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसतितरां शोण एवाधरस्ते, बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः ।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः कथमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं, स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन् किमिव नरपते तेऽम्बुपानाभिलाषः॥९४

अपरं च –

नद्यो नीचरता दुरापपयसः कूपाः पयोराशयः, क्षाराः क्षुद्रबकोटसङ्कटतटोद्देशास्तटाका अपि ।
भ्रान्त्वा भूतलमाकलय्य सकलानम्भोनिवेशानिह, त्वां भो मानस ! संस्मरन्नुपगतो हंसोऽयमानन्द्यताम् ॥ ९५॥

पुनर्विवेकमुज्जीवयितुमियमन्योक्तिः –

रे चूत ! नूतन मदं मलिनानुकूल ! त्वां वर्णयन्तु कवयो न वयं वयस्य ।
शुक्लच्छदो यदिह शैवलभुग् मरालो रोलम्बकोकिलकुलं कुसुमैर्द्धिनोषि ॥ ९६ ॥

तथा –

अये वापीहंसा निजवसतिसङ्कोचपिशुनं, कुरुध्वं मा चेतो वियति वलितान् वीक्ष्य विहगान् ।
अमी सारङ्गास्ते भुवनमहनीयव्रतभृतो, निरीहाणां येषां तृणमिव भवन्त्यम्बुनिधयः ॥ ९७ ॥

इत्यादिभिर्नव-पुराणैः सूक्तैर्नृपमनोऽनुजीवितं यावत्तावता तत्तल्लक्षणसाहित्यादिरसपरिमलितमतिर्नृपतिरमोघगङ्गाप्रवाहानुकारिण्या तत्तदूहप्रत्यूहाम्बुसारिण्या प्रवीणोचितवाण्या पश्यत्सु पार्षद्येषु साशङ्कमिव तिष्ठत्सु राजकीयेषु विद्वत्सु सहास्माभिः स्वयमेव क्षणं गोष्ठीसुखमन्वभूत् ।

तदानीं च –

स कोऽपि न सदो मध्ये मूर्खो वा यदि पण्डितः । बालो वृद्धः पुमान् स्त्री वा यो नाश्चर्यरसं पपौ ॥ ९८॥

§ १०. अथ विद्याविनोदप्रियेण राज्ञा सञ्ज्ञापिताः सभासदो विद्वांसो ब्राह्मणा केऽपि केऽपि राजन्याश्च सम्भूय यत्तत् फल्गुवल्गितप्रायं सम्यग्रूपं वा प्रष्टुं सहसोपस्थिताः । ततश्च तान् प्रश्नानुरूपोत्तराधानेन च्युतमदनिभानिव निरभिमानान् मनागापाद्याऽन्तराले चेदमवदाम –

के दारपोषणरताः ? कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ? । कं संजघान विष्णुः ? का शीतलवाहिनी गङ्गा ?॥९९॥
जीवन्ति जन्तवः केन ? धातूनां सम्भवः कुतः ? । बुधानां वर्ण्यते काचित् ययोक्तमपि नोह्यते ॥ १०० ॥

विकल्पार्थापकः कोऽर्थो विनाशः शङ्क्यते कुतः ।
पद्मोत्पत्तिः कुतः कीदृग् दुस्थः सर्वत्र वारितः ॥ १०१ ॥ (– इति प्रश्नोत्तराणि ।)
कृपणोऽपि नृपार्थ्यः स्यादुदारस्यापि लौल्यता ।
भावाभावेन यस्यास्यादाख्यातोऽपि न बुध्यते ॥ १०२ ॥ (– प्रहेलिका ।)
काचिद्वहान्तःप्रियविप्रयोगमसासहिः प्राप्य तरुं प्रफुल्लम् ।
ज्वलद्वियोगाग्निरियं व्यहासीच्छायां तदीयामपि किं निदाघे ? ॥ १०३ ॥ (– भावालङ्कारः ।)

इत्यादिपद्यानां प्रत्युत्तरदानमूकान् विदग्धमन्याँस्ताँस्तान् यावदुदनैष्म, तावदेकः काश्मीरदेशीयः कुशाग्रीयमत्यवगाहितविततप्रमाणग्रन्थस्तार्किकचक्रचूडामणिंमन्यश्छलजातिप्रभृत्युल्लापमुखरः कश्चिद्विपश्चित् सहास्माभिः स्वपक्ष-परपक्षसाधनदूषणाभ्यां चिरं निश्चितवाग्विवदितुं लग्नो महताऽऽटोपेन । सोऽपि, अचिन्त्यश्रीपूर्वगुरुसान्निध्यसन्नद्धसम्बद्धवाङ्मात्रेण प्रतिहतवाग् वीक्षापन्न इव क्षणं क्षोणीशाध्यक्षमेव सितभिक्षूननुनिनीषुपादलग्नपाणिरिदमुच्चैरुच्चचार । यतः–'भो ! जैनानां पुरः कोऽहं वराकः, क्षमध्वमागः' । अथेत्यादिसरसेष्टगोष्ठीप्रकारेण परमप्रीतितन्त्वनुस्यूतमना मनुजेश्वरोऽस्मत्सनाथस्य सङ्घस्य

सर्वस्यापि बहुमानसारं सत्कारं चकार। 'अहो! आर्हतो धर्म्मो विजयते!, धन्यमिदं मतान्तराजय्यं श्रीजिनशासनम्, यत्रैवं विद्वत्तादिगुणा निरुपमाना विभान्तीति।' अनन्तरं च चञ्चचन्द्रकान्तादिविविधवर्णदैवतालङ्कृतं देवागारं स्वकीयं दर्शितवान्। अचकथच्च स्ववर्ग्गीणान्–'यदस्य सङ्घस्य प्रवेश-निर्ग्गमयोर्न स्खलना कार्या।' अथ 'प्रत्यासीदति नः सान्ध्यो विधिः'–इत्यादिना प्रतिगमनाय प्रत्याय्यमानोऽस्माभिः कथञ्चिदेवं महाप्रणयाविर्भावकमिदमवादीत्–

मा गा इत्यपमङ्गलं, व्रज इति स्नेहेन हीनं वचः, तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वैषाऽप्युदासीनता।
किं ते साम्प्रतमाचरामि हितमेतत् सोपचारं वचः, स्मर्त्तव्या वयमादरेण भवता भूयात् पुनर्द्दर्शनम्॥ १०४॥

ततस्तमापृच्छ्य श्रीजिनशासनप्रोन्नतिदर्शनोत्सर्प्पत्प्रमोदप्लुतहृदयाः स्वमठमागताः।

[नगरकोट्टस्थितजिनमन्दिरविधीयमानोत्सवादिवर्णना –]

§११. अथाऽपरेद्युश्चातुर्वर्णवन्द्यमानार्हद्विम्बभूषितेषु तेषु चतुर्ष्वपि प्रासादेषु महत्युत्सवे श्रीदेवमहापूजावसरे क्रमेण श्रीसङ्घश्रावका गन्धोदकसम्भृतैः स्वर्णकलशैः श्रीजिनचन्द्रपादान् दर्शनदत्तमनःप्रसादान् यथाविध्यस्निपन्। तदनु सुलभैः शुभगन्धबन्धुरचम्पकपवित्रशतपत्रप्रफुल्लमालतीजात्यादिजात्यपुष्पैर्बहुभङ्गीभिरपूपुजन्। पेशलफलपक्वान्नाक्षतादिबलिं पुरो जगद्गुरूणामुपाहरंश्च। ततश्च चतुर्विधश्रीधर्मास्थास्थेमोत्पादकेषु चतुर्ष्वपि काञ्चनकुम्भोपलम्भसम्भावितद्रष्टृमनःप्रसादेषु प्रासादेषु गर्भागारादाराभ्यादण्डकलशावलम्बिनो ध्वजान् व्यदीधपन्। तदा च रेणुर्वाद्यानि, जगुः कुलनार्यः, नृत्यन्ति स्म विस्मेरास्या नागर्यः, ददुर्हल्लीसकानि बालाः, ताड्यन्ते तालाः, खेलन्ति खेलास्ते चात्यन्तं सहेलाः, दीयते यथेच्छं दानं, यथा दूरेत्यतामञ्चति दुरितविगानं, प्रगुणीभूता सुगतिः, प्रणष्टा कुगतिः, वर्द्धते धृतिः, विशीर्यते कुस्मृतिः, उच्छ्वसन्ति दानिनः, लभन्ते मानं मानिनः, खिद्यन्ते कृपणाः, विकसन्ति वितरणनिपुणाः, जाग्रति योगिनः, विहसन्ति चैत्यनियोगिनः, निजचित्ते चमत्कुर्वन्ति ज्ञानिनः, समाधिमधिश्रयन्ति ध्यानिनः, प्रमीलत्यविद्या, उन्मीलति विद्या, विलसति पुण्यम्, वर्द्धते श्रेयः।

किं च–

तन्मन्ये येन दृष्टोऽयं श्रुतः स्नात्रोत्सवोऽथवा। यदि तस्य मुदे न स्यादत्र प्रतिभुवो वयम्॥ १०५॥

तदनु च भट्टचट्टनटबटुकवाडवादिदुःस्थित-सुस्थितजनसाधारणानि शालिसर्प्पिस्साराणि सङ्घकारितानि अवारितानि भोजनानि सर्वत्र प्रावृतन्; यानि रहःस्थितमप्यवदान्यं प्रकाशयन्ति। अथाष्टमीदिने श्रीशान्तिजिनविधिचैत्ये जयजयशब्दमुखरेषु बन्दिवृन्देषु महोदण्डे भवत्युत्सवे मेघराजगणि–सत्यरुचिगणि–मतिशीलगणि–हेमकुञ्जरमुनि–कुलकेसरिमुनीनां पञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धाद्यनुज्ञाहेतुकां नन्दीं मिलितेषु नागरेष्विव सङ्घजनेषु व्यधासिष्म। तत्र चाश्रान्तं स्थाने स्थाने देववन्दनावहिताः कार्यान्तरपराङ्मुखा भ्रामं भ्रामं भावपूजया जगदीशान् त्वरया श्रद्धया सम्भावयन्तः, सङ्घश्राद्धविधीयमानां द्रव्यपूजां चानुमोदयन्तः, सह जन्मना निजजीवितमपि कृतार्थं गणयन्तः, यावद्वारानष्टोत्तरं शतमपि चैत्यपरिपाटीं पञ्चशक्रस्तवाविर्भावसारां सपरिवारा वितेनिवांसः। इत्थं श्रेयःकृत्येन पुण्यलभ्येन स्वात्मा-

नमिव तदनुमोदकं परमपि संसारभवाम्भोधिपारवर्त्तिनमिवानुमिनुमः। सपरिवारश्रीमदाराध्यध्येयपादप्रत्ययमपि विशिष्य श्रीजिनवन्दनं तत्रान्यत्रापि नामग्रहणपुरस्सरं विहितमस्तीति ज्ञपरिज्ञयाऽनुमोद्य तन्नमस्यकैरिव स्थानस्थैरपि प्राज्यं पुण्यं विटपनीयमिति।

अन्यच्च यथा योगं गोचरचर्यादिस्वार्थसिद्धये पुरान्तराले चङ्क्रम्यमाणाः क्वचिदुपधारायन्त्रं मठस्थस्य महापुरुषप्रमाणानुकारिणः कान्तजात्यजातरूपनिष्पन्नस्य रेखाप्राप्तरूपस्य राज्ञो रूपचन्द्रस्य रूपेक्षणं चक्षुर्विश्रामसुखमुपलभमानाः, क्वचिच्च प्रत्यासन्नहिमाचलशैलराजकूटाहृतानि भीष्मग्रीष्मर्त्तावपि हिमानीखण्डानि पुण्यपुरुषयशांसीवात्यन्तं विमलान्युन्नम्रमानाः, अधिविपणिमार्गं च व्यापार्यमाणचारुचम्पकशतपत्रादिगन्धद्रव्यपरिमलबाहुल्येऽपि नाशाविषयं रसमनाददानाः, सततप्रवृत्तोत्सवानां गीतनृत्तनादरसलालसानां दिवश्च्युतानां देवीनामिवानुपमतमतनुसौन्दर्याणां पौरपुरन्ध्रीणां श्रोत्रमधिगतैर्मधुरध्वनिभी रागमवगच्छन्तः, गृहोद्यानवर्त्तमानाम्रतरुपरिपाकिमफलेषु मुग्धलोकोपनीतेष्वपि जिह्वालौल्यलेशमप्यस्पृशन्तः, विचित्रभूर्जपत्रवन्मृदुलस्पर्शान् कम्बलान् करस्पर्शमात्रतायामुपढौकयन्तः, यावद्दशदिनीं तत्रावतस्थानाः। ततश्च–'तिष्ठथ चतुर्मासीम्, वयमपि शुद्धश्रावकीभवामः, महांश्च लाभो वः, कुरुध्वमनुग्रहमस्मासु'–इत्यत्यन्ताग्रहपरान् नामश्रावकान् तत्रत्यान् जीदो–वीरो–हर्षो–चंभो–संभो–गंभो–प्रमुखान् कथमपि सम्बोधयामासिवांसः। ततः सर्वेष्वपि विहारेषु जिनेन्द्रपादानधिकृत्य सपरिवाराः ससङ्घाः सगद्गदस्वरा बाष्पप्लुतेक्षणाः प्रास्थानिकीं चैत्यवन्दनां सुचिरमारचय्य ललाटघटिताञ्जलयः खल्वेकान्तशान्तरसवशीकृतस्वान्तास्तदानीम्–

तव दर्शनमेवास्तु किमन्यैः प्रार्थनाशतैः। सरागचेतसोऽप्युच्चैर्लभन्ते निर्वृतिं यतः॥ १०६॥
वारं वारमियं चिन्ता वारं वारमियं कथा। यदहं त्वां प्रपश्यामि भूयो दर्शनमस्तु ते॥ १०७॥

तदित्थमग्रजगन्नाथमभ्यर्थनामिमां प्रथयित्वा, असकृच्च शिरःप्रणामं कारं कारं कथञ्चित् तीर्थमहामोहप्रतिबन्धवशात् स्खलितपादप्रचारं क्षणं शून्या इव हृतहृदया इव ततः प्रस्थातुमुदयच्छाम।

अथ च–

ज्वालामुख्या जयन्त्या च श्रीमदम्बिकया तथा। वीरेण लङ्कडाख्येन यदसेवि सदैव हि॥ १०८॥
संसारसागरोत्तारतीर्थात् तीर्थोत्तमात्ततः। श्रीमन्नगरकोटाख्यात् प्रस्थिताः सह सार्थिकैः॥१०९॥ (युग्मम्।)

[नगरकोट्टतीर्थात् कृतप्रस्थानस्य संघस्य मार्गागतान्यस्थानवर्णना –]

§१२. अथ गिरिसरिदुपशैलेलातले वहन्तः, एकतः किल 'पव्वउ खोहउ' इति मृदुलघुशिशूनिव किञ्चिदव्यक्तवाचा संशब्दनेन गिरिभुवि पथिकेभ्यो ह्यविश्वासशिक्षामाख्यान्त इव कांश्चन पक्षिणः पदे पदे प्रदक्षिणीबभूवांसः। अन्यतः पुनस्तत्प्रतिषेधयिषयेव कांश्चन विपश्चित इव 'होकोकिमइ, होकोकिमइ' इति स्फुटप्रतिरावेण जगद्वैचित्र्यं प्रचिकटयिषून् विहगान् स्वात्मनि माध्यस्थ्याद्वैतमुत्तेजयन्तः शुश्रुवांसः। विस्मयस्मेरिताऽऽनन्दाटोपा गोपाचलपुरतीर्थं जग्मिवांसः। सं० घिरिराजकारितोत्तुङ्गप्रासादस्थं श्रीशान्तिनाथं सगौरवं च प्रणेमिवांसः। अत्र च देवसेवापराः सङ्घकृत्यानुमोदनासमाहितहृदः सदसद्विवेकं प्रतिवा-

स्तव्यास्तिकांश्च कांश्चन प्रवीणयन्तः, पञ्चाहोरात्राणि तस्थिवांसः। अथ पारेविपाशस्थितं श्रीवीरस्वामिपादमहाप्रासादकलितं श्रीनन्दवनपुरं प्रापिवांसः। तत्र च पूज्यपूजां विधिवद्विधाय सह तत्रत्यसङ्घेनाऽऽगन्तुकसङ्घोऽपि खल्वात्मानं धन्यममन्यत। तत्र च सुविहितगुणपक्षपातरसिकमनोभिरात्मकरणीयातिनन्दिभिः शुद्धमार्ग्गाभिनन्दिभिः सौजन्यसम्भिन्नसर्वभावैः पार्वतिकभूपाललोकपालितवचोभिः सह स्वयूथ्यैरनुमितसंविग्नपाक्षिकपदस्थैर्भृशमजर्यमासोसूत्र्यामहि रूपम्। ततोऽपि प्रस्थायातिनिविडतमसि निश्यपि पुरोवहमानाभिर्द्योतमानखद्योतरिंछोलीभिरन्तरान्तरा त्रुटत्तडिद्भिरिव समुज्जृम्भितचक्षुरायुष्याः कोटिल्लग्रामे क्रमेणाभिनवोत्तुङ्गशृङ्गरङ्गत्प्रासादे श्रीवामेयजिनेन्द्रदर्शनेन सफलप्रयासा बभूवांसः। सङ्घो यावता पूजादिककर्म्मणि प्रवृत्तोऽथ तावता वयं तमिति स्तोतुं प्रवृत्ताः—

तथा च—

अभिमतफललाभकरं चिन्तामणिपार्श्वनाथतीर्थकरम्। यरलवशषसहवर्णैः किञ्चिदहं वर्णयिष्यामि ॥ ११० ॥

श्रीवल्लिराशिसुरसालरसालवाल !, श्वःश्रेयसाय सविहासरसोऽसहायः।
अंहो विहाय सहसैव विशालबाहुः, श्रेयःश्रियं सह वृषैरिह शिश्रिये यः ॥ १११ ॥
यो विश्वसंशयबिलेशयवैरिशरीरः, यः संवरारिसबलाहववारवीरः।
यो हर्षवासररविर्विषयारिरंसु, यो वेह संवरसरोवरशालिहंसः ॥ ११२ ॥
शेषाहिवावहिशरा बहुहावहेला-लीलाविलासविवशासु वशास्ववश्यः।
सेव्योऽसि वासवविशां सविशेषवीर्य-शौर्याश्रयोऽस्यविरलं सरलाशयोऽसि ॥ ११३ ॥
अर्हन् यशःसलिलराशिशशी रसायाः, सार्वः शिवालयविलासरसाय सोऽयम्।
सर्वे सुरासुरसुरेश्वरसूरिसिंहाः, संसारवासविरहाय सिषेविरे यम् ॥ ११४ ॥
यः स्वैरिवैरिविलयाय सहः सहस्वी, स्वीयस्ववंशबहुलाम्बरशर्वरीशः।
शश्वल्ललौ वशविहाररसीह शीलं, श्रेयोरहस्यसरसीरुहसूर एषः ॥ ११५ ॥ (—चतुर्थमिदम्।)
ये पञ्चवर्गपरिहारसमेतमेतत्, पञ्चाक्षनिग्रहपराः स्तवनं पठन्ति।
ते ही ! चतुर्थपुरुषार्थसुखं लभन्ते, तद्बोधिलाभसुभगास्तु ममापि बुद्धिः ॥ ११६ ॥

इति भगवन्तमभिष्टुत्य कृतकृत्येन सहैव सङ्घेनानघीभवन्तः, अथ गिरिगह्वरकूटसङ्कटान् मार्गान् दुर्गमानुल्लङ्घयन्तः, क्वापि पर्वतप्रदेशोद्भूताभिः सप्रत्ययाभिस्तमः कवलयन्तीभिर्ज्वलन्तीभिरौषधिभिरतिभास्वरप्रदीपकलिकासाध्यं कर्म्म प्रत्यक्षयन्तः, पर्वतघट्टानतिक्रम्य पर्वतदेशमध्यगं नानाविधश्राद्धसङ्कुलं श्रीकोटीपुराभिधमहानगरं प्रापिम। तत्र च देवार्यदेवपादा विधिवदभिवन्दिताः। तत्र च सं० सोमाकोऽवारितवाहनासारं सरसशर्कराचूर्णपूर्णं भोक्तृमनोमोदकं महामोदकं प्रचुरघृतपूरपक्वान्नसम्पन्नशाकप्रीणितरसिकलोकमिन्द्ररसास्वादमाद्यद्रसज्ञरसनाविषयं स्तूपीभवदपूपं सुनिष्पन्नरूपं मुग्धस्निग्धदध्योदनजनितजनसमाधानं सुगन्धिशालिपरिमलोद्गारमात्राप्यायमानजनं प्रसर्पत्सर्पिर्द्धाराप्रवाहप्रवाहिताहितदौर्मनस्यं नानास्वाद्यपेयलेह्यखाद्यहृद्यं प्रकाश्यमानबहुविनयप्रकारं श्रीसाधर्मिकवात्सल्योपचारं सारं कारं कारं तथा समस्तवास्तव्यवस्तुवित्तसार्थिकसङ्घपुरुषेषु सम्पन्नचित्तरङ्गः सुरङ्गश्चङ्गवसनदानेन मनागस्खलितचित्तस्ताम्बूलादिना च सचमत्कारं सत्कारं चकार तथा, यथा सार्वत्रिकीं प्रशंसामाससाद। इत्यलं बहूक्त्या। तदेवं देववन्दनसाव-

धानास्तत्रापि दिनदशकं स्थितिमजीघटाम। अथ ततः प्रचल्यातिदुरन्तमहामार्गसागरमतिक्रमयन्तः, क्रमेण सप्तरुद्राख्यमहाप्रवाहमयं जलनिवेशमक्लेशेनैव क्रोशचत्वारिंशत्प्रमाणं तरीभिरतिवाहयन्तो यथाक्रमं चङ्क्रम्यमाणाः श्रीदेवपालपुरपत्तनं प्राविशाम। तत्रत्य-मृदुपक्षीय-सं० घटसिंहादि-खरतरपक्षीय-सा० सारङ्गादि-विविधशुद्धश्रद्धश्राद्धसङ्घेन घुमघुमायमानघनतूर्यम्, गुमगुमायमानगन्धर्वम्, त्रटत्रटायमानकाहलम्, दमदमायमानमर्दलम्, ढमढमायमानढोल्लम्, प्रौढीभवज्जयजयरवं प्रवेशोत्सवमन्वबोभूयामहि च। तत्रापि कोठीपुरवत् तानि तानि साधर्मिकवात्सल्यसङ्घपूजादीनि सङ्घपत्युचितानि निखिलान्यपि करणीयानि सङ्घपतिमहाधरादिभिस्तथा चक्राणानि यथा श्रीजिनशासनस्य सङ्घस्य साधूनां श्रावकाणां च प्रशंसोल्लापः स्वपरपक्षीयेषु प्रोल्ललास। तदेवं श्रीजिनशासनं भासयन् सङ्घस्तत्र दशदिनीं स्थितिमकरोत्। ततश्च तत्रत्यसङ्घलोकाग्रहेण तथाविधां तत्र योग्यतां मत्वा मेघराजगणिः सत्यरुचिगणि-कुलकेसरिमुनि-रत्नचन्द्रक्षुल्लकैः सहितश्चतुर्मासीं स्थापितः। स च यावत्साम्प्रतं तत्रत्यसङ्घेन सम्प्रहेठितोऽस्मदुपकण्ठं विजयी समायासीदिति।

[तीर्थयात्राप्रत्यावर्तन - स्वस्थानप्रवेशवर्णना -]

§१३. अथातो वयं सह सहागतेन तेनैव सङ्घेन सहसा प्रचेलिवांसः। क्रमेण श्रीमद्देवगुरुप्रासादसान्निध्यबोहित्थेनातिदुरुत्तरमहत्तरसरणिसागरं सुखसुखेनाकुतोभयाः समुल्लङ्घयन्तः, पदे पदे गमनावसरपरिचितानि निवासस्थानानि निश्चिन्वन्तः, अविच्छिन्नैः प्रयाणैर्विपाशाकूलङ्कषां पश्चान्मुञ्चन्तः, प्राक्प्रस्थानमङ्गलवेलापरिचितं पुरोपवनं प्राप्ताः। इतश्च श्रीसङ्घागमनकिंवदन्तीपानोल्लसदाह्लादमेदुरः समस्तालस्यच्छिदुरः प्रस्तावोचितक्रियाविदुरः श्रीफरीदपुरीयः सङ्घस्तत्कालमिलितान्यग्रामसङ्घश्च; किं बहुना?-सर्वोऽपि ग्रामश्च तीर्थयात्रापुण्यपवित्रिताङ्गसङ्घदिदृक्षयाऽतितृषितलोचनः सम्मुखीनोऽस्यौत्सुक्यभावादागात्। ततश्च तमुचिताशीर्वादेन सह प्रमोदेन योजयन्तः सङ्घपतिसोदराभ्यां सा० पासदत्त-सा० हेमाभ्यामतिप्रीतिपराभ्यां पूगीफलनालिकेरादिबहुलताम्बूलादिदानेन सत्क्रियमाणसर्वजने, वाञ्छितदानेनायाचकीक्रियमाणे याचकलोके, जायमाने प्रवेशोत्सवे फरीदपुरमवापाम। यावत्सर्वोऽपि सङ्घोऽनिर्वाच्यपरमाह्लादसुधाम्भोधौ मग्न इवाभूत्। तद्दर्शं च वयमपि सिद्धिसमीहितत्वान्निरुपमसमाधिभाजोऽजनिष्महि।

अपि च-

मनसि कृत्य जिनेश्वरवन्दनं प्रचलिता यत एव वयं मुदा।
अभिनिनंसिततीर्थनमस्यया सुफलिताभिमतास्तत आगताः॥ ११७॥

सिद्ध्यन्तीदृशि कार्याणि प्रायेणोद्यमयोगतः। स चाप्यपेक्षते पुण्यं तच्च सङ्घे प्रतिष्ठितम्॥ ११८॥

॥ इति श्रीविज्ञप्तित्रिवेण्यां तीर्थयात्रार्थसमर्थिका
गङ्गातरङ्गाख्या द्वितीया वेणिः॥

*

३. अथ ज्येष्ठकल्पविधानाद्यर्थप्रस्ताविका तृतीया वेणिः प्रारभ्यते ।

*

[साधुपार्श्वदत्त - हेमाभिधकृतसुकृत्यप्रशंसा –]

§१. अथ सङ्घागमनानन्तरं नितान्तमुदितचित्तौ सङ्घपतिभ्रातरौ साधुपार्श्वदत्त-हेमाभिध-सुश्राद्धौ ज्येष्ठे भ्रातरि सौभ्रात्रवल्लरीं पल्लवयन्तौ स्वं धन्यं मन्यमानौ निस्समानमानसोत्साहौ तत्तत्प्रभूतसाधर्मिकादिसत्क्षेत्रेषु विविधाशनादिप्रकारेण न्यायार्जितवित्तबीजवापं तथाऽकार्ष्टां यथा कल्पान्तकालकीर्त्तनीयकीर्तिमतां मतिमतां सत्त्ववतां सत्पुरुषाणां द्वितीयतां धुरीणतां वा किलाश्नुतुः । तत् किं बहूच्यते? यतः – य एव केचन यात्रारम्भे मनागवज्ञामनाटयन्, त एवाथ सर्वाध्यक्षं स्वात्मानं निन्दन्तः सुनिष्पन्नसङ्घकर्म्माणि श्रावं श्रावं प्रमोदाश्रूणि चातिविस्मयात् स्रावं स्रावं भट्टा इवैकान्तसङ्घकार्यभट्टिममुखरितमुखाः साक्षादीक्षिताः। तदहो ! खलु लोको जितद्वितीयः कामितकामुको वाऽस्तीति विदांकुर्वन्तु श्रीपूज्या लौकिकाचारम् । किं च – सामान्येनाऽप्यनेन सङ्घेन सङ्घद्वयमीलनादतिस्फारीभूतेन तेषु तेषु स्थानेषु सङ्घान्तरेभ्योऽसामान्यैः करणीयैः सर्वथाप्यत्यरिच्यत । तच सर्वमागन्तुका एव न्यक्षेण वक्ष्यन्तीत्यलम् । अथ यावद्दिनानि कानिचित् तत्रावस्थानमभूत् तावता श्रीमलिकवाहणीयः श्रीमम्मणवाहणीयश्च समुदायस्तत्र वन्दक आकारकश्च तुल्यकालं समुपागात् । ततश्च स्वस्वास्पदमस्मान् विहारयितुं भृशमाग्रहीष्टाम् । वास्तव्योऽपि तथैवावस्थापयितुं निर्बन्धपरायण आसीत् । ततोऽस्माभिर्वास्तव्यो यावद् रहस्याक्षरमन्त्रेण सम्बोधितोऽस्याग्रहाद् विरराम, 'आम' इत्याह च । तद् द्वयं तु तथैवान्योऽन्यं विवदमानं शकुनान्वेषणव्यपदेशेन समाधाय तत् प्रथमं मम्मणवाहनं प्रति प्रस्थिताः । सायं च दक्षिणेन गोमायवोऽरटन् । ततो मम्मणवाहनगमनमुपेक्ष्य सह तत्सङ्घेन तदैव श्रीमलिकवाहनं प्राप्ताः । तदा च साधु द० मालाकेन प्रवेशोत्सवरङ्गः परिमितप्रसारोऽपि निखिलजनशोभासम्भारसम्पादको व्यधायि येन सर्वजनो मनसि चमदकरोत्, इति ।

[तीर्थयात्राकरणानन्तरसमागतपर्युषणापर्ववर्णना –]

§२. अथ श्रीतीर्थयात्रामहापुण्यपीयूषकुण्डारचितसवना इव सुतरां सुस्थिरस्वास्थ्यभाजः सपरिच्छदाः ससङ्घाः सुपरिणामाः पुरा यावद् वर्त्तामहे; इतः प्रतिवर्षप्रतिनियतागमा श्रीपर्युषणाऽपि प्रत्यासीदिति ।

ततश्च –

दान-शील-तपो-भावरूपो धर्मश्चतुर्विधः । भृशं प्राप्तावकाशोऽभूद्देष्यति ज्येष्ठपर्वणि ॥ १ ॥
अर्थमुक्तोऽपि दातॄणां करो गुरुतरो भवेत् । तत्पूर्णोऽपि पुनर्लातुर्लघुरेवेति मे मतिः ॥ २ ॥
दानं दौर्गत्यनाशाय दानं दुरितदारकम् । आशाकल्पद्रुमो दानं प्रियं त्रिजगतोऽपि तत् ॥ ३ ॥
दानेन शासनौन्नत्यं यादृशा तादृशेन वा । तस्माद् दीक्षाक्षणारम्भे तद्व्यापारि जिनैरपि ॥ ४ ॥
पश्य दानस्य सौभाग्यं वस्तुपालादयो यतः । जीवन्त इव मन्यन्ते यदुत्थयशसश्छलात् ॥ ५ ॥
अहो ! दानसमं नास्ति जगत्रितयमोहनम् । यस्माद् दुष्टोऽपि तुष्टः स्यात् तथा शत्रुः सुहृद्यते ॥ ६ ॥

दान इत्यक्षरद्वन्द्वं विभज्य जगृहे जनैः । उदारैरादिमो वर्णः स्पर्द्धयेवापरैः परः ॥ ७ ॥
राजानो दुर्जना मातापितरो गुरुबान्धवाः । खिद्यन्ते के न दानेन चिरं विमुखिता अपि ? ॥ ८ ॥

तथा –

कष्टानुष्ठानकर्त्तारो भूयांसः सन्ति पूरुषाः । केऽपि ते विरला एव शीलशुभ्राः सदैव ये ॥ ९ ॥
कलिदुर्वातपातेन कथञ्चिद् विधुरा अपि । शीलबोहित्थमास्थाय भव्यास्तीर्णा भवार्णवम् ॥ १० ॥
न त्रातारो न दातारो योगिनो न न भोगिनः । शीलपालकलोकानामर्घन्त्येकां कलामपि ॥ ११ ॥
अन्तरङ्गद्विषद्व्यूहं गलहस्तकदायकम् । तपः सुसाधुभिस्तप्तं निर्जराङ्गमकृत्रिमम् ॥ १२ ॥
विषमाण्यपि कर्माणि दुश्चीर्णानि कथंचन । तपस्तपनयोगेन क्षयं यान्त्यन्धकारवत् ॥ १३ ॥
प्रत्यूहव्यूहतो नाम लोको यद्येष शङ्कते । नादधीत कथंकारं तपस्तद्ध्वंसमांसलम् ॥ १४ ॥
यदगम्यं यद् दुरापं दुःश्रद्धेयं च यद् भुवि । तदायासं विना भूता लभन्ते तपसा प्रियम् ॥ १५ ॥
दुष्कर्ममलसंस्पृष्टस्तावदात्मा न शुद्ध्यति । तपोऽग्निना स्वर्णमिव न यावज्जातु तप्यते ॥ १६ ॥
यक्षरक्षःफणिव्याघ्रा न तानाक्रमितुं क्षमाः । सिद्धमन्त्रोपमे येषां तपस्यास्था सनातनी ॥ १७ ॥

तथा –

नरके नारकाः सन्ति सहन्ते दुःखमेव च । न तेषां भावना शुद्धा तस्माल्लाभो न किंचन ॥ १८ ॥
पुण्डरीकादिभिस्तैस्तैः श्रेष्ठैकाहव्रतादपि । कर्मग्रन्थिस्फोटितो यद् भावना तत्र कारणम् ॥ १९ ॥
सुचिरादविवेकोऽपि कृताज्ञानतपा अपि । भावनातो नरः शुद्ध्येत् तामलीवामलाशयः ॥ २० ॥
दानं शीलं तपस्तुण्डमुण्डनादि सुबह्वपि । अफलं खुहिशाखीव यद्येका नहि भावना ॥ २१ ॥
अहो ! भावस्य भव्यत्वं विरत्यां विगताग्रहः । आर्जिजत् तीर्थकृल्लक्ष्मीं श्रेणिकः पृथिवीमिव ॥ २२ ॥
दानं दुरितनाशाय शीलं सौभाग्यवर्द्धकम् । तपः पङ्कविशोषाय भावना भवनाशिनी ॥ २३ ॥

तदमूनमूदृशो दान-शील-तपो-भावनाभेदान् परिपोषितस्वस्वसामर्थ्यान्नासीरतया परिस्फुरता चतुरङ्गचमूभवेन व्यवस्थाप्य तैरेवाधृष्यविपक्षपक्षक्षोभमुद्भावयन्ननिवारितनिजैश्वर्यकलया सपक्षानावर्जयन्नगणितस्वपरपक्षः सर्वत्र समदृष्टिरुदारचरितः सम्यक्त्वसामायिकश्वेतगजारूढः प्रौढश्रीः पर्वराजः श्रीजिनराजशासनराजधानीमध्युवास । तदा च– आशिषः स्थानेन चाऽस्माभिः श्रीकल्पवाचनाव्यापारयिषत् श्रीकालिकाचार्यकथाद्वयोपदेशव्यपदेशेन तत्तत् तदुत्पत्त्यादिव्यावर्णनं निर्णयद्भिश्च द्वारभट्टपटिमा स्वात्मनि घटयांचक्रे च। सुश्राद्धमहाजनेन तु साङ्गतिकक्रमुकनालिकेरीविविधवर्णवर्णनीयवासःप्रदानसाराभिरेकादशकृत्वः प्रभावनोपदाभिरुपस्थितश्चायं पर्वराजः । किं चात्र साधुमेहाक–सं० जसूश्रावकौ मासक्षपकौ, श्राद्धिका तु द्वादशपक्षक्षपका, अष्टाह्निकाकारिण्यस्त्वगारिण्यो गणनातीताः समपत्सत । एतच्च पर्वस्वरूपं पुरापि श्रीपूज्येभ्यः प्राभृतीकृतमभूत्, तथाऽप्यधुना स्थानाशून्यार्थं पुनरपि व्यज्ञपीति न पौनरुक्त्यमाशङ्क्यम् ।

[चतुर्मासानन्तरसञ्जातनन्दिमहोत्सववर्णना –]

§ ३. अथ सम्प्रति मिलितसर्वमहाजनो महाविस्तारस्फारो वाद्यदातोद्यस्तोमः पौषसितपञ्चम्यां श्रीनन्दिमहः सम्पन्नः । तत्र च श्रावकाश्चत्वारः, श्राविकास्तु चतुर्विंशतिः, संयताश्च त्रयः, सर्वविरतिवर्जं तत्तत्पश्चरणप्रमुखानभिग्रहविशेषान् परमयाऽहमहमिकया यथार्हं सर्वेऽप्याददिरे । तदा च ताम्बूलादिदानप्रधाना विश्वाश्चर्यकरी सा काचित् प्रभावना श्राव-

कैश्चक्राणा, ययाऽपि सर्वः श्राद्धसङ्घो नाम सुतरां साधुवादाद्वैतवादी समवृतत्। अन्यो मुग्धलोकस्तु ताम्बूलादिप्राचुर्यं दृष्ट्वा ह्यसमयेऽपि पर्युषणापर्वभ्रमं दधार। तदयं सर्वजनीनो महान् पुण्यलाभः। तथैषैषीच्छ्रीमत्प्रसादितं लेखद्वयं, परिजग्मे च ततोऽवस्थानादिनैयत्यम्। पुनरपि यथावसरं स्वसुखावस्थानादिसमाचारसुधांशुव्यापारणेन प्रह्लादनीयो नश्चित्तसागरः सुगुरुभिः।

तथा वयमितः प्रस्थातुकामा अपि कल्याणी–भक्तिश्रीसमुदायोपरोधात् तपोधनावन्दापनोत्सुका अपि स्थिताः। अथाद्यश्वीनश्रीमम्मणवाहनीय–श्रीफरीदपुरीयसङ्घागमः संभाव्यमानोऽस्ति। तदागतौ यद्योग्यताङ्गं भविष्यति तद् विधास्यतेऽवश्यम्। तथाऽत्रत्यो मेघराजगणि–सत्यरुचिगणि–प्रभृतियति सा॰ नगराज–सा॰ हांसा–सा॰ हापा–श्रे॰ भोजा–सा॰ पाह्ला–सा॰ मण्डलिकगोला–सा॰ रेला–द॰ भीमा–सा॰ आह्ला–सा॰ देपाल–सा॰ विधा–सा॰ जिणिया–सा॰ देवा–सं॰ रतन–सं॰ घुम्मण–सा॰ सहजा–सा॰ कान्हड–सा॰ मूला–सा॰ वस्तुपालसवालक्खा–सं॰ लद्धाप्रमुखो निखिलोऽपि त्रिवर्णः श्रीसङ्घः श्रीमत्पादपयोजन्मसु चिराचञ्चरीकेलिं कलयतितमाम्।

[अथ प्रान्ते पुनः सूरिगुणप्रशंसात्मकाः स्तुतिश्लोकाः–]

तथा–

गाम्भीर्यालब्धमध्यो धुतसगुणमणिर्धीरतासातुमद्भिः, सन्नद्धो मध्यमेधोज्ज्वलतरसलिलोल्लोलमालोत्सहिष्णुः।
माद्यद्विद्यानदीनां घनरससरसितः श्रीधरोपासनीयः, बोभूयेत श्रियाढ्यः सुगुरुजलनिधिः सूरिनीराशयेषु ॥ २४ ॥
संसारसरसीसूर उरूराः सरसोरसिः। रसासारो रिंसोऽरं सूरिः सूरिसु साररः ॥ २५ ॥ (–द्विव्यञ्जनः।)
सत्कल्याणधरः सुरागमधुरस्तारोदयानुत्तरः, सद्रत्नोपलसद्विभूतिरुचिरो गौरश्रिया भास्वरः।
शश्वद्धीरतरः स्फुरद्वसुभरः सत्सौमनस्योद्धुरो, जीयाच्छ्रीजिनभद्रसूरिसुगुरुः सर्वंसहायां चिरम् ॥ २६ ॥
सद्भिः सुवंशजातैः संश्रितपादो वरेण्यशाखीव। सद्भिः सुवंशजातैः संश्रितपादो गुरुर्जीयात् ॥ २७ ॥
विहाय पङ्कोच्चयमुत्सुतानां सद्वासनाश्रीसमधिष्ठितानाम्।
प्रबोधनायार्यमनोऽम्बुजानां प्रकल्पते यद्वचनं रविश्च ॥ २८ ॥
यन्मूर्तिवत्प्रीतिकरी सरस्वती सरस्वतीवन्मधुरा गुणावली।
गुणावलीवद्विपुला मनीषा नन्दन्तु ते पूज्यतमा जगत्याम् ॥ २९ ॥ (–रसनोपमा।)
रोगोरुगोरुगारीरैगौराङ्गगुरुरुग्गुरुः। आगोगागारिरागारंगिरांगोगेरिगो गुरुः ॥ ३० ॥ (–द्विव्यञ्जनश्लोकः।)
ध्यानध्यानधुतापदो घनतमःसम्भेदने साधवो, विश्वेनाञ्चितसत्पदो भवभिदो रङ्गन्महाभानवः।
चेतोहृद्गुणसम्पदो जनमतोत्सृष्टौ सुरोर्वीरुहः, कल्याणं ददतां सतां गुरुरसावन्येऽपि चानारतम् ॥ ३१ ॥
(–महाद्भुतम्। प्रथमैकवचन-बहुवचनाभ्यां व्याख्येयं विद्वद्भिः।)
जीयासुर्गुरवोऽवन्यां वन्यामिवावनीरुहाः। यमाश्रित्य चयं याति विद्याव्रततिसन्ततिः ॥ ३२ ॥ (–गुरुवर्णनम्।)
विशां हि सेव्याः सरसारवावरा विश्वा विहायोहरयः सुसंवराः।
साहस्रसाराः सलयाः सुसूरयः सारश्रियो वैरविशारसूरयः ॥ ३३ ॥ (–पञ्चवर्गपरिहारेण छत्रबन्धः।)
वर्णनीययशोराशिवरो विततलोचनः। वरदो मम सम्भूयाद् वर्यस्तारवो गुरुः ॥ ३४ ॥
(–स्वस्तिकबन्धेन काव्यम्।)
आलवालतुलं येषामभिधानं स्थिरीकृतौ। ललल्लक्ष्मीमहाकारस्करसारं निरन्तरम् ॥ ३५ ॥ (–चामरबन्धः।)

श्रीतिस्फीतितर्ति येषां प्रशस्यास्यशशी नयेत् । सुसाधुजनताचेतःश्रोतःकान्तं ततं स्मितम् ॥ ३६ ॥ (– चामरः ।)
एवं पूज्यगुणोद्गानविधानमुखराननः । **श्रीजिनभद्रसूरीन्द्रान्** वन्दते **सोमकुञ्जरः** ॥ ३७ ॥
दोषद्रुहस्तीन्द्रसुरेशकुञ्जराः सन्मानसाम्भोनिधिशर्वरीवराः ।
भूयो गुणश्रेणिहिरण्यमन्दिरं जयन्ति ते श्रीगुरवो निरन्तरम् ॥ ३८ ॥
विद्यावलीवल्लिवरेण्यमण्डपं कृपापयोधारणविस्फुरन्निपम् ।
वचश्श्रयै रञ्जितसर्वविष्टपं गुरुं स्तुवे पादनतोरुभूमिपम् ॥ ३९ ॥
गुणालिताराधरणान्तरिक्षं विध्वस्तसम्मोहमहाविपक्षम् ।
नीरन्ध्रदोषोत्करभेददक्षं गुरुं स्तुवेऽहं सुयशोवलक्षम् ॥ ४० ॥
यच्छति स्फीतिसन्तोषं यद्भारती सभासदम् । यथाम्भोदपयोधारा राजत्सारङ्गसन्ततेः ॥४१॥ (आसनबन्धेन वृत्तम् ।)
नरकसंहरणे कमलाधवः सदवनीनलिनीनलिनीधवः ।
कविजनग्रहराशितमीधवः शुचिधियेऽस्तु गुरुर्मधुरारवः ॥ ४२ ॥
भुवनमन्दरशैलसुरागमं जिनपशासनभासनसोद्यमम् ।
विमलचेतनयावगतागमं गुरुवरं प्रणुमः सुगुणोत्तमम् ॥ ४३ ॥
कल्याणवारांकुरवृद्धिनीरदाः कारुण्यभूयोलहरीलसन्नदाः ।
सुसेवकानां सुतरामभीष्टदा जयन्तु पूज्याः परिणामिसम्मदाः ॥ ४४ ॥
इत्थं नत्वा गुरूँश्चित्ते सुस्थिरः **स्थिरसंयमः** । **श्रीजिनभद्रसूरीशान्** नन्नन्ति विनयान्वितः ॥ ४५ ॥

[सूरिपार्श्वे संस्थितानां मुनिगणादीनां नामस्मरणपूर्वकं वन्दनादिविधानम् –]

§ ४. तत्रत्यस्य पं० पुण्यमूर्त्तिगणि–पं० लक्ष्मीसुन्दरगणि–पं० मतिविशालगणि–वा० लब्धिविशालगणि–पं० मतिराजगणि–प्रमुखसाधवः, प्र० तपःप्रभागणिनी प्रवर्हयतिन्यः, सा० गेला०–सा० करणा–सा० धणपति–सा० वज्राङ्ग–श्रे० रूपा–भं० गुणराज–सा० आसा–सा० पद्मसिंह–सा० गुणराज–श्रे० हरिराजमुख्या महागारिणः, सौ० गङ्गादे–सौ० सोषू–सौ० जासलदेवी–सौ० पद्मलदेवीप्राग्रग्रहराः श्रमणसेवकपत्न्यश्च तत्तदनुवन्दना-धर्मलाभमयोचिताशीर्वादकदलीफलप्रदानेन सम्यगानन्दमेदुराः सम्भावनीयाः । तथा श्रीमद्भिः सर्वदापि समुचितशिक्षाप्रेषणे क्षणमप्युपेक्षणीयं न । तथाऽविनयविलसितादि तितिक्षणीयं क्षमाश्रमणप्रवीणैः । तथाऽधुनाऽत्र किमप्यसमञ्जसासमाधिसदृशं नास्ति, तेनात्यन्तं श्रीमतां प्रसादाद् वयं सपरिच्छदा अपि समाहितास्तेष्ठीयामहे ।

अपरं च –

धातुर्विश्वविधाननैपुणमयात् पाणेर्जगद्विश्रुताद्, विज्ञानातिशयो यदीयवचने कोऽप्यद्भुतो वर्त्तते ।
भाले तेन लिपीकृतां तनुभृतां यन्मौढ्यवर्णावलीं, तत्तत्त्वमहोपदेशसलिलप्लावैः प्रमार्ष्टि क्षणात् ॥ ४६ ॥
तान् विस्मेरविद्याम्बुजिनीप्रसर्प्यद्यशःपरागैर्मुदितज्ञभृङ्गान् ।
परप्रतीक्ष्यान् **जिनभद्रसूरिपादान्** प्रणन्नन्ति स **मेघराजः** ॥ ४७ ॥
इति लिखितलेखरङ्गत्प्रासादोपरि चिरं परिस्फुरतु । मम वन्दनापताका **श्रीमज्जिनभद्रसूरिभ्यः** ॥ ४८ ॥

*

॥ इति विज्ञप्तित्रिवेण्यां ज्येष्ठकल्पविधानाद्यर्थप्रस्ताविका यमुनाकल्लोलाख्या तृतीया वेणिः ॥

*

॥ परिशिष्टस्वरूपाः पंक्तयः ॥

[उपसंहारात्मिका विज्ञप्तिः —]

विज्ञप्तिसत्रिवेण्यां सूक्तलसल्लहरिवारहारिण्याम् ।
गुणगृह्यनिपुणमानसवृन्दानि स्नान्तु चिरकालम् ॥ १ ॥
जलधि-वसु-भुवन-सङ्ख्ये वर्षे माघे सिताष्टमीदिवसे ।
रविसुतवारे रुचिरे समर्थितोऽयं महालेखः ॥ २ ॥
यन्यूनं यच्चाधिकमसङ्गतं वा यदत्र लिखितं स्यात् ।
तच्छोध्यं धीमद्भिर्यतः सतां रीतिरियमेव ॥ ३ ॥

किं च—

श्रेष्ठिनो **नरसिंहस्य** तनयो विनयावनिः । **भोजाख्यः** साक्षरः क्षिप्रं प्राञ्जलिः प्रणमत्यसौ ॥ ४ ॥

*

विशेषस्वरूपावलीज्ञाप्त्या निष्पन्नेयं विज्ञप्तित्रिवेणीनामग्रन्थपद्धतिः ।
संवत् १४८४ वर्षे माघमासि दशम्याम् ।

*

किं च—

द्विवन्दनीकगच्छीयाः **श्रीदेवगुप्तसूरयः श्रीसाधुरत्नोपाध्याया** वा यदीह स्युस्तदा तेषां विशिष्यास्मदीया प्रतिपत्तिरौचित्येन प्रकाश्येति ।

*

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥

*

॥ भद्रमस्तु जिनशासनाय । स्वस्ति श्रीसङ्घाय । आयुष्यमस्तु गुणगृह्येभ्यः ।
समाधिरस्तु स्वयूथ्यानामिति ॥

(ग्रंथाग्रं १०१२)

॥ समाप्तं विज्ञप्तित्रिवेणीनामकं बृहद् विज्ञप्तिपत्रम् ॥

महोपाध्यायजयसागरकृता
नगरकोटचैत्यपरिपाटी ।

*

मुझ मनि लागिय खंति **जालंधर** देसह भणिय । तीरथ वंदण रेसि **नगरकोटि** तउ आवियउ ॥ १ ॥
बाणगंगा पातालगंग व्याह नइ जसु तडिहिं । वणराई घण घाट वाट ति घाटिहिं आगलिय ॥ २ ॥
तहिं महिमाभंडार पहिलउं पहिलइ जिणभवणिं । दीठउ **संतिजिणिंद** नयण अमियरस पारणउं ॥ ३ ॥
जिणहरि बीजइ रीजु मनि अधिकेरउं ऊपजए । जहि सोवनमय बिंब **रूपचंद** रायह तणउं ॥ ४ ॥
जिणि दीठइ संतोसु मण आणंदिहिं ऊससए । अंधारइ उद्योत जयउ सु जगगुरु **वीरवरु** ॥ ५ ॥
जइ त्रीजइ प्रासादि सरवरि राजमराल जिम । संभाविउ **रिसहेसु** चंपकि चंदनि थुति जलिहिं ॥ ६ ॥
हिव चडियउ चमकंत अति ऊंचइ गढि **कांगडए** । इहु जाणे मइ किद्ध सिद्धिसिला आरोहणउ ॥ ७ ॥
अलजउ अंगि न माइ माइ ताय घरु वीसरिय । सरिय सयल मह कज्ज तहिं **रिसहेसर** दंसणिहिं ॥ ८ ॥
जो हीमालय हुंत राय **सुसर्म्मिहिं** जाणियउ । **नेमिसरि** जयवंति **कंगड कोटिहिं** आणियउ ॥ ९ ॥
चंद्रवंसि जे राय राणा जसु पयतलि लुलइ । **अंबिकदेवि** पसाइ तहिं मनवंछित फल मिलइं ॥ १० ॥

भास–

कंचणमय कलसिहिं सहिय ए च्यारइ प्रासाद, च्यारइ चिहुं वरणिहिं नमिय च्यारइ हरइं विषाद ।
गोपाचलपुर सिरिमउड **संतिनाह** जगसामि, कामियफल कारणि रसिय लीणउ छउ तसु नामि ॥११॥
नंदवणिहिं नंदउ सुचिरु **चरमजिणेसर** चंद, जगचकोरु जसु दंसणिहिं पामइ परमाणंद ।
पास पसंसउ **कोटिलए** गामिहिं महि अभिरामि, मह मन कोइलि जिम रमउ तस गुण अंबारामि ॥१२॥
हेमकुंभ सिरि जिणभवणि ए सवि थुणिया देव, देवालइ **कोठिनयरि** करउं **वीरजिण** सेव ।
दुक्खह दिन्नु जलंजलिय सुखह लद्धु पसारु, तीरथ **पंचइ** जइ नमिय पामिय मोख दुयार ॥ १३ ॥
मंगल तीरथ पंथियह मंगल तीरथ पंथ, ज सुखेहिं किर मइं कलिय मुकतिनारिसीमंथ ।
नारि अच्छइ घरि घरि घणिय जणणी सा परु धन्न, जासु कुक्खि उप्पन्न नरु संचइ तीरथपुन्नु ॥ १४ ॥

इय **जयसायर** समरिय ताय, **सवालखपव्वय** जिणराय ।
ता अम्हारिय पूगी आस, हउं बोलउं जिणसासण दास ॥ १५ ॥
इणि समरणि नासइ नरगजोग, इणि समरणि लाभइ सरग भोग ।
इणि कारणि तुम्हि भो भविय आज, इहु पभणहु, निसुणहु, सरइं काज ॥ १६ ॥
इय **नगरकोट** पमुक्ख ठाणिहिं जे य जिण मइं वंदिया,
ते **वीर लउंकड** देवि **जालामुखिय** मन्नइ वंदिया ।
अन्नेवि जे केवि सग्गि महियलि नागलोइहि संठिया,
करजोडि ते सवि अज्ज वंदउं फुरउ रिद्धि अचिंतिया ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीनगरकोट्टमहातीर्थचैत्यपरिपाटी ॥

—— ॥ कृतिरियं श्रीजयसागरोपाध्यायानाम् ॥ ——

*

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

द्वितीय विभाग

*

प्रकीर्णविज्ञप्तिलेखाः ।

*

महोपाध्यायश्रीविनयविजयगणिप्रणीतं

[१] आनन्दलेखप्रबन्धनामकविज्ञप्तिपत्रम् ।

॥ चित्रचमत्कारनामा प्रथमोऽधिकारः ॥

*

॥ सकलभट्टारकप्रभु श्री ५ श्रीविजयाणन्दसूरिगुरुभ्यो नमः ॥

स्वस्ति श्रियां मन्दिरमिन्दिरालीमिन्दिन्दिरालीमिव यः पिपर्त्ति ।
रज्यत्प्रवालायितपादपद्मं पद्मं यमाहुः प्रवितीर्णपद्मम् ॥ १ ॥
स्वस्ति श्रियः सद्मनि यत्पदाब्जे रेजे नखानां ततिरच्छकान्तिः ।
दिशां दशानामपि सुन्दरीणामादर्शमालेव मणिच्छटेव ॥ २ ॥
कर्णोपकण्ठे किल कुन्तलाली कलिन्दकन्येव विभाति यस्य ।
स्वतातसन्तापमपाचिकीर्षुर्विज्ञप्तिमेषा चरिकर्ति नूनम् ॥ ३ ॥
जटाच्छटा राजति राजतीनशिरस्तटे बालकलिन्दजेव ।
वृषाङ्कमौलिस्थलमन्दिरायाः स्पर्द्धातिरेकान्नु सरिद्वरायाः ॥ ४ ॥
यत्कर्णयोर्नूनमनूनकेशच्छटा[1]च्छलाच्छंसति सूर्यजेति ।
बन्धोर्मदीयस्य नृशंसभावं, शुभोपदेशेन निवर्तयेश ! ॥ ५ ॥
यमीतमीश्यामशिरोजमालामिषादिदं वक्ति नु यस्य कर्णे ।
सन्तापिता पापिभिरीश ! तापी, जामिर्मदीया बत किं करोमि ! ॥ ६ ॥
यमीयमीशं श्रुतिमूललग्ना वक्तीति केशावलिछद्मतः किम् ।
समादिशेदं दुरितेन केन, प्रभोऽन्वहं खे भ्रमणं पितुर्मे ॥ ७ ॥
गङ्गातिगौरी हरचित्तचौरी, हसत्यसौ तात ! तरङ्गभङ्गैः ।
भामण्डलस्पृष्टशिरोजराजीमिषात् स्वतातं यमजामिराह ॥ ८ ॥
प्रतिष्ठिता भावलये यदीये, विभाति भातिप्रगुणेऽलकाली ।
इदं निरीक्ष्य द्रुतजाततातभ्रान्त्या किमालिङ्गति तारणेयी ॥ ९ ॥
खलेन भिन्ना हलिना हलेन, बलेन नंष्ट्वा शरणं प्रपन्ना ।
विभाति पृष्ठे यमुनैव यस्य, शङ्केऽलकानां विततेश्छलेन ॥ १० ॥
यदीयभामण्डलमध्यलग्ना न साऽलकाली शमनस्वसेयम् ।
गोरत्ववाञ्छावशतस्तटाकपाकभ्रमान्मज्जति लज्जितेव ॥ ११ ॥

॥ अथ चित्रप्रक्रमः ॥

जयिन् नयिञ् जय श्रीमन्! भाविनां भावुकप्रदः । दयादोषददभौंघदवकल्पो वरान्वयः ॥१२॥ (–पूर्णकलशः।)
जयाय[2] यतते तेऽहो यावता शशभृच्छ्रियः । यता हि सततं ज्योत्स्ना यशः सज्जिन! विश्वपाः ॥१३॥ (–अर्द्धभ्रमः।)

---

१ प्रत्यन्तरे "°कान्तिच्छटा°" । २ अहो प्रभो ! यशः यावता शशभृच्छ्रियः जयाय यतते यत्सम्बन्धात्, तावता ज्योत्स्ना यता = उपरता इत्यर्थः । 'यमू उपरमे' (सिद्ध०) इति वचनात् ।

जॅहि तापरयव्यापां जन्मोपनतविष्टपाम् । पापनन्दिं जिनेताघपारतत्त्वनिघेऽनघ ! ॥ १४ ॥ (–छत्रम् ।)
जैराद्यरीन् मनःशुद्ध्या जयन् नतनराऽनिघे ! । घनचञ्चद्भनिर्जीयात् सुतीव्रव्रतवाञ् जिनः ॥ १५ ॥ (–शरः ।)
जलधौ नौरिव ज्ञान् यस्तारयत्यवलम्बनम् । नतेन्द्रः स प्रभुः सिद्धिं दद्याद् विश्राणिताङ्घ्रिजः ॥१६॥ (–धनुः ।)
जनयन्ति मुदं ते श्रीजिनोद्भाविरुचिस्रजः । जस्तदुर्ध्यानसन्दर्भ सर्वथाममताङ्गज ! ॥ १७ ॥ (–वज्रम् ।)
जम्भजिद् यं स्तुते नाकी कीरो द्रुमिव तं भज । जराभीतोऽवतंसेन सेव्यं देवैस्तु राजभम् ॥ १८ ॥ (–शक्तिः ।)
जडा मनुजराज्यार्त्तियोगे वीक्षेत राशिभम् । भजन्ते न जिनं देवं वरेण्याङ्गं गताश्रवम् ॥ १९ ॥ (–भल्लः ।)
जलज्वलनचौराविर्भूतं सर्वारिसम्भवम् । बम्भज्यते भयं यस्य नाम्ना सिद्धै स वोऽस्त्वजः ॥ २० ॥
जनाय सेविनेऽम्भोजवासां देहि वृषध्वज ! । जवेन सारहारश्रीर्वराक्षिरुचिरक्षितः ॥ २१ ॥ (–द्वाभ्यां खड्गः ।)
जघान योऽघमह्नाय तममानं नमाम तम् । तथा यस्य मतिः कान्ता शावरागगरावशा ॥ २२ ॥ (–रथपदम् ।)
जञ्जन्यते यकस्याङ्गयशसा शं महीस्पृशाम् । शान्तं जिनेन्द्रं सुशयं गम्भीरं नम विश्वपाम् ॥२३॥ (–मुशलम् ।)
जयन्त्यादिविभोः पाणेः करजा विजितोडुपाः । पालकाः कालपाः पाककम्पापाकररंकपाः ॥२४॥ (–त्रिशूलम् ।)
जपामदजयं येऽग्रुद्रांग्रुद्रजगत्कृपाः । पान्तु नाभेयपादा मां पुण्येष्वाहृतसौहृदम् ॥ २५ ॥ (–हलम् ।)
जरॉगरातुरास्तेरुस्त्वद्दधद् भिन्धि कामद ! । दम्भं दवदरं दस्युं दयोदयदयं दमम् ॥ २६ ॥ (–चामरः ।)
जन ! स्पृहयसि स्वेभ्यो तदमुं सदयाग्रिमम् । मनसाननशीतांशुं शुभं जैनं नमोत्तमम् ॥ २७ ॥ (–श्रीकरी ।)
जञ्जपूको नतो येन तोयेशँ ! क्षिप सत्तम ! । मत्तसम्पन्निधे ! देव वन्दे मयि महोऽग्रिमम् ॥ २८ ॥ (–शङ्खः ।)
जङ्गमं तं तरुं ब्रूमश्चित्रं कृततमःशमम् । मन्दारातततदातृत्वं जिनं सततसम्पदम् ॥ २९ ॥ (–श्रीवत्सः ।)

*

[एभिः सप्तदशभिश्चित्रैः स्वगुरुनामगर्भितं अष्टादशारं चक्रं सम्पद्यते ।]

*

॥ अथ चक्रातिरिक्तानि चित्राणि यथा – ॥

जगतो हतभी राजञ् जराभीरुं निहंस्यज ! । जस्यं हन्त भियो बीजं जवीयो विदितोऽङ्गजः ॥ ३० ॥
(–चक्रातिरिक्तं कमलम् ।)

जन्तूनामभयं योऽदात् तं नौमीनमनंहसम् । सन्ततं ततसंतापापातासंदमसंमदम् ॥ ३१ ॥
(–चक्रातिरिक्तं त्रिशूलम् ।)

---

१ हे जिन ! पापनन्दिं जहि । किम्भूताम् ? तापरयस्य व्यापो यस्याम् । पुनः किंविशिष्टाम् ? जन्मनि उपनतं विष्टपं यया । 'इताघपार !' इतः=प्राप्तः अघपारो येन सः ।

२ पारं तनोतीति पारतन्, पारततो भावः पारतत्त्वम् । तस्य निधिः, पारतत्त्वनिधिः, तस्यामन्त्रणम् ।

३ नितरां हन्तीति निघः, न निघः=अनिघः "निघोद्ध सङ्घोद्घनापघनोद्गं निमिसरप्रशस्तगणात्याधानाङ्गासन्नम्" (सिद्ध० ५।३।३६) इति सूत्रेण सिद्धिः ।

४ हे जिन ! हे मनःशुद्ध्या जराद्यरीन् जयन्, हे 'अनिघ !' 'निघा' बृहतिका, निघं 'वस्त्रं' इति बृहद्वृत्तिगत'निघोद्धसङ्घोद्य' (सिद्ध. ५।३।३६) इति सूत्रवचनात् न विद्यते निघा निघं वा यस्येति ततः सम्बोधनम् ।

५ हे प्रभो !–जरागरातुराः, त्वत्=भवतः तेरुः=अतरन् । तया हे कामद ! दम्भं दवदरं दस्युं भिन्द्धि । त्वं किं कुर्वन् ? दयाया उदयं दयते=ददाति एवंविधं दमं दधत् ।

६ हे तोयेश !—तां=लक्ष्मीं ऊयते इति तोयः, स चासौ ईशश्च तस्यामन्त्रणं हे तोयेश ! 'ऊय तन्तुसन्ताने' इति वचनात् । येन कारणेन अहं जञ्जपूकोऽस्मि, गर्ह्यं जपतीति जञ्जपूकः 'गृलुप सदाचारे' इति वचनात्, अपि नतस्तेन मयि अग्रिमं महः=ज्योतिर्लक्ष्मीं क्षिप=स्थापय । हे आत्तसम्पन्निधे ।

†नत्वा सत्त्वावबोधाय सोद्यमं जिनमादिमम्। देवदेवं तमेवाहं सेवे देवेश्वरार्चितम् ॥ ३२ ॥

वासवाभिनत! तन्तनोमि ते स्तोत्रमत्रभवतः श्रियां पदम्। दम्भदोषरहितेन चेतसा मारुदेव! वरवीरकुञ्जर! ॥३३॥

तस्य हस्ते पदं श्रीविभो! शाश्वतं, तच्चिदुद्रेकसश्रीकनित्योत्सवम्।
तत्त्वतः पण्डितः सोऽञ्जसा यः स्तुते, ते पदाब्जं विवेकी जिनाधीश्वर! ॥ ३४ ॥

न लभेत स पामरलोकदरं रसिकं तमियर्ति च कामगवी।
भिषजं भवभाविगदे भयदं दमवान् य इमं विनमत्यजरम् ॥ ३५ ॥ (—तोटकवृत्तम्।)

वामकामद्विषा जय्यमीष्टे वसु सुप्रभास्योडुपो जन्तुकल्याणकुः।
सङ्गसञ्ज्ञं जहौ यश्च तं वीवधं धर्मदः पातु मां यत्नतो नाभिजः ॥ ३६ ॥

भजे भवन्तं गुणरत्नसिन्धुं धुतक्रुधं सुन्दर! ते तदन्तम्। तं तीर्थराजं जवनाघपङ्ककम्पप्रपञ्चाजजवं हरन्तम् ॥३८॥

वारांनिधिं धिक्कृतकर्मपङ्क! करोषि धेनुकर्म[1]मध्यबन्धुम्[2]।
धुर्यांहसं संसृतिनामधेयं यतीन्द्र! विश्राणिततत्त्ववार! ॥ ३८ ॥

भवन्नवनवर्ण्या स्याद् विना भाग्यं मितालक!। कवेः कस्य कला कम्रा कर्मकंपकरा कल! ॥ ३९ ॥

भदन्तं दन्तिदन्ताभकीर्तिं नम्रोस्वशावभम्। भग्नं भवभयं भद्रं भज भव्याऽभयो भव ॥ ४० ॥

[इदं चक्रातिरिक्तं गुरुद्वयनामगर्भितं सप्तशलाकाघटितं चामरद्वयविराजितं छत्रम्।]

‡इत्थं चामरयुग्मबन्धमधुरच्छत्रस्तवोरुस्रजा श्रीमन्नाभिनराधिराजतनयं भक्त्युत्सुकोऽपूपुजत्।
विश्वव्यापककीर्ति '**कीर्तिविजय**' श्रीवाचकाधीशितुः, शिष्योऽयं '**विनयो**' नयोज्वलमतिः श्रेयःश्रियां सिद्धये ४१

[एतस्य सप्तदशचित्रगर्भितस्य चक्रस्य तदन्येषां च त्रयाणां चित्राणां स्थापनाश्चित्रपटादवसेयाः।]

इत्थं स्तुतो यः प्रथमो जिनेन्द्रः सुरासुरैः खेचरभूचरेन्द्रैः।
युगादिकाले व्यवहारचर्या-महालताकन्दलनैककन्दः ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीऋषभदेववर्णनम् ॥

*

स्वस्ति श्रियां सन्ततिमिन्दुकान्तिर्निरस्ततान्तिः स तनोतु शान्तिः।
यदङ्घ्रिपद्मे प्रणताऽमराली धत्ते मरालीपटलीविभूषाम् ॥ ४३ ॥

सुवर्णशालत्रयशालितस्य चतुर्मुखी संसदि यस्य भाति। चतुर्दिगुत्पन्नजनावनाय चतुष्टयी चन्द्रमसः किमेषा ॥४४॥

क्षणक्षणे भावविभावनाय यस्योच्छलन् रा[3]जति पाणिपद्मः। नृत्यद्विजित्योद्धुरमारवीरं तूणीरमेतन्ननु विश्वभर्तुः ॥४५॥

येनातिशौर्यान्निजमांसवस्नैः क्रीता तदानीं ननु कीर्तिकन्या[4]।
साऽद्यापि बालेव परिभ्रमन्ती चित्रं न केषां हृदि चर्करीति ॥ ४६ ॥

कपोतपोतावनहेतुयोगादुपार्जितो यः शुभकर्मपिण्डः। स चक्रितीर्थङ्करऋद्धिलब्धौ बभूव यस्य प्रतिभूः प्रचण्डः ॥४७॥

गर्भस्थितेनाऽपि हि येन जघ्ने विघ्नाः समस्ता भुवनेषु निघ्नाः।
प्राभातिकाभ्रान्तरितोऽपि किं वा नार्कस्तमःस्तोममपाकरोति ॥ ४८ ॥

अपोहति स्वोदरमन्दिरोऽपि प्रत्यूहमङ्गी हितकल्पवृक्षः। हन्तुं गजं गर्भगतोऽपि सिंहः किं नोत्सहेतोर्जितगर्जितोग्रः? ॥४९

यन्नाममन्त्रस्मरणेन नैव गदापदाः स्युः समदाः कदापि।
आस्तिक्यवाक्यश्रवणक्षणे वा दृष्टैव शान्तिर्विषभृद् विषाणाम् ॥ ५० ॥

---

† प्रत्यन्तरे पद्यमिदं नोपलभ्यते। १ प्र० 'धेनोः'। २ बन्धु। ‡ प्रत्यन्तरे नोपलभ्यते एतदपि पद्यम्। ३ प्र० '°स्रोच्छलद् भ्राजति'। ४ प्र० 'कीर्तिवृद्धा'।

तौ च – वृषभ-मृगवराङ्कौ ध्वस्तसंसारपङ्कौ कनककमलकान्ती शान्तकर्मारितान्ती ।
त्रिभुवनजनगेयौ मारुदेवाचिरेयौ नुतिविरचनयुक्त्या भूरिभक्त्या प्रणम्य ॥ ५१ ॥

*

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय–श्रीविनयविजयगणिना श्रीपरमगुरूणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखनाम्नि लेखप्रबन्धे 'स्वस्तिश्री अमुकजिनं प्रणम्ये'ति प्रथमावयवव्यावर्णनरूपश्चित्रचमत्कारनामा प्रथमोऽधिकारः ।

॥ अलङ्कारचमत्कारनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥

*

अथ श्रीपरमगुरुतपागच्छाधिराजचरणतामरसपवित्रतरश्रीस्तम्भतीर्थनगरवर्णनम् –

नन्दीश्वरस्वीकृतवापिकानां यदीयवाप्यः कलयन्ति लीलाम् ।
उत्तुङ्गशृङ्गप्रतिबिम्बदम्भादङ्गीकृतां केशयशैलशीलाः ॥ ५२ ॥
आलापयन्तीव समेतबाला वाप्यो यदीयाश्चलवीचिमालाः ।
स्मिताननाः फेनततिच्छलेन खगारवैः स्वागतवाक्यवत्यः ॥ ५३ ॥
शशाङ्कभिन्नाममलां[1] स्वभित्तिं विभाव्य तं जेतुमना महौजाः ।
यियासतीवोर्ध्वमदभ्रकान्तिर्मरुत्पथे वप्रभटो यदीयः ॥ ५४ ॥
वृत्ताकृतौ सारसुधातिरेके जयोद्धुरे वीक्ष्य यदीयदुर्गे ।
स्वतोऽतिरिक्तां परिखां विभाव्य शङ्के शशाङ्कः परिधिं दधाति ॥ ५५ ॥
अथ वा – यदीयदुर्गप्रचुरप्रतापाऽऽविर्भूततापातिशयादिदानीम्[3] ।
शङ्के शशाङ्कः परिधिच्छलेन शेते मदीयाञ् जलकुण्डमध्ये ॥ ५६ ॥
अनेकशीर्षं विविधायुधाढ्यं यद्दुर्गमायान्तमवेक्ष्य चन्द्रः ।
स्वीत्याह यत् स्वं तदहो प्रसिद्धिरद्यापि सा ज्योतिषशास्त्रसिद्धा ॥ ५७ ॥
अथ वा – कलङ्कपङ्काविलमस्थिराङ्गं मिथ्याभिमानादुदयन्तमिन्दुम् ।
वीक्ष्य क्रुधा वप्रविभुर्विचक्रे वपुर्महद् भीममनेकशीर्षम् ॥ ५८ ॥
॥ इति वप्रवर्णनम् ॥
विभान्ति यत्रोपवनानि वल्लीघनानि वेल्लत्पवनानि नूनम् ।
नृत्यन्ति नित्यं विशदास्पदाप्तिप्रीत्या कृतार्थीकृतसम्पदानि ॥ ५९ ॥
उत्तुङ्गतालादितरूज्ज्वलेन पुरं यदुद्वीविकया वनेन ।
विलोक्य हर्षादिव शीर्षमूहे विधूयते वायुधुतिच्छलेन ॥ ६० ॥
वनी यदीया नवनीतगौरैः सुमैः समन्तादवनीतलस्य ।
पूजां सृजन्ती निजमातृभक्त्या व्यक्तीकरोति स्वकृतज्ञभावम् ॥ ६१ ॥
तालादिसाला गगनाग्रलग्नाः समर्मराः किं गिरमुद्गिरन्ति ।
भो नन्दनादीनि वनानि ! यूयं गतानि किं मेरुमिमामपास्य ? ॥ ६२ ॥
धिग् धिक् समृद्धिं भवतामुदारमन्दारसारामपि दानशून्याम् ।
एतानि धन्यानि वनानि यानि फलादिभिः स्वैरुपकुर्वते क्ष्माम् ॥ ६३ ॥ – युग्मम् ।

---

१ प्र० '°भित्तादमलां' । २ प्र० 'सशङ्कः' । ३ प्र० '°शयात् कदाचित्' ।

†यत्रावटाष्टात्कृतिकारिणोऽच्छारघट्टमालाजपमालिकाढ्याः ।
तुलां दधत्युद्भटमान्त्रिकाणां निदाघघर्मोग्रपिशाचजैत्राः ॥ ६४ ॥

॥ इति वनवर्णनम् ॥

पुरं यदष्टादशवर्णशोभावभासितं सङ्गतसार्द्धवर्णाम् ।
दिवं जयत्यत्र किमद्भुतं स्यान्न कृच्छ्रजय्यो बलिना बलोनः ॥ ६५ ॥
वर्णागमोऽर्थातिशयेन योगो यत्रास्ति नो वर्णविपर्ययश्च[१] ।
न वर्णलोपो न च तद्विकारस्तथापि यत्रेष्टपदार्थसिद्धिः ॥ ६६ ॥
विनोपसर्गं बहुधा तु यत्र धातोर्विशुद्धा द्विविधार्थसिद्धिः ।
ततः कथं व्याकरणस्य जैत्रं पुरं नयच्चित्रमनव्ययार्थम् ॥ ६७ ॥
लसद्बहुव्रीहि सकर्मधारयं भृतं च तत्तत्पुरुषैर्बहुद्विगु ।
सदाव्ययीभावमविप्रयोगवद् द्वन्द्वं तथाप्यङ्ग न यत् समासवत् ॥ ६८ ॥
अविप्रयुक्तानपि विप्रयुक्तान् घनान् जनान् यन्नितरां बिभर्ति ।
अद्वन्द्वनामापि [२]लसद्विलासिद्वन्द्वं विशालं च सुशालमेव ॥ ६९ ॥
यस्यातिचातुर्यवतः पुरस्य पुरः स नाकोऽपि पशूपमानः ।
युक्तं ततस्तस्य कृतं कवीन्द्रैर्गुणागतं गौरिति गोत्रमत्र ॥ ७० ॥
अथ वा—निरीक्ष्य यस्याः पुरतो भयेन लङ्कां सशङ्कां जलधौ निमग्नाम् ।
अवध्यतायै तद्विषोऽपि नूनं सुधीर्दधौ गौरिति नामधेयम् ॥ ७१ ॥
कदाप्यरङ्गं न ततोऽन्विताख्यं यत्राऽस्ति '**नारङ्गसरो**'ऽभिरामम् ।
गर्जन्निमज्जज्जयकुञ्जरोरुसिन्दूरपूरारुणितोर्म्मिमालम् ॥ ७२ ॥
शङ्के सपङ्केरुहमच्छनीरं निरीक्ष्य सुस्वादु सरो यदीयम् ।
क्षीरोदधिः क्लृप्तलघुस्वरूपः क्षारोदधेः प्राघुणतामियाय ॥ ७३ ॥
पयोनिधिर्यामधिगम्य लीलानिकेतनं सुन्दरमिन्दिरायाः ।
स्थाने नरीनृत्यत [३]इत्यपत्यप्रेमप्रकर्षो हि जने गरीयान् ॥ ७४ ॥
मदङ्गजायाश्चपलस्वभावमपाकरोदित्यधिकादजर्यात् ।
संलग्नवेलावलयच्छलेन यामालिलिङ्गेव मुदा पयोधिः ॥ ७५ ॥
पुरा मुरारिप्रमुखाणि पुत्रि ! स्थानानि तान्यस्थिरयोज्झितानि ।
अथेदृशं प्राप्स्यसि नेति गर्जन् पयोनिधिः शिक्षयतीव लक्ष्मीम् ॥ ७६ ॥
वार्धिर्जगादेन्दुमिदं प्रमोदादभ्रङ्कषोदस्ततरङ्गहस्तैः ।
स्थिरस्वभावास्ति तवाऽत्र जामिर्मुधा किमु भ्राम्यसि तां दिदृक्षुः ? ॥ ७७ ॥
द्वीपान्तरोत्तीर्णविचित्रवस्तुभृतानि यस्मिन् वहनानि भान्ति ।
इह स्थिताया [४]निजनन्दनायाः कृतेऽम्बुधिप्रेषितढौकनानि ॥ ७८ ॥

॥ इति समुद्रवर्णनम् ॥

† प्रत्यन्तरे पद्यमिदमेतादृशं दृश्यते—'यत्रावटाष्टात्कृतिकारिकाष्टारघट्टमालां जपमालिकां द्राग् । आवर्तयन्तः सठकारमंत्रं जपन्ति घर्मोत्कटदोषजैत्रम् ॥' १ प्र० '°यस्तु' । २ प्र० '°पिच स°' । ३ प्र० 'नृत्यति चेदप°' । ४ प्र० 'ननु नन्द°' ।

यत्रानिशं भूरिविलासिलोकैरुत्कीर्णकृष्णागुरुधूपधूमैः ।
विधोरधो ध्यामलितं तलं यल्लक्ष्मेति लोकैः परिचिन्त्यते[1] तत् ॥ ७९ ॥
यत्रापणश्रेणिषु सञ्चितानि मुक्तप्रवालानि निजानि वीक्ष्य ।
वेलामिषाद् वारिनिधिः स्वदेहमास्फालयन् भित्तिषु पूत्करोति ॥ ८० ॥
यत्र च – यदा यदा तुङ्गविहारशृङ्गे निषेदतुः श्रान्तिभिदेऽर्यमेन्दू ।
तदा तदाविःकुरुतः स्वकीयं खगस्वभावं प्रथितप्रभावौ ॥ ८१ ॥
प्रसह्य चेतोहरतामुपेतां यदा यदा यां परिहृत्य याति ।
तदा तदा सत्वरतुन्नरथ्यो दिनानि भानुर्लघयत्यवश्यम् ॥ ८२ ॥
यदा यदा यां समया समेति तदा तदा तैः कुतुकप्रकारैः ।
व्यग्रारुणानुन्नतुरङ्गराजिर्दिनाधिनाथो महयत्यहानि ॥ ८३ ॥
†यत्रेभ्यगेहाश्चलकेतुचेलाः सूर्येन्दुतापाङ्कगदापनुत्यै ।
ध्रुवं व्यवस्यन्ति सदोपकारिलोकानुषङ्गात्ततथास्वभावाः ॥ ८४ ॥
यत्रार्हतां वेश्मसु तुङ्गशृङ्गसुवर्णकुम्भावलिषु प्रविष्टः ।
क्रमाद् भ्रमन् राजति भानुमालीदमीयभिक्षाक इव प्रभायै ॥ ८५ ॥
यत्रातितुङ्गार्हतमन्दिरेषु शिरःस्फुरत्केतुमरुत्तरङ्गैः ।
रव्यादयः खेऽपि पथि श्रमघ्नीं ग्रहा [2]महारामरतिं लभन्ते ॥ ८६ ॥
यत्रान्वहं श्रीजिनमन्दिरेषु पूजासु नृत्यन्मनुजातुवृत्त्या ।
नृत्यन्ति शृङ्गस्थितकेतवोऽपि समीरसम्पातै[3]र्धुतिच्छलेन ॥ ८७ ॥
इभ्यालयान् यत्र बहून् विलोक्य सकेतुयष्टीन् गगनाग्रलग्नान् ।
नेशुर्विमानानि भयेन नूनं नाद्यापि दृग्गोचरमापतन्ति ॥ ८८ ॥

॥ इति जिनमन्दिरेभ्यमन्दिरवर्णनम् ॥

उपाश्रया यत्र वसन्मुनीशस्वाध्यायनिर्घोषनिकृत्तदोषाः ।
नयन्ति पोषं [4]निपुणाङ्गितोषं धर्मक्षमानायकराजधान्यः ॥ ८९ ॥
उपाश्रयेषूर्ध्वमधित्यकानां लसन्ति सोपानपथं श्रयन्तः ।
मुमुक्षवः किं ग्रहचक्रचारमिच्छन्ति संवादयितुं जिनोक्तम् ॥ ९० ॥
अथ वा – यत्रासकृन्नित्यमधित्यकाग्रारोहावरोहौ मुनयः सृजन्तः ।
सुस्थां गुणस्थानकपङ्क्तिमग्र्यामारोढुमभ्यासमिवाश्रयन्ति ॥ ९१ ॥
व्याख्यागवाक्षे यदुपाश्रयस्य विभान्ति येऽत्यन्तततता वितानाः ।
नित्यं गुरूपासनपुण्ययुक्ता मुक्तामयाः स्युः किमिवात्र चित्रम् ॥ ९२ ॥
विराजते यत्र सदोपदेशवातायनः काञ्चनकोशशाली ।
सिंहासनं शाक्रमिवाशु जेतुं युद्धे कुधेवोर्जितसज्जवर्मा ॥ ९३ ॥

॥ इत्युपाश्रयवर्णनम् ॥

---

१ प्र० 'चिन्तितं'। † प्रत्यन्तरे पद्यमिदमेतादृशमुपलभ्यते – 'यत्रेभ्यगेहाश्चलकेतुकम्पमिषाद् रवीन्द्वोरपहर्तुकामाः । तापज्वराङ्कौ सततोपकारिजनाश्रयात्तापकृतिस्वभावाः ॥' २ प्र० 'क्षणं महा°'। ३ प्र० 'समीरवह्यया विधुति°'। ४ प्र० 'प्रवराङ्गि°'।

क्षणक्षणे यत्र सभा विभाति विभातिसम्पन्नमहेभ्यसभ्या ।
कल्पद्रुमाणां पटलीव पुष्पफलोज्ज्वलाऽऽमोदमयी वदान्या[1] ॥ ९४ ॥
गुरुक्रमाब्जोपनमन्महेभ्यकुमारकोटीरमणिप्रभाभिः ।
अकृत्रिमा चित्रिततोरणस्रक् चित्रीयते कस्य मनो न यत्र ? ॥ ९५ ॥
यत्रार्यलोकान् विलसद्विवेकान् सुरासुराकम्पितधर्मबुद्धीन् ।
निरीक्ष्य मन्ये बहुमन्यमाना न नाकिनः क्ष्मां चरणैः स्पृशन्ति ॥ ९६ ॥
उपासिका यत्र पवित्रगात्रा लसच्चरित्रा विशदागमज्ञाः ।
सुरूपशीलोन्नतिभङ्गकस्थाः शेषां त्रिभङ्गीमपहस्तयन्ति ॥ ९७ ॥
नानाविभूषाकुसुमावदाताः कौसुम्भवासः किशलालिरम्याः ।
दानप्रधानाः करचारुशाखाः स्वर्वल्लितुल्याः किल यत्र नार्यः ॥ ९८ ॥
अस्मन्मुखैर्निर्जित एष चन्द्रो लज्जाजडो यास्यति कुत्र रङ्कः ।
इतीव चेलान्तरितास्यपद्माः पद्मोपमा यत्र [2]वसन्ति वध्वः ॥ ९९ ॥
यत्राङ्गनाः काञ्चनभङ्गगौर्यः स्नेहोद्धता मन्दिरदीप्तिदक्षाः ।
पतत्पतङ्गायितकामिनेत्राः कलामधुर्दर्पकदीपिकानाम् ॥ १०० ॥
अधर्म एको नगरे गरीयानस्मिन् सदा [3]धर्मधुरन्धरेऽपि ।
पतन्ति यद्दक्षमृगेक्षणानां कटाक्षकुन्तैर्निहता[4] युवानः ॥ १०१ ॥
यत्रेभ्यगेहेषु चलापि लक्ष्मीः श्रेयोमहाशृङ्खलजालबद्धा ।
गन्तुं न शक्ता सितमर्कटीवालिन्देष्वटन्ती प्रकृतिं पिपर्ति ॥ १०२ ॥

॥ इति स्त्रीपुंसवर्णनम् ॥

प्रथीयसी यत्र महाट्टवीथी निशीथिनीमप्यतिथीभवन्ती ।
तमोमयीं दीपकपङ्क्तिदीप्रज्योतिर्मिषात्[5] कान्तिमयीं करोति ॥ १०३ ॥
यत्रापणाली विधवां निशां यद् व्यभूषयद् दीप्र[6]मणिप्रभाभिः ।
परोप[7]कारप्रवणाङ्गिसङ्गादहो सुसंसर्गगुणो गरीयान् ॥ १०४ ॥
अथ वा – यत्रापणश्रेणिषु दीपतेजः शशाङ्ककान्ताऽतितमामुपास्ते ।
चिरन्तनं तज्जडकान्तसङ्गाज्जातं[8] जडत्वं किमपाचिकीर्षु ॥ १०५ ॥

॥ इति चतुष्पथवर्णनम् ॥

यत्रोरुधर्मोत्सवतूर्यनादकोलाहलै रथ्यतुरङ्गमाणाम् ।
सत्रासविद् गच्छति दक्षिणेन रविः पुरीं यामथवोत्तरेण ॥ १०६ ॥
तत्रेदृशि श्रीमति सर्वशत्रुवित्रासिभूमीश्वरशासितायाम् ।
विष्वङ् नभोमण्डलचुम्बिलुम्बिलताम्रवत्यां पुरि **ताम्रवत्याम्** ॥ १०७ ॥

*

इति महोपाध्यायश्री**कीर्त्तिविजय**गणिशिष्योपाध्याय–श्री**विनयविजय**गणिना भट्टारक-
श्रीविजयाणन्दसूरीश्वराख्यश्रीपरमगुरूणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखनाम्नि लेखप्रबन्धे
'श्रीमति तत्रे'त्यवयवव्यावर्णनरूपोऽलङ्कारचमत्कारनामा द्वितीयोऽधिकारः ।

---

१ प्र० 'मञ्जुलपर्णपूर्णा' । २ प्र० 'वरन्ति' । ३ प्र० 'पुण्यपरायणेऽपि' । ४ प्र० 'दलिताः' । ५ प्र० 'दीपकदीप्रपङ्क्तिज्योतिर्मयी' । ६ प्र० '°दीपमणि°' । ७ प्र० 'सदोप°' । ८ प्र० 'सङ्गजातं' ।

॥ उदन्तव्यावर्णननामा तृतीयोऽधिकारः ॥

*

॥ अथोदन्तप्रक्रमः ॥

सरोवरं यत्र मरुत्तरङ्गोच्छलत्तरङ्गोत्तरलं समन्तात् ।
अमुद्रमानेन समुद्रमानं समुद्रमानन्दि जिगीषु नूनम् ॥ १०८ ॥
महातटाकः कुतुकं दिदृक्षुर्वृत्या पुरान्तः प्रविशन् निषिद्धः ।
अद्यापि जाने स्थितयोस्तथैव तयोर्विवादस्तदवस्थ एव ॥ १०९ ॥
तटाक-वृत्योर्भवतीह युद्धं तथ्यं तदेतत् कथमन्यथेत्थम् ।
वणिक् स नष्टो निकटाट्टवासी युक्ता स्थितिर्नो कलहे ममेति ॥ ११० ॥
एकः सरस्तीरजलानुषङ्गी नमन्निदं तालतरुः किमाह ।
मा प्लावयास्माँस्तव सेवकाः स्म सर्वैः सगोत्रैरहमाहितोऽस्मि ॥ १११ ॥
अथ वा – दृष्ट्वा सरोवारिभिराहृतस्य मध्यस्थबब्बूलतरोः स्वरूपम् ।
तीरस्थतत्काष्ठमिषान्ममार त्रातुं सगोत्रानिव ताल एकः ॥ ११२ ॥
सरोजले सर्पति यत्र दर्पातिरेकतो नापससार वापी ।
उल्लोलकल्लोलभृतोदरी सा मग्ना बभूवैव कथावशेषा ॥ ११३ ॥
अथ वा – मध्ये ब्रुडन्ती सरसोऽप्सु वापी करेण भो ! मामवतेति वक्ति ।
पार्श्वस्थिताकण्ठनिमग्नमूलबब्बूलचूलाचलनच्छलेन ॥ ११४ ॥
वृतिर्यदीयाग्रगतुङ्गशृङ्गा शृङ्गारितानेकलताप्रसूनैः ।
हरिन्मणिव्रातविनिर्मितेवाऽन्तरान्तरारैरचनाविचित्रा ॥ ११५ ॥
शिरस्तिरः कम्पयतीव मानाद् यदा वृतिर्वायुधुतिच्छलेन ।
वप्रस्य सौन्दर्यमहो मदग्रे सत्या जनोक्तिः कपिशीर्षशालि ॥ ११६ ॥
यदा वृतौ द्राग् नियतासु कालकलासु पुष्पाणि विकासभाञ्जि ।
घनाभ्रकालेऽपि दिनावशेषं शंसंति यत्नाहितयन्त्रयुक्त्या ॥ ११७ ॥
वृत्याऽऽवृतं संस्कृतिचातुरीतं गोरूपयुक्तं दधिशब्दशालि ।
सूत्राञ्चितं वर्णविभक्तिहारि यकत् पुरं व्याकरणानुकारि ॥ ११८ ॥
चतुष्टयी यत्र जिनालयानां हिमालयानामिव मालयानाम् ।
विभज्य दत्ता निलया जिनेन वादे नु धर्मस्य चतुर्विधस्य ॥ ११९ ॥
राज्ञो गृहे स्यान्महिषी किलैका गृहे गृहे ता इह सन्ति बह्व्यः ।
जनैः समस्तैरभयैरुपेतं द्विधा ततो राजगृहाधिकं यत् ॥ १२० ॥
प्रतिप्रभातं पृथुगोरसानां विलोलनोद्भूतनिनादवादैः ।
निद्राविमोक्षो भवतीश्वराणां तथा गवां भाङ्कृतिगीतनादैः ॥ १२१ ॥
गृहे गृहे यत्र च कामगव्यो गृहे गृहे यत्र पयःसुधाश्च ।
हरीश्वराणां गणना न यत्र कथं न नाकादतिरिच्यते तत् ? ॥ १२२ ॥
उत्तालहिन्तालतमालतालरसालसालावलिशालितान्तम् ।

नितान्तमन्तःकरणं जनानां प्रसाधयत्यध्वनि खेदितानाम्[1] ॥ १२३ ॥
श्रीहीरसूरीशवचोऽतिरक्ताः सुश्रावका यत्र वसन्ति[2] भक्ताः ।
दानप्रधानाः श्रुतिसावधानाः सम्यक्त्वरत्नं विशदं दधानाः ॥ १२४ ॥
यत्रास्तिकानां हृदयालवाले धर्मद्रुमः पुष्यति पुष्पमाली ।
समृद्धयः सद्मनि तत्फलानि पुष्पाणि नानाभरणानि देहे ॥ १२५ ॥
किं वर्णयामश्च गुणान् यदीयान् श्रीपूज्यपादैरनुभूतपूर्वान् ।
वस्तुष्वदृष्टेषु हि वर्णनं स्यात् प्रायश्चमत्कारकरं कवीनाम् ॥ १२६ ॥
तथापि दिङ्मात्रमुदाहरामः फलं कवित्वस्य मुदा हरामः ।
ऋते कवित्वादफलं वहेमः प्राज्ञत्वमेतत् तु यदाह **हेमः** ॥ १२७ ॥

तथा च **श्रीहेमसूरिपूज्यपादाः**–

'वक्तृत्वं च कवित्वं च विद्वत्तायाः फलं विदुः । शब्दज्ञानादृते तन्न द्वयमप्युपपद्यते ॥'

॥ इति बारेजापुरवर्णनम् ॥

ततः पुराद् **द्वारपुरा**भिधानाद् द्वारोपमाद् द्रंगपरीसरस्य ।
सानन्दमुल्लासपयोदवृष्टिप्रोद्भूतरोमाञ्चमनोरमाङ्गः ॥ १२८ ॥
उत्कण्ठया प्रस्फुटया पटीयान् हर्षाश्रुनीरप्लुतनेत्रपत्रः ।
पवित्रगात्रः पृथुभक्तिभिश्च विनम्रमौलिर्विनयोदयेन ॥ १२९ ॥
ललाटपीठीघटिताञ्जलीकस्त्रिधा विशुद्धिक्षमितव्यलीकः ।
औत्सुक्यतो विस्मृतशेषकृत्यः सदाश्रवः श्रीगुरुनित्यभक्तः[3] ॥ १३० ॥
अनादृतावाससुदर्शनाख्यासंख्यामिताऽऽवर्त्तकवन्दनेन ।
प्रणम्य सम्यग् **विनयो** विनेयो विज्ञप्तिपत्रं वितनोति भक्त्या ॥ १३१ ॥–चतुर्भिः कलापकम् ।

यथा कृत्यं चात्र–[4]मार्तण्डभूपागमनोत्सवेऽभ्रपथं तदग्रेसरवैनतेयः ।
चक्रेतमःपङ्कमपास्ततारापाषाणखण्डं[5]शुचिकुङ्कुमाक्तम् ॥ १३२ ॥
आच्छाद्य गम्भीरतमोऽम्बरेण निजं प्रसुप्तेषु जगत्सु नेता ।
अर्कः करैः कर्कशकर्कराभैः प्राबोधयत् स्वस्वनियोगहेतोः ॥ १३३ ॥
जगत् तमः श्यामलयत्यगौरं रक्तश्च रक्तं कुरुते पतङ्गः ।
यो यादृशः स्यादपरं स्वसङ्गात् स तादृशं वै न चिरात् करोति ॥ १३४ ॥
सद्वृत्तताभङ्गमनीयुषां यः कष्टप्रसङ्गो न [6]चिरं हि तिष्ठेत् ।
इतीव वक्तुं पुनरारुरोह पूर्वाद्रिसिंहासनमंशुमाली ॥ १३५ ॥

अथ वा–जगन्त्युपद्रूय कुतः प्रणष्टं तमः क्व ताराः शशिनः सहायाः ।
इतीव पूर्वाद्रिशिरोऽधिरुह्य प्रद्योतनः पश्यति कोपताम्रः ॥ १३६ ॥
ध्वस्ताः समस्ता रिपवस्तमांसि क्षुण्णानि सूरेण किलैककेन ।
गुणानुरागादिति दिग्मृगाक्ष्यः क्षिपन्ति बालातपकुङ्कुमानि ॥ १३७ ॥
तत्र प्रतिप्रातरुदीतभानौ भानौ सुराधीशदिगद्रिसानौ[7] ।

---

१ प्र० '°त्यध्वचितश्रमाणाम्' । २ प्र० 'मुनीशभक्ताः' । ३ प्र० 'नित्यभृत्यः' । ४ प्र० 'कृत्यं यथार्कागमनोत्सवेऽत्र' । ५ प्र० 'पाषाणखण्डानपि कुङ्कुमाक्तम्' । ६ '°प्रसङ्गोऽपि चिरं न' । ७ '°दिशोऽद्रि सानौ' ।

सा नौरिवोदेति सभा सभार्यसभार्यसभ्या सुकृतैकलभ्या ॥ १३८ ॥ – षड्भिः कुलकम् ।

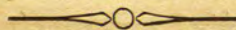
तत्र च – स्वाध्यायतः स्वायतिसुन्दरस्य व्यनज्मि 'जीवाभिगम'स्य सूत्रम् ।
अर्थापयामि प्रथितोत्तरादेर्नूत्नां प्रशस्ताध्ययनस्य वृत्तिम् ॥ १३९ ॥
श्रीशासनौन्नत्यविभावनानां प्रभावनानां भवनं कदाचित् ।
सानन्दमानन्दसमास्तिकानां नन्द्या अनिन्द्याश्च महामहौघाः ॥ १४० ॥
शुद्धोपधानोद्वहनं प्रधानशिवोपधानप्रतिमं जनानाम् ।
अध्यापनं चान्तिषदां सुयोगक्रियाकृतिः शोधनबोधने च ॥ १४१ ॥
एवं च सर्वेष्वपि धर्मजेषु कार्येषु निष्पत्तिवधूवरेषु ।
क्रमागतं पर्व सुपर्वसेव्यं **श्रीवार्षिकं** पर्वशिरःकिरीटम् ॥ १४२ ॥

तत्रापि – दिनानि भानुप्रमितानि जन्तुजीवातुजीवाभयडिण्डिमश्च ।
तिलन्तुदानामथ मैनिकानां क्रियानिवृत्तिः सुकृतप्रवृत्तिः ॥ १४३ ॥
स्नात्राण्यमात्राणि जिनालयेषु पूजाः पुनः सप्तदशप्रकाराः ।
विहायितं गायनयाचकानां सद्भावनाभावननर्त्तनानि ॥ १४४ ॥
क्षणैः क्षणाढ्यैश्च निधानसङ्घैरर्थापनं **कल्पसुबोधिकायाः** ।
विचित्रवादित्रपवित्रनृत्योत्सवेन तत्पुस्तकपूजनं च ॥ १४५ ॥
चतुर्थषष्ठाष्टमपञ्चकाष्टाह्निकादिकानां तपसां विधानम् ।
क्रमेण चैत्यप्रणतिः सगीताविगीतसङ्गीतकयुग्महौघैः ॥ १४६ ॥
अखण्डखण्डापुटनालिकेरप्रभावना स्मेरतराऽऽब्दिकीह ।
कृता प्रतिक्रान्तिरनेकलोकैः साधर्मिकाणां क्षमणं मिथश्च ॥ १४७ ॥

अनेकपक्वान्नसुपाकशाकघृतामृतस्यन्दिदलैः सफेनैः । पयःप्लुताभिः पृथुकप्रथाभिर्विशालशालिस्फुटदालिभिश्च ॥१४८॥
ततः परं गौरससारकूरैस्ताम्बूलदानैर्बहुमानपूर्वम् । सधर्मणां वेश्मसु भोजनानि स्त्रैणस्य पौंस्नस्य च नैकवारम् ॥१४९॥
महामहैरेवमनेकधर्मकर्मप्रथाशालिभिरारुरोह । संसिद्धिशालाशिखरं सुखेन तद्वृद्धमप्यद्भुतमेतदत्र ॥ १५० ॥
सम्प्रत्यपि प्रीतिकराणि धर्मकर्माण्यविघ्नान्युपयन्ति सिद्धिम् । सर्वत्र तत्रोत्तमपूज्यपूज्यपादप्रसादोदय एव हेतुः ॥१५१॥

*

इति महोपाध्यायश्री**कीर्तिविजय**गणिशिष्योपाध्याय – श्री**विनयविजय**गणिना भट्टारकश्री ५ श्रीविजयाणन्दसूरीश्वराख्यश्रीपरमगुरूणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखनाम्नि लेखप्रबन्धे उदन्तव्यावर्णनस्वरूपोऽनुप्रासचमत्कारनामा तृतीयोऽधिकारः ।



॥ शेषचित्रचमत्कारनामा चतुर्थोऽधिकारः ॥

*

अथ श्रीपरमगुरुगच्छाधिराजवर्णनम् –

रूपं यदीयं मदनोऽनुकर्तुं हराक्षिवह्नौ स्वतनुं जुहाव ।
अनङ्गतां प्रत्युत सोऽथ लेभे नाभाग्यभाजः फलिनोऽभियोगः ॥ १५२ ॥
ज्ञातं कुजातं बत पुण्डरीकमिन्दुः कलङ्केन मलीमसश्च ।
स चात्मदर्शोऽभसितानुषङ्गी केनोपमानं लभतां यदास्यम् ? ॥ १५३ ॥

तैस्तैस्तपोभिर्ध्रुवमात्मदर्शी ज्ञातोऽपि लोके जनदर्शनीयः ।
पृष्ठे मुखे चेत् सदृशोऽभविष्यत् तदा यदास्योपमतामयास्यत् ॥ १५४ ॥
मुखं सुखं तर्जितवद् यदीयं ततः परिच्छिन्नमृदुस्वभावम् ।
व्यग्रं समग्रं ग्रसते शशाङ्कं स सिंहिकाया वितनुस्तनूजः ॥ १५५ ॥
यदा शरत्पार्वणशर्वरीशं विधिर्विधत्ते घुसृणावलिप्तम् ।
तदा लभेतापि न वा लभेत सद्वन्द्ववस्तुप्रथनप्रतिष्ठाम् ॥ १५६ ॥
सूरः स शूरो बहुशो यदेष स्नेहेन सेहे ननु शाणपीडाम् ।
इन्दुर्जडोऽयं यदि तां सहेत तदा लभेतैव यदास्यदास्यम् ॥ १५७ ॥
निरूप्य रूपं रुचिचारु यस्य कामं निकामं कतमः स्तवीति ।
ततः स विश्वोपरि दूनचेताः सर्वं शरैस्ताडयतीति मन्ये ॥ १५८ ॥
यशःप्रतापप्रसराभिभूतौ यस्य प्रशान्तोग्ररुचोऽर्यमेन्दू ।
एकर्क्षगौ मन्त्रयतः समानापमानदुःखौ ननु मासि मासि ॥ १५९ ॥
यत्प्रतापविजितोऽनलोऽविशद् युक्तमश्ममणिकाष्ठपङ्क्तिषु ।
वाडवाग्निचपले किमकार्ष्टां जग्मतुर्जलधिवारिददस्यू ॥ १६० ॥
श्रेयोनिधानं च युगप्रधानोपमानमानन्दितभव्यलोकम् ।
न कः स्तुते यं जगदर्चनीयाभिधानमुद्दामगुणासमानम् ॥ १६१ ॥
चित्रं यदीये हृदये समस्तो माति स्म सिद्धान्तसरिद् विवोढा ।
अचिन्तनीया ऋषयोऽथवा किं नापीप्यदब्धिं स्वमदादगस्त्यः ॥ १६२ ॥
यदीयगाम्भीर्यजितः स तोयनिधिर्न्यधात् तीरतरत्तृणौघः ।
तृणं मुखे युक्तमिलाविलोठी पराजितानामियमेव रीतिः ॥ १६३ ॥
सुधां नगारिः कमलां मुरारिर्जह्नुः सुराश्वोत्तमधेनुमुख्यम् ।
शेषं गभीरत्वमपाहरद् यो मन्येऽम्बुधिस्तल्लवणावशेषः ॥ १६४ ॥
भवेद् गभीरत्वमथाम्बुधौ चेत् कथं मुधा गर्जति सारशून्यः ।
विचारसारं तत एतदेव येनैव जह्रेऽस्य गभीरभावः ॥ १६५ ॥
यदीयवाणी विजिताऽभिभूता स्पर्द्धा भवत्या न ममेति वक्तुम् ।
पातालमुत्तालगतिर्विवेश सुधा हि दिव्यं ननु कर्तुकामा ॥ १६६ ॥
सुवर्णरूपाऽपि यदीयवाणी लौही कृपाणीव विषादवृक्षम् ।
समूलमुन्मूलयतीति चित्रं न कर्कशो वा कतमः स्वकृत्ये ॥ १६७ ॥
दधाति दिव्याय विधोः सुधाऽपि यद्वाक्यभीतायसमुष्णगोलम् ।
न मन्यसे चेदवलोकयोर्ध्वं नादर्शकार्यं करकङ्कणे स्यात् ॥ १६८ ॥
यद्गीर्जितोऽपीक्षुरदक्षचेता दधौ शिखां मूर्ध्नि वृथाभिमानात् ।
यन्त्रेषु निष्पीड्य ततोऽस्य सारमादीयते क्रुद्धतमेन धात्रा ॥ १६९ ॥
स्पर्द्धावतीं यद्वचसा सितां तां स्त्रीत्वादवध्यां स विधिर्विधिज्ञः ।
नित्यं शलाकाग्रविभिन्ननक्रां पुरे पुरे चारु करोत्यटन्तीम् ॥ १७० ॥
धियश्चतस्रो हृदये यदीये कीर्त्तिः श्रुता दिक्षु च तावतीषु ।

धर्मं चतुर्धोपदिशन् जनानामहो [1]सुचातुर्यमदो यदीयम् ॥ १७१ ॥
सिद्धान्ततत्त्वानि ततानि तानि स्थितानि हानिं लवतो लभन्ते ।
यस्मिन्नतः स्मेरतरा प्रसिद्धिर्युक्तं जगत्यां धुरि कोष्ठबुद्धेः ॥ १७२ ॥
जातेन येन प्रथिता बभूव **श्रीरोहनाम्नी** नगरी वरेण्या ।
वैडूर्यरत्नेन विदूरभूमिर्हीराङ्करेणेव[2] च रोहणाद्रिः ॥ १७३ ॥
श्रीवन्तवंशोऽधिगतप्रशंसः प्रदीपिकादण्डसुहृत् कथं नो ।
यच्छृङ्गसङ्गी भुवनप्रकाशमङ्गीकरोति प्रतिराट् प्रदीपः ॥ १७४ ॥
शृंगारदे यं तनयं प्रसूय रत्नप्रसूकीर्तिमधाद् वधूषु ।
यथेह रिक्तास्वपि चारु मुक्ताशुक्तिर्यशः शुक्तिषु मौक्तिकानाम् ॥ १७५ ॥
प्राग्वाटवंशे हि पुटानि सप्त स्थाने यदीदृग् नररत्नपात्रम् ।
यक्षेन्द्रियेष्वक्ष्णि पिधानगुप्तिः सर्वो हि रत्नस्य करोति यत्नम् ॥ १७६ ॥
औन्नत्यधैर्यादिसमग्रसारमादाय मेरुर्विजितः स येन ।
शृङ्गप्ररूढाङ्कुरभारदम्भात् तृणानि मूर्ध्ना वहते दरिद्रः ॥ १७७ ॥
†यस्योपदेशस्य रसान्निपीय माध्वीकमाधुर्यमदस्य जैत्रान् ।
जनाः स्वकर्णाञ्जलिभिः स तृष्णां छिन्दन्ति संसारतपर्त्तुपूर्त्तिम् ॥ १७८ ॥
सूरोऽपि दूरोज्झितपापतापः सोमोऽपि नो स्वीकृतदोष एव[3] ।
समङ्गलोऽप्यङ्ग गतौ न वक्रो बुधोऽपि सौम्योऽपि न मित्रदस्युः[4] ॥ १७९ ॥
गुरुः सुराणामपि नास्तिको नो न केकराक्षः कविरप्यनस्तः ।
शनैश्चरो नाप्यसितो न मन्दो यश्चातमाः सधृतिसैंहिकेयः ॥ १८० ॥
केतुं न के तुङ्गगुणं वदन्ति प्रमोदहेतूदयमप्यमन्दम् ।
एवं विरोधोपचितोऽपि नित्यं यश्चाविरोधी विदितो द्विधाऽपि ॥ १८१ ॥
यदतिशायिगुणान्निजबिन्दुभिर्गणयितुं भुवमेति नवाम्बुदः ।
शरदि याति पुनर्गतसङ्गरस्त्रिजगतीहसितो भसितोज्ज्वलः ॥ १८२ ॥
लसति यस्य रजोहरणं करे रजनिजानिकरोत्करसुन्दरम् ।
दयितया दयया प्रणयार्पितं विततकेलिसरोजमिवोज्ज्वलम् ॥ १८३ ॥
सकलजीवकृपालय ! पालय बहुलपक्षभयादभयाद्य माम् ।
मुखपटीमिषतः शशिनः कला इति वदन्ति नु यं श्रुतिसङ्गताः ॥ १८४ ॥

अथ शेषचित्रप्रक्रमः –

नाकपाडकुटकाकरतीरे सामला कडकडा जडपाडी ।
लोकपाटति सुखाटनसूतिर्यस्य कीर्त्तिरिह हंसवलक्षा ॥ १८५ ॥ (–भाषाचित्रम्)
सुष्ठुभालतुहिनद्युतिभित्तं यस्य लुण्टति विचक्षणचित्तम् ।
यस्य कीर्त्तिसुरशैवलिनी च मां पवित्रयितुमुक्तमिहान्यत् ॥ १८६ ॥ (–गुप्तक्रियाकम्)
यस्य नामपरमोत्तममन्त्रादश्नुते गुरु सुखं जनराजी ।
यस्य लोचनचमत्कृतितुन्ना सप्रयासवनवासमुपास्ते ॥ १८७ ॥ (–गुप्तकर्तृकम्)

---

१ प्र० 'चातुर्यमाश्रयमदो' । २ '°रेणापि च' । † प्रत्यन्तरे पद्यमिदमीदृशं लभ्यते–'यस्योपदेशस्य रसानसाधुमाध्वीकमुत्सृज्य विवेकिलोकाः । निपीय कर्णाञ्जलिभिः सतृष्णां°' । ३ प्र० 'सोमोऽपि नो यः कुमुदं पिपर्त्ति' । ४ 'तातदस्युः' ।

आस्यमस्य कमलादमलाक्षं चन्द्रपङ्कजरुचामभिभूत्या ।
यस्य शस्तगुणमत्र च कर्म सक्रियापदमुदीरितमेव ॥ १८८ ॥ (–गुप्तक्रियाकर्मकम्)
यस्सुमाशुगशरैरपीडितस्तर्जिताखिलसुरासुरशक्रैः ।
पण्डितैर्नरवरैरधुनोक्तं शेषवाच्यमवधेहि सुबुद्धे ! ॥ १८९ ॥ (–गुप्ताव्ययक्रियाकम्)
प्रातरेव परमं पुरुषेषु यं नमस्यति नमस्यपदाब्जम् ।
स क्षणेन कुशलाकलय त्वं युज्यते यदिह तत्तु मयोक्तम् ॥ १९० ॥ (–गुप्तान्वयम्)
यस्यास्यकान्तेः किमसि प्रतिष्ठां लिप्सुर्वराकाऽनिशमुज्ज्वलायाः ।
त्यजेतरेच्छां सुखमद्धि भिक्षां बुधात्र सम्बोधनमस्ति गूढम् ॥ १९१ ॥ (–गुप्तामन्त्रणम्)
किमर्ज्यते दक्ष ! [1]मृषोद्यमेन सा या न स्थिरेति प्रथिता भुवि श्रीः ।
प्रणम्य यं संसृतिवारिधिं तर व्याप्तं बुधास्मिन् करणं सुगुप्तम् ॥ १९२ ॥ (–गुप्तकरणम्)
महायशोभासुररम्यमूर्त्तेर्येनानतौ यस्य पदौ जनेन ।
सत्याकृतिस्तेन शिवोद्भवाय दत्तात्र गुप्तं बुध ! सम्प्रदानम् ॥ १९३ ॥ (–गुप्तसम्प्रदानम्)
मा गा विषादं भज सुप्रसादमानन्दनं पश्य तदाननेन्दुम् ।
मिथ्यात्वरूपाद् विरमाऽतिनिन्द्यादत्रास्त्यपादानपदं पदान्तः ॥ १९४ ॥ (–गुप्तापादानम्)
कस्य भाग्यभरितस्य तनूजा यस्य चित्तमहरत् स्वरसेन ।
शीलसारघनसारसुगन्धेरुत्तरं कथितमेव वयस्य ! ॥ १९५ ॥ (–गुप्तसम्बन्धम्)
रे पुष्पायुध ! माऽऽयुधं चपलय श्रान्तिं वृथा मा कृथाः, पापव्यापमपाकुरुष्व कुमते ! किं वा छलेनाऽमुना ।
रे दूरीभव मोह ! सन्ततमृषावादिस्वभावं त्यज, ध्वस्ताज्ञानतमोभरेऽत्र विबुधाधारं सुगुप्तं वद ॥१९६॥ (–गुप्ताधारम्)
[3]ततां तान्तातर्ति तात ! ततोऽतीततुतेऽतति । तुतात्तांतात्ततेऽन्तान्तः तेति तत्तुतुती तत ॥१९७॥ (–एकव्यञ्जनचित्रम्)
नमामीनमम [4]मानाममानमुनिमाननम् । नामुं नाम नमेन्नोना नुन्नामो नूनमन्नतु ॥ १९८ ॥ (–द्विव्यञ्जनचित्रम्)
सदाकारानुहारा च महाभुजगभूषणा । स्तौति निन्दति वा यं यः सुन्दरी तस्य मन्दिरे ॥१९९॥ (–बिन्दुच्युतकम्)
कमलकलकरवदन ! सततहतमदमदन ! । नमदमर ! गतसमर ! जय सजय ! गणधर ! ॥२००॥ (–एकस्वरचित्रम्)
सदा सदानन्दनिधानदानं तनोतु नेता सततं नतानाम् ।
तदासनासीनसनानुनीत नीतेनिताधीतिधनाधुनेन ॥ २०१ ॥ (–दन्त्यस्थानचित्रम्)
सिद्धान्तवारां निधिमृद्धशुद्धिं लब्ध्या समानं गुरुगौतमेन ।
महेम हेमाम्बुजगर्भगौरदेहं मुदे हन्त मुनीनमेनम् ॥ २०२ ॥ (–अतालव्यव्यञ्जनचित्रम्)
विसारि सारसे सारं संसारोरुसुराश्रये । सुरेश्वरहरिं सेवे हीरसूरिशिशोः शयम् ॥ २०३ ॥ (–अवर्ग्यचित्रम्)
मदनमानधनापनुदं दमानुपमचित्तमनेकपगामिनम्[5] ।
भजत भो जनताः ! कठिनापदाभिदमखण्डगुणं गणभूपतिम् ॥ २०४ ॥ (–अनवर्ग्यचित्रम्)
श्रीवन्तनन्दनं वन्दे शान्तरां रुचिसुन्दरम् । दयाविविधिनं मेनाभीवमंशुदिवं विशाम् ॥ २०५ ॥
श्रीवंशांधितनारावं रविवन्दितमं नमेः । विदेदः सुधनं भीरु यादःशावशुचिनदम् ॥२०६॥ (–द्वाभ्यां तुरगपदम्)
इत्थमनेकविवेकिजनैर्यैश्चित्रचमत्कृत[6]कोविदचित्तैः ।
वाङ्मनसाविलतापगमाय पूजितपादयुगाः सुकवित्वैः ॥ २०७ ॥

---

१ प्र० 'भृशोद्यमेन' । २ प्र० 'मित्र' । ३ प्र० 'तैतां' । ४ प्र० '°ममानना°' । ५ प्र० '°नेकपमानिनम्' । ६ प्र० '°श्चित्तचमत्कृतिको°' ।

तथा च – सुदर्शनाः सारसुधागिरो ये ऋद्ध्यब्जिनीनर्ममरालकल्पाः ।
शरत्समानाः कुशलेन्दुदीप्तौ जगत्त्रयीशान्तिकृतावधानाः ॥ २०८ ॥
सुमेरुधीराः सशिवामरौघैर्नता नयाढ्या विमलाशयाश्च ।
ज्येष्ठश्रियः सद्गतिहस्तिमल्लाः कुमारशौर्याः सुकुमारदेहाः ॥ २०९ ॥
[माणिक्यदीप्ताः कृतमुक्तिवाञ्छाः, धर्मोत्तमाम्भोजशिलीमुखाश्च‡]
क्षेमद्धवृद्धौ कुशला विवेकचन्द्रोज्ज्वलाः श्रीतियुता दयायाम् ।
चारित्ररत्ने कृतयत्नयोगाः कल्याणलक्ष्मीकुमुदेन्दुकान्ताः ॥ २१० ॥
तैस्तातपादैर्गणशीतपादैर्गतप्रमादैर्घनधीरनादैः । स्वाज्ञान्तिषत्कौशलशालिपत्त्रप्रसादनैरेष शिशुः प्रमोद्यः ॥ २११ ॥
त्रिधा त्रिसायं प्रणतिर्मदीयाऽवधारणीया महनीयपादैः ।
सा चाऽनुपूर्वा व्रतिनां प्रसाद्या श्रीपूज्यसेवाविधिपावितानाम् ॥ २१२ ॥
तत्रापि – सुदर्शनेत्याद्यकवित्वमध्ये विशेषणैः सूचितनामकानाम् ।
बुधाग्रणीनां परयोर्द्वयोश्च संसूचितानां गणिनां मुनीनाम्† ॥ २१३ ॥
किञ्च – समानकनकच्छटाप्रकटकान्तिदेवेन्दुभि-र्नताञ् जिनवचोऽन्वितान् विनतवार्द्धिनेमीश्वरान् ।
इमैर्गुरुविशेषणैरभिहितान्वयाः साधवो, नमन्ति गणभूपतीन् नमति चाऽत्र सङ्घोऽखिलः ॥ २१४ ॥

*

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय–श्री**विनयविजय**गणिना भट्टारकश्रीविजयाणन्दसूरीश्वराख्यश्रीपरमगुरूणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखनाम्नि लेखप्रबन्धे 'तैस्तातपादैः' इत्याद्यवसरप्राप्तश्रीगुरुवर्णनरूपः स्वर-व्यञ्जन-स्थान-गति-निमन्त्रण-च्युतगुप्तादिशेषचित्रचमत्कारनामा चतुर्थोऽधिकारः ॥

॥ दृष्टान्तचमत्कारनामा पञ्चमोऽधिकारः ॥

*

अथ लेखप्रशंसा –

दूरेऽप्यदूरे इव यो जनानां ददाति मित्रप्रियसङ्गसौख्यम् ।
मनोविनोदी विरहापनोदी लेखस्तु साक्षाद् वरलेख एव ॥ २१५ ॥
स श्यामवर्णो रसपूरपूर्णः सुहृन्मनःकेकिकृतप्रमोदः ।
चिन्तातपक्लान्तिनिराकरिष्णुः कथं न लेखो जलदोपमानः ? ॥ २१६ ॥
स्वगोविलासैः प्रियचित्तपद्मान् विकासयंश्च भ्रमणस्वभावः ।
असंशयं संशयतामसघ्नो लेखः कथं सूर्यसहोदरो नो ? ॥ २१७ ॥
अनेकवर्णोत्तमरत्नपङ्क्तिविराजितो भूरिसदर्थशाली ।
मुद्राङ्कितः स्वादररक्षणीयो लेखोऽश्नुते कोशगृहस्य लक्ष्मीम् ॥ २१८ ॥
भूपालवद् यो व्यवहारचर्यां प्रवर्त्तयेत् सद्गुरुवच्च शास्ति ।
विश्रम्भपात्रं प्रियमित्रवच्च लेखः कथं सर्वगुणास्पदं नो ? ॥ २१९ ॥

लेखस्य सप्त प्रभेदाः –

स सप्तधा लेख उदीरितो ज्ञैः पृथक्-पृथक्कार्यफलोपदर्शी ।
व्यापारलेखः[1] कुसुमेषुलेखः[2] स्नेहस्य लेखः[3] स्फुटरोषलेखः[4] ॥ २२० ॥

---

‡ एतत् पद्यार्द्धं प्रत्यन्तरे नास्ति । † 'प्रत्यन्तरे एतादृशः उत्तरार्द्धः – 'बुधाग्रणीनामपरेषु तेषु त्रिष्वाहितानां गणिनां मुनीनाम् ॥'

शोक(५)-प्रमोद(६) प्रभवौ च लेखौ यो धर्मलेखः(७) स च सप्तधा स्यात् ।
तत्रादिमो यो व्यवहारिलोकैः संलिख्यते कामिजनैर्द्वितीयः ॥ २२१ ॥
भवेत् तृतीयः स्वजनैर्मिथो यस्तुर्यो विपक्षक्षितिनायकाभ्याम् ।
स पञ्चमो यः स्वजनार्त्तिशंसी षष्ठो विवाहादिषु लिख्यते यः ॥ २२२ ॥

अयं पुनः सप्तम एव लेखो लेखेषु सर्वेष्वपि सार्वभौमः । पदे पदे पुण्यफलोदयेन यतः परत्रेह च शर्मसिद्धिः ॥२२३॥
स्वस्तीति बीजं जिनवर्णनं च मूलं पुरीवर्णनमेव शाखाः । पुष्पाण्युदन्ता गुरुवर्णनं च फलं लसल्लेखसुरद्रुमेऽस्मिन् ॥२२४॥

लेखो हि प्रायः पिशुनेभ्यो रक्षणीयः सज्जनेभ्यश्च दर्शनीय इति तयोः स्वरूपलेशो लिख्यते –

सतां स्वभावोऽयमिह प्रमोदवन्तो निरीक्ष्यान्यकवेः कवित्वम् ।
इन्दुः किमक्ष्णां भवति स्वकीयो हर्षोऽतिहृद्येष्विति तन्निसर्गः ॥ २२५ ॥
ते वल्लभाः स्युर्भुवनेषु सन्तः कुर्वन्ति येऽन्यस्य गुणप्रकाशम् ।
केषामभीष्टः स समीरणो नो यः सौरभं सौमनसं व्यनक्ति ॥ २२६ ॥
ब्रवीति दोषानथ योऽन्यदीयान् दुष्टः स शिष्टोऽपि भवेदनिष्टः ।
दुर्गन्धलेशं प्रथयन् समीरो द्विष्टो न जीवातुरपीह विश्वे ॥ २२७ ॥
खलः कवित्वस्य विभाव्य दोषान् यथा प्रसन्नो न तथा गुणौघान् ।
लभेत नो सुन्दरमन्दिरेण मुदं यथाहिर्बिलवीक्षणेन ॥ २२८ ॥
किं दुर्जनानामिह याति येऽन्यश्लोकानुपश्रुत्य विषादिनः स्युः ।
गृह्णाति वार्कः किमु कौशिकानामान्ध्यं यदस्योदय एव तेषाम् ॥ २२९ ॥
प्रागेव विद्वेषतमोनिरुद्धबुद्धीक्षणाः किं परिभावयन्ति ।
गुणान् कवित्वस्य यथा दिवान्धो वेवेक्ति भानोर्ननु कौशिकः किम् ॥ २३० ॥
कवित्वरत्नस्य विशुद्धिभाजो गुणप्रकर्षः खलसङ्गतः स्यात् ।
दृष्टात्मदर्शे भसितानुलेपात् शुद्धिस्तथाक्ष्णोः किमु[१] कज्जलेन ॥ २३१ ॥
निर्दूषणे शालिनि काव्यरत्ने कुर्यादनार्योऽपि न[२] दुर्जनः किम् ।
सुवर्णपर्यङ्कतलेऽतिसान्द्रे क्व मत्कुणौघो लभते प्रवेशम् ॥ २३२ ॥
कदाप्यनाभोगकृतः कवित्वे दोषो भवेत् सोऽपि गुणो गरीयान् ।
विनाऽमुना स्यात् कतमः प्रकारो मुदे गुणागृह्यधियां खलानाम् ॥ २३३ ॥
स्वचित्तगर्वाङ्कुरतोच्छ्रितेन निस्सारमेकेन पदेन मत्ताः ।
दिधीर्षवो ये कविताभ्रभारं तेभ्यो नमस्टिट्टिभसोदरेभ्यः ॥ २३४ ॥
केचिच्चिदंशाधिगमेन मत्ताः खलास्तदन्ये प्रभुतामदात्ताः ।
शेषास्त्वविज्ञा बत कः कवीनां श्रमक्रमं द्रक्ष्यति लब्धलक्ष्यः ? ॥ २३५ ॥
किमेतया प्रस्तुतचिन्तया वा सन्त्येव केचित् सरलाः पुमांसः ।
ज्ञानप्रभुत्वोत्तमतात्रिवेणीसङ्गोपमा भूषितभूमिभागाः ॥ २३६ ॥
इति स्वरूपं खलसज्जनानां मया निबद्धं न कुतोऽपि हेतोः ।
कादम्बरी-चम्पुकथादिकारैः प्राच्यैर्बुधैर्बद्धमतो न्यदर्शि ॥ २३७ ॥

१ प्र० 'किल' । २ प्र० 'ऽपि हि दुर्जनः' ।

अथ स्वौद्धत्यपरिहारः –

श्रीहेमचन्द्रादिकवीश्वराणां पुरः स्फुरेद् यः कवितामदो नः ।
तार्क्ष्यस्य पक्षौ समुदीक्ष्य साक्षात् स मक्षिकाणामिव पक्षगर्वः ॥ २३८ ॥
तैस्तैः सुधीभिर्बहुभिः स्तुतान् वः स्तोतुं गुणान् कोऽहमतीव मुग्धः ।
अस्पष्टमप्यर्भकवाक्यजालं प्रियं गुरूणामिति तु प्रयत्नः ॥ २३९ ॥
स्तोतुं प्रवृत्ता भवतः कवीन्द्रास्ततोऽहमप्यत्र विधौ समुत्कः ।
निरीक्ष्य पोताँस्तरतः पयोधौ तत्रोत्सुकं नो किमु शुष्कपर्णम् ? ॥ २४० ॥
भवद्गुणौघाम्बुनिधौ निमग्नाः कवीश्वराश्चित्रमहं तु तीर्णः ।
सम्बन्धगन्धादिति युक्तमेव यथाम्बुधेर्वारिणि काष्ठखण्डः ॥ २४१ ॥
मुनीन्द्र ! यत्नो रचितो मयाऽयं प्रमोदपूर्णान् गुणिनो निरीक्ष्य ।
बालैः स्वबुद्ध्या रचितासु रेणुमयीषु लीलालयचातुरीषु ॥ २४२ ॥
अज्ञानभावेन यदत्र चर्च्यं '**आनन्दलेखे**' लिखितं मया यत् ।
शोध्यं च बोध्यं च तदात्मबुद्ध्या बुधा ! मयाऽयं रचितोऽञ्जलिर्वः ॥ २४३ ॥
पर्याप्तमभ्यर्थनयाऽथवाऽऽर्या यदा किल प्रोज्ज्वलनस्वभावाः ।
अभ्यर्थितौ केन च पुष्पदन्तौ तौ शारदौ चोक्षयितुं सरांसि ? ॥ २४४ ॥
गुरुः प्रसन्नो यदि सौम्यदृष्टिः क्रूरग्रहैर्वक्रतमैः किमन्यैः । जङ्घन्यतेऽसौ किल दोषलक्षं ज्योतिर्विदामप्ययमेव पन्थाः ॥४५
ततः प्रसन्नैर्गुरुभिर्विधाय शिशौ कृपालेशमनीदृशेऽपि । स्मर्यः कदाचित् समये जनोऽयं विशेषतः श्रीजिनदर्शनादौ ॥४६
मनो मदीयं तु यथा सरोजे सौरभ्यमौन्नत्यमिवाऽमराद्रौ । दुग्धे जलं शैत्यमिवाप्सु वह्नावुष्णत्वमिन्दाविव कौमुदी च ॥४७
माधुर्यमिक्षाविव वः क्रमाब्जे तथा गतं तन्मयतां ततः किम् ।
लिखामि यच्छ्रीगुरुनामधेयग्राहं नमाम्यार्हतपादपद्मान् ॥ २४८ ॥ – युग्मम् ।
संवत्सरे वार्द्धिनिधानचन्द्रकलामिते (१६९४) बाहुलमासि दिव्ये ।
मनोरथो मे फलिनस्तु धन्यत्रयोदशीसञ्ज्ञतिथौ बभूव ॥ २४९ ॥
यावद् धरित्रीफलके सुमेरुः शङ्कुर्निखातो दिनमानकारी । प्रतिष्ठितस्तावदयं प्रबन्धो जीयात् प्रबुद्धश्रवणाध्वनीनः ॥५०
कल्याणमारोग्यमभीष्टसिद्धिः समृद्धिलब्धिश्च गुणप्रसिद्धिः ।
महोन्नतिः कीर्त्तिततिः प्रतीतिः सङ्घेऽनघे स्ताद् वितनेति भद्रम् ॥ २५१ ॥

*

पूज्यार्हद्भक्तभट्टारकततितरुणीचन्द्रकान् भव्यलेखा-
राध्यश्रीश्रीशसुश्रीनतपद '**विजयानन्द**' सूरीशपूज्यान् ।
ध्येयप्राधान्यधन्यांस्तपगणनृपतीन् व्यक्त**विज्ञप्तिपत्रं**
नामस्मृत्येकतानः शिशुरिति नगरे **स्तम्भतीर्थे**ऽढुढौकत् ॥ २५२ ॥

*

इति महोपाध्यायश्री**कीर्तिविजयगणि**शिष्योपाध्याय – श्री**विनयविजयगणि**ना भट्टारकश्री**विजया-णन्दसूरीश्वरा**ख्यश्रीपरमगुरूणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखप्रबन्धे लेखप्रशंसा-सुजनदुर्जनस्वरूप-व्यावर्णनरूपो दृष्टान्तन्यासचमत्कारनामा पञ्चमोऽधिकारः सम्पूर्णः ॥ छ ॥

॥ सम्पूर्णश्चायमानन्दलेखप्रबन्धः ॥

*

महोपाध्यायश्रीविनयविजयगणिप्रणीतं

[२] इन्दुदूताभिधानं विज्ञप्तिपत्रम् ।

स्वस्ति श्रीणां भवनमवनीकान्तपङ्क्तिप्रणम्यं,
प्रौढप्रीत्या परमपुरुषं पार्श्वनाथं प्रणम्य ।
श्रीपूज्यानां गुरुगुणवतामिन्दुदूतं प्रभूतो-
दन्तं लेखं लिखति **विनयो** लेखलेखानतानाम् ॥ १ ॥

[लेखप्रेषकमहोपाध्यायस्य वर्षावासस्थानभूतस्य योधपुरनगरस्य वर्णना –]

यत्र व्योमव्यतिगशिखरेष्वर्हतां मन्दिरेषु, मूर्तीर्जैनीर्नयनसुभगाश्चन्द्रशालानिविष्टाः ।
दर्शं दर्शं विनयविनतोऽधोविमानावतारक्लेशं नासादयति निकरो ह्यविद्याधराणाम् ॥ २ ॥
यत्रोत्सर्पच्छिकरकिरणैः शोभयन्नप्रदेशं, साक्षाल्लक्ष्मीवसतिरनिशं राजते राजलोकः ।
मेर्वारूढत्रिदशनगरस्पर्धयेवाधिरूढं, शैलाग्रण्यं कनकनिकषस्निग्धभं पञ्चकूटम् ॥ ३ ॥
यत्रेभ्यानां भवनततयः काश्चिदद्रेस्तटाग्रं, प्रासाः काश्चित् पुनरनुपदं सन्ति तासामधस्तात् ।
काश्चिद् भूमावपि भृशवलत्केतवः कान्तिदक्षा, निर्जेतुं द्यामिव रुचिमदात् प्रस्थिता निर्व्यवस्थम् ॥ ४ ॥
यत्र क्रीडोपवनपदवीक्रीडतां नागराणां, विष्वक्तूर्यत्रिकपरिचयप्रीतिमाविष्करोति ।
नृत्यत्केकिप्रकरसुभगा मञ्जुगुञ्जद्द्विरेफा, वातोद्धूतद्रुमदलततिध्वानवादित्रहृद्या ॥ ५ ॥
श्यामं यस्मिन्नुपलरचितं दन्तिनं मत्तरूपं, पुंरूपाभ्यामुपरि कलितं वीक्ष्य शङ्केऽद्रिशृङ्गे ।
उत्तीर्यैतत् पुरमनुपमं स्वर्गलोकादिहेन्द्रोऽद्राक्षील्लोकैरिति विरचितं चिह्नमेतच्चकास्ति ॥ ६ ॥
स्थाणुः शुण्डायुध इव मदात् कुण्डलीकृत्य दन्तौ, कृत्वोत्तानावुपलरचितो यत्र हस्त्यद्रिशृङ्गे ।
स्वर्गं जेतुं नभसि रभसादारुरुक्षोरमुष्य, द्रङ्गस्येव स्फुटयति महाधीरनासीरभावम् ॥ ७ ॥
तस्मिन् **योधाभिध**पुरवरे श्रीमदाचार्यपादादेशान् मासांश्चतुर उषितो यो विनीतो **विनेयः** ।
साधुः सैष प्रहरविगमे भाद्राकारजन्यां, प्राचीशैलोपरि परिगतं शीतरश्मिं ददर्श ॥ ८ ॥

[इन्दोर्लेखवाहकदूतत्वेन प्रकल्पनम् –]

दृष्ट्वा चैनं स परमगुरुध्यानसंधानलीनस्वान्तः कान्तं तमिति रजनेः स्वागतं व्याजहार ।
सद्यः साक्षाद् गुरुपदयुगं नन्तुमुत्कण्ठितोऽपि, द्रागेतेन स्थितिपरवशो वन्दनां प्रापयिष्यन् ॥ ९ ॥
दिष्ट्या दृष्टः सुहृदुडुपतेऽस्माभिरद्यातिथिस्त्वं, पीयूषौघैर्भृशमुपचरन् प्राणिनामीक्षणानि ।
पुण्यैः प्राच्यैः फलितमतुलैरस्मदीयैरुपेयान्नापुण्यानां नयनविषयं यत्प्रियः स्मर्यमाणः ॥ १० ॥
देहे गेहे कुशलमतुलं वर्तते कच्चिदिन्दो !, नीरोगाङ्गी सुभग ! गृहिणी रोहिणी तेऽस्त्यभीष्टा ।
अन्याः सर्वा अपि सकुशला दक्षजाः सन्ति पत्न्यः, पञ्चार्चिः शं कलयति हृदानन्दनो नन्दनस्ते ॥ ११ ॥
यद्वाऽयं ते स्फुटमनुचितो वार्तवार्तानुयोगस्त्वय्यायत्तं जगति सकले जानतो मे सुखास्मि ।
मन्तव्योऽयं तदपि सरसः स्नेहसाराञ्चितत्वात्, स्वादीयः स्यात् कदशनमपि स्नेहधारोपसिक्तम् ॥ १२ ॥
क्वाहो शीतोपगतमतनु प्राक्तनार्धं **विदेहक्षेत्रे** क्वायं चरम**भरतक्षेत्र**याम्यार्धभागः ।
मार्गोऽतीतः कथमयमियान् कोमलैः स्वच्छपादैः, प्रौढप्रौढैः शिखरिशिखरैर्दन्तुरीभूतदेशः ॥ १३ ॥

मार्गश्रान्तः क्षणमिह सुखं तिष्ठ विश्रामहेतोरुत्तुङ्गेऽस्मिञ्शिखरिशिखरे दत्तपादावलम्बः ।
हृद्यः पद्माभिधवरसरः संभवस्त्वां समीरः, सर्पन्नुच्चैः सुखयतु सखे ! केतकीगन्धबन्धुः ॥ १४ ॥
नत्वा **सीमंधर**जिनपतिं प्राप्तपुण्यप्रकर्षो, भूयो नन्तुं त्रिभुवनगुरुं **बाहुदेवं** सहर्षः ।
मार्गे तीर्थप्रणतिविगलत्पापपङ्कः स्वमौलावर्हच्चैत्याश्चित इति जगद्वन्द्य ! वन्दामहे त्वाम् ॥ १५ ॥
खिन्नां तीव्रातपपरिचयात् तोयदस्तोयवृष्ट्या, सिञ्चन् यद्वत्सुखयति कृषिं शोषकालोपपन्नः ।
प्रीतिं तद्वत् प्रियसख ! मम प्रापिता चित्तवृत्तिश्चिन्तोत्पत्तौ रहसि भवता यच्छता बन्धुना द्राक् ॥ १६ ॥
शान्तिं नीते श्रम इति ततश्चेतसि स्वास्थ्यमाप्ते, दत्त्वा कर्णाववहितमनाः श्रोष्यसि प्रार्थनां मे ।
न श्रान्तानां सुखयति कथा स्निग्धवर्गोदिताऽपि, स्वस्थे चित्ते प्रणयमधुरा बुद्धयो ह्युद्भवन्ति ॥ १७ ॥
श्रुत्वा याच्ञां मम हिमरुचे ! न प्रमादो विधेयो, नो वाऽवज्ञाऽभ्यधिकविभवोन्मत्तचित्तेन कार्या ।
प्रेमालापैश्चतुरवनितानिर्मितैर्विस्मृतिं न, प्राप्या प्रायः प्रथितयशसः प्रार्थनाभङ्गभीताः ॥ १८ ॥
भ्रातस्तातस्तव गुणनिधिः पश्य रत्नाकरोऽसौ, वर्षे वर्षे नवजलधरप्रापितैरम्बुपूरैः ।
विश्वं विश्वं तरुणतपनोद्दामतापाभितप्तं, सेकं सेकं सुखयति सदाभीष्टविश्वोपकारः ॥ १९ ॥
किं नु ब्रूमस्तव जनयितुस्तस्य दानप्रियत्वं, यो देवानां सततममृतैः कल्पयामास वृत्तिम् ।
अश्वं चोच्चैः श्रवसमसमं नागमैरावतं च, दत्त्वेन्द्रस्य त्रिभुवनपतेः पूरयामास वाञ्छाम् ॥ २० ॥
कन्यां दत्त्वा जगति विदितां यौतके कौतुकी च, योऽदान्मोदाद् युगपदमलं कौस्तुभं पाञ्चजन्यम् ।
एवं विश्वंभरमतितमां प्रीणयामास लोभाद् यन्नाद्यापि श्वशुरवसतिं संत्यजत्युत्तमोऽपि ॥ २१ ॥
जीयासुस्ते जगति विदिता भ्रातरः पञ्च चञ्चन्माहात्म्यास्ते वितरणभटाः पारिजातद्रुमाद्याः ।
द्राक्संकल्पोपनतसकलाभीप्सिता अप्यभीष्टं, याचन्ते यान् विनयविनता नाकिनो वासवाद्याः ॥ २२ ॥
मूर्खं प्राज्ञीयति च कुतनुं कामरूपीयति द्राग्, दीनं शूरीयति च कुटिलं प्राञ्जलीयत्यवश्यम् ।
क्रूरं शान्तीयति गतकलं सत्कलीयत्यजस्रं, लोकं सोऽयं जयति निखिलस्त्वद्भगिन्याः प्रभावः ॥ २३ ॥
याते श्यामा सुभग ! दयिता वर्धयत्युग्रलक्ष्मीं, पक्षं पर्णं तुलयसि यया विप्रयुक्तस्त्वमिन्दो ! ।
सापि श्रान्तं भुवनमखिलं स्वस्वकर्मश्रमेण, निद्रादानात् सुखयति सदाभीष्टविश्वोपकारा ॥ २४ ॥
पीयूषार्द्रैस्त्वमपि किरणैर्जङ्गमस्थावराख्यं, भूतग्रामं सुखयसि सुतं संस्पृशन् द्राक्पितेव ।
क्रूरैः शूरप्रकटितकरैर्निर्भरं क्लिष्टलोकां, विष्वग् निर्वापयसि वसुधां सत्यमेवासि राजा ॥ २५ ॥
एवं विश्वोपकृतिकुशलः कः कुटुम्बे न तेऽस्ति, प्रायः सद्भिः प्रथितचरितैस्त्वादृशैर्वर्णनीये ।
यद्वा रत्नाकर इति यशः प्राप युष्माभिरेवाम्भोधिर्वप्तुर्भवति महिमोदारसत्त्वैस्तनूजैः ॥ २६ ॥
तस्माद् बन्धो ! जलधितनय ! प्रार्थनां मे समर्थ !, व्यर्थीकर्तुं न खलु कथमप्यर्हसि प्रौढवंश्य ! ।
येनोत्कृष्टं जगति विदितं याचमानस्य जन्तोर्याच्ञाभङ्गे भवति लघुता नैव सात्किं त्वमुष्य ॥ २७ ॥
नाशक्यं ते भुवनवलये मित्र ! पश्यामि किंचित् तेजःपुञ्जैरनतिजठरैरक्रमाक्रान्तविश्व ! ।
पादान् मूर्ध्नि त्रिपुरजयिनः कौतुकेनोपधायाह्वाय स्मेरीकृतततजगद्व्यापिशौर्यप्रतापः ॥ २८ ॥
कामं क्षामाकृतिमपि जगद् यज्जयन्तं न कोऽपि, छेत्तुं शक्तस्तदिह भवतो मातुलस्यानुभावात् ।
गोपालोऽपि त्रिभुवनमिदं क्रान्तवान् यत्त्रिपद्या, तत्राप्येतत् प्रभवति तव श्यालकस्यैव तेजः ॥ २९ ॥
या चाञ्चल्याद् भुवि विजयते विद्युतो नीचसङ्गात्, सिन्धूरन्धंकरणगुणतो ध्यामलां धूमलेखाम् ।
सापि भ्रातुर्भवति भवतो माननीयानुभावाद्, विश्वे दोषान् गणयति जनो को हि राज्ञो भगिन्याः ॥ ३० ॥

[दूताग्रे गन्तव्यस्थान - तदीयमार्गस्य सूचनम् –]

गन्तव्यस्ते **तपनतनया**तीरकोटीरमिन्दो !, **सूर्यद्रङ्गो** गुरुपदयुगस्पर्शसंप्राप्तरङ्गः ।
गत्वा तत्र त्रिभुवनजनध्येयपादारविन्दो, द्रष्टव्यः श्री**तपगणपति**र्भाग्यसंभारलभ्यः ॥ ३१ ॥
मार्गं तस्य प्रचुरकदलीकाननैः कान्तदेशं, स्थाने स्थाने जलधिदयितासंततिध्वस्तखेदम् ।
आकर्ण्यान्तःकरणविषये स्थापयोक्तं मयेन्दोऽभीष्टं स्थानं व्रजति हि जनः प्राञ्जलेनाध्वना द्राक् ॥ ३२ ॥
शैलादस्मादुपसर पथा दाक्षिणात्येन बन्धो !, गन्धोद्रेकोल्लसितकुसुमस्तम्भितेन्दिन्दिरेषु ।
स्थाने स्थाने सरससरसः काननेष्वंशुपूरैर्मोदं संपादय कुमुदिनीफुल्लपुष्पेक्षणानाम् ॥ ३३ ॥

[दूतमार्गागतप्रथमप्रयाणस्थानभूतस्य सुवर्णाचलस्य वर्णनम् –]

तुङ्गे तिष्ठ क्षणमुडुपते ! त्वं **सुवर्णाचलस्य**, क्रीडावापीसवनसरसैर्मारुतः शान्ततापः ।
तत्रत्यानां सकलदिवसक्षुद्व्यथापीडितानां, सौहित्यं त्वत्किरणकवलैः स्ताच्चकोराङ्गनानाम् ॥ ३४ ॥
तस्मिञ्शैलेऽन्तिमजिनवरावामवामेयदेवप्रासादौ यौ तरुणकिरणैः संगरं निर्मिमाते ।
मध्यस्थः सन् सुघटितरुची तौ कुरु प्रायशो यत्, प्रोत्तुङ्गानां भवति महतैवापनेयो विरोधः ॥ ३५ ॥
तत्र क्रीडोपवनसरसीस्वच्छनीरान्तरेषु, स्नात्वा स्वैरं प्रतिकृतिमिषान्नव्यधौतांशुकः सन् ।
ज्योत्स्नाजालैः स्नपय मधुरैर्वीरवामेयदेवौ, कर्पूराच्छैस्तदनु च करैरर्जयाभ्यर्च्य पुण्यम् ॥ ३६ ॥
तस्याधस्तान्नगरमपरः स्वर्ग एवास्ति यस्य, प्रौढेभ्यानां भवननिकरैर्ध्वस्तमाना विमानाः ।
क्वाप्येकान्ते कृतवसतयः सज्जलज्जाभिभूता, भूमीपीठावतरणविधौ पङ्गुतामाश्रयन्ति ॥ ३७ ॥
यद्यप्याशु ग्लपितनयना हस्तविन्यस्तवक्त्रा, दूयन्ते त्वत्किरणनिकरैर्निर्भरं विप्रयुक्ताः ।
विघ्नो यद्यप्यभिसृतिकृतां योषितां च त्वदीयैर्ज्योत्स्नाजालैस्तिमिरनिकरैर्दूरनिर्वासिते स्यात् ॥ ३८ ॥

न प्रस्थेयं तदपि भवता वीक्ष्य दक्षेक्षणीयं, द्रङ्गं शृङ्गारितकुवलयं चित्रसंपूर्णमेनम् ।
विष्वग्दत्त्वा नयनयुगलं सम्यगालोकनीयं, पश्चात्तापस्तुदति हृदयं दर्शनीये ह्यदृष्टे ॥ ३९ ॥

[श्रीरोहिणी - सिरोही - इत्याख्यस्य पुरस्य वर्णनम् –]

तस्माज्जालंधरपुरवरादुत्पतञ्शीघ्रगामी, **श्रीरोहिण्याः** परिसरमथ प्राप्स्यसि त्वं निमेषात् ।
स्थित्वा तत्र क्षणमियमपि प्रेक्षणीया समन्तान्नान्तःशल्यं स भवति सतां सार्थको यो विलम्बः ॥ ४० ॥
तस्यां चैकं सुखमुडुपते ! धार्मिकाणां महीयो, यच्चैत्यानां शुचिरुचिमतामस्ति पङ्क्तिव्यवस्था ।
तन्मध्यस्थे न भवति पथि प्रस्थितानां प्रयासो, दूरादेव प्रणतशिरसां देवदेवप्रणामे ॥ ४१ ॥
तेनैवाथ त्वमपि विरचिष्यत्यवश्यं पथेन्दो !, श्रद्धाशाली स्फुटमुभयतश्चैत्यमालाञ्चितेन ।
नामं नामं जिनभगवतामाकृतीश्चैत्यसंस्थाः, पश्यन्नेकान्तरमवहितः सुष्ठु सव्यापसव्यम् ॥ ४२ ॥
एकं चैतद् वचनममलं मामकीनं न चित्तादुत्तार्यं स्वीकृतनिजसुहृत्कार्यसिद्धेर्निदानम् ।
पण्यस्त्रीणामिह हि नगरे संनिवेशो गरीयानास्ते तस्माद् धृतिमतिहराद् दूरमेवाभिगच्छेः ॥ ४३ ॥
काचिन्नाग्याः श्रयति समतां भोगिलोकोपगूढा, हन्त्री काचित् कलयति कलां तत्र किंपाकवल्ल्याः ।
काचिद्धर्तां तुलयति सुवभ्रंशहेतुः पणस्त्री, काचिच्चान्ध्यप्रथननिपुणा याति वात्या सखीत्वम् ॥ ४४ ॥
काचित्तीक्ष्णैर्नयनविशिखैर्मर्म यूनां भिनत्ति, नर्मालापैर्हरति हृदयं काचिदाकूतहृद्यैः ।
काचित् साचिस्मितविलसितैर्मोहयत्यल्पबुद्धीन्, धैर्यं काचित् पटुकुचतटोद्घाटनैर्लुण्ठति द्राक् ॥ ४५ ॥
तस्मादासां युवजनपृषद्वागुराणामवश्यं, दूरात्त्यागो भवति हि नृणां श्रेयसेऽमुत्र चात्र ।
तत्राप्यङ्गीकृतनिजसुहृद्वाग्हृतेस्त्वादृशस्य, व्यासङ्गो नोचित इति हितं द्विस्त्रिरेतद् वदामि ॥ ४६ ॥

[अर्बुदाद्रेस्तत्र स्थितानां जैनचैत्यानां च वर्णनम् –]

तस्याः पुर्या भवति पुरतो नातिदूरेऽ**र्बुदाद्रि**र्द्रष्टव्योऽसौ तरुपरिवृतोदभ्रमभ्रंकषाग्रः ।
नादैर्गीतैरिव जनमनांस्याहरन् कीचकानां, गन्धर्वाणामिव नवमरुच्चालनाद् घूर्णमानैः ॥ ४७ ॥
शृङ्गेऽमुष्योन्नतिभृति सरस्तीरभूमिप्ररूढान्, दूर्वाङ्कूरान् किल कवलयिष्यत्यसौ ते कुरङ्गः ।
भूयः कालक्षुदुदयकृशश्चारणीयोऽयमिन्दो !, सामग्र्यम्भोभरतृणततेर्दुर्लभाखेटतोऽस्य ॥ ४८ ॥
कूजद्भिर्ये श्रुतिसुखकराः कोकिलैर्मल्लिकानामामोदैश्च प्रसृमरतरैः प्राणिनो मोदयन्ति ।
उद्गच्छद्भिर्नवनवतृणैर्वर्यवैडूर्यबद्धक्षोणीपीठा इव विदधते शं निकुञ्जा द्रुमाणाम् ॥ ४९ ॥
तेषूच्चैर्मा स्म भवदमितः स्वर्वधूप्रस्तुतैस्तैर्वीणानादैरपहृतमना दूरकृष्टो मृगस्ते ।
मा भूत् खेदस्तदनु च तदन्वेषणे वा विलम्बो, गन्तुं त्यक्त्वाश्रितमणुमपि त्वादृशा नोत्सहन्ते ॥ ५० ॥
तस्मात् स्वस्यानयनविषयान्नायमत्यन्तदूरं, गन्तुं सद्यो नवघनतृणास्वादविक्षिप्तचेताः ।
यन्निर्मग्ना अपि करिवरा **अर्बुदाद्रेः** कुडङ्गेष्वप्राप्याः स्युर्बहलविटपिष्वन्यजन्तोः कथा का ॥ ५१ ॥
– त्रिभिर्विशेषकम् ।

यद्यप्येतद्घनवनगतं नान्धकारं करास्ते, हन्युर्मा भूत् तदपि हि भवान् स्वे मृदुत्वे विषण्णः ।
येषूष्णांशोरपि किल कराः कुण्ठतामाश्रयन्तेऽनङ्गीक्रीडासदसि दिविषत्पुंश्चलीनां दिवापि ॥ ५२ ॥
तत्र श्रीमान् **विमलवसतौ** भाति नाभेयदेवसेवायातत्रिदशनिकरः पूर्णपादोपकण्ठः ।
नेमिस्वामी दिशति च शिवान्यानतानां निविष्टः, साक्षादिन्द्रालय इव वरे **वस्तुपालस्य** चैत्ये ॥ ५३ ॥
रूप्यस्वच्छोपलदलमयौ चित्रदोत्कीर्णचित्रौ, चञ्चच्चन्द्रोदयचयचितौ कल्पितानल्पशिल्पौ ।
जीयास्तां तौ **विमलनृपतेर्वस्तुपालस्य** चोच्चौ, प्रासादौ तौ स्थिरतरयशोरूपदेहाविव द्वौ ॥ ५४ ॥
एषा भूमि**र्विमलविभुना** ब्राह्मणेभ्यो गृहीता, चैत्यं कर्तुं रिपुसुरजिता रूप्यमास्तीर्य विष्वक् ।
ऐतिह्यानि त्वमिति जरतां कुर्वतां मित्रगोष्ठीं, तत्र श्रोष्यस्यनुसृतभवच्चन्द्रिकाणां मुखेभ्यः ॥ ५५ ॥
द्रष्टव्यः स्यादयमपि सखे ! **भीमसाधो**र्विहारस्तार्तीयीकस्त्रिदशसदनस्फातिगर्वापहश्रीः ।
एवं चैतत् त्रिभुवनमतिक्रम्य शोभाविशेषैः, प्रासादानामिह समुदितं प्रीतिगोष्ठ्यै त्रिकं किम् ॥ ५६ ॥
आस्ते चैत्यं **खरतर**कृतं नातिदूरे यदेषां, तत्रोत्तुङ्गे चतसृषु दिशास्वर्हतो वन्दमानः ।
साक्षादृष्टं समवसरणं यद्विदेहावनीषु, तत्संस्कारोदयसहकृतं संस्मरिष्यस्यवश्यम् ॥ ५७ ॥
अन्ये चात्रामृतकर ! **हरिद्वासस**ां ये विहारा, द्रष्टव्यास्ते न खलु भवता तत्र वन्द्या जिनार्चाः ।
दिक्चेलानां कटुकमतिनां द्रव्यलिङ्गस्पृशां यन्नार्हद्बिम्बं सुविहितमुनेर्वासयोगं विनार्च्यम् ॥ ५८ ॥
किंचिद्दूरे भवति च ततस्तत्र दुर्गोऽ**चलाख्यो,** मौलौ तस्मिन् विलसति चतुर्द्वारमुत्तुङ्गचैत्यम् ।
यादृक्तत्रोच्छ्रितमनुपमस्वर्णरीरीविमिश्रं, न क्ष्मापीठे क्वचिदधिगतं तादृगर्चाचतुष्कम् ॥ ५९ ॥
नीचैः किंचिद् भवति च ततः कान्तमर्हन्निशान्तं, श्रान्तं तारादिव नवरुचां गन्तुमूर्ध्वं न शक्तम् ।
दुर्गस्याधोऽप्यथ जिनगृहं श्री**कुमारक्षितीन्दो**र्वन्देथास्तेष्वनुपममते ! भावतः श्रीजिनार्चाः ॥ ६० ॥
अस्त्येषोऽद्रिर्ध्रुवमुपचितो भूरिदिव्यौषधीभिस्तस्मादस्योपरि किर रसं चन्द्रिकाणां विशिष्य ।
एताः पुष्टिं दधतु च रयादौषधीशस्य तेऽङ्गस्पर्शात् स्त्रीणां परममुदितं यौवनं भर्तृसङ्गः ॥ ६१ ॥
शैलेऽस्त्यस्मिन् प्रतिपदमहो लौकिकी तीर्थराजी, मिथ्यादृष्टिक्षितिपतिनतिप्राप्तमिथ्यानुभावा ।
न द्रष्टव्या सुभग ! भवता कौतुकादप्यसौ यन्मालिन्यं स्यात् तदभिगमनाच्छुद्धसम्यक्त्वरत्ने ॥ ६२ ॥
एवं स्थित्वा स्थिरतरधिया लोकनीयोऽ**र्बुदाद्रि**रस्यादृष्टा जगति हि जनो गण्यते गर्भ एव ।

दृष्ट्वा चैनं व्रज गजगते ! सत्वरैः पादपातैर्नालस्यं स्यादुपकृतिकृतां त्वादृशां ह्युत्तमानाम् ॥ ६३ ॥

[ततोऽग्रे मार्गगतस्य सिद्धपुरनगरस्य सूचनम् –]

याम्यामस्माद् व्रज नगवरान् **मारवीनां** नवीनां, श्रीखण्डार्चां वपुषि रचयंश्चन्द्रिकाणां तरङ्गैः ।
सिद्धद्रङ्गे क्षणमथ **सरस्वत्युपेते** विलम्ब्य, **राजद्रङ्गं** भुवनविदितं यास्यसि त्वं निमेषात् ॥ ६४ ॥

[राजद्रङ्गापराभिधान-अहमदाबादनगरवर्णनम् –]

तत्रालोक्य स्वपतितनयं राजतेजोऽभिरामं, दर्भाङ्कूरच्छलपुलकिता त्वामुपस्थास्यतेऽसौ ।
आमूलाग्रं तरलिततनुर्वीचिहस्तैरुदस्तैर्दूरादालिङ्गितुमिव रसात् **साभ्रमत्यब्धिकान्ता** ॥ ६५ ॥
एषा क्वापि प्रचुरतरभैः काननैः कम्रकूला, क्वापि क्रीडद्युवतिनिकरैरप्सरःसेवितेव ।
सद्वेषेव क्वचन विततैरम्बरैर्धौतमुक्तैर्मुक्ताशुक्त्यावलिरुचितरैः क्वाप्यलंकारितेव ॥ ६६ ॥
प्रीणात्येषाऽखिलपुरजनान् सत्पयःपानदानादुत्सङ्गस्थान् रमयति च तान् केलिलीलाविलोलान् ।
दूरादालिङ्गति च विततैर्वीचिहस्तैः पुनीतेऽपूतान्नास्याः कथमतिहिता नेयमम्बा नगर्याः ॥ ६७ ॥
नद्याश्चास्याः सुचिरमुभयोः कूलयोः संनिविष्टाश्चक्राह्वानां हृदयदयिताश्चाश्रुभिः क्लिन्ननेत्राः ।
पादैर्मा स्मारतिमुपनयैर्विप्रयुक्ताः प्रसह्यैः, कण्ठप्राणा नहि विरहिणः कृच्छ्रमीषत् सहन्ते ॥ ६८ ॥
आरूढानां भवनवलभीं **गौर्जरीणां** त्वदीक्षाफुल्लाक्षीणां प्रियतमकरन्यस्तहस्तोत्पलानाम् ।
पश्यन्तीनां नगरमभितोऽलंकृतं चन्द्रिकाभिर्बन्धो ! निर्वापय निजकरैः सुष्ठु दृक्कैरवाणि ॥ ६९ ॥
क्रीडाहर्म्ये प्रियसहचरीप्रेरणाभिः प्रविष्टाः, शय्योत्सङ्गं प्रणयचटुभिः प्रेयसा प्रापिताश्च ।
व्रीडोद्रेकाद् गृहमणिमुपाहत्य कर्णोत्पलेन, कान्तोपान्ते तमसि कथमप्यासते या विमुग्धाः ॥ ७० ॥
मा कार्षीस्त्वं तरुणकिरणैर्जालमार्गप्रविष्टैस्तासां कान्तप्रसभहृतसच्चीवराणां प्रकाशम् ।
किं कुर्युः संवरितुमनलं भूषणवस्तास्त्वदंशून्, मौग्ध्यादेवानवगतधवाक्ष्यब्जसंवृत्युपायाः ॥ ७१ ॥ (युग्मम्)
तत्राट्टानां ततिषु निहिता भूरि रत्नप्रकारास्तारास्ताराधव ! तव करैः सुष्ठु संयोगमेत्य ।
प्राप्तोल्लासा इव नवरुचो दर्शनीया भविष्यन्त्युल्लासं हि प्रथयति चिराद् बन्धुवाहानुषङ्गः ॥ ७२ ॥
लक्ष्मीस्तत्रारमति सततं भूरि कोटिध्वजानां, गेहे गेहे बहुविधधनैः क्लृप्तनानास्वरूपा ।
दृष्ट्वा चैनां सुभग ! भगिनीं त्यक्तचाञ्चल्यदोषां, चिन्तातीतं नियतमतुलं प्राप्स्यसि त्वं प्रमोदम् ॥ ७३ ॥
एकैकोऽस्य ध्रुवमुडुपते ! पाटकोऽन्यैः पुराणां, वृन्दैस्तुल्यो जनपदसमान्येव शाखापुराणि ।
वेश्मैकैकं पृथुतरमुरुग्रामतुल्यं तदस्य, माहात्म्यं कः कथयितुमलं प्राप्तवाग्वैभवोऽपि ॥ ७४ ॥
मुक्तापुञ्जान् प्रतिपदमुरून् रत्नराशीन् प्रवालाङ्कूराञ्शङ्खान् मृगमदसरान् वीक्ष्य भूयो वरांश्च ।
मा ज्ञासीस्त्वं स्वपितुरुदधेर्हन्त सर्वस्वमात्तं, द्रङ्गो ह्येष प्रकृतिगुणतो ज्येष्ठरत्नाकरोऽस्ति ॥ ७५ ॥
अस्य व्यक्त्या निशमनमहो वर्षलक्षानुपाति, सामान्येनामृतकर ! ततश्चैकदेशो विलोक्यः ।
तस्मिन् दृष्टे निखिलमपि तद् दृष्टमेवावधेयं, सर्वं दृष्टं वदति हि जनो वर्णिकादर्शनेन ॥ ७६ ॥
रत्नज्योतिः कनकरजतज्योतिरट्टावलीषु, स्त्रीपुंसाङ्गाभरणतरुणज्योतिरत्र प्रदोषे ।
दीपश्रेणीप्रकटितपटुज्योतिरिन्दोस्त्वदीयज्योतिर्योगे भवतु विविधज्योतिषां संनिपातः ॥ ७७ ॥
तत्र प्रत्यापणमनुगृहं दीपकानां कदम्बे, स्तोकं पौराणिक इव निशि व्यञ्जयत्यर्थजातम् ।
गत्वा प्रामाणिक इव महान् व्यञ्जयन् सर्वतोऽर्थं, वैलक्ष्यं तं तरलितकरः प्रापयिष्यत्यवश्यम् ॥ ७८ ॥

[अथ लाटदेश - तन्नगरविशेषवर्णनम् -]

तस्माद् दुङ्गाच्छमनककुभिः प्रस्थितस्यान्तरा ते, स्वर्गाकारं नगरमपरं **लाटदेशस्य** पुण्ड्रम् ।
दर्शं दर्शं मनसि परमप्रीतिरापत्स्यते यन्नानालक्ष्मीरुचिरवपुषां तत्र वासो जनानाम् ॥ ७९ ॥
लङ्का शङ्कां मनसि दधती तोयराशौ ममज्जातीते हर्म्यो वसति च पदे हन्त वस्त्रोकसारा ।
पातालं प्राविशदपमदा सापि **भोगावती**मां, दृष्ट्वा रम्यामनुपमतमां **वाटपद्री**मभिख्याम् ॥ ८० ॥
मध्येऽस्त्यत्र प्रचुरसुख(ष)मो मण्डपोऽत्यन्ततुङ्गस्तत्र स्थित्वा चतसृषु दिशास्वीक्षणीयं त्वयेन्दो ! ।
द्रष्टासि द्राक् श्रियमनुपमामस्य विष्वक्पुरस्य, रम्यं ह्येतच्छुचिरुचिचतुर्द्वारचैत्यानुकारम् ॥ ८१ ॥
अत्यासन्नं **भृगुपुर**मितो यास्यसि प्रौढदुर्गां, दुर्गन्धांशोज्झितमतिसुरैर्भूरि पौरैः परीतम् ।
भूपीठे मत्सदृशमपरं वर्तते वा न वेति, द्रष्टुं रङ्गान्तरमिव समारूढमुच्चप्रदेशम् ॥ ८२ ॥
तस्योपान्ते सुखयति नदी **नर्मदा** नर्मदोर्मिस्तोमै रोमोद्गममतिहिमैः कुर्वती नौस्थितानाम् ।
क्रीडद्गन्धद्विपमदरसोद्दामगन्धिप्रवाहा, चञ्चत्क्रीडावनघनतटा नाव्यनीरा गभीरा ॥ ८३ ॥
आलोक्य द्राग् भुवनममृतैस्तर्पयन्तं भवन्तं, तातं भ्रातर्भवतु मुदिता **नर्मदा** ते तनूजा ।
प्राप्तोल्लासो भवतु च भवानप्यपत्येक्षणेन, संसारे यज्जनितजनकप्रेमबन्धो ! गरीयान् ॥ ८४ ॥
तत्र स्थित्वा **भृगुपुर**महावप्रवातायनाग्रे, दृष्ट्वा हृष्टो निजतनुभुवो धावनोद्वल्गनानि ।
गच्छेः स्वच्छे **तरणिनगरो**पान्तभूमिप्रदेशे, श्रीश्रीपूज्यक्रमविहरणध्वस्तपापप्रवेशे ॥ ८५ ॥

[तरणिनगरापराभिधान - सूर्यपुर - तदन्तर्गतगोपीपुरस्थानवर्णनम् -]

खर्जूरीणां विपिनपटलीतुङ्गतालद्रुमाणां, तत्र श्रेणी**स्तपनतनया**तीरभूमिप्ररूढा ।
मन्दं मन्दं प्रसृमरमरुत्कम्पितां मौलिकम्पैः, श्लाघामन्तः सृजति नगरस्यास्य लोकान्तरस्य ॥ ८६ ॥
पोतश्रेणीपरिचयमिषात् तीरवेल्लद्विमाना, मज्जद्वृन्दारकवरवधूर्नागरैर्नागरीभिः ।
स्वादुस्वच्छस्फटिकरुचिराम्भोभरैरुत्तरङ्गा, **तापी** तत्र श्रयति तटिनी स्वर्गगङ्गानुकारम् ॥ ८७ ॥
एनां संगच्छति जलनिधिः प्रत्यहं द्विस्त्रिरस्याः, सौभाग्येनातिशयगुरुणा कार्मणेनेव वश्यः ।
अभ्रच्छन्नस्त्वमपि भविताऽस्येतयोर्योगकाले, पित्रोः पश्यन् क इह सुरतं लज्जते नेजडोऽपि ॥ ८८ ॥
तत्र **श्रीमत्तपगणपतेः** सद्विहारानिलोर्मिप्रुष्टातङ्कां फलदलसुमस्फातिसंपन्नवृक्षाम् ।
इष्टानेहःपरिगतघनोद्भासि भूयिष्ठसस्यां, द्रक्ष्यस्यर्हत्समवसरणापास्तदोषामिव क्ष्माम् ॥ ८९ ॥
नम्रीभूताः प्रतिपदमहो लुम्बिवृन्दैः फलानां, स्वर्णैर्योषा इव धनवतां सन्ति कम्राः कदल्यः ।
स्निग्धच्छायैर्मधुरफलदैर्मण्डपैर्गोस्तनीनां, गेहैर्ग्रामा इव सुमनसां तत्र कान्ता वनान्ताः ॥ ९० ॥
दीप्ताः पुष्पैरविरलदला मण्डली चम्पकानां, तत्रोद्याने तुलयति निशां सुष्ठु दीपालिकायाः ।
माकन्दानां ततिरपि फलैर्लक्षिता पल्लवैश्च, नागश्रेणीममसृणसृणिं हेमघण्टावलीढाम् ॥ ९१ ॥
उद्यानानां नगरमभितः संततिर्भाति नानावृक्षैर्लक्षैर्विविधसुमनःसंविताानां लतानाम् ।
क्रीडद्दम्पत्युचितकदलीमन्दिरैर्बालकानां, गेहैः क्रीडाभवनसरसी दीर्घिका वापिकाभिः ॥ ९२ ॥
पोतान् पोतानिव जलनिधेः कुक्षिनिक्षिप्तनानावस्तुस्तोमांश्चतुर भविता पश्यतस्ते विलम्बः ।
जाग्रज्जैत्रध्वजपरिगताञ्जङ्गमद्रङ्गतुल्यान् पश्यन्नेतान्न भवति जनः कोऽत्र विक्षिप्तचेताः ॥ ९३ ॥
दुर्गो भर्गोज्ज्वलवपुरिहोत्कन्धरश्चन्द्रशालादम्भात् सौधच्छदिरुपचितो मौक्तिकच्छत्रशाली ।
नानायन्त्रप्रहरणधरो युद्धसज्जोग्रशस्त्रः क्षत्रस्यैष श्रयति सुख(ष)मां धैर्यगर्वोद्धुरस्य ॥ ९४ ॥

गोपीनाम्नः किमिह सरसो वर्णयामो महत्त्वं, यत्क्षीराब्धेः कलयति कलां मथ्यमानस्य नो चेत् ।
आस्ते कुक्षौ किमिह निहितो मेरुरद्यापि किं वा, वीचिक्षोभो मथनजनितत्रासतोऽत्रागतस्य ॥ ९५ ॥
नीलच्छायां क्वचिदविरलैर्नागवल्लीदलौघैः, शुभ्रच्छायं क्वचन कुसुमैर्विस्मृतैर्विक्रमाय ।
पिङ्गं चङ्गैरतिपरिणतैः कुत्रचिच्चेक्षुदण्डैर्नानावर्णं पुरमिदमिति द्योतते सर्वदापि ॥ ९६ ॥
पोतोत्तीर्णाम्बुधिपरतटोद्भाविनो वस्तुवृन्दान्, द्राक् संख्यातुं क इह गणनाकोविदोऽपि क्षमेत ।
ईष्टे मातुं क इव रजतस्वर्णमाणिक्यपुञ्जान्, गुञ्जानेमारुणतररुचींश्चाङ्कुरान् विद्रुमाणाम् ॥ ९७ ॥
रूप्यस्वर्णप्रकरघटनप्रोत्थितैष्टङ्कशालागर्भोद्भूतप्रतिरवशतैस्तारतारैष्ठकारैः ।
नात्र क्वापि प्रभवितुमलं दुष्टदौर्गत्यभूतः, पूतः क्षौद्रैर्ह्युपशमविधौ मन्त्रसारष्ठकारः ॥ ९८ ॥
यत्र श्राद्धास्ततसुमनसो विश्वमान्या वदान्याः, संख्यातीता अमितविभवाः प्रौढशाखाप्रशाखाः ।
कुत्राप्याद्याद्यरकजनिताः संस्थिताः कल्पवृक्षाः, प्रादुर्भूतास्त**पगणपति**प्रौढपुण्यानुभावात् ॥ ९९ ॥
शिल्पिप्रष्ठै रचितविविधानेकविज्ञानहृद्यं, हिङ्गुल्वाद्यैः कनकखचितैर्वर्णकैर्वर्णनीयम् ।
दत्त्वानन्दं स[हृ]दयहृदां वृन्दमर्हद्गृहाणां, चित्रैश्चित्रं क इह न जनो वीक्ष्य चित्रीयतेऽन्तः ॥ १०० ॥

[गोपीपुरमध्येस्थित जैनोपाश्रयवर्णना –]

मध्ये **गोपीपुर**मिह महाञ्श्रावकोपाश्रयोऽस्ति, कैलासाद्रिप्रतिभट इव प्रौढलक्ष्मीनिधानम् ।
अन्तर्वर्त्यार्हतमतगुरुप्रौढतेजोभिरुद्यज्ज्योतिर्मध्यस्थितमघवता ताविषेणोपमेयः ॥ १०१ ॥
भित्तौ भित्तौ स्फटिकसरुचौ कुट्टिमे कुट्टिमे च, संक्रामंस्त्वं सुभग ! भविताऽस्यात्तलक्षस्वरूपः ।
युक्तं चैतत्त**रणिनगरो**पाश्रयस्यान्यथाश्रीर्द्रष्टुं शक्या न खलु वपुषैकेन युष्मादृशाऽपि ॥ १०२ ॥
तस्य द्वाराङ्गणभुवि भवान् स्थैर्यमालम्ब्य पश्यन्, साक्षाद्देवानिव नृजनुषो द्रक्ष्यति श्राद्धलोकान् ।
हस्त्यारूढानथ रथगतान् सादिनश्चार्थपौरुष्यर्थान्श्रोतुं रसिकहृदयाञ्शीघ्रमाटीकमानान् ॥ १०३ ॥
माद्यद्भूरिद्विपमदरसाश्लीयलालानिपातक्लिन्नां खिन्नामिव घनजनव्रातसंमर्दखेदात् ।
द्वारं स्वस्याङ्गणभुवमतिप्रेङ्खितैस्तोरणानां, स्नेहादाश्वासयति मरुतां प्रेरणेनेव शश्वत् ॥ १०४ ॥
मध्ये तस्याः श्रमणवसतेर्मण्डपो यः क्षणस्य, सोऽयं कान्त्याऽनुहरति सतां तां सुधर्म्यां मघोनः ।
मुक्ताचन्द्रोदयपरिचितस्वर्णमाणिक्यभूषाश्रेणीदीप्तो विविधरचनाराजितस्तम्भशोभी ॥ १०५ ॥
मध्ये सिंहासनमनुपमं तस्य शक्रासनाभं, चेतश्चैतत् सुखयति सतां हृद्यपद्यानुकारम् ।
सालंकारं सुघटितमहासंधिबन्धं सुवर्णं, स्वच्छच्छायं सुललितचतुःपादसंपन्नशोभम् ॥ १०६ ॥
दीप्रोपान्तः स्वसदृशरुचा पादपीठेन नम्रक्ष्माभृच्छ्रेणीमुकुटघटनाकोमलीभूतधाम्ना ।
पङ्क्योडूनामिव गुणयुजा मौक्तिकस्वस्तिकेन, व्योम्नो लक्ष्मीं किल निदधतोपेन्द्रपादाञ्चितेन ॥ १०७ ॥

[तदुपाश्रयावस्थित - तपागच्छाधीशसूरिवर्णनम् –]

तत्रासीनं परिणततपस्तेजसा पीनमन्तः, शुक्लध्यानोद्भवनवमहोद्द्योतितात्मस्वरूपम् ।
साक्षात्तीर्थंकरमिव जगज्जन्तुजीवातुभूतं, मूर्त्या शान्ताद्भुतमधुरया दत्तभव्यप्रमोदम् ॥ १०८ ॥
अभ्यस्तानां गुरुमुखकजादागमानां निधानं, साक्षादाद्यं गणधरमिवानेकलब्धिप्रधानम् ।
ज्ञानालोकप्रकटितजगत्तत्त्वदत्तावधानं, ध्यानं धर्म्यं हृदि निदधतं सिद्धिशय्योपधानम् ॥ १०९ ॥
आकर्षन्तं कठिनतपसां लीलया सिद्धिराज्यं, स्वर्गादीनां सुखमनुपमं मन्यमानं तृणाय ।
आचामाम्लाद्यतिपृथुतपःकार्श्यतः श्वेतकान्तिं, सम्यग्लिप्तं किल धवलया लेश्ययान्तर्बहिश्च ॥ ११० ॥

फुल्लाम्भोजश्वसितमसितिश्मश्रुकूर्चाङ्करौघमाबिभ्राणं सितमुखपटीं चाननाम्भोजहंसीम् ।
हस्ताम्भोजे दधतममलां वैद्रुमीमक्षमालां, रागं प्राप्तामिव गुरुगुणैर्घूर्णमानां च चित्रैः ॥ १११ ॥
अङ्के धर्मध्वजमुरुमहः शोभमानं दधानं, श्रेयोलक्ष्म्या प्रहितमिव सस्नेहया पुण्डरीकम् ।
प्रायः पद्मासनपरिचितं राजहंसोपसेव्यं, स्वाध्यायेनानुगतवदनं ब्रह्मसब्रह्मरूपम् ॥ ११२ ॥
कर्णोपान्ते पलितकपटात् सुष्ठु विज्ञप्यमानं, स्थानभ्रंशव्यथितजरसैकान्तमेकान्तकान्तम् ।
स्वामिँल्लोकानजरममरं स्थानकं प्राप्तुमर्हान्, कुर्वन् भूमौ विहरसि मया स्थीयतां क्वाधुनेति ॥ ११३ ॥
स्फूर्जद्भाग्यान् कतिचन दृशा स्निग्धयाऽऽलोकयन्तं, कांश्चिच्चेषत्स्मितकलनया स्वायतीन् प्रीणयन्तम् ।
पूर्वोपात्तास्खलितसुकृतश्रेणिसौभाग्यभाजः कांश्चिन्मौलौ करघटनया लब्धसिद्धीन् सृजन्तम् ॥ ११४ ॥
आशीर्दम्भान्नमदसुमतां हस्तविस्तारणेन हस्तन्यस्ताविव निजवशौ धर्मलाभौ ददानम् ।
कल्याणानां निधिमिव महापारवारं महिम्नामाचाराणां भवनमवनावाकरं सत्क्रियाणाम् ॥ ११५ ॥
अर्हद्धर्मं तनुभृतमिवास्तोकलोकोपकृत्यै, कैवल्यं वा विदितभुवनं पुंस्वरूपोपपन्नम् ।
प्रत्यक्षं वा सुकृतनिचयं शासनस्यार्हतस्य, मूलं निःश्रेयसपदतरोर्जङ्गमं कल्पवृक्षम् ॥ ११६ ॥
कष्टव्रातं नतसुमनसां जापमौनप्रयुक्तैर्घ्नन्तं मन्त्रैरिव पटुतरैर्हारिहुङ्कारनादैः ।
सम्यग्नामस्मरणशमिताशेषपापोपतापं, लक्ष्मोष्णांशुप्रतिभटजगद्व्यापितेजःप्रतापम् ॥ ११७ ॥
धैर्येणातिप्रथितयशसा स्वर्णशैलं जयन्तं, गाम्भीर्येणातिशयगुरुणाम्भोनिधिं लज्जयन्तम् ।
सौन्दर्येणाप्रतिममहसा मन्मथं तर्जयन्तं, चारित्राद्यैः सुविहितगुणैर्विश्वमावर्जयन्तम् ॥ ११८ ॥
मौनध्यानाद्यमलविधिनाराधिताचार्यमन्त्रं, सेव्यं देवैरुपपदगतैर्ब्रह्मचर्यानुरक्तैः ।
नम्रप्राणिप्रकरविविधप्रार्थनाकामकुम्भं, दान्तं शान्तं मृदुमपमदं निःस्पृहं वीतदम्भम् ॥ ११९ ॥
विद्यावद्भिः सुभगतनुभिश्चारुचारित्रवर्यैः, श्रीगुर्वाज्ञाविनयनिपुणैः सेवितं साधुवर्यैः ।
श्रद्धालूनां पृथुपरिषदि प्रौढधाम्ना निषण्णं, त्रायस्त्रिंशैरिव परिगतं संसदीन्द्रं सुराणाम् ॥ १२० ॥
वन्देथाः **श्रीतपगणपतिं** सार्वमैदंयुगीनं, पीतं पुण्यप्रभवसुदधेर्नन्दनत्वं लभेथाः ।
प्राच्यैः पुण्यैः फलितमतुलैस्तावकीनैः सुलब्धजन्मैतत् ते नभसि च गतिर्भाविनी ते कृतार्था ॥ १२१ ॥
(—चतुर्दशभिः कुलकम् ।)

अद्यानर्थैर्गलितमकलैः पापपङ्कैर्विलीनं, क्षीणं दोषैर्विगलितमशिवैर्दुष्टकष्टैः प्रणष्टम् ।
रुग्णं रोगैर्मृतमनुशयैर्विप्रयोगैर्विनष्टं, सर्वातङ्कोपशमनिपुणं द्रक्ष्यसि श्रीगुरुं यत् ॥ १२२ ॥
पुण्यादस्माद् भृशमुपचितात् किंवदन्तीकलङ्कस्यैषा यास्यत्यमृतकर ! भो निष्कलङ्कं भवन्तम् ।
मन्येऽवश्यं शतगुणघृणिं सत्वरं वीक्षिताहे, सर्वाभीष्टं फलति न चिराद् दर्शनं हीदृशानाम् ॥ १२३ ॥
हृद्यातोद्यैर्मुखरमुरजैर्गायनानां च गीतैर्गायन्तीनां गुरुगुणगुणांश्चारवैः श्राविकाणाम् ।
स्वाध्यायैश्च श्रमणकृतिनां तर्कचर्चाविचारैः, शब्दाद्वैते भवति भवता स्थेयमानम्य तत्र ॥ १२४ ॥

[तपागच्छाधीशाग्रे विज्ञपनीयवक्तव्यसूचनम् —]

विज्ञप्तिर्भो ! यदपि भवता दुष्करा नाप्तपुंसा, पार्श्वे किं **चामरहिमकराः** पाठकास्ते सगोत्राः ।
संवीक्ष्यैवावसरमुचितं तत्र वाच्यं तथापि, नेतारो हि ध्रुवमवसरप्रेक्षिणि प्रीतचित्ताः ॥ १२५ ॥
स्थित्वा तस्माद् विजनसमये श्रीगुरोः पादपद्मं, स्पृष्ट्वा स्वच्छैर्हिमकरकरैर्विज्ञ ! विज्ञप्यमेवम् ।
शिष्योऽणीयान् **विनयविजयो** द्वादशावर्तभाजा, विज्ञप्तिं व्याहरति महता वन्दनेनाभिवन्द्य ॥ १२६ ॥

यच्छ्रीपूज्यक्रमयुगमिलादुर्गमध्ये नतोऽहं, प्रागासं नोपकृतिमिव तद् विस्मरामि क्षणार्धम् ।
श्रीतातानां तदुरुकृपया भाषणं स्मर्यमाणं, सर्वाङ्गीणं सपदि पुलकोद्भेदमाविष्करोति ॥ १२७ ॥
तुष्यत्युल्लासयति करणान्युल्लसन्त्येव भूयो, भूयो गच्छत्युपगुरुपदं गाढमुत्कण्ठते च ।
बाष्पक्लिन्ने सृजति नयने गद्गदान् कण्ठनादानेतच्चेतः प्रणयरसतश्चेष्टते नैकधा ते ॥ १२८ ॥
निद्रादोषो जगति विदितो जागरश्चाप्रमादः, संप्रत्येतन् मम तु हृदये वैपरीत्येन भाति ।
निद्रां जाने गुणमनुगुणं दर्शनं वो ददानां, जागर्यां च प्रगुणमगुणं तत्र विघ्नं सृजन्तीम् ॥ १२९ ॥
जागर्यायां जपति रसना युष्मदाख्यां यथा मे, निद्रायामप्युपहितमनस्त्वेन शश्वत् तथैव ।
तस्मात् संप्रत्यहनि निशि वा जागरानिद्रयोर्मे, भेदं लोका अपि पटुधियो जानते नापरीक्ष्य ॥ १३० ॥
शङ्कातङ्कैर्मलिनमगुणैरुत्सृजन् पूर्वपक्षं, सिद्धान्तं सद्भिव ! भवदाराधनं संश्रितोऽस्मि ।
संभाव्यस्तत्परमगुरुभिः स्निग्धया प्रेमदृष्ट्या, येनात्यर्थं फलितसकलप्रार्थितार्थो भवेयम् ॥ १३१ ॥

*

॥ इति श्रीमेघदूतच्छायाकाव्यमिन्दुदूताभिधं काव्यं समाप्तम् ॥

*

†अथात्र प्रतिप्रत्यूषं मयूष(ख)मालिनि भगवत्युदयगिरिशिरसि माणिक्यकोटीरकलामाकलयति समंततःप्रसृतबालातपघुसृणपङ्कपुञ्जपिञ्जरीभूते भूतले महेभ्यसभ्यायां महासभायां श्रीषष्ठाङ्गसूत्रवृत्तिव्याख्यान-साधुसाध्वीप्रारब्धाध्ययनादिधर्मकर्मकदम्बके ससुखं सिद्धिसौधमध्यमध्यासमाने परिपाट्युपनतमखर्वसर्वपर्वगर्वसर्वस्वापहरणप्रवणं श्रीवार्षिकं पर्वापि सप्तदशभेदश्रीजिनार्चार्चारचन-द्वादशदिनजीवाभयदानपटुपटहप्रवर्तन-रङ्गाजीवितिलंतुदमैनिककुलालादिकुकर्मनिवर्तन-सप्रभावप्रभावनाभवन-सनवनवक्षणनवक्षणश्रीकल्पसूत्रवृत्तिवाचन-मासक्षपणपक्षक्षपणाष्टाह्निकाष्टमादिदुस्तपतपस्तपनार्थिसाधर्म्यार्थितार्थसमर्थन-तुङ्गच्छृङ्गारिततुरङ्गगूढीनिस्साणाद्यनेकवर्यतूर्यनिनादादिप्रचण्डाडम्बरचारुचैत्यपरिपाटीविरचन-साधर्मिकजनक्षामणसांवत्सरप्रतिक्रमणसाधर्मिकवात्सल्यकरणाद्यतुच्छोत्सवच्छटासच्छायं निरपायं निरमायि । वर्तते च कुशलमविकलं कामकुम्भकल्पद्रुमचिन्तारत्नाधिकचिन्तातीतार्थनार्थनासमर्थनचरणश्रीपरमगुरुचरणस्मरणासाधारणकारणतोऽपरं निर्जितदुर्जयदुर्दुरूढोन्मादानां समूलकाषंकषितप्रमादानां विहितासन्नसिद्धिकास्तोकलोकाह्लादानां सदा सुप्रसादानां श्रीपरमगुरुपादानां प्रसादपत्रप्रसादमथैवासादयिष्यति पाकपरमाणुरयमिति स्ववपुःपरिबर्हारोग्याद्युदन्तकान्तकर्पूरपूरपूरितकृपापत्रसमुद्गकप्रसादनेन प्रमोदनीयोऽहम् । किं च शिशोस्त्रिसायं प्रणतिरवधार्या, प्रसाद्या च महोपाध्यायश्री**अमरचन्द्र**गणीनामन्येषां च यथार्हं नत्यनुनती प्रसाद्ये । तथाऽत्रत्य पं० तेजविजयग० – ग० कनकविजय – ग० कान्तिविजय – ग० नेमिविजय – ग० जयविजय – ग० जिनविजय – ग० गुणविजय – ग० सत्यविजय – ग० रत्नविजय – साध्वीराजश्री – साध्वीकर्पूरश्रीप्रभृति चतुर्विधस्यापि श्रीसंघस्योपवैणवं प्रणतिरवधार्या । शिशूपरि कृपाप्रणयः स्फातिमानवधार्यः । शिशूचितं कृत्यादि प्रसाद्यमिति श्रेयः ॥卐 ॥



† इदं मेघदूतच्छायाकाव्यस्वरूपम् इन्दुदूताभिधानं विज्ञप्तिपत्रात्मकं काव्यं निर्णयसागरमुद्रणालयप्रकटितकाव्यमालान्तर्गतचतुर्दशगुच्छके मुद्रितमस्ति, परं तत्रायं गद्यभागो नोपलभ्यते । काव्यमपि यत्र तत्र बह्वशुद्धियुक्तं दृश्यते । अस्माभिरत्र अस्मल्लब्धशुद्धतरप्रत्यन्तराधारेण यथाशक्यं शुद्धीकृतम् ।

श्रीमेघविजयोपाध्यायविरचितो

[३] मेघदूतसमस्यापूर्तिमयविज्ञप्तिलेखः ।

[सन्देशप्रेषककवेर्वासस्थानादिनिर्देशः –]

स्वस्तिश्रीमद्भुवनदिनकृद्वीरतीर्थाभिनेतुः, प्राप्यादेशं **तपगणपतेर्मेघनामा** विनेयः ।
ज्येष्ठस्थित्यां पुरमनुसरन् **नव्यरङ्गं** ससर्ज, स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥
तस्यां पुर्यां मुनिगणगुरोर्विप्रयोगी स योगी, नीत्वा मासान् कतिचिदचिराद् वाचिकं नेतुकामः ।
भाद्रे पञ्चम्युदयदिवसे मेघमाश्लिष्टसौधं, वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥
मत्वा तस्याभ्युदयनदशां वायुनोन्नीयमानां, चेतो वाचं झटिति गमनापेक्षमूचेऽस्य साधोः ।
प्रत्यासन्नेऽप्ययि ! तव गुरौ कार्यकार्यस्ति योगः, कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥
तद्विज्ञप्त्यै त्वरय रयतः स्वं पुनानाऽऽशु नानाभावैरेवं किमिव मनसोदीर्णवाक्यः स बालः ।
हस्ताम्भोजद्वयरचनया निर्मितार्चाय तस्मै, प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥
कायं प्रायः पवनसलिलज्योतिषां संनिकायः, कार्थश्चायं प्रवणकरणैर्यो विधेयः समर्थः ।
हर्षोत्कर्षादिति स सहसाऽचिन्तयन्नूचिवाँस्तं, कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥
जज्ञे भूमावतिविषमताऽन्योन्यसाम्राज्यदौःस्थ्यात्, कश्चिन्मां नो नयति यतिनामीशितुर्वार्त्तवार्त्ताम्[१] ।
तत् त्वां याचे स्ववशमवशात्सृष्टविश्वोपकारं, याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥
भ्रातस्त्रातस्त्वमसि भुवने जीवनं जीवनन्दी, तापव्यापापहृतिनिपुणस्तत्पयोवाह ! रम्या ।
गम्या चारे रुचिरनगरी **देवकात्पत्तनाख्या**, बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥
नित्यं चेतः स्फुरति चरणाम्भोजयोः सूरिराजैः[२], कायः सर्वैः समयविषयैः संनिबद्धान्तरायः ।
नो[३] चेदीदृग्गुरुसुरतरुं प्राप्य कः स्याद्द्वीयान्, न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥
श्रेयस्यर्थे प्रभवति बलादन्तरायस्तदस्य, प्रध्वंसायाभ्युचितमचिरादाचिरेयं भजस्व ।
लाभोऽप्यत्र त्रिदशललनानेत्रसंवीक्षणैस्त्वां, सेविष्यन्ते नयनसुभगं खेभैवन्तं[५] बलाकाः[६] ॥ ९ ॥

[अथ प्रासानुषंगं श्रीशान्तिजिनवर्णनम् –]

देवः शान्तिर्भवति भविनां दुर्भवाम्भोधिसेतुर्हेतुर्भूयोऽनुभवभवँ[७]···भोगसंयोगलक्ष्म्या ।
दुष्टैः कष्टैर्व्ययभयमयैः संनियोगेऽङ्गभाजः, सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥
अस्याह्वानस्मरणकरणोद्भूतभूयःप्रभावाः, श्रद्धाभाजो विततमुरजस्येव गर्जं निशम्य ।
नृत्यारम्भे जिनपतिपुरः सञ्जिगीषोः स्वरुच्या, संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥
अर्हत्यस्मिन् सृजति भुवनोद्भासनं दीपरूपे, चेतोवृत्तीर्बहलतमसश्छेदनाय प्रपद्य ।
स्यात् तत्राभिप्रणतमनुजस्वर्गिवर्गस्य चित्रं, स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥
हर्षाद् वर्षाविहितहितकृत्स्नात्रकृत्यः प्रसूनैर्वातानीतैः प्रणयतु विभोश्चारुचर्यां सपर्याम् ।
कुर्वन्नुर्वीं स्वतनुमतनुं तीर्थभावाश्रितानां, क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः श्रोतसां चोपभुज्य ॥ १३ ॥

---

१ कुशलवार्त्ताम् । २ सूरिराजस्येत्यर्थः । ३ नो चेत् अर्थात् कायस्य विषयकृतविघ्नशून्यत्वे । ४ अतिदूरवर्ती पलं कालभागविशेष उपलक्षणात् कालः । ५ खेभ आकाशगज ऐरावतस्तद्वान् । ६ वराणि अङ्गानि भूषणानि यासां ताः । ७ अत्रैको गुरुवर्णस्त्रुटितः ।

देवस्यास्य प्रसवसमये दिक्कुमारीभिरुच्चैर्गन्धाम्भोदः प्रसृमरसुमाऽऽमोदशाली विचक्रे ।
पित्रा तत्रार्जितसुकृततो विश्वशीर्षे त्वमेषि, दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥
उद्यद्बालारुणघृणिगणोन्मिश्रशुद्धाश्मगर्भ-च्छत्रेणैतां तनुमनुदिनं भासितामस्य पश्य ।
मन्दारद्रुप्रभवनिचयैः पथ्यनेपथ्यभाजो, बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥
श्यामीभावं शमयितुमना वामभागे वितत्या, प्रादक्षिण्यं नय गुरुगुरुश्रेयसा देवमेनम् ।
नृत्यासक्तामरवरवधूवेषवत्त्रायमाणः, किञ्चित् पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥
शङ्के राकातुहिनकिरणो वैश्वसेनिस्वरूपाच्चक्रे पूजास्पदमिह मृगं स्वस्य संवाहकं खे ।
न क्षुद्रेऽपि प्रथमसुकृतोद्भावजन्मोपकारः, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥
रङ्कश्चन्द्रं जिनमुखविभामोषसञ्जातदोषं, पादाम्भोजे नखरमिषतोऽभ्यानयत् सप्रसादम् ।
स्वीयोत्सङ्गे तदिव हरिणो धीयते शीतभासा, सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १८ ॥
गायन्तीनां जिनवरपुरश्चारुलीलावतीनां, रूपोत्प्रेक्षाविवशमनसि त्वय्यथाग्रं प्रपन्ने ।
प्राप्तः स्वाहाशनजनमनःकाम्यतां मण्डपोऽपि, मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १९ ॥
नानारत्नाभरणकिरणैर्भूषितां द्यूषितार्च्यां[1], जैनीमर्चां[2] तव विनमतः काऽपि कान्तिर्भवित्री ।
यामालोक्याभिनवनवनैर्[3]वर्णयिष्यन्ति सिद्धाः, भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥
तस्याः[4] स्नात्रे दनुजमनुजैर्गात्रपावित्र्यहेतौ, सृष्टे दिष्ट्या प्लुतमविरलं क्षीरमादेयमेव ।
तन्माहात्म्यात् पवनयवनस्तेऽभिभूत्यै[5] प्रभुर्न, रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २१ ॥
लोकाः कुष्ठाद् गलितवपुषो निर्विरोकाः सशोकाः, अर्हत्स्नात्रामृतभरसरःस्नानमात्राः क्षणेन ।
भूत्वा भास्वल्ललिततनवो दिव्यभोगैर्भजन्ति, सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥

॥ इति जिनवर्णनम् ॥

नास्मिन्मार्गेऽस्म्यहमयि ! गतस्तच्च यात्रानुवेश्म, गत्वा श्राद्धाः सदयहृदयाः संपदां संप्रदायाः ।
प्रष्टव्यास्ते गुरुमुखघनान्निर्गलद्वाग्जलानां, सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २३ ॥
रत्नश्रेणीरचितनिचितस्वर्णसङ्कीर्णसौधेष्वस्यां जालान्तरपरिलसल्लोलनेत्राकलापैः ।
शुक्लापाङ्गैर्मधुरवचनैर्वन्दनां वक्तुकामैः, प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥
वृष्टे ह्यत्र त्वयि प्रतिगृहं केतकोत्सेधहेतौ, धारायन्त्रावलय उदितोत्तुङ्गरङ्गत्तरङ्गाः ।
अन्तर्मज्जत्सरसिजदृशां वक्त्रपद्मैः सपद्माः, संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः[6] ॥ २५ ॥
प्रस्थानार्थं तव सवयसं प्रार्थयस्वार्थवन्तं, कासारं तं जलजरजसा पीतवासो वसानम् ।
सिन्ध्वा वध्वा अधरमधुरं यः पिबत्युन्नमय्य, सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि[7] ॥ २६ ॥
स्थित्वा तीरे ध्रुवमुपसरश्चञ्चलाचञ्चलाक्षीः[8], धाराहस्तैः कुसुममधुरां दर्शयेस्तां वनालीम् ।
या प्रायोग्यैः सुरतललितप्रक्रियाणां प्रियाणाम्, उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥
संस्थानेन प्रहितमतुलं वीक्ष्य पक्वान्नवृन्दमुद्यानेऽपि स्वतरुषु चलच्छाखिकानां मिषेण ।
पुष्पश्रेणीं प्रहितुमनसि (?) प्रोन्नतानां समेधि, च्छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २८ ॥

---

१ दिवि स्वर्गे उषिताः द्यूषिता देवास्तैरर्च्यां पूज्याम् । २ प्रतिमाम् । ३ नवीनस्तवैः । ४ अर्चायाः (प्रतिमायाः) । ५ पवनस्य यवनो वेगः । ६ दशार्णा इवेति लुप्तोपमाऽलङ्कारः, दश ऋणानि जलदुर्गाण्यस्यां दशार्णा नदी । ७ वेत्रवत्या वेत्रवृक्षशालिन्याः सिन्ध्वा इति व्याख्येयम् । ८ उपसरः तडागसमीपे चञ्चलानि विद्युत् तद्वच्चञ्चलानि अक्षीणि यासां ताः स्त्रीः इति अण्यन्तकर्तुः कर्म ज्ञेयम् ।

अस्यां पुर्यां नरपतिनमन्मौलिमालार्चितांह्रिः, **साहेः** पुत्रः सुनयनयनः पाति लोकान् पितेव ।
गीर्वाणस्त्रीसदृशसुदृशां तस्य सौधोर्द्ध्वगामी, लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २९ ॥
नार्यः पुर्यां प्रतिगृहमिह श्रेणिमापूर्य तूर्यैरुद्दिश्येशं प्रणयरचितं गानमुत्तानयन्ति ।
श्रुत्वा तास्त्वां रसितमसितैर्मोहयिष्यन्त्यपाङ्गैः, स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ ३० ॥
रोदस्योस्त्वां परिचितमिति स्वीयचित्तेऽवधृत्य, सीमन्यस्याः कृषिकरजना बीजराजीं वितेनुः ।
संप्रत्येषाऽङ्कुरमुकुलनैः प्राञ्जलीभूय नम्रा, कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३१ ॥
धन्योऽसि त्वं जलदपटले ! **दक्षिणस्यां** प्रविश्य, दृष्टं येन प्रवरनगरं सारमेतज्जगत्याः ।
भुक्ते भाग्ये भुवि नु मरुतां देवशैलाद् विधाऽपि, शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३२ ॥
अत्राश्लिष्टुं कमलवदना वीचिहस्तैः सरस्यः, प्रोक्ताः कान्ता इव सुवयसां त्वां विजानन्ति शब्दैः ।
मुक्त्वा नस्त्वं विरहविधुराः कुत्र गन्तासि भोग्योऽसि प्रावातः[1] प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३३ ॥
अस्यां मुक्तामरकतपविश्रीप्रसूनेन्दुरत्नपूगान् दृष्ट्वा तरणिशशिनोः श्रान्तकान्तिस्वरूपान् ।
पुण्यश्रेणीविपणिगणितान् विद्रुमच्छेदराशीन्, संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥ ३४ ॥

॥ **इत्यवरंगावादवर्णनम्** ॥

[*सन्देशवाहकस्य प्रथमप्रयाणभूतदेवगिरेर्वर्णनम् –*]

अस्याः प्राच्या सुभगभगिनी **देवगिर्याह्वयास्ति**, पूर्वं प्रत्याश्रयमिह चिरं तस्थिवान् रामचन्द्रः ।
सस्त्रौ स्नेहादिह जनकजा लक्ष्मणः केलिमाधाद् इत्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ३५ ॥
तस्यां छत्रायितसुरगिरौ वप्रमौलिं दधत्यां, राज्ञस्तूर्यैर्द्विगुणितरवैर्नर्त्तयेथा मयूरान् ।
गेहेषूच्चैः प्रसवनिचयाकीर्णमध्येषु नूनं, नीत्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३६ ॥
एतत्पुर्याः पुरपरिसरादाभ्रकभ्रातपत्रात्, तत्रासीनो नगरसुषमां मार्गयाद्रौ विनिद्राम् ।
कासाराणां विकचकमलामोदिभिः सेव्यमान-स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३७ ॥
स्नात्रे श्राद्धैस्त्रिभुवनगुरोस्तत्र निर्मीयमाणे, नानारत्नांशुकरचनया भूषिते भूमिभागे ।
सद्यो वाद्यानुचरचरितैः शब्दयन्नब्दैरलम्[2], आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥ ३८ ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनभरनता गात्रसौन्दर्यभाजो, वामाः पुष्पैर्वृषभभगवत्पूजनं कर्त्तुकामाः ।
मूर्त्तेः स्नानादिव समुचितान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून् आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३९ ॥
आश्लेषार्थं सुहृदिव गिरिः शाखिबाहून् वितत्य, तत्रार्चास्तास्तव विरचयिष्यत्यनर्घ्यप्रसूनैः ।
गृह्णन् जन्माप्यविरलफलं मानयिष्यत्यमर्त्यैः, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान् याः[3] ॥ ४० ॥
तारुण्येन[4] स्मरपरवशां शिक्षितानां प्रवृत्तिं, रात्रौ स्त्रीणामुपपतिगतौ श्रोणिभारालसानाम् ।
देह्यालम्बं विमलतडिता दर्शयंस्तत्र मार्गं, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥ ४१ ॥

[*ततोऽग्रे स्थितस्य इलोराभिधपर्वतस्य सूचनम् –*]

इत्येतस्मान्नगरयुगलाद् वीक्ष्य केलिस्थलं त्वम्, **इलोराद्रौ** सपदि विनमन् पार्श्वमीशं त्रिलोक्याः ।
भ्रातः ! प्रातर्व्रज जनपदस्त्रीजनैः पीयमानो, मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ४२ ॥
त्वामुद्यान्तं नभसि सहसाऽवेक्ष्य कान्ता वियुक्तास्त्रासव्यासं दधति सरसां पार्श्वमस्माज्जहीहि ।
रात्रौ म्लाना इह कमलिनीर्मोटितुं[5] भानुमाली, प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४३ ॥

---

१ असि, प्राऽव, अतः इति च्छेदः । त्वं भोग्योऽसि, अतः प्राव रक्षेत्यर्थः । २ अपो ददातीति अब्दो मेघः । ३ याः अर्चाः पूजाः (कर्म) भवान् अमर्त्यैः देवैः (करणैः) मानयिष्यति । ४ "धर्मस्थानाद्गुरुगुणकथावश्यकान्तोत्थितानाम्" इति वा पाठः । ५ विकासयितुम्, भानुमाली = सूर्यः ।

मार्गे यान्तं बहुलसलिलैर्दाववह्निप्रशान्तेर्गोत्रैः कूप्तोपकृतिसुकृतं रक्षितुं त्वां नियुक्ताः ।
नद्यस्तासां प्रचितवयसामर्हसि त्वं न धैर्यान्, मोघीकर्त्तुं चटुलशफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४४ ॥
काचित् कान्ता सरिदिह तव प्रेक्ष्य सौभाग्यभङ्गीमङ्गीकुर्याच्चपलसलिलावर्त्तनाभिप्रकाशम् ।
चक्रोरोजावरुणकिरणाच्छादनात् पीडयास्याः, ज्ञातास्वादो विपुलजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४५ ॥
वर्त्मन्यस्मिन् विविधगिरयस्त्वत्परिस्पन्दमन्दीभूतोत्तापाः क्षितिरुहदलैस्तेऽपनेष्यन्ति खेदम् ।
पुष्पामोदी करिकुलशतैः पीयमानस्तवातः, शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४६ ॥

[अनन्तरागत-अणकि-टणकि-तुंगिआदिशैलवर्णनम् –]

गत्यौत्सुक्येऽप्य**णकि-टणकी**दुर्गयोः स्थेयमेव, पार्श्वः स्वामी स इह विहृतः पूर्वमुर्वीशसेव्यः ।
जाग्रद्रूपे विपदि शरणं स्वर्गिलोकेऽभिवन्द्यम्, अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४७ ॥
उत्पत्यास्मात् प्रणम विपुले **तुङ्गिआशैल**शृङ्गे, रामं कामं श्रवणवृषभं बोधितारं पशूनाम् ।
तत्संबुद्धान्वयजशिखिनो मूर्त्तिमस्याभिषिच्य, पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥ ४८ ॥
वर्षाभिस्ते शिखरिशिखराद् गैरिकाणां प्रवाहैः, सिन्धुः पूर्णा ह्यवनिवनिताचङ्गनीरङ्गिकेव ।
जेष्यत्येष्यन्नवजलभरासङ्गमोत्फेनराशिः, श्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४९ ॥
उत्तीर्याथ त्वयि शिखरिणां धोरणेर्निम्नभावाल्लीने भूमाविव जललवच्छैवलिन्योः प्रसङ्गैः ।
द्रक्ष्यन्त्योघं त्रिदशवनिताः स्निग्धतापात्रनेत्रैरेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ५० ॥

[सूर्यपुर-तापिका-भृगुपुर-रेवा-मही-हरिगृहपुर-साभ्रमत्यादीनां लाटदेशान्तर्गतनगर-नद्यादीनां वर्णनम्–]

एष्यत्यग्रेऽभ्युदयकमलामन्दिरं बन्दिरं **श्रीसूर्याख्यं** ते नयनविषयं स्वर्णपूर्णं क्रमेण ।
संगन्तास्मिन् सुहृदपि घनो **मालवात्** ते स्वगात्रं, पात्रीकुर्वन् **दशपुर**वधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ५१ ॥
सभ्येभ्यानामहमहमिकावृद्धसौधाग्ररत्नैरातिथ्यं ते बहु विरचयन् मानयेस्तत् पुरापि ।
हैमैः श्राद्धव्रज इह गुरोरागमे मार्गणानां, धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि ॥ ५२ ॥
श्रीमान् **पार्श्वप्रभु**रिह जयत्यग्रजाग्रत्प्रभावस्तस्य स्नात्रामृतसमुदयैः पूयते **तापिका**ऽपि ।
संसृज्यैनां रुचिररमणीस्नानकर्पूरपूर्णाम्, अन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५३ ॥
तस्माद् गच्छेरनु **भृगुपुरं** सिन्धुबन्धुप्रसक्तामद्रेर्बाह्यामिव शशिसुतां **पूर्वगङ्गे**ति नाम ।
रक्षन्ती या प्रसृमरजटाघट्टदम्भाद् वटस्य, शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५४ ॥
रेवातीरे भृगुपुरवरस्फाटिकावासराजी, तस्या बिम्बं विमलसलिले स्वर्धुनीवाऽपराऽस्ति ।
तत्र च्छाया परतटमथालम्बते ते तदैषा, स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेनाभिरामा ॥ ५५ ॥
अग्रे दृष्ट्वा जलमयमहीवन्**महीनाम**सिन्धुं, सिन्धोरूर्मीपृथुतरभुजैर्गाढमालिङ्ग्यमानाम् ।
लब्ध्वा स्तब्धाब्धिकफनिचयाभ्यासवर्त्ती हिमाद्रौ, शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५६ ॥
स्थाने स्थाने सरणिधरणीभृद्भिराग्रह्यमाणा, तन्वी खेदादुपपति सरेत् तर्हि नीरैस्तथाऽस्याः ।
कुर्याः पौष्यं स्खलति न यथा भूषिता चक्ररत्नैरापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः संपदोऽह्युत्तमानाम् ॥ ५७ ॥
उत्तीर्णस्तां **हरिगृहपुरं** प्राप्य तत्कौतुकार्थी, व्यालम्बेथा मणिमयशिलाप्रौढसभ्यालयालीम् ।
यत्ते द्विष्टाः पवनयवनास्तत्र भङ्गं लभन्ते, के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५८ ॥

---

१ 'तुङ्गिआ' इति नाम । २ अवनिरेव वनिता स्त्रीः तस्याः चङ्गा मनोहरा नीरङ्गिका मुखावगुण्ठनमिव । ३ लब्धा प्राप्स्यतीत्यर्थः । ४ अब्धिकफः फेनः । अभ्यासः सामीप्यम्, दन्त्योपान्त्योऽप्ययं शब्दः । ५ पत्युः स्वमनःकल्पितस्य दयितस्य समीपं उपपति, सरेत्=अभिसरेत् । ६ चक्रस्थाने 'चारु' इति स्याचेद् वरम् ।

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमासज्य पूज्यं, राज्याधीशैर्विजयपदतः **सेनसूरेर्भजस्व** ।
तीर्णान्यन्यान्यपि सुमनसो यानि दृष्ट्वैव भव्याः, सङ्कल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५९ ॥
स्त्रीवक्त्राब्जे भ्रमरललितं सुभ्रुवोः प्रेक्ष्य तत्र, कान्तारेऽब्धेस्तटमनुसरेस्साभ्रमत्याः प्रसङ्गि ।
वीचीनृत्यैस्तव घनरवैर्वेणुवादैर्जनस्य, सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ६० ॥
सिन्धोर्वेलाशिखरिषु तवाभ्यागमात् पुष्पितेषु, स्थित्वा रात्रावविरतरतश्रान्तविद्युद्वधूकः ।
किञ्चित्साचीकृत[1]निजतनुः पश्चिमामाश्रयेथाः, श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ ६१ ॥

[सौराष्ट्रदेशस्थितसिद्धशैलापराख्य–शत्रुञ्जयपर्वतवर्णनम् –]

सौराष्ट्रीणां हृदि विरचयन् बिन्दुभिर्मौक्तिकालीं, पावित्र्यार्थं ननु निजतनोः **सिद्धशैलं**[2] भजेथाः ।
यः शृङ्गस्थोन्नतजिनगृहच्छत्रगौरांशुभासी, राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ६२ ॥
मन्ये नन्तुं वृषभभगवत्पादयुग्माम्बुजन्म, तत्रारूढे त्वयि शिखरिणः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
भृङ्गव्यासाविव हि कुमुदस्त[3]स्य शोभा भवित्रीम्, अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६३ ॥
गन्धालीढैः कुसुमसलिलैः पूजनायां जिनेन्दोर्वृन्देऽलीनां स्फुरति परितो भाविनी काऽपि शोभा ।
भावार्हन्त्ये चिकुरनिचये वाञ्जनाभे सलीलम्, अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥६४॥ (–पाठान्तरम्)
संपूज्याऽऽरात्रिकरचनया विद्युतो **मौरुदेवं**[4], स्तोत्रैर्मन्द्रध्वनितजनितैश्चाभिनन्द्यात्मशुद्ध्यै ।
अभ्रैः स्त्रीणां विषमसरणौ श्रोणिभारालसानां, सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥ ६५ ॥
आस्थाय श्रीवृषभविभुना सोऽयम**ष्टापदाभः**, पूतस्तेनात्मनि जलभृते मानसत्वं विदध्याः ।
यास्तत्रार्हन्महन[5]विधये स्वर्वशाः[6] स्नान्ति नैव, क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भापयेस्ताः ॥ ६६ ॥
वर्षोत्कर्षैर्द्रुमसमुदये विद्रुमाभां वितन्वन्, मत्वा सिद्धस्थलमनुपदं नर्त्तयन् मोरसार्थान् ।
नित्यं **शत्रुञ्जय**मनुनयन्[7] वातलूनैः प्रसूनैर्नानाचेष्टैर्जलद ! ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६७ ॥

[अथ गच्छाधीशवासस्थानभूतश्रीदेवकपत्तनवर्णनम् –]

उद्यातोऽस्माद् गुरुयुगपदन्यासमानम्य सम्यग्, वार्धीवन्तःपुलिननिवसद् **द्वीपपुर्यामवेयाः** ।
प्रावृट्काले वहति निलयैर्या जलान्युद्गिरद् वो, मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६८ ॥
श्रेणीभूतापणविलुलितव्यक्तमुक्ताम्बुधाराः, कान्ताकान्तिस्फुरिततडितस्तोरणेन्द्रायुधाढ्याः ।
नित्यं नृत्यप्रहतमुरजस्निग्धगम्भीरनादाः, प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ ६९ ॥
भुक्त्वा सौख्यं चतुरवनितागात्रधाराग्रहस्त-स्पर्शैः पुष्पोपवनपवनश्लिष्टरम्भाः प्रपश्यन् ।
रोधः सिन्धोरनुभव मुदा यत्र योधा रमन्ते, प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ७० ॥
गर्जैरूर्जस्वलजलनिधेः क्षोभभावं प्रणेष्यन्, क्षेमावासं त्रिदशनगरं त्वं विशेस्तातपूतम् ।
द्यावाभूम्योः प्रमुदचरितं वक्ति साक्षाद् द्रुमेषु, सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ ७१ ॥
शास्तीत्येवं गुरुपरिचितं यत्पुरं दह्यमान-धूपव्यक्त्या चिकुरवलयैर्नृत्यकृत्केतुहस्तैः ।
लक्ष्मीवासाम्बुजमहममी षट्पदास्ते न यद्वा, वित्तेशानां न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ॥ ७२ ॥
दण्डश्चैत्ये कुसुमनिचये बन्धनं विप्रयोगो[8], दातुर्द्वारे चलकुटिलता सुभ्रुवोर्नान्यलोके ।
केशासक्त्या (?) ह्यगुरुदहनोद्भूतधूमस्य मन्ये, वित्तेशानां न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ॥ ७३ ॥
(–पाठान्तरम्)

---

१ तिर्यक्कृतस्वशरीरः । २ सिद्धाचलं शत्रुञ्जयापरपर्यायं जैनमहातीर्थम् । ३ भृङ्गव्यासो भ्रमरकृते आक्रमणे सति कुमुदः कुमुदस्येव तस्य सिद्धाचलस्येत्यर्थसंबन्धः । ४ मरुदेवाया अपत्यं ऋषभमित्यर्थः । ५ पूजार्थम् । ६ देवाङ्गनाः । ७ प्रसादयन् । ८ वियोगो ब्राह्मणयोगश्च ।

रात्रौ यस्यां कथमपि समानीय सञ्चारिकाभिर्वासावासं प्रणयिसविधे स्थापिता या नवोढा ।
तासां भोगादरिणि रमणे दीपमुद्दिश्य मुक्तो, ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणश्चूर्णमुष्टिः ॥ ७४ ॥
[1]लक्ष्म्याः स्थानं तदिति मतिमान् वर्धयत्यूर्मिहस्तैर्मुक्तायुक्तैः पुरपरिसरे स्वाङ्कमासार्य सिन्धुः ।
तत्सुप्रापैः कनकसिकताराशिगुप्तैः सखीभिः, संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या ॥ ७५ ॥
कामादेशाद् गमनसमयेऽलक्तकव्यक्तपाद-न्यासैर्वासैर्मसृणघुसृणालेपनैर्यत्र भित्तौ ।
मुक्तास्रग्भ्यो विलुलितकणैः कङ्कणैः शीर्णबन्धैर्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ७६ ॥
मुक्ताहारा इव वरभुवः सन्ति यस्यां वि[2]हाराः, शाटी पुर्याः कुवल[3]यदृशः श्रेयसी पुष्पवाटी ।
शालास्त्यागप्रकृतिकृतिभिर्निर्मिताः श्रीविशालाः, नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥ ७७ ॥
यैरासङ्गादिव जलनिधेः प्रापि रत्नाकरत्वं, सार्धं नित्यं मुनिगुरुगुणोद्गातृभिस्तेऽर्थितीर्थम् ।
श्रान्तं तारान्वितमिव दिवः खण्डमुद्दण्डपुष्पं, बद्धापानं बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥ ७८ ॥
राज्ञः सौधावलिषु तपनोत्सर्पणात् सूर्यकान्तैस्तप्तैरुष्मा य इह जनितो दुष्कलेस्तापरूपः ।
तं चैत्यस्थाः सपदि शरदश्चन्द्रपादानुवादाद्, व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७९ ॥
धन्यास्तेऽस्यां प्रतिदिनमहो श्रीगुरोर्वक्त्रपद्मात्, प्राप्तस्पन्दं प्रवचनरसं ये निपीयैव भव्याः ।
शृण्वत्युच्चैः पदरचनया गायनोद्गीतकीर्तिं, त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ८० ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनपरिचयी कं[4]चुकः पुष्पजालैः, पत्रैश्चित्रैर्भवति रसना पल्लवैः शेखरश्रीः ।
आम्रो भृङ्गावलिवलयितोऽस्मिन् युगे सातिरेकम्, एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ ८१ ॥
वातोद्भ्रान्तैः सलिलपृषतैः क्षोभयन्तो मृगाक्षीर्गातुं वृत्ता गुरुगुणपदं पुण्यलावण्यभाजः ।
साध्वीस्पर्शादिव कलुषितास्तोयदा यत्र जालैर्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ८२ ॥
कामोऽपि स्वं प्रगुणयति नो कार्मुकं पुष्परूपं, मौर्वीभङ्गादिव नववधूश्वासलोभादलीनाम् ।
यूनां चेतो व्यथननिपुणैः काक्षबाणैः सनाथैस्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ ८३ ॥
तस्यां वप्रः सुरगिरिगुरुः काञ्चनः काञ्चनाभां, तुङ्गैः शृङ्गैर्वहति तरणेरप्यनुल्लङ्घनीयः ।
यन्मूर्धस्थै रसिकपुरुषैः स्पृश्यते स्वर्गतोऽपि, हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ ८४ ॥
सिन्धोस्तत्रानुज इव लसद्वीचिवासास्तडाग, उद्यानान्तस्तरुणव[5]यसो दीर्घिकास्तस्य कान्ताः ।
तासां चञ्चन्नयननलिनैर्मोहिता मानसाम्भो, न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ ८५ ॥
बद्धोत्साहा गमनगहने वातवद् वाजिराजी, राज्ञः स्वर्णाभरणसुभगः सामजा[6]नां समूहः ।
यस्यां दानस्रवणनियतोदस्तहस्तः प्रशस्तः, प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ ८६ ॥
नव्यो भव्यैर्मरकतशिलानिर्मितोऽस्त्याश्रमोऽस्यां, गर्जद्गानानुगतमुरजः साधुनाथैः सनाथः ।
नित्यं व्याख्यापरिषदि वृतं तोरणैः काञ्चनीयैः, प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ ८७ ॥
(—पाठान्तरम्)

[अथ श्रीगच्छाधीशगुरुवर्णनम् —]

तत्रास्माकं विभुरभिनवैः पात्रवृन्दैः परीतः, स्फीतच्छायो वकुलमकुलं संनिधत्ते प्रतीकैः[7] ।
किन्त्वक्षुब्धो मनसि भगवांश्चारुनार्या विलासैः, काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥ ८८ ॥

१ स्वकीयकन्याया इत्यर्थः । २ जिनमन्दिराणि । ३ कुवलयदृशः स्त्रीरूपायाः पुर्याः पुष्पवाटी एव शाटीति संबन्धः । ४ पाठान्तरे "मञ्जरीहैमहारः" । ५ तरुणानि वयांसि पक्षिणो यत्र ताः, अन्यत्र यौवनावस्थाशालिन्यः । ६ हस्तिनाम् । ७ अङ्गैः ।

नम्रानेकक्षितिपतिशिरोमौलिरत्नैर्नखानां, संयोगेन प्रभुचरणयोर्जायते सा विभूषा ।
व्यक्तेर्बीजं नटनरुचितश्चन्द्रकाणां प्रचारैर्यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्भः ॥ ८९ ॥
नित्याह्लादैः श्रमणमणिभिस्तत्र सेव्यांह्रिपद्मस्तेजोराशिः प्रसमरयशा राजते सूरिसूर्यः ।
यद्दूरस्थो विदु[1]रं मघवाऽप्याप्नुते[2] तां न शोभां, सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ ९० ॥
गत्वा सूर्योदयनपुरतस्तत्र शोणाणुमूर्त्या, भंक्तिं चन्द्रोदयरचनया व्यञ्जयन्नस्य सूरेः ।
दर्शं दर्शं वदनमलसां मोदपूर्णां पुनीथाः, खद्योताली विलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ ९१ ॥
यस्य ब्रह्मव्रतमविरतं बिभ्रतश्चित्तवृत्तिं, शच्यास्तस्या अपि मधु[3]रता नेतुमीशा न मोहम् ।
पीनोरोजा सरसिजमुखी क्षाममध्याऽऽयताक्षी, या तत्र स्याद् युवतीविषये सृष्टिराद्यैव धातुः ॥ ९२ ॥
प्राप्तक्षोभा विजयिनि गुरौ **देवनाम्नीह** पूर्वं, मोहादीनामसमपरिषच्छङ्कया शङ्कल्पा ।
साम्राज्येऽस्य प्रशमपवनैर्वेपमानां भयात् तां, जातां मन्ये तुहिनमथितां[4] पद्मिनी वान्यरूपाम् ॥ ९३ ॥
स्वामिन्यस्मिन्नधिगतवति प्राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीं, कीर्तिक्षीरैर्जगति बहुलैः प्लावितं पङ्कजालम् ।
तस्या लेपादिव खलमुखं श्यामिका व्याप्तिदम्भादिन्दोर्दैन्यं त्वदनु सरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ ९४ ॥

[अत्रान्तरे गच्छपतिचरितं किंचिदुच्यते –]

जम्बूद्वीपे भरतवसुधामण्डनं **कच्छदेशो**, यत्राम्भोधिर्भुवमनुकलं पूजयत्येव रत्नैः ।
पृच्छन् पूता जननललनैः सूरिणा यैरमूनि, कच्चिद्भर्तुः[5] स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ ९५ ॥
चिन्तामण्याह्वयजिनयशो गातुकामेक्षुवाटे, शालेये वा जनयति भृशं गोपिका सिद्धमोहम् ।
वीणापाणिर्लयमुपगता तद्गुणैर्यत्र रागाद्, भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ ९६ ॥
आस्ते तस्मिन्नगरमुदितं श्री**मनोरम्य**नाम, योगे दूरादुपगतवतां यत्र सांयात्रिकाणाम् ।
लोको रात्रिं नयति लववत् तद्वधूस्तत्र देशे, तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्ती ॥ ९७ ॥
तत्र श्रेष्ठी **शिवगुण** इति प्रेयसी तस्य **भांणी**, तद्वेश्मोत्थैर्मणिभरकरैर्लोहिते व्योमभागे ।
प्रातर्भ्रान्त्या गमयति तमीं[6] कोककान्ताशुभोगैस्तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्ती ॥ ९८ ॥
सुप्तान्येद्युः कुसुमतलिने[7] श्रेष्ठिनः कामिनी सा, स्वप्ने सिंहं त्रिदशमहसापन्नसत्त्वा[8] ददर्श ।
हर्षोल्लासाद् विकचनयने किञ्चिदाकुञ्च्य निद्राम्, आकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ९९ ॥
प्रासौत्[9] सूनुं जयमिव शची द्यौरिवेन्दुं समग्रं, भर्तुस्तस्मादतिशयिरसाद् वल्लभत्वं गता सा ।
गायत्युच्चैर्हसति रमते मोदते स्वालिवर्गैः, प्रायेणैतेऽरमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ १०० ॥
स्फीतो बालः सुरतरुरिवानुक्रमाद् **वैरिसिंहे**त्याख्यां बिभ्रद् **विजयपदंतो**[10] **देवसूरेः** कदाचित् ।
वाक्यैर्बुध्वा प्रणयविवशां मातरं प्राह द्रान्तस्तामुन्निद्रामवनिशयनासन्नवातायनस्थः ॥ १०१ ॥
मातर्याचे विषयविरतस्त्वन्निदेशं व्रताय, मायाजालं विकृतिविरसं कस्य नोद्वेगहेतुः ।
स्त्री विक्षेप्तुं विरहविकृतां न प्रगल्भाऽपि शक्ता, गल्ला[11]भोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ १०२ ॥
श्रुत्वाऽकस्मादिति सुतवचो विद्युदापातकल्पं, मूर्च्छाऽतुच्छव्यथनकथनैः सङ्कुचद्विस्मिताक्षी ।
जाता माताऽवचनविषयाऽसह्यदुःखाभिघातात्, साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥ १०३ ॥

---

१ पण्डितेन्द्रः मद्रूप इति भावः । २ 'आप्नुते' एतत्स्थाने 'अश्नुते' इति भवेत् । आप्नोतिर्हि आत्मनेपदी न वर्तते । ३ सौन्दर्यम् । ४ 'शिशिरमथितां' इत्यपि पाठः । ५ हे रसिके ! भूः ! सूरिणा यैः जननललनैः त्वं पूता, भर्त्तुः अमूनि तानि जननललनानीत्यर्थः, त्वं कच्चित्स्मरसि ? हि यतः त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन् अम्भोधिः यत्र भुवं पूजयतीत्यर्थयोजना । ६ रात्रिम् । ७ पुष्पशय्यायाम् । ८ गर्भिणी । ९ प्रासौत् असूत. 'षु प्रसवैश्वर्ययोः' इत्यस्य लङि रूपम् । १० विजयदेवसूरेरित्यर्थः । ११ गल्लो नाम कण्ठप्रदेशः । 'गण्डाभोगात्' इति पाठान्तरम् ।

मातुर्दुःखोदयम[1]पदयं भावयित्वा कुमारो, वीरेत्याख्यामिव नियमयन् भाविनीं वर्धमानः ।
पित्रोः सत्त्वे व्रतपरिचयो नेत्ययं निश्चिकाय, प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ १०४ ॥
मातापित्रोर्दिवि परिगमे स स्वयं प्रात्तदीक्षश्चक्रे वक्रेतरमतिधृतिः सूरिराजा स्वशिष्यः ।
तस्य ज्ञानं चरणमरुणप्रौढतेजः स्तुमः किं, प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ १०५ ॥
पट्टे न्यस्तः स इह गुरुणा बन्दिरे गन्धपुर्यां, खैकाद्रीला (१७१०) शरदि समहं राध[2]सम्यग्दशम्याम् ।
लोकैस्तत्रानिमिषसमता...... नेत्रे यदेतन् मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ १०६ ॥
मत्वा गच्छे वरसरसि नः सोऽयमुद्भूत[3]पञ्चेऽ-मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ (-पाठान्तरम्)
सोऽयं स्वामी विजयपदतः श्रीप्रभेत्याह्वयैव, लक्ष्म्या वाण्या जयति निलयो दर्शनादस्य पूर्वम् ।
वार्त्तां वक्तुं कृतनरतनोर्दक्षिणस्ते शुभाय, यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ १०७ ॥
एतद्वृत्तं सुरशिखरिणस्तुङ्गशृङ्गेषु सिद्धैर्गीतं पीत्वा परमरसिका स्वर्जनानां वधूट्यः ।
रम्भाःस्तम्भाऽऽलयमुपगता भर्तृयोगे भजन्ति, सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ १०८ ॥
तेजःपुञ्जैर्दिनकरकरस्पर्द्धिभिर्दुर्निरीक्ष्यं, शान्तस्वान्तं तपनरपतिं प्राप्य नम्रीकृताङ्गः ।
अत्रोद्भूतां सुकृतसरसां किंवदन्तीं विदग्धो, वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ १०९ ॥

[गच्छाधीशाग्रे विज्ञापनीयोदन्तवर्णनम् –]

प्रादुर्भूते दिनमुखसुखे सौरतेजस्विधाऽपि, विश्वं व्याप्तं कथयति महीनाथ ! नान्दीविशेषः ।
कामक्रीडानिरतमिथुनान्युत्सृजंस्त्यक्तनिद्रं, मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ११० ॥
सभ्यास्थायामिह भगवतीपाठपूर्वोत्तराद्या-ध्यायव्याख्या भवति तदनु श्रीगुरोर्गीतवृत्तैः ।
गन्धर्वाली सुखयति जनं सोत्सवं श्रोत्रपेयैः, कान्तोदन्तः सुहृदुपहृतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ॥ १११ ॥
शिष्याध्यायोऽव्रतविरमणं तत्र †बापूर्दिदेश, कीर्त्यङ्कूरानिव रजतजद्वादशोद्यद्दशाङ्कान् ।
वात्सल्यानि प्रवरवसनैर्नामजापोऽर्हदादेः, पूर्वाभाष्यं सुरभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ११२ ॥
अर्हत्पूजाकुसुमरचनैर्नन्द्यमन्दोत्सवश्रीर्दानं पात्रेष्वभयसहितं भावना भावनाढ्यम् ।
पर्वण्येवं नवनवभवैर्वार्षिके कल्पपाठः, पूर्वाभाष्यं सुरभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ११३ ॥ (–पाठान्तरम्)
कर्त्तुं कश्चित् स्पृहयति पुनस्तीर्थयात्रां ससङ्घं, कश्चिद्वोढुं व्रतविधिभरं वोपधानानि काचित् ।
इत्थं सङ्घो गुरुगुरुलसद्भक्तिरद्यापि धर्मे, सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिनाऽवैरिणाऽरुद्धमार्गः ॥ ११४ ॥
एवं नित्योत्सवपरिचयैराश्रितोऽपि प्रकामं, मेघः शिष्यो गुरुपदयुगासेवया विप्रयुक्तः ।
सर्वं बाह्यं मनसि रसिको मन्यमानः सुनेतस्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ११५ ॥
पूर्णाचन्द्रस्तव मुखविभां भावयत्येष पूर्णां, तेजस्वित्वं स्पृशति तरणिर्धीरतां मेरुरद्रिः ।
अम्भोवाहः प्रवहति तथाऽन्योपकारप्रकारं, हन्तैकस्थं क्वचिदपि न तेऽमीरुँसादृश्यमस्ति ॥ ११६ ॥
तस्मादस्मादृशजनमनस्त्वन्निरीक्षामृतेन, दिष्ट्या पुष्टं क्वचिदपि रतिं नाप्नुते वस्तुगत्या ।
नामालम्बात् सहमहमहो वासराणि व्रजन्ति, दिक्संसक्तप्रविरलघनव्यस्तसूर्यातपानि ॥ ११७ ॥
राकाचन्द्रेऽभ्युदयिनि भवद्वक्त्रमारोप्य बुद्ध्या, ध्यानाधीनः क्षणमपि सुखं चेतसि स्थापयामि ।
अश्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे, क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥ ११८ ॥

---

१ निर्दयम् । २ वैशाखशुक्ल–। ३ अत्राक्षरद्वयं त्रुटितम् तच्च 'प्रापि' यद्वा 'नैषि' इत्येतदभिमार्थसंबन्धेन संघटेत । † 'भक्तां दिदेश' इति पाठान्तरम् । ४ पद्मा लक्ष्मीः, पद्मं कमलं च । ५ अनुकूलेन दैवेन प्रदत्तावसर इत्यर्थः । ६ स्वैरम् ।

वक्रार्थं ते समधित विधिः शारदेन्दोर्विभूषां, सारङ्गाक्ष्णोर्नयनविषये तद्द्वयोर्योग आसीत् ।
व्योमारण्ये तुहिनकपटादिन्दुकान्ताऽरुदत्तन् मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ११९ ॥
दासीभूतं प्रभुनवयशो ज्योतिषां पुण्डरीक-खण्डं मन्ये सरसि हसितं निर्मिमीते समीरान् ।
आमोदाढ्यान् वरुणककुभः पूर्वभागेऽभ्युपेतान्, पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्त्वेति ॥ १२० ॥
जाने दिग्भिः पवनचमरैर्वीज्यसे त्वं तदेताश्चन्द्रो ज्योत्स्नामलयजरसैरर्चयन् पश्चिमायाम् ।
नत्वेवैवं वदति भगवद्वन्दने वृत्तिभाजो, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ १२१ ॥
पृथ्वीपाथःपवनतरवश्चन्द्रसूर्यादिदेवास्त्वां सेवन्ते बहुरचनया दूरतोऽपि प्रशस्ताः ।
मत्सत्त्वं वा गगनशकलं दूयते केवलं यद्, गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ १२२ ॥
चेतोवाक्ये मम निगदतोऽन्योन्यमाश्वासनाय, ध्यानाधीनैः स्तवनकथनैर्नीयतां दिष्टमेवम् ।
पश्चात् साक्षात् सुभग ! भगवत्सङ्गमे सर्ववृत्तं, निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ १२३ ॥
धन्यंमन्यस्तदुषसि विभो ! स्यामहं विश्वविश्वे, यस्यां रात्रौ लयनिलयगः संलये त्वां निषेवे ।
तां निद्रामप्यतिशयमुदा संस्तुवे ध्यानमुद्रां, दृष्टः स्वप्नेऽकितव ! रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥ १२४ ॥
बालस्याऽनुक्षणकृतनतेर्मे स्वविज्ञप्तिरेषा, भाव्या स्वामिन् ! हृदयविषये संनिधेयो विधेयः ।
अर्याश्चर्यानुगतमनसो वर्त्तमाने यदर्थाद् इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ १२५ ॥
विज्ञप्यैवं प्रवचननृपं श्रीविनीताभिधानोपाध्यायेन्द्रैर्विपुलमतिभिः सेवितं तन्निवृत्तः ।
तत्प्रत्युक्तानुनमनमुखोदन्तवृन्दैर्ममापि, प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ १२६ ॥
एवं देव ! त्वयि विनिहितं कार्यमार्यं विचार्य, व्यक्तां शक्तिं सहृदयसुहृत् ! तावकीमत्र चार्थे ।
अङ्गीकारं द्रढयति तवाध्वानधाराप्रसारः, प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीक्षितार्थक्रियैव ॥ १२७ ॥
पूर्वं मोदात् तपनृपतिना मे स्वसेवाकुमारी, सौभाग्याढ्या प्रणयसरसोद्वाहिता तद्वियुक्तेः ।
तापं हृत्वा विचर जलदाभीष्टदेशान् यथेच्छं, मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ १२८ ॥
स्थित्वास्थायां मुनिपतिपुरोऽसौ निसृष्टार्थरूपी, दिव्यध्वानैर्जलधरवरो वाचिकं व्याचचक्षे ।
जातस्तस्मान्मुनिनरपतिः सप्रसादो विनेये, केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ १२९ ॥
प्रत्यागत्य प्रणयिहृदयाम्भोधरेणादरेणादिष्टां वार्त्तां गुरुगुरुतरानुग्रहव्यञ्जिनीं सः ।
श्रुत्वा ज्ञानाचरणचरणोद्धतभाग्यप्रतिष्ठान्, भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ १३० ॥

माघकाव्यं देवगुरोर्मेघदूतं प्रभप्रभोः ।
समस्यार्थं समस्यार्थं निर्ममे मेघपण्डितः ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमेघदूतसमस्यालेखः संपूर्णः ॥

*

१ अनुवन्दना । २ अर्थं समस्य संक्षिप्येति एतस्य पदस्यायमभिप्रेत्य यमकितं कविना ।

खरतरगच्छाचार्यश्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं० विजयवर्द्धनगणिप्रेषितं

[४] विज्ञप्तिपत्रम् ।

॥ श्रीजिनवाण्यै नमः ॥

*

[आदौ अर्हतादीनां नमस्काराः –]

†स्वस्ति श्रियालंकृत ईश्वरोऽव्ययः, सर्वज्ञ आनन्दमयः स्वयंभूः ।
श्रीमारुदेवो नतदेवदेव, ईहाप्तये स्तादनिशं जनानाम् ॥ १ ॥
श्येनाज्जिघांसोः प्रपलायमानं, पारापतं चाऽऽपततः पतंगम् ।
रक्ष्यं ररक्ष क्षमिता कृपात्मा, यः शान्तिरस्तु त्वरया स शान्त्यै ॥ २ ॥
यातृहासपरिहासभाषितैरस्मरः स्म परिणेतुमिच्छति ।
उग्रसेननृपपुत्रिकां सको, नेमिराशु कुरुतात् स नः श्रियम् ॥ ३ ॥
काष्ठे प्रदग्धे स्थितनागयुग्मं, यस्य प्रसत्तेर्हि सुरः सुरी च ।
ऐन्द्रं पदं प्राप्य सपद्यभूतां, पार्श्वः प्रभुर्वः स सुखं प्रदेयात् ॥ ४ ॥
यो जातमात्रोऽपि कनिष्ठयांह्रेर्धूत्वा सुराद्रिं व्यपनीतवांश्च ।
इन्द्रस्य सिस्नापयिषोः सुशंकां, श्रीवीरधीरो भवताच्छिवाय ॥ ५ ॥
पञ्चतीर्थी सुप्रपञ्चा तीर्थभूतेव भाति या । संसारतरणे सारा सा भृशं दिशतु श्रियम् ॥ ६ ॥
सभास्थितानां विचिकित्सतां नृणां, जिनस्य पृच्छां स्वमुखादकुर्वताम् ।
प्राबूबुधत् संशयमत्युदस्य, तान् **गौतमः** सोऽस्तु सनातिलब्ध्यै ॥ ७ ॥
श्रीवीरपट्टस्थितिजातधर्म्मा, सर्वज्ञसेवाभृशपुण्यकर्मा ।
कर्म्माष्टघातात्तविशुद्धशर्म्मा, श्रेयस्ततिं वः कुरुतात् **सुधर्मा** ॥ ८ ॥
मोक्ता हेम्नो नन्दनन्दप्रमाणकोटीनां यः श्रेष्ठिकोटीर इभ्यः ।
ज्ञानादीनां योऽवधिः श्रेयसां च, जंबूनामा स प्रदत्तां स्वसत्ताम् ॥ ९ ॥
प्राग्दुष्कर्मवशात् तुरुष्कतनयं चारुष्करं [1]संस्थितम्, ज्ञात्वा स्वीयमहे जनाकुलतते वादित्रनादाचिते ।
यः सन्मान्यजिजीवदाशु परया दुर्भेदया विद्यया, सोऽनेकान् बिरुदान् दधत् स्मरणतो धत्तां नृणां संपदम्[2] ॥१०॥
अरिहरिकरिमुख्यान् विद्युदुल्काग्निपातान्, अमरपुरुषजन्यान् विड्वरौघान् निवार्य ।
कुशलमिह करोति प्रेयसां भूस्पृशां च, स **जिनकुशलसूरिः** सूरिमुख्योऽस्तु सिद्ध्यै ॥ ११ ॥
पञ्चाप्येते साधवो मेरवो वा, स्वर्णाभासा वर्णतः स्थास्नवश्च ।
सेव्या भव्यैर्निर्झरैः पूरुषैश्च, जाग्रत्कीर्त्या स्फूर्तिमन्तो जयन्ति ॥ १२ ॥

---

† स्वस्तिश्रियालंकृतमीशमव्ययं सर्वज्ञमानन्दमयं जिनेशम् ।
श्रीमारुदेवं नतदेवदेवं मीहाप्तये प्राप्तसुखं च नौमि ॥' इति पाठान्तरम् ।

1 चातुष्पथं = चौक । 2 'श्रीजैनादिमदत्तसूरिरनघो धत्तां नृणां संपदम् ।' इति पाठान्तरम् ।

दिक्संख्यांस्तान् वैभवाद् दिक्पतींश्च, कर्मेभानां सूदने सिंहसिंहान् ।
हित्वा हित्वा वैमतं मानसे च, लेखं चेमं वार्षिकं प्रोल्लिखामि ॥ १३ ॥

[अथ देशवर्णनम् –]

आधारोऽग्र्यो ग्राहजीवादिकानां, नानारत्नोद्द्योतिरत्नाकरोऽस्ति ।
भाण्डाखण्डाडम्बरैर्मण्डितोऽब्धिर्यस्मिन् देशे चारुदेशे सुवेशे ॥ १४ ॥
चलत्तरङ्गायतवल्गुपाणिभिर्दिशन् महीजाय च यत्र वारिधिः ।
वरेण्यपण्यैर्भृतपोतपेटकं, विभाति मन्ये करदो निरन्तरम् ॥ १५ ॥
जगत्सुखास्था बहुसस्यसंपदः, अकालसंपक्त्रिमदत्रिमर्द्धयः ।
अकृष्टपच्याः खलु यत्र नीवृति, सदैव रोहन्तितरां रुहा इव ॥ १६ ॥
विमलविमलभूध्रः पापतापापहारी, गिरिरिह **गिरिनारः** सिद्धिसौख्यौघकारी ।
अजितभगवदासेवित्त**तारंगकं** च, जनपद इह यस्मिन् पावनी च त्रयीयम् ॥ १७ ॥
पुरं सेन्दिरं **बिंदरं सूरताख्यं**, श्रियाः स्तंभतीर्थं तथा **स्तंभतीर्थम्** ।
लसत् संमदाऽ**हम्मदावाद**संज्ञं, पुरस्य त्रयीव त्रयी यत्र वित्ता ॥ १८ ॥

[अथ यत्र पूज्याः स्थितास्तत्पुरवर्णनम् –]

पुरोपि त्रये नायको नायको यः, शुभं यत्र बाभाति मुक्ताकलापे ।
सदास्यानुभावाद् भवेन्नायको ना, समृद्ध्या सुवृद्ध्या च कीर्त्या सुकान्त्या ॥ १९ ॥
प्रासादानां शितिमणिमयाः सद्गवाक्षाश्च यत्र, चन्द्रास्याभी रुचिररुचिभिः सेव्यमाना नरीभिः ।
बोभूयन्ते हिमकरसुखाश्चन्द्रवन्तो दिवापि, तद्गुण्यानां भवति नियतं तद्गुणः संगमाद्धि ॥ २० ॥
सभ्येभ्यानां भृशतरलसच्छर्म्महर्म्याणि यत्र, चन्द्रज्योतिर्निचयधवलं व्याप्य खं संस्थितानि ।
भ्राजिष्णूनि प्रबलविलुलच्चन्द्रशालायुतानि, प्रांशुत्वेन स्विदिह विवदन्ते मिथस्तानि तेन ॥ २१ ॥
श्रियः कन्दरा सुन्दरा सुन्दरी च, सुदत्यच्छरूपा पिकालापरूपा ।
स्फुरद्भारतीकाऽकठोरप्रतीका, वरीवृत्यते निर्जरीवान्वगारम् ॥ २२ ॥
सकमलं कमलं मलहानिकृत्, सकमला कमलायतलोचना ।
निजगृहे जगृहे शुचितां जनस्त्रयमिदं पुरि यत्र च वर्तते ॥ २३ ॥
अविरलः सरलो विरलः पुनः, कलिकुठः प्रियको वरुणो जनः ।
शुचिरशोक उतास्ति पुरे वने, सुरतरुप्रतिमो जन इष्टदे ॥ २४ ॥
लसद्यौवनं यौवनं भाति यत्र, सदानं सदानन्दितस्वान्तवृत्ति ।
कणद्धंसकं हंसकण्ठेष्टशब्दं, रसाभाससाभासनं यस्य नित्यम् ॥ २५ ॥

[अथ तत्र वर्त्तमानानां पूज्यानां वर्णनम् –]

अधिवसति तमुच्चैर्द्रङ्गमुद्यत्सरङ्गमविरलमिलदाभा निर्जितस्वर्गलोकम् ।
गणपतिरिव कुर्वन् गौतमर्षिर्विहारं, स्वपरबहुलशास्त्रोदन्वतः पारदृश्वा ॥ २६ ॥
जनश्रुतिर्या भवदीप्सिता पुरा, श्रुता श्रुतिः सेवपदं यथा स्थिता ।
तूर्णं त्वयि प्रापुषि हि प्रभूणां, लोकोक्तिरेषा न मृषा कदाचित् ॥ २७ ॥
गुणाः समे सात्त्विकराजसादयो, बभूवुरुर्वीतलके वरा गुरौ ।
भवन्ति गुण्ये त्वयि ते गुणास्तथा, निदानयोग्यं भुवि कार्यमस्ति हि ॥ २८ ॥

गुणगुरुगुरुराजप्रत्नपट्टोदयाद्रौ, शिशुतरणिरिवोद्यत् पूर्वपुण्याधिकेन ।
भविककमलखण्डं बोधयन् दृष्टिदीप्त्या, भुवि **जिनसुखसूरिः** शोभते भाग्यशाली ॥ २९ ॥
विपुलतरयशोवर्द्धिष्णुभूष्णुप्रतापः, कुमतितिमिरभेदी सूक्ष्मतत्त्वार्थवेदी ।
शुचितरवरपादैः पावितेलातलश्च, मुनिजनततिमान्यः स्विष्टदाने वदान्यः ॥ ३० ॥ (–युग्मम् ।)
अध्यूषुषस्तव पदं विपदन्तकारि, राजन् पुरैव सुगुरोः प्रससार शिष्टिः ।
सद्बुद्धबोधनकरी ह्युदयाद्रिमेव, दीप्तिर्यथा प्रसरति द्युपतेः श्रितस्य ॥ ३१ ॥
मुनिता गुरुता विराजिता, वदने वाक्पटुता-सुमिष्टते ।
हृदयोक्तिशरीरशुद्धयो, व्यतिभाते भवतां परस्परम् ॥ ३२ ॥
इवैकशेषः सदृशां विशेषकैर्गुणैरनूनैर्बृहतश्च पूर्वजान् ।
बतातिशेषे त्वमहो विशेषवित्, सुदक्षिणानाहतलक्षणान् घनान् ॥ ३३ ॥
पठिता सद्विद्यानां सन्निधिरिव सन्निधौ मुनीशानाम् । श्री**धर्मवर्द्धनगणिः** सत्कविरिव भासते स्वभासा च ॥ ३४ ॥
मर्यादाया अविता सन्नेमिरिव प्रवर्तते नित्यम् । श्री**नेमिसुन्दर** इति ख्यातोऽभिख्यासमुल्लासात् ॥ ३५ ॥
सत्पाठकादिमुनयो नयशालिनश्च, पूज्यस्य पार्श्वपरिशीलनलब्धसौख्याः ।
सामीपिका इव शठेतरमाठराद्याः, सूर्यस्य सन्ति सुगुणप्रगुणा नितान्तम् ॥ ३६ ॥
तान् पूज्यान् सुरपूज्यमञ्जुलधियो धीरान् धराराजितान्, जाग्रद्भाग्यसहस्रभानुभृशभाशुष्कारिपङ्कोत्करान् ।
सद्बुद्ध्यध्यवसायबोधितलसद्द्रव्यास्तिकायादिकान्, नत्वाऽरं वरपाठकादिकमुनीन् नम्यानुनम्यांस्तथा ॥ ३७ ॥

*

[अथ साहिर्यत्र वसति तद्-अर्गलापुरवर्णनम् –]

द्विषामर्गलेवार्गलापूः सुदुर्गा, प्रवेशार्थमैन्द्र्या दिशो द्वारिवोच्चैः ।
सुगुर्व्याः शुभोर्व्या उरस्सूत्रिकेव, सवार्त्तं वरीवर्त्ति भर्तृप्रतापात् ॥ ३८ ॥
पुराऽकब्बरोऽवासयत् **पादसाहि**स्ततः स्वामिनाम्ना प्रसर्सर्त्ति रूढम् ।
धरायां धरासारशृङ्गारभूतं, व**राकबराबाद**संज्ञं बहुज्ञम् ॥ ३९ ॥
यत्पुरं धरणिमण्डनायितं, पुण्यपद्मशुभसद्मसुन्दरम् ।
सद्रसोदकझरौघयौवतं, द्यामपि प्रहसतीन्द्रभर्तृकाम् ॥ ४० ॥
यस्य दुर्गमरिदुर्ग्रहग्रहं, खातिकावलयितं समन्ततः ।
संकटाट्टघटनाविचेष्टितं, संहितास्मदृढसन्धिभूषितम् ॥ ४१ ॥
शस्त्रकोशधनधान्यसंचयं, हैमधामबहुधामदन्तुरम् ।
दुर्गपंक्तिमुकुटायितं परं, संचकास्ति यवनोच्चयैर्भृतम् ॥ ४२ ॥ –युग्मम् ।
यदभ्रंलिहाः सद्गृहाः सूपदेहा, विशालामलाश्चन्द्रशालायुताश्च ।
शुचो मोचनाः काञ्चनाश्चत्रदाशाः, सदा **पादसाहे**र्नरेन्द्रस्य सन्ति ॥ ४३ ॥
यत्पार्श्वे **यमुना**सनातिविमला देदीप्यतेऽहर्दिवं, सर्वेषां सुखकारि निर्मलतरं यज्जीवनं जीवनम् ।
या वेणीव भुवो नवायतता विश्वंभराया वरा, या मुक्तालतिकेव कृष्णगुणभासंमिश्रिता चोज्ज्वला ॥ ४४ ॥
पुन्नागाद्याः सफलफलदाः शाखिनोऽखण्डभासः, पम्फुल्यन्ते सुरभितदिशः पुष्पदाश्चानुवेलम् ।
यच्छ्रित्वा वै सुरतरुसमाः श्रीफलोदारसाराः, दीव्यच्छायाः सरलबहुलाः कानने पत्तने वा ॥ ४५ ॥

क्वचिच्चापणे पण्यते पुण्यपण्यं, क्वचिच्चास्तिकैः पण्यते साधु पुण्यम् ।
क्वचित् पूज्यतेऽर्हन् सभावं स्वशक्त्या, क्वचिद् भण्यते जैनमार्गः सदुक्त्या ॥ ४६ ॥
क्वचिद् वैष्णवैः सेव्यते विश्वनाथः, क्वचिद् गीयते सज्जनैर्गीतगाथः ।
क्वचिच्चालयो मन्यते चारुभार्गः, क्वचित् संकटो मानवै राजमार्गः ॥ ४७ ॥
क्वचिद् वाजिभिस्ताड्यते विट्सु लत्ता, क्वचिद्दन्तिनो बंभ्रमन्त्युच्चमत्ताः ।
क्वचित् सादिभिर्विध्यते धत्तधत्ता, क्वचिद्धस्तिकेष्वंकुशालिश्च दत्ता ॥ ४८ ॥
हरेः **पादसाहेः** सवासे प्रवासे, समं वाहिनीभिः ककुब्वाहिनीभिः ।
नरैः श्रीवरैः शश्वदप्रासमध्यः, समुद्रः समुद्रो यथा यः समास्ते ॥ ४९ ॥

[विज्ञप्तिपत्रप्रेषकगणिकृतं स्वकीयशिष्यादिनामनिदर्शनम् –]

तस्माद् द्रंगाद् वाचक**विजयादिमवर्द्धनो** गणिर्द्युमणिः । युष्मद्भक्त्यासक्तः शुभधिषणाधोरणीचुञ्चुः ॥ ५० ॥
विज्ञ-**ज्ञानात्तिलको** विनेय**लाभादिसुन्दरगणि**श्च । **महिमासुन्दरगणिको** रंगान्मूर्त्तिश्चतुर्थश्च ॥ ५१ ॥
ज्ञानादिमविजयश्च ह्येतत्संख्याकपरिकरान्वितः । सद्यो वेदयति वचो मार्त्तण्डप्रमितवन्दनकैः ॥ ५२ ॥

[पत्रप्रेषकगणेर्वासस्थानवर्णनम् –]

अर्हद्भक्तिव्यक्तवामाकटाक्षक्षीरक्षेपात् क्षेमवृक्षः समक्षम् ।
वर्वर्द्धीव स्पर्द्धयाऽत्रर्द्धिमांश्च, वर्वर्द्धेवं तत्र सत्रा समृद्ध्या ॥ ५३ ॥
शिष्टानां सच्छिष्टयुपष्टम्भतोऽहं, दुर्गे मार्गे गच्छदागाः समागाम् ।
सांगानेरान्नश्यतः पश्यतां च, नृणां भीतिं **यावनीं** चापनीय ॥ ५४ ॥
अत्रागतः कतिथसंघचयं समूह्य, शालास्थितांश्च पुर एव जनानपास्य ।
पौषाद्यपंचमदिने सुदिने परुत्के, वर्षेऽध्यवात्समतिहर्षभरं च शालाम् ॥ ५५ ॥
श्रद्धालवोऽत्र नगरे बहुशो वसन्ति, श्रद्धा लवा विषमकालजसंनियोगात् ।
आध्यात्मिकाः कतिपया **हरिगा**श्च केचित्, केचिच्च **ढुंढमतगाः** शठमूढचित्ताः ॥ ५६ ॥
भङ्गातरङ्गविकलाः कतिथा रतीहा, एतादृशा अपि मया सह वासयोगात् ।
ईषच्छुभाशयवशाः कथमप्यभूवन्, यत्नोच्छ्रितं दकमपि ह्यध एव याति ॥ ५७ ॥
एकाब्द ईदृशदिशा प्रसमाप्यते स्म, निर्देशतोऽत्र वसतो मम गृह्यकस्य ।
आज्ञास्थितः समयवित् प्रथितप्रतिज्ञ, आसेतरामहमिहैव च ऐषमेऽब्दे ॥ ५८ ॥
व्याख्यात्यु**पासकदशाः** पुर आस्तिकानां, पर्वागतेषु तिथिषु प्रग आगतानाम् ।
शिष्यांश्च शिक्षयति पाठयति क्रियासु, व्यापारयत्यपि धुरं गलिधार्मिकेषु ॥ ५९ ॥
वरेषु कृत्येषु च हेतुकर्तृतां, तथाऽपरेष्वर्थधरेषु सद्वचः ।
उपेयति भ्रष्टजनांश्च भूरिशो, निवारयत्युन्नतबुद्धिशुद्धिना ॥ ६० ॥

[समागतपर्वाधिराजपर्युषणावर्णना –]

इत्थंकारं तिष्ठति प्रीतितत्या, ह्यत्रोद्गच्छत्पूज्यपादप्रसत्तेः ।
अस्मिन् दिष्टे धर्मपर्वाधिराजो, रागादागाद् भूरिमेवागमश्च ॥ ६१ ॥
तस्मिन्निते परहिते द्वितयेऽपि नूनमत्युत्सुकाः पुनरसंकसुकास्तदिष्टेः ।
संपिप्रियुः प्रियतमेक्षणहृष्टचित्ता, भव्याशया भविजनाश्च कृषीवलाश्च ॥ ६२ ॥

तस्मिन् द्वयेऽभ्युपगतेऽधिकदानशौण्डा, ऊपुस्तरां विपुलवित्तमनेकमेके ।
अन्ये च धान्यनिचयं सुखसप्तसंख्ये, क्षेत्रे पवित्रविपुलोप्तिशुभे द्विहल्ये ॥ ६३ ॥
प्रानर्त्तिषुर्निन्युषि हंत तस्मिन्, श्राद्धा मयूरा उरुभाकलापाः ।
गीतैः स्वनैः श्रोत्रसुखाभिरामैः, धर्मध्वनद्दुन्दुभिवादनोन्मुखाः ॥ ६४ ॥
एतद् द्वयं जैनमतं नभश्च, जीवातुरूपं जगतः समस्य ।
समस्करोद् दानदकस्य धारया, भुवस्तलं वर्षदवर्षवर्जितम् ॥ ६५ ॥
प्रचण्डहुण्डाद्यवसर्पणी च, करालसर्पीव विसर्पति स्वयम् ।
तद्वर्त्तनामूर्च्छितपूरुषावली, रसप्रमाणारफणा विराजति ॥ ६६ ॥
तत्संपर्कादर्कतौरुष्कयोगात्, कार्पण्याब्धेरन्यनैपुण्यपण्यात् ।
दानादीनां छित्तिरत्रास्ति लोके, तत्राप्यत्राधिक्यतो दानहानिः ॥ ६७ ॥
जातेऽप्येवं गणरतिरसात् **संघसिंहः** स्वधाम्नि, ह्यस्तत्पार्श्वान्नियतपतितं पुस्तरत्नं प्रशस्तम् ।
जाग्राढि स्म प्रवरललना रात्रितो जागरां च, कुर्वन्ति स्मागुरुमलयजोद्भूतधूमं सुरूपम् ॥ ६८ ॥
उदीते पतङ्गे स्फुरद्दीप्तिचङ्गे, पुरे वाद्यमानेषु वाद्येषु सत्सु ।
तथा गीयमानेषु गीतेषु गाढं, भृशं चार्थिषु प्रार्थ्यमानेषु वित्तम् ॥ ६९ ॥
महाडम्बरं चाम्बरापातिशब्दं, सुसंघेन संघेन भासां व्यसर्जि ।
लसत्पुस्तकं न्यस्तशोभं प्रशस्तं, तथाऽऽनीय चास्मत् करे स्मेरवक्त्रम् ॥ ७० ॥ –युग्मम् ।
सदानन्दसख्याभिरस्माभिराशु, मुदा वाचनाभिर्व्यवाचि स्फुटं तत् ।
जनानां समक्षं स्फुरच्छुद्धकक्षं, सुमेर्वादिसाम्यस्य संघस्य शिष्टेः ॥ ७१ ॥
क्षरद्दानिनो मानिनो मत्तनागाः, पुरे सत्करा वारणाः संगराणाम् ।
इतीवात्र हेतोर्निषिद्धार्थदाना, जना आस्तिका व्यस्तचित्ता वसन्ति ॥ ७२ ॥
आकस्मिकोल्लासजभावभासात्, **डागाख्यवंशे रिषभाख्यनामा** ।
साधर्मिकौकःसु सुमोदकौ द्वौ, प्रादात्तमां सारमुपोषितेभ्यः ॥ ७३ ॥
प्राशीलि शीलं बहुभिः सुशीलैः, प्रातापि शुद्धं तप एव कैश्चित् ।
अभावि कैश्चित् सुगमा च भावना, धनं विनेदं त्रयमर्थकारि हि ॥ ७४ ॥
सर्वपर्वसु पराद्ध्र्यपर्वणः, सेवनं सुखदवस्तु साधनम् ।
ज्ञेयमित्थमपि नो व आशु तत्, ज्ञापनीयमखिलं ह्यनाविलम् † ॥ ७५ ॥
उद्गाढमाषाढकमा च भाद्रादस्मिंश्च वर्षे प्रववर्ष मेघः ।
ऊनं च पूर्णं सममेव तूर्णं, प्रापूरयन् पूरसुतुदिलापे(?) ॥ ७६ ॥
वृष्टे च तस्मिन् प्रलयादिवाते, झंझाझरन्निर्झरवारिघोरे ।
परःसहस्राश्च गृहा अजस्रं, नरस्वराकीर्णमहो अपप्तन् ॥ ७७ ॥
द्विभूममुख्येषु गृहेषु तेषु, पतत्स्विवापत्पतितेषु बाढम् ।
उच्चेषु नीचाऽपि विशालशाला, ध्वस्ता समस्ता च विहस्तसाधु ॥ ७८ ॥
धर्मानुभावादिव मन्दभावं, किंचिद्गतेऽग्रे त्वनदभ्रहर्षम् ।

† इतोऽग्रेतनानि पद्यानि प्रथमादर्शे नोपलब्धानि । पश्चादेतानि विरचितानि संभाव्यन्ते । प्रतिलिपिकर्तुर्दृष्टिदोषादज्ञानाद्वा अग्रेतनपद्येषु बहवः पाठदोषा दृश्यन्ते । ते च मूलादर्शाभावात् तादृशा एवात्र मुद्राङ्कणं प्रापिताः सन्ति ।

तस्मिन् स्वधाङ्ग्येव पुनर्व्यधाम, पर्वाधिराजं समजत् समाजम् ॥ ७९ ॥
गलीनिव स्पष्टवलीन् प्रणुद्य, समाऽसमान् श्राद्धजनान् समांश्च ।
विधाप्यते टिप्पनिका स्म शीघ्रं, मया स्थलार्थं शतरूपकाणाम् ॥ ८० ॥
मुंजेषीकतूलमिव तनुकुड्यमभूत् पुरा । एतर्हीड्य(?)तदेवोरुपकेष्टकचितं वचः ॥ ८१ ॥
संप्रधार्य्य मम श्राद्धैरुत्पलमालभारिभिः । कार्यते ही सदार्येषु, फलदा च प्रवर्त्तना ॥ ८२ ॥ –युग्मम् ।
माधवे माधवे पर्णयुग्मं पुरा हं सदा वः सदावर्जितेभ्यो मुदा ।
प्रादिषि प्रावृषि प्रोत्सुको मोरको, ज्ञायते तद्भवद्धस्तसान्न स्थितम् ॥ ८३ ॥
युष्मदीयं छदं छद्मना वर्जितम्, प्राजगामाद्भुतं भूयसा नेहसा ।
पट्टणोदन्तकज्ञापितं नोन्तिके, तीर्थयात्राप्रभृत्युत्पतत्प्रीतिकम् ॥ ८४ ॥
तत्पुरं संप्रति प्रक्रमाभावतो, दूरदेशाध्वतः साध्वसोद्धानतः ।
मानसाभासनाच्चात एतुं वयमर्यमाधिष्ठितामक्षमास्तां दिशम् ॥ ८५ ॥
अभिषिषेणयिषुर्नृपतित्रयी, यवननाथमभिप्रतिजग्मुषी ।
तुरगि(ग?)लक्ष्ययुता पृथुनर्मदानिकटरोधसि योद्धुमभीच्छति ॥ ८६ ॥
अवितथा वितथा अथ काश्चन, ननु जनश्रुतयः श्रुतिसौख्यदाः ।
नियतिनिम्नगता बत वर्त्तना, जिनपबोधवशा यत आयतौ ॥ ८७ ॥
उपपुरं सरसोऽत्र बृहद्वनात्, प्रतिदिनं खलु याति च पूरुषान् ।
प्रतिनियंत्र्य सुतर्जनसर्जनं, विटजपाटघटा झटिति च्छलात् ॥ ८८ ॥
प्रजयिराजकतर्जनसंजनाद्, भयमदोऽध्वनि नृंस्तु निषेधति ।
प्रमदिवेत इतो बत तद्भयाच्चिचलिषा न च बीकपुरं प्रति ॥ ८९ ॥
स्वकीयवस्तूच्चयरक्षणाय, पुरस्य चास्यैव निदेशवेशः ।
कार्यः सुतर्कैरिततर्कुकाणां, याच्ञा ह्यमोघा प्रभुषु प्रथिम्ना ॥ ९० ॥
युष्मदीयमपि पर्णयुग्मकमागतं परुदखेदमब्दके ।
लिङ्गिनीं भवदुदन्तलंघिनीं, लेखितं प्रतिवचो मुधैव तत् ॥ ९१ ॥
नायकस्य वचनं प्रमादिषु, चञ्चलेषु च विलुठ्यते हठात् ।
तत्तु वित्तसुमुखान् शिलीमुखान्, भ्रष्टलक्ष्यत इवाश्ववाङ्मुखान् ॥ ९२ ॥
सर्वस्य द्वे सुमति-कुमती वः सती बुद्धिरेव, वृद्धो यूनाप्युरुगुणधृतासन् गणो भूषितोऽलम् ।
एको गोत्रे यतिप सदयो गच्छभारं बिभर्षि, स्त्रीपुंवच्च प्रसरतिगणे लिङ्गिनी तद्विचित्रम् ॥ ९३ ॥
या साधूनां वितरणचये ह्यर्गलेवाग्रगैव, याऽटाटीति प्रतिकुटमटद् घट्टनाटा शुनीव ।
या स्वच्छन्दं बहु च रमते मोहनावेशयोगा, जैनाभासा वसति नगरे पण्यरामेव वामा ॥ ९४ ॥
पूज्येन्द्राय प्रथितमतये संघसंघाय साक्षात्, गुर्वी वाचा लघुनि वदने याऽब्रवीच्च द्विजिह्वा ।
काऽप्यस्माकं भवति च कथा यत्र ही वायुनेभा, उड्डीयन्ते भवति गणना तत्र का दंशकेषु ॥ ९५ ॥
कस्या व्रतिन्या अपि नैव देया, शिक्षिर्हि शिष्टैरिति लिख्यते स्म ।
संघेन युष्मद्वचनस्थितेन पूज्यैर्विधेयं वचनं तदेव ॥ ९६ ॥
विज्ञेषु विज्ञप्तिरियं मदीया श्रोत्रातिथीभूय करोतु वासम् ।
आर्या यतः सेवकलक्षणेद्दा अचिन्त्यकस्यैव(?) मदौचितीयं ॥ ९७ ॥

[अथ च पर्जन्यवच्छास्त्रस्य प्रवृत्तिरित्याश्रित्योच्यते –]

ऊनं च पूर्णं सममेव तूर्णं पर्जन्यवद्वर्षसि चेत् पदादि ।
तदा च पर्यन्यवदित्यतुच्छन्यायस्य वेत्ता खलु शब्दशास्त्रे ॥ ९८ ॥
सति गुणे गुणतागणना नहि गुणवतः स्फुटहानिरिहेक्ष्यते ।
गुणपरीक्षणमप्यथ नो सतां क्षतिरिति द्वितयस्य वितन्यते ॥ ९९ ॥
गणेशा गणेशा इव प्रस्फुरन्तु प्रविघ्नच्छिदो निघ्नयोगादविघ्नम् ।
मनोऽभीष्टदा मन्मनोमोदकानां भवन्तु प्रभावाधिकाः पूरकाश्च ॥ १०० ॥
अलालाटिका धाटिका पण्डितानां निराकारवश्चारवोऽभीरवश्च ।
धियो गर्द्धना धर्मतो वर्द्धनाद्या विभान्तूपकण्ठे सतां पाठका हि ॥ १०१ ॥
भवत्पूर्वजैर्गन्धहस्तित्वमुक्तं तदेव क्रमादागतं पूर्वजेषु ।
सदा भावयन्तोऽधुनाविःसभावं भवत्संनिधिप्राप्तशोभाविशेषात् ॥ १०२ ॥ युग्मम् ॥
पाठकाः सकलशास्त्रपाठकाः शब्दशास्त्रमुरुमध्यजीगपन् ।
ज्ञानतस्तिलकनामकं यकं पाणिनीयमतदर्पणार्पणम् ॥ १०३ ॥
नंनमीति सहितो विनेयकैः शेमुषीमुखरितः सको यतिः ।
वैभवेन जितभूरिनायकांस्तान् गुरून् गरिमभारभासुरान् ॥ १०४ ॥
साधवः सविधवर्त्तिनः परे श्रीजितां सुभगभाग्यशालिनाम् ।
तान् समानति···रोजनाङ्ककान् वन्दते शुभहृदा दिने दिने ॥ १०५ ॥
समस्तास्तिकाः श्रीमतां दर्शनोत्का, ददत्पुण्यवाहं भवत्पादजाहम् ।
मनो-वाक्-शरीरप्रशुद्ध्या सुबुद्ध्या घनानन्तम(?)हायभावानुरागाः ॥ १०६ ॥

पवित्रलेखपत्रकं मदीयमाप्तमाशु तत् । हितेन लेख्यपा(मा?)वहो अगाधबोधधीधनैः ॥ १०७ ॥
यदत्र लेखदूषणं त वेक्षतृमां तदादितः । विद्धि भामा श्रसश्यतो यथाहि करकरः खरम् (?) ॥ १०८ ॥

॥ इति श्रेयः ॥

***

खर० श्रीजिनचन्द्रसूरिं प्रति वाचक-राजविजयगणिप्रेषिता

[५] विज्ञप्तिका।

॥ श्रीः ॥

अल्प.................................... ।
........................परमेष्ठिनःस्तूयते ॥ १ ॥
करेइ भत्ताण सया जणाणं, ...नियर सुहाणं ।
पकिट्ठमाहप्पविलासजुत्तं, नमामि............रिंदपुत्तं ॥ २ ॥
दयानिवासा सुगुणप्पयासा, सुनिम्मला.........संतिनाहा ।
दिसंतु सिग्घं य समीहिअत्थं, सुदिट्ठि संघस्सुवरि प्पसत्थं ॥ ३ ॥
मणुन्नरूवं सययाणुकूलं, सुलोयणं राइमइं विहाय ।
गहीअपव्वज्जवओ सुहाइं, करेउ सो नेमितिलोयनाहो ॥ ४ ॥
समत्थलोयाण नियप्पभावं, महंतमिडं विसमे वि काले ।
सुहस्स दंसेइ गुरूणमित्थ, णुवेउ यो सो सिरिपाससामी ॥ ५ ॥
विसिट्ठसोहं जियमोहजोहं, पणट्ठकोहं सुविसुद्धबोहं ।
नुवामि वीरं अइमित्तधीरं, जिणंदवीरं भवपत्ततीरं ॥ ६ ॥
कल्पद्रुभूताय सदैव कल्पते, यस्याभिधानं प्रतिकल्पमुत्स्मृतम् ।
गच्छे स रत्नं जिनचन्द्रसद्गुरोः, श्रीगौतमः स्यात् स जयप्रवृद्धये ॥ ७ ॥
नो दुर्दशायाः स्वपनेऽपि दर्शनं, यस्य स्मृतेः स्यात् स्मरणं प्रकुर्वताम् ।
नृणां सकः श्रीजिनदत्तसंज्ञितः, श्रीजैनचन्द्रस्य तनोतु संपदः ॥ ८ ॥
श्रीगुरुः सुजिनकुशलः सेवकांगिविहितसुखः ।
अस्तु वः सपदि वरदः प्रस्फुरद्भुवनमहिमः ॥ ९ ॥ —हलमुखीवृत्तम् ।

*

[अथ सत्समाजश्रीमत्खरतरगच्छाधिराजांह्रिसरोजपवित्रितस्य नगरस्य वर्णनप्रक्रमो यथा —]

यत्रोत्तुङ्गधनाढ्यमन्दिरसुधाबद्धाङ्गणप्रोच्छलत्तेजोभिः सहसा तमिस्रनिवहे दूरीकृते सर्वतः ।
आक्रीडे कुमुदारविन्दकुसुमव्याकोशसंमीलनैर्यामिन्या दिवसस्य मानवकुलैश्चेक्रीय्यते निर्णयः ॥ १० ॥
श्राद्धस्तोमविधीयमानविलसद्धूपोत्थधूमव्रजव्याजेनाम्बुधरः प्रभातसमयव्याख्याक्षणेष्वादरात् ।
तद्ध्वानस्य शिशिक्षयेव सुगुरुं संसेवते प्रत्यहं, यस्मिंस्तीर्थकराभिरामसदनेष्वास्थानरोचिष्णुषु ॥ ११ ॥
भर्त्ताऽयं नु वृषाकपिर्मम पितू रत्नाकरस्याश्रयं, लोभान्नोज्झति तातसद्मनि सदा पुत्र्या परं प्रौढया ।
स्थेयं नेति च नीतितोऽत्र वसनं निर्गत्य युक्तं ततो, लक्ष्मीर्यत्र विधाय चोरुमनुषीरूपाणि वावस्यते ॥ १२ ॥
श्रीमच्छ्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरोः संविग्नचूडामणेर्यत्रांह्रीद्वितयाम्बुजाभिनमनात् प्रोद्भूतपुण्याम्बुधेः ।
अव्यावर्त्ति समृद्धिवृद्धिसुमनःपौरस्य ते तारका, राजन्तेऽनुपथि त्रिविष्टपसदां डिण्डीरपिण्डा इव ॥ १३ ॥

प्रेङ्खद्वीचिकशासदातिकदनैरातन्यमानां व्यथां, वारीशेन श्रियः परिग्रहविधे रत्नानि बुद्ध्वा स्फुटम् ।
आयातानि सुखाय जीवननिधिर्दौश्छ्यापणाशंकया, सूरात् सागरकच्छलेन समुपैद् यत्रातुनेत्रं सुखे ॥ १४ ॥
कुष्टं हट्टवसुंधरासु जडता कासारकेषु स्फुटा, सन्तापः कनकादिधातुषु महान् नाडिन्धमानां गृहे ।
चक्रेषु भ्रमसन्ततिः कररुहे च्छेदक्रिया पीडितं, कान्तानां कुचयोस्तु यत्र न कदा लोकेषु संभाव्यते ॥ १५ ॥
अन्येद्युष्कमुखा ज्वरा बहुविधाः प्राचीनवैद्यागमे, विद्यन्ते च पुराणशास्त्रविषये सप्तेतयो निष्ठुराः ।
संज्ञामात्रत एव कोशसमये रोगाश्च यक्ष्मादिका, एते यत्र परं न सन्ति मनुजे श्रीमद्गुरोरागमात् ॥ १६ ॥
भक्त्या युक्तविविक्तकृत्स्नजनताशश्वत्कृताभ्यर्चनात्, संतुष्टः कमलामलैकरमणौ यत्सर्वपौराधिपम् ।
चञ्चत्का वसुधाञ्चितक्षितिभुजो को वर्णयुग् दुर्गको यन्मुद्राखचिताग्रशासनदलव्याजाद्व्यधत्त क्षणात् ॥ १७ ॥
एतादृक् पुरमेव भूमिवलये ग्रामोऽपि नास्तीह च, लोका यस्य वसन्ति यत्र न सदा नानाकलापारगाः ।
देशास्तेऽपि न सन्ति यच्च बहुलं येषूद्भवं वस्तु नो, यत्रास्ते क इतस्ततो वसति यच्छ्रीजैनचन्द्रः स्वयम् ॥१८॥
स्वर्गिस्त्रीवररूपमानपिशुनप्रौढाढ्यवामभ्रुवां, गात्रस्थाद्भुतचन्दनद्रवभरामोदादराकर्षणात् ।
यत्रोत्तुङ्गगवाक्षदीर्घवसनैर्वातोऽपि संताड्यते, चौर्यं मानुषकर्तृकं कुत इतो नूनं भवेत् कर्हिचित् ॥ १९ ॥
श्रीमन्नाभिनरेन्द्रसूनुरुचिरप्रासादशृङ्गस्थिताच्चाक्षुष्याद् विमलाद् विशालकलशादादाय जाग्रच्छवैः ।
आकण्ठं तु तदा तदा कलकलायुक्तो भवेच्छीतरुक्, पीयूषानि यदा यदा हि पिबति स्वादूनि यत्रोच्चकैः ॥ २० ॥
यस्मिंल्लुब्धमनाः सुपर्वनिकरो हर्षात् स्वकीयां स्थितिं, सम्राट्श्री**अवरंगसाह**कृततत्स्थानच्युतिच्छद्मना ।
अन्तर्वेदिवसुन्धरास्थितवरप्रासादवासी ध्रुवं, पुण्यान्यर्जयितुं मनीषितकरे **हेमाद्रि**तीर्थे गतः ॥ २१ ॥
तारामण्डलसर्वगर्वहरणस्थास्नूरुकीर्त्तिक्रमहर्म्यालीशिखराग्रकोटिमहसा भिन्ना वियन्निम्नगा ।
यत्रानेककवर्णचित्रितलसद्धामध्वजानां छलादुद्दण्डैः शतशः प्रवाहनिवहै रुद्धेव संशोभते ॥ २२ ॥
स्वस्वाचारविचारसारविहितोद्योगप्रपञ्चाः सदा, चत्वारः खलु यत्र सुन्दरगुणा वर्णा द्विजन्मादिकाः ।
श्रीमच्छ्री**जिनचन्द्रसूरि**सुगुरोर्वक्त्रस्य पत्पद्मयोर्वीक्षाभिर्नमनैश्च जन्म सफलीकुर्वन्ति मानुष्यकम् ॥ २३ ॥
यत्र श्री**जिनचन्द्रसूरि**गुणभृच्चार्वागमेन क्षणाद्धान्येलातलपूर्तिकृत् सलिलमुक् कृत्वा गरिष्ठां घटाम् ।
प्रावर्षत् सततात्युदारमनसः श्राद्धाः विशुद्धान्वया, वृष्टिं वार्षिकपुष्कलां हतविधेस्तत्स्पर्द्धयेव व्यधुः ॥ २४ ॥
क्वापि श्री**जिनचन्द्रसूरि**सुगुरोः श्लाघां नरः कुर्वते, केचिद् यत्र चतुष्पथे च सुपरीक्षन्ते वसूनि क्वचित् ।
सज्जन्ते प्रतिवन्दनाय भगवद्बिम्बं क्वचिच्छ्राविका, विद्वांसोऽभिवितन्वतेऽतिकठिना युक्तीः क्वचित्तार्किकीः ॥२५॥
यत्र श्रीम**दनूपसिंह**वसुधानाथस्य नष्टद्विषो, वात्यावेगसमीकृतस्वकजवास्तुङ्गा अनेके हयाः ।
नीचैः पातयितुं द्रुतं च नभसो वाहान् ग्रहाणां पतेरभ्यासं सुखलूरिकासु सततं कुर्वन्ति तीक्ष्णैः खुरैः ॥ २६ ॥
यत्र श्रीम**दनूपसिंह**मनुजेशास्थासमीपाङ्गणे, हेलोत्पाटितशत्रुवर्गनगरद्वारारराणां पटुः ।
तिष्ठन्ती करिणां घटाऽतिशयतो विभ्राजते बन्धुरे, पीताम्भाः सरितां पतेः प्रियतटे जीमूतमालेव सा ॥ २७ ॥
यत्र श्रीम**दनूपसिंह**नृपतेः स्फूर्जत्प्रतापोर्मिभिस्तप्तः साधुजनावनैरपि बहु स्पर्द्धानुबन्धोद्गमात् ।
उष्माणं च विनेतुमुद्धतमिमं तज्जं निजं प्रत्यहं, संधत्ते प्रतिबिम्बमुष्णकिरणः कासारवार्ष्वात्मनः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वाऽन्तःकरणप्रमोदकरणीं शोभामनान्यत्रिकीं, प्रारभ्यावसनक्षणादपि सुरा आत्यन्तिकीं सर्वदा ।
पश्यन्तस्त्वनिमेषलोचनतिकां ये यस्य याताः समे, नो अद्यापि परित्यजन्ति किल ते हृद्यं स्वभावं स्वकम् ॥२९॥
द्वेष्योजोह**दनूपसिंह**जगतीसुत्रामदोःपालिते, दौःस्थ्यच्छिन्**मरुभूमि**मण्डलसराट् पुण्ड्रायमाणे सुखे ।
दासीभूतसुधाभुजीशनगरे श्रेयोनिवासालये, **वीकानेरपुरे** सुमङ्गलधरे तस्मिन् महाश्रीमति ॥ ३० ॥

[—एकविंशत्या विशेषकम् । इति श्रीवीकानेरवर्णनम् ।]

*

अथ श्रीमज्जिनशासनभूषणायमानममानमहिमानं श्रीजिनचन्द्रस्वामिनमुपतिष्ठामहे तत्र तावद् द्वाभ्यां चित्ररचनाभ्याम्–

स्तवीमि वीतामयमीशितारं, हिरण्यरम्याङ्गरुचं प्रगल्भम् ।
जिनादिचन्द्रं सदयं जयस्याश्रयं महन्तं सुखसारवारम् ॥ ३१ ॥
रसेस(श?)मान्यं रुचिरस्वभावं, गुणज्ञमुख्यं विधृतार्यपक्षम् ।
रतीशरूपं गुरुभागधेयं, नितान्तसम्बोधितलोकलक्षम् ॥ ३२ ॥
कलाकलापैर्युत उन्नतश्रीकरीन्द्रदेश्यो यत रागभीमः ।
कषायमुक्तः सुभगो गताजिः, कपाटवक्षाः स्थितधीप्रधानः ॥ ३३ ॥
कवीन्द्रवर्ण्यां प्रदधच्च वाचं, कलिप्रभावक्षयकृद् वितन्द्रः ।
कदाग्रहस्तद्वहुसुप्रियासुः, कलंकहीनो जयताज्जितारिः ॥ ३४ ॥
सकललोकनतक्रमणाम्बुजं, सबलसूचकजर्णमतङ्गजम् ।
विकचवारिजपल्लवलोचनं, विनचणं भृशसक्तसज्जनम् ॥ ३५ ॥

॥ इति सिंहासनचित्रीयाणि वृत्तानीमानि ॥

*

गीर्वाणाचलनिस्तुलामललसच्छृङ्गान्तरालस्थित-प्रफुल्लोत्पलसंगताविरलरोलम्बावलीवानिशम् ।
केशाङ्कुरततिर्विराङ्गशयिता विभ्राजते निर्भरं, स्निग्धाकर्कशतादिसद्गुणमयी येषां स्फुरज्ज्योतिषाम् ॥ ३६ ॥
आयामारुणतातिमार्दवगुणैर्दग्भ्यां जितानि क्षणात्, सौम्यासौम्यतया यथोचितविधानाकुर्वतीभ्यां सदा ।
पद्मान्यत्र महीतलीयसलिलस्थानेषु तत्संपदां, प्राप्तुं तापसपेटकानिव पदं येषां तपस्यन्ति तु ॥ ३७ ॥
आगत्य द्विजराजमण्डलतटात् प्रारभ्य यद्वासरात्, लावण्यप्रकरः प्रियंकरतरश्चान्द्रोऽस्थिधन्वाश्रयात् ।
श्रेष्ठे भालतले विशिष्टविदुषां येषां निवासं मुदा, चक्रे तद्दिवसात् कलंकिततनुर्जातस्तुषारद्युतिः ॥ ३८ ॥
येषां सद्गुरुहस्तिनां श्रुतिपुटौ संराजतस्संततं, धात्रा स्थापयितुं सुनिर्मलविभौ कूपाविवोत्पादितौ ।
लावण्याग्ररसौ समस्तजगतीलोकातिशोभाकरौ, पालीजातकचांकुरौ धृतरुची संश्लिष्टनेत्राम्बुजौ ॥ ३९ ॥
श्रीमत्**खारतरा**ग्रगच्छजगतीस्वर्णाचलश्रीजुषां, येषां घ्राणपुटेन कान्तिपटलैस्तैक्ष्ण्यादिभिर्वा गुणैः ।
दीपोऽद्यापि पराजितस्तलिनरुक् मूर्ध्नि स्वकीये सदा, व्याजात् कज्जलसंहतेः स्फुटतरं धत्ते निजं दुर्यशः ॥ ४० ॥
राजीभ्यां सुदतां विनोदविजिता येषां समानां सतां, स्निग्धानां वरकुन्दकोरकरुचामत्यर्थवृत्तात्मनाम् ।
गुप्तीभूय गभीरभूरिसलिले तिष्ठन्ति शुक्तेः पुटे, मुक्ताश्चापि वराटकाः क्षितितले गत्वा पुनर्दूसराः ॥ ४१ ॥
संकीर्त्योऽप्रमितप्रमेयमहसः सद्वाङ्मयालंकृतीः, दुःप्रापाशुभदिष्टभावरहितैर्विन्यस्तमत्यादरात् ।
लोकेशः कृतवान् स्वकीयदुहितुर्विस्तीर्ण्णं एषो गिरो, येषां प्रौढमनीषिणां किमु महान् वक्षःस्थलात् संपुटः ॥४२॥
येषां कान्तिमति स्वभावमधुरे काये सकायेऽखिले, रोमाणि प्रकटानि पण्डितगणश्लाघ्यानि सर्वाण्यपि ।
दैवेन प्रभुणा जयन्ति सततं मन्त्राक्षराणामिव, श्रेण्यः संलिखिताः करेण विभुतासंपादकानामिमाः ॥ ४३ ॥
आजन्मक्षणसर्वनिर्गतरुजो येषां प्रतीकस्तनोर्नाभ्याद्या निखिला अदूषिततराः सल्लक्षणैरञ्चिताः ।
अन्येषामुपमानतामुपगताः पुंसां स्मरस्पर्धिनामङ्गानाममुतोऽधिकोऽपि भुवने कश्चित् स्तवो विद्यते ॥ ४४ ॥
त्यक्त्वाऽनादिविरोधभावमखिलं सर्वाग्रवेगेन यान्, प्राज्यानन्यवरेण्यपुण्यकलिकासन्तानधूतांहसः ।
सद्विद्याकमले मनीषिजनताप्रोत्साहसंवर्द्धिके, चित्तैकाग्रतया सनाभिभजतो भाग्योदयारञ्जिते ॥ ४५ ॥
तिग्मातीशुतुरङ्गमंजिममदप्रध्वंसदक्षात्मनां, वाहानामुपविश्य लक्षणयुतस्कन्धस्थले भूस्पृशाम् ।
एतानां विविधैर्भृता वसुमती पूर्भ्यो यकान् वन्दितुं, बह्वीभ्यो भविता हतेति मम किं सर्वंसहाख्यास्थितेः ॥४६॥

क्षीराम्भोनिधिफेनपिण्डधवलैः स्फूर्जद्यशोराशिभिर्नानालोकजिनोक्तधर्मपदवीसंप्रापणप्रोद्भवैः ।
भूमीविष्टपमण्डलं सुविपुलं व्यासीकृतं सर्वतो, येषां नीतिमतां पदार्थपटलं सत्त्वादिधर्मैरिव ॥ ४७ ॥
लोकालोकनभस्तलं यदि भवेल्लंघ्यं नृणामंह्रिभिः, प्रालेयाचलशृङ्गगर्भशिशिराः सूर्यांशवः स्युर्यदि ।
कल्याणाद्रिरिव स्थिरोऽतिपवनः सर्वत्र च स्याद्यदि, स्युर्ये श्री**जिनचन्द्र**सूरिविभवस्पर्शास्तदा दूषणैः ॥ ४८ ॥
येषां पुण्यवतां विशालभुजयोः स्थाम्नूंश्च शक्त्यङ्कुरान्, पुष्टस्पष्टविपक्षपक्षकलशोद्भेदोरुयष्ट्यर्चयोः ।
दर्शं दर्शमिमानशेषविषयांस्त्यक्त्वाऽतिगूढात्मना, प्रत्यन्तेषु गतोऽपि पातक[क]टस्नसंस्तु संतिष्ठते ॥ ४९ ॥
चन्द्रे शीतगुणो यथा दिनमणेरुष्णात्मको मण्डले, नित्योऽयं तु गुणो यथा धवलिमा हंसे गुणो विश्रुतः ।
पानीये मधुरो यथा क्षितिपुटे सर्वसहत्वं यथा, येष्वास्ते प्रभुषु स्फुटं किल तथा धैर्याभिधानो गुणः ॥ ५० ॥
यावज्जैनमतं मतं मतिमतां यावद्दिशश्चार्णवाः, यावल्लोककला च भानुशशिनौ यावद्वियन्मण्डलम् ।
यावद्वेदकथा गतिश्च मरुतो द्रव्याणि यावत् क्षितिर्जीयासुर्**जिनचन्द्रसूरि**गुरवस्तावच्चिरं ते नयाः ॥ ५१ ॥
(–षोडशभिर्वृत्तैः संबन्धः ।)

दाशार्हाग्रज इन्द्र उष्णकिरणः सप्ताश्वकश्चन्द्रमा, अत्रेर्नेत्रमलोद्भवः किल मरुद्वृक्षः सुराधिष्ठितः ।
वारीशो मकराकरो जलधरो धूमादिजो गीयत, इत्येवं सकलोऽपि वस्तुनिचयो दोषाश्रये(यो) विष्टपे ॥ ५२ ॥
तत्केनोपमिमीय भारति ! वद श्री**जैनचन्द्र**प्रभुं, पृष्टेति प्रवरा सती भगवती कृत्वा प्रसादं घनम् ।
प्रत्यब्रूत मयि प्रसन्नमनसा मां वाक्यमित्येव साऽनन्यौपम्यमिमं विभुस्त हि (?) चिरं सार्वप्रतिच्छायतः ॥५३॥
–युग्मम् ।

अप्राज्ञा अपि ते भवेयुरचिरात् प्राज्ञप्रभाभ्यन्विता, आजन्मावधि दुर्गता अपि जनाः संस्थास्तु लक्ष्मीजुषः ।
दुर्भागा अपि ते सदाऽपि सुभगा ये वीक्षिता स्वामिभिर्यैस्ते सौम्यदृशा नृपाश्चितपदास्तत्त्वं तु नस्सम्मदम् ॥५४॥
ते धन्या भुवने त एव गुणिनो वन्द्याः सतां ते सदा, तेऽभिज्ञास्त एव चोत्तमनृणां दृष्टान्तरूपा दृढम् ।
ते प्रोत्तीर्णविपत्तिवारिनिधयस्ते पुण्यभाजो जना, ये पश्यन्ति जगद्गुरोरनुदिनं वक्त्रं गृहं तेजसाम् ॥ ५५ ॥
धात्रीभृत्सु महान् सुमेरुरचलः शस्त्रेषु वज्रं यथा, तार्क्ष्यः पक्षिषु गोषु कामसुरभी रत्नेषु चिन्तामणिः ।
कल्पद्रुर्द्रुषु नन्दनं वनगणेष्वैरावतो हस्तिषु, जम्भारिस्त्रिदशेषु सूरिषु तथा श्री**जैनचन्द्रो** महान् ॥ ५६ ॥

*

अथ भूयोऽपि स्वामिपरिवारस्तवनद्वारेण तानेव स्तुमः–

वरपाठका हि वसुधाधिभुवां, हृदयानुरञ्जकतरैः स्वगुणैः ।
प्रसरद्यशःसमुदयाः सविधे सुगुरोर्विभान्तु **सुमतेर्विजयाः** ॥ ५७ ॥
अध्यापकाः श्री**सुमतीति सिन्धुरा**, अद्वैतवैदुष्यनिसर्गबन्धुराः ।
राजन्तु नम्रीकृतवादिकन्धरा, गुर्वह्रिमूले प्रतिघस्रकन्धराः ॥ ५८ ॥
वाग्मिव्रजो यैर्दृढयुक्तयुक्तिभिर्नीचैः कृतः सद्य उदीतबुद्धयः ।
श्री**पुण्यहर्षा** गणयः सुपाठकाः, श्रीमद्गुरोस्ते सुरजन्तु मानसम् ॥ ५९ ॥
खारातराख्यस्य गणस्य भूयसः, संप्राप्य राज्यं गुरुतामुपेयिवत् ।
यं मन्त्रिणं श्रीयुजमीशवत्सलं **भावप्रमोदो** जयतात् स कोविदः ॥ ६० ॥
सार्वोक्तसिद्धान्तरहस्यवासनासंवासितोदग्रमतिप्रसारणः ।
रूपादिहर्षेत्यभिधानवाचको, भूयात् प्रसादस्य गुरोः सुभाजनम् ॥ ६१ ॥

आत्मीयगीरञ्जितपूज्यमानसः, तीर्थान्तरीयोत्कटभानमानसः ।
अस्तु **क्षमालाभगणिः** प्रमोदभाक्, श्री**जैनचन्द्र**स्य गरिष्ठपर्षदि ॥ ६२ ॥
इत्यादिकानां प्रयतीकृतात्मनां, मध्ये मुनीनां मृगराजविष्टरे ।
ये संस्थिता भान्ति सुधाकरा इव, पूर्वाचलेऽदो लिखति प्रणम्य तान् ॥ ६३ ॥

विज्ञप्तिपत्रप्रेषकगणेः स्वकीयवासस्थानादिवर्णनम् ।

अनुल्लंघितमर्यादा वसुराशिसमंचिताः । तिष्ठन्ति श्रावका यत्र ससुखं सागरा इव ॥ ६४ ॥
महाराजमताख्याताः संप्राप्ताखिलसंपदः । शोभन्ते श्रेष्ठिनो यत्र धनदावोचितक्रियाः ॥ ६५ ॥
समागमनमिच्छन्ति वर्षास्विव पयोमुचाम् । श्रीजुषां भवतां यत्र दर्शनं निखिला जनाः ॥ ६६ ॥
स्तुवन्ति च तन्नगरं यद्गुरुभिरधिष्ठितम् । सभासु मिलिताः सर्वे श्रावका यत्र सादराः ॥ ६७ ॥
अनेकागमविद्यासु विद्यते वर्णसंकरः । कदाप्यस्ति नरव्यक्तौ यत्र नो वर्णसंकरः ॥ ६८ ॥
नवाबाबदखानस्य विपक्षिस्खलितौजसः । परदेशं यतो भीतिं प्रतापो गमयत् स्वयम् ॥ ६९ ॥
श्रीमद्भट्टारकप्रौढशासनाश्रयणकारणात् । संप्राप्तविजयो धीमान् श्री**राजविजयो** गणिः ॥ ७० ॥
श्रीमन्**मालवरद्रंगा**दमन्दानन्दकारकात् । कृतानेकजनावासात् तस्मान्नीतिमतः सुखात् ॥ ७१ ॥
वाचक**रङ्गपद्मे**ण विनयैश्च परिवृतः । आचारस्थापितप्रज्ञैर्गुर्वादेशानुगामिभिः ॥ ७२ ॥
तथा चात्र चतुर्मास्यां तस्थुषां भवदाज्ञया । वाचयतां **षष्ठाङ्गं** प्रभाते श्राद्धसंसदि ॥ ७३ ॥
वारयतां स्वकर्मभ्यः समस्तवस्त्ररंजकान् । मासद्वयं स्थितिं यावत् पुराधीशप्रसादनात् ॥ ७४ ॥
सप्तदशविधाः पूजा जिनसद्मसु पश्यताम् । इत्यादिविधिना सन्ति धर्मकर्माणि कुर्वताम् ॥ ७५ ॥
श्राम्यतः सर्वदेशेषु स्वाज्ञा दृढयितुं प्रभोः । जिनधर्म्ममहीभर्तुः सदष्टाह्निकमंत्रिणः ॥ ७६ ॥
अमुत्रागमनात् पूर्वमस्माकमपि दर्शनम् । श्रावकाणां च प्रत्यक्षमभूत् पातकभर्त्सनम् ॥ ७७ ॥
तदोभौ **जीवराजोरुदीपचंद्रौ** सहोदपौ(रौ) । तेषु संधामकुर्वीतां तदीयागमनोत्सवे ॥ ७८ ॥
तावत्तत्र चतुर्दश्या दीपोत्सवक्षणे गृहे । अनयतां घनैर्युक्ते कल्पसूत्रं महामहैः ॥ ७९ ॥
ततः सिंहासने वृद्ध उच्चैरास्थाय साधु तत् । सधवस्त्रीमुखाम्भोजसंभवैर्गीतनिस्वनैः ॥ ८० ॥
सर्वनागरलोकोत्थहृदयोत्साहवर्द्धकम् । अनुष्ठाप्य च सद्भावादुदारं रात्रिजागरम् ॥ ८१ ॥ – युग्मम् ।
एतत्क्षेत्रातिथिभूते सहस्ररश्मिमण्डले । मिलिताबालगोपालं गीततानपुरःसरम् ॥ ८२ ॥
कुङ्कुमाग्रछटाभ्यक्तधनीशकायमण्डनम् । नदन्नशेषवादित्रं लीलालसितकेतनम् ॥ ८३ ॥
श्रीमत्सदरसाहोग्रहेषमानतुरङ्गमम् । अनेन विधिनोत्साहं रचयतोः प्रयत्नतः (?) ॥ ८४ ॥
श्रीमद**नूपराज**स्य स्कंध आरुह्य हस्तिनः । सूत्रप्राभृतसंयुक्तस्थालान्वितकरद्वयः ॥ ८५ ॥
अमूढोऽनूढसद्बालस्तयोस्तस्याक्षिगोचरम् । अस्मद्धस्तार्पणद्वारा कृतवान् सूत्रप्राभृतम् ॥ ८६ ॥
(– पंचभिः संबन्धः ।)

श्रावकाग्रे ततोऽस्माभिः संपर्यैक्षि तदद्भुतम् । वाचनाभिः सदानाभिर्नवभिर्वाचनोपधे ॥ ८७ ॥
उपप्रदा विधिः कश्चिदथो तदनुयायिनाम् । अत्रत्योऽपि विशेषेण प्रभूणां विनिवेद्यते ॥ ८८ ॥
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां व्रतधारिणाम् । **धारादे**श्राद्धयानल्पैः सुभक्तिर्मोदकैः कृता ॥ ८९ ॥
भाद्रादिमचतुर्दश्यौपवासकविधायिनाम् । सदकरोज्जनान् सर्वान् श्रीफलैः श्राद्ध**खीमसी** ॥ ९० ॥
बीकपुरनिवासेन **नयनात् सिंह**मंत्रिणा । सन्मानितास्तथा तैश्च सांवत्सरोपवासिनः ॥ ९१ ॥

उपवासविधायिभ्यो वार्षिकोत्तमपर्वणः । श्रीफलान्यददातां च पुस्तकोत्सवकारिणौ ॥ ९२ ॥
सांवत्सरोपवासिन्यो मानिताः सर्वश्राविकाः । ताम्रनाणकयुग्मैश्च **मारवणीति** श्राद्धया ॥ ९३ ॥
तद्वध्वाऽपि च तैरेव समस्तास्तास्तथा कृताः । श्राविकाभ्यामदीयातां ताभ्यो द्वौ द्वौ सु मोदकौ ॥ ९४ ॥
ऊर्जोज्वलचतुर्दश्याः पोषधव्रतधारिणाम् । **धारादे**श्राद्धया दत्तं खंडं सेरप्रमाणकम् ॥ ९५ ॥
शीलितं बहुभिः शीलं तपस्तसं च भूरिभिः । तत्रापि च विशेषोऽयमुदारस्तस्य दृश्यताम् ॥ ९६ ॥
मात्रा **ऋषभदास**स्यानुष्ठिताऽष्टाह्निका तथा । व्यधाद**र्जुनदे**श्राद्धी उपवासांश्च षोडशान् ॥ ९७ ॥
भाविता बहुभिर्लोकैर्भावनाशुद्धिरुत्तरा । इत्थं श्रेयोऽध्वसेनाभिस्तदमात्यः प्रसादितः ॥ ९८ ॥
अत्रत्यान् पर्वराजस्य सूदन्तान् सकलानिमान् । ज्ञात्वा ज्ञापयितव्याश्च तत्रत्या गणनायकैः ॥ ९९ ॥
श्रीमच्चरणपद्मोपसेविनो गुणशालिनः । अनुवन्द्या मदीयेन नाम्ना सकलसाधवः ॥ १०० ॥
अस्मदीयाः समे शिष्याः प्रमोदेन चिराकषः । गुरुवाक्यानुगा नित्यं वन्दन्ते चरणौ प्रभोः ॥ १०१ ॥
सप्तँ-पक्षँ-नगँ-क्षोणीँप्रमाणितेऽनुवत्सरे । सहोमासेऽलिखत् पत्रं बलक्षपंचमीदिने ॥ १०२ ॥

॥ इति श्रेयः ॥



तपागच्छाचार्यश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० नयविजयगणिप्रेषिता

[६] — विज्ञप्तिका —



[तत्रादौ देववर्णनम् -]

स्वस्तिश्रियेऽस्तु विमलाद्रिरनन्ततीर्थयात्रातिशायिसुकृतातिशयप्रदाता ।
धर्मेण भीमभवकूपपतज्जनानामालम्बितः किमु समुद्धरणाय हस्तः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियं दिशतु तीर्थयुगं जनानां, श्रीनाभिनन्दनजिनेन कृतप्रतिष्ठम् ।
चक्रे शुचि प्रतिभयादवतारणेन यद्येन लोकयुगपावनहेतुरूपम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रिये विमलगोत्रपवित्रनामतीर्थत्रयं भवतु मङ्गलकेलिधाम ।
स्फीतं यदस्ति नवखण्डसुजातरूपश्रीमद्‌घनौघपुरकान्तिभृता जिनेन ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रियं सृजतु तीर्थचतुष्टयं वः, सौराष्ट्रनीवृति जिनेन विपश्चितश्रि ।
अज्झाहरेण सुघनौघविलासिभाससिद्धाचले गजपदोल्लसिते स्थितेन ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रियं प्रददतीं भज पञ्चतीर्थीमेकात्मिकामिव चकार शिवोद्भवो याम् ।
अज्झाहरः सुवृषभो नवभागधेयविस्फूर्तिमूर्तिशुचिकीर्तिसुधाप्रवाही ॥ ५ ॥
स्वस्तिश्रियां दिनपतिर्नवपद्मिनीनां, पार्श्वप्रभुर्विजयतां नवखण्डनामा ।
यद्भूरिकीर्तिपरिपूरितलम्बमान, ब्रह्माण्डमण्डलकमण्डलुबिन्दुरिन्दुः ॥ ६ ॥
हंसीहराद्रिसितयत्सुयशो मरालसङ्गादसूत विधुमण्डमिवाभ्रगङ्गा ।
एनं नमामि नवखण्डमखण्डवीर्यमाखण्डलप्रणतमुद्रितविश्वलोकम् ॥ ७ ॥
पार्श्वप्रभोस्तनुरुचो नतशक्रमौलीरत्नप्रभापटलपाटलिता जयन्ति ।
उद्यद्गभस्तिकिरणप्रकरप्रवेशप्रोद्भिन्ननीलनलिनच्छविबद्धसख्याः ॥ ८ ॥
निःशल्यसप्तभुवनाधिपतित्वसूचानूचानचारुपिहिताम्बरडम्बराभाः ।
स्फारा जगद्भयभिदो महतान्धकाराः, पार्श्वप्रभोः शिरसि सप्तफणा जयन्ति ॥ ९ ॥
यस्य प्रतापतपने स्फुरति प्रयान्ति, तेजांसि तारकदशां परदेवतानाम् ।
देवं कलावपि बलातिशयानपेतशोभाभिरामगुणधाम तमाश्रयामः ॥ १० ॥
आचम्य यं प्रकलयन्ति यदीयवाचः, स्वादं विदन्ति न सुधासु सुधाभुजस्तम् ।
पार्श्वः श्रिये स वसुधाधिपमौलिमाल्यसंसर्गभृङ्गमुखरीकृतपादपद्मः ॥ ११ ॥
आबद्धरङ्गसुरकिन्नरभृङ्गपीतस्फीतप्रतीतगुणगौरवसौरभाढ्या ।
छायां तनोति भुवनत्रितयेऽपि जीरापल्लीयपार्श्वजिननायककीर्तिवल्ली ॥ १२ ॥
पार्श्वश्चिरं जयतु यत्सुयशःपयोधौ फेनायतेऽखिलमपि ग्रहचक्रमुच्चैः ।
शैवालजालति नभस्यतमालनीलं, रत्नानि निर्जरगृहाणिव विद्रुमन्ति ॥ १३ ॥
धर्मामृतानि परिपिण्ड्य विनिर्मितैव, कल्पद्रुमाद्यधिकसारसमुच्चितैव ।
चान्द्रप्रभी सृजतु मूर्तिरगण्यपुण्यश्रेणीव मूर्तिकलिताकलितापभेदम् ॥ १४ ॥

पुण्याब्धिवृद्धिकरणोद्यतगौविलासः, स्फूर्जन्महाव्रतिशिरःस्थकलाप्रकाशः ।
दोषोदितप्रबलमोहतमोपहो वश्चन्द्रप्रभो दिशतु शर्म जिनाधिराजः ॥ १५ ॥
श्रीमद्घनौघपुरसुन्दरबन्दिरेण, विश्वत्रयं प्रविजितं सुख(ष)मामदेन ।
तत्सूचनाय रचिता किमु तत्र कीर्तिस्तम्भत्रयी जयति देवगृहत्रयीयम् ॥ १६ ॥
रत्नत्रयी जयति मूर्तिमती घनौघचैत्यत्रयी ध्रुवमघौघविघातहेतुः ।
नित्यं द्विशोऽम्बुधिरपि स्वकरत्नशोभारेषाविशेषमतये ननु यामुपास्ते ॥ १७ ॥
सिद्धान्तपद्मनदसंभवधर्मशुद्धित्रिस्रोतसस्त्रय इव प्रथिताः प्रवाहाः ।
श्रीमद्घनौघपुरतीर्थकृतावतारास्ताराम्नयः प्रवितरन्तु सुखं विहाराः ॥ १८ ॥
सौराष्ट्रदेशसुख(ष)माशुचिकण्ठदेशे, मन्ये घनौघपुरमन्दिरमेव रम्यम् ।
चैत्यत्रयी लसति यत्र मिथोविशेषा, रेषात्रयी त्रिभुवनाधिकभाग्यचिह्नम् ॥ १९ ॥
श्रीमद्घनौघनगरे कलयत्यशल्यं, राज्यं सदा सुकृतभूर्व्यवहारभूपः ।
शक्तित्रयं प्रकटमस्य चकास्ति चारु चैत्यत्रयं प्रगुणितस्वविधेयलाभम् ॥ २० ॥
लेश्याः शुभा इह जनेषु लसन्ति तिस्रो, धर्तुं कदापि न पदं त्वशुभा लभन्ते ।
चैत्यत्रयी प्रगुणिता विधिना घनौघसद्मन्दिरे शुचिरुचिः किमिति प्रवक्तुम् ॥ २१ ॥
पुण्यार्जितोर्जितसुकीर्तिमहाविशेषं, संसारभोगसुख(ष)मादमनावरं वः ।
सिद्धाकृतिप्रकृतिरूपविभागभाजौ, पार्श्वौ सुखं प्रददतां महसेनभूश्च ॥ २२ ॥ – द्रुतादूसुतम् ।
एताननन्तसुखसन्ततिदानदक्षानक्षामधामनिलयान् परिणामरम्यान् ।
आनन्दितामरवधूनयनालिलेह्यलावण्यपुण्यसुख(ष)मामृतपात्रगात्रान् ॥ २३ ॥
विश्वत्रयीभविकतारणहेतुतीर्थस्तोमप्रवृत्तिविलसज्जयकेतुलीलान् ।
ब्रह्मप्रकाशपरिशीलितचित्तरोधप्रौढप्रबोधपरिबृंहितशुद्धशीलान् ॥ २४ ॥
तीर्थेश्वरान्निखिलनाकिनिकायनाथकोटीरहीरपरिचुम्बितपादपद्मान् ।
आनम्रमानसमनोरथपूरणाय, वृन्दारकद्रुमसमानभिनम्य सम्यक् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनम् ॥

[*अथ नगरवर्णनम् –*]

प्रददते सकलर्तुवनश्रियः, कुसुमहारविराजितवक्षसः ।
किमिह नीलनिचोलरुचिं दलैर्घनतमानतमालमहीरुहः ॥ २६ ॥
इह महाव्रतिनोऽपि मनःक्षणं, रतिमुपैति निरीक्ष्य वनश्रियम् ।
मधुसुहृज्जयदीपसमोल्लसन्मुकुलसंकुलसंभृतचम्पके ॥ २७ ॥
इह मदालसकोकिलकूजितानुचरपञ्चमनादघनादरा ।
स्वदयितेन तनोति रसोद्भवं, न सहका सहकारवने वधूः ॥ २८ ॥
सह सुरीभिरमर्त्यगणाः सरःकमलगन्धहरानिललालिताः ।
कुसुमतल्पगता इह शेरते, चिरतरं रतरङ्गकृतश्रमाः ॥ २९ ॥
न खलु चाटुकृतोऽप्यनुवल्लभान्, प्रगुणतां ययुरात्ममदेन याः ।
विदधते रतिनर्ममनोभुवा, विधुरिता धुरिता इह वल्लभाः ॥ ३० ॥

गगनचुम्बितलम्बितगोस्तनी, विविधमण्डपमण्डनकैतवात् ।
इह भवत्पवियुक्तरतिस्फुरन्मदननन्दननन्दिमहोत्सवः ॥ ३१ ॥
मम पुरः कतमा सुखवाटिकेत्यतुलदर्पसमर्पितमानसा ।
इह मही मुहुरुल्लसति स्फुरन्नवकदम्ब[कदम्ब?]ककैतवात् ॥ ३२ ॥
इह समुज्वलदस्त्रधरः स्मरः, स्वविनियोजितनर्मकृतो जनान् ।
वनविहारपरानिव वीक्षितुं, नवकुले वकुले कुरुते स्थितिम् ॥ ३३ ॥
अहिलताऽऽकुलितेव वृषस्यया, विवसनाऽनिलधूतदलच्छलात् ।
इह विभाति रसेन वितन्वती, क्रमुककामुककामितवेष्टनम् ॥ ३४ ॥
अलिकुलध्वनिनूपुरनादया, सुरभिचन्दननिर्जितनन्दनः ।
गिरिरसावुपसृत्य निषेव्यते, कमलया मलयाद्रिनिवासया ॥ ३५ ॥
गिरिममुं सुकृताय निषेवते, जलरुहैर्बहुरूपतया विधुः ।
तदिह संगतिमृच्छतु तारकाभृतककेतककेलिविलोलता ॥ ३६ ॥
प्रियसखीव रतेरिह रागिणी, विरहिणां विपिने वरदाडिमी ।
हृतमनोरथपिण्डसमुद्भवत्फलकरालकरा प्रतिभासते ॥ ३७ ॥
हरशिरःस्थितिशर्म सुभोज्यते, किमिह लोध्रपरंपरया विधुः ।
न गतयाम्बरमध्यमधित्यकोल्लसितया सितयाऽधिगताधिकम् ॥ ३८ ॥
इह मही कतमा तटवर्जिता, क इव चास्ति तरुर्गहनोज्झितः ।
गहनमत्र च किन्नरसुभ्रुवाम्, न किल किं किलकिञ्चितराजितम् ॥ ३९ ॥
इह लसन्ति महौषधयः प्रभाविजितदीपकदीपनवाङ्कराः ।
दिनमिवोडमयंति निहत्य यास्तमसि तामसितामपि यामिनीम् ॥ ४० ॥
विततकेतकरेणुविगुण्डितस्तपितपृष्ठविनिर्गतशीकरैः ।
गिरिरयं भजते बहुनिर्झरैर्मदकलो दकलोलगजोपमाम् ॥ ४१ ॥
लसदलक्तकरक्तसतीपदं, प्रणतशम्भुशिरःस्थकलोपमः ।
इह विधुर्भवति स्फुटधातुभृच्छिखरशेखरशो(षि)तदीधितिः ॥ ४२ ॥
दुरवगाहतरास्सरितो महाकविमुखादिव चारुवचःसुधा ।
द्रुतमितो निपतन्त्यनियन्त्रितप्रसरया सरया रसलीलया ॥ ४३ ॥
अधररागहृतिस्तनपीडनालकविलोलनशीत्कृतिकौतुकैः ।
इह सुखं लभते जलकेलिभिः, सरसिका रसिका न रतोद्भवम् ॥ ४४ ॥
इह लतागहनस्थमृगेक्षणा, मृगयुतोपगतस्य मनोभुवः ।
भवति काकुशतप्रमदो मदोद्धतकपोतकपोलजहुंकृतेः ॥ ४५ ॥
अविरतं प्रतिनादिनि गह्वरे, विफलितानुकृतध्वनितश्रमाः ।
अवितथेऽपि गजे परिगर्जति, प्रतिनदन्ति न दन्तिगणा इह ॥ ४६ ॥
निजरसेन लसन्ननिशं प्रियामुखसमर्पितभुक्तलताङ्कुरः ।
इह सुतीर्थणा(?)दभिभूयते, न हरिणा हरिणादिगणो गिरौ ॥ ४७ ॥
अपि तपस्विकदम्बकमास्थितव्रतविशेषमशेषसुखाशया ।
इह जगज्जनपावनपापभिद्, गजपदेऽजपदेति जिनाभिधाम् ॥ ४८ ॥

इह निहत्य मनोभुवनिर्मितां, परमनिर्वृतिसौख्यमलम्भयत् ।
व्रतसुधास्नपनेन जिनो घनच्छविरहो विरहोग्ररुजं प्रियाम् ॥ ४९ ॥
यदुकुलाम्बरपौर्णिमचन्द्रमाः, कनकपद्मनिवेशितपत्कजः ।
इह चिरं विजहार जिनेश्वरश्चरितदारितदारुणपातकः ॥ ५० ॥
अधिगतातिशयर्द्धिभवान्मदादिव दिवस्पतिगीतयशोभरः ।
भगवताश्चलके तु शनैर्दिनाशुभवनैर्भवनैर्नरिनर्त्यम् ॥ ५१ ॥
इति यदेकविभूषणभूमिभृत्तिलकरैवतकस्तुतिलम्पटाः ।
सितपटाः सुधियो घटयन्त्यहो, स्वरसना रसनादकृतार्थताम् ॥ ५२ ॥

तस्मिन्नन्दनचन्दनद्रुमचमत्कारानुकारोल्लसन्, मल्लीवल्लिविनोदमत्तमधुपस्तोमाभिरामैर्वनैः ।
वापीकूपविहारहारिहरिणीनेत्राभिरभ्युद्यत - श्रीमत्सभ्यमहेभ्यराजिभिरपि प्रख्यातशोभाभरे ॥ ५३ ॥
लङ्काश्रीमुखि देवनाथनगरी श्रीगर्वसर्वंकषे, भोगावत्यभिमानहर्तरि जिताऽयोध्यायशस्संचये ।
राजद्राजगृहातिहारिविभवे वाराणसीसन्निभे, श्रीमत्पूज्यपदाब्जपाविततमे श्रीजीर्णदुर्गोत्तमे ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीजीर्णदुर्गनगरवर्णनम् ॥

[*अथ घोघाबन्दिरवर्णनम्* –]

उपाश्रयस्थायिमुनीन्द्रदृष्टिपीयूषसेकादनुभूयमानम् ।
वेलाविलासच्छलनृत्यभाजो, हृच्छर्मपोताः स्फुटयन्ति यत्र ॥ ५५ ॥
यद्यानपात्राणि महर्द्धिदर्पादूर्ध्वीकृतस्तम्भकराणि मन्ये ।
स्पर्धानुबन्धोद्घुषिता नियोद्धुं, दिवो विमानानि समाह्वयन्ति ॥ ५६ ॥
यद्यानपात्राण्युदधिस्सुतीयन्नङ्केऽधिवेलं परिलालयन् स्वे ।
उद्दीपयत्येव मिथः सुहृत्त्वं, रत्नाकरत्वेन सदृग्गुणेन ॥ ५७ ॥
यदापणस्याम्बुनिधेश्च वादस्पर्धारसाद् घर्घरघोषभाजोः ।
द्वयोर्मिथः संधिमिव प्रकर्तुं, मध्ये स्थिताः पोतगणा विभान्ति ॥ ५८ ॥
तस्माद् घनौघनगरान् नगराजिरम्यविस्तारहारसमचैत्यविराजमानात् ।
सद्यानपात्रजिनदेवमहाविमानात्, लक्ष्मीविलासदलितेन्द्रपुराभिमानात् ॥ ५९ ॥

[*विज्ञप्तिपत्रप्रेषकस्य स्वकीयवृत्तादिनिवेदनम्* –]

मोदमेदस्खलत्स्वान्तो भक्तिप्राग्भारभासुरः । उद्यत्प्रेमार्ककान्त्याभचञ्चद्रोमाञ्चभृत्तनुः ॥ ६० ॥
अकुण्ठोत्कुण्ठयापूर्णस्तूर्णमभ्यर्णमाशया । मनोरथरथारूढ इव क्ष्मां संस्पृशन् रसात् ॥ ६१ ॥
आवर्तैर्वन्दनं कुर्वन् विधिना भानुसंमितैः । संयोजितकरद्वन्द्वो विनयानम्रकन्धरः ॥ ६२ ॥
कल्याणीभक्तिरत्यक्तव्यक्तप्राक्तनपद्धतिः । विज्ञप्तिं कुरुते रम्यां नयादिविजयः शिशुः ॥ ६३ ॥
यथाकृत्यमिहाप्रौढपूर्वाचलविभूषणे । निराकृतनिशाध्वान्तस्तोमकोमलदीधितौ ॥ ६४ ॥
विकाशिताम्भोजवने प्रकाशितजगत्पथे । समुद्यति नभोरत्ने हिंगुलद्युतिपाटले ॥ ६५ ॥
सभायां परिपूर्णायां महेभ्यैः सुरसन्निभैः । प्रज्ञप्तौ वाच्यमानायां सूत्रतश्चार्थतस्तथा ॥ ६६ ॥
प्रस्तुताध्यापन-ग्रन्थकरणादिपरिश्रमैः । प्रगल्भमाने प्रतिभाचमत्कारितगीष्पतौ ॥ ६७ ॥
यथावदुपदेशेनोल्लास्यमाने मनस्विनाम् । हृदये घनवृष्ट्येव कदम्बानां कदम्बिका ॥ ६८ ॥
क्रमागते सर्वपर्वगर्वसर्वंकषोत्सवे । महापर्वणि विख्याते श्रीमत्पर्युषणाभिधे ॥ ६९ ॥

कल्पितानल्पसंकल्पपूर्तौ कल्पमहीरुहः । व्याख्या श्रीकल्पसूत्रस्य विहिता नवभिः क्षणैः ॥ ७० ॥
पूजाप्रभावनादानतपःप्रभृति चाखिलम् । सत्कर्म तत्तदुचितं रचितं गृहमेधिभिः ॥ ७१ ॥
यद्दानविधिमुद्वीक्ष्य हृदयेऽतिचमत्कृताः । अद्यापि नन्दनवने घूर्णन्ते सुरपादपाः ॥ ७२ ॥
इत्यादिसौकृतं कृत्यं प्रवृत्तं च प्रवर्तते । श्रीमतां पूज्यपादानां प्रसादोदयतः परम् ॥ ७३ ॥

[अथ श्रीगुरुविजयप्रभसूरिवर्णनम् –]

सौभाग्यभङ्गी च गभीरिमा च, रूपप्रकर्षश्च विवेकिता च ।
अनेकशास्त्रार्थपरिश्रमश्च, येषां ययौ वाक्पथपारमेव ॥ ७४ ॥
येषां पुरः पञ्चमचारुवाचा, पुंस्कोकिलः कूजति रूक्षमेव ।
अतो निवासं कुरुते वनेऽसौ, स्वस्पर्धिदृष्टावुपजातलज्जः ॥ ७५ ॥
येषां मुखौपम्यमिवोपलब्धुं, निम्ने तपस्यत्युदके पयोजम् ।
यन्नेत्रसौभाग्यजिताः कुरङ्गाः, कान्तारदेशेषु परिभ्रमन्ति ॥ ७६ ॥
यदङ्गसिन्धावनुभावधावल्लावण्यपूरे परितः पतन्त्यः ।
कलिन्दकन्योपमितिं कटाक्षच्छटा भजन्ते मृगलोचनानाम् ॥ ७७ ॥
सूरीश्वरश्री**विजयादिदेवै**र्येषां प्रदत्तो निजगच्छभारः ।
चतुर्भुजेनेव तनोर्निजायाः, शेषस्य निश्शेषविशेषभाजः ॥ ७८ ॥
यद्गच्छशुक्तौ सुगुरुप्रसादस्वात्यब्दवृष्टिप्रगुणीकृतानाम् ।
मुक्ताफलानां सुधियां मुनीनां, पदं भवेन्मूर्ध्न्यपि भूधवानाम् ॥ ७९ ॥
येषां गणे चारुवने जयन्ति, गीतार्थसार्थाः सहकारतुल्याः ।
यद्ज्ञानलीलाकलिकारसाय, पिका इव ज्ञाः स्पृहयन्ति केऽपि ॥ ८० ॥
यद्गच्छगीतार्थगुणान् पटिष्ठान्, न मत्सरी कोऽपि पटुः पिधातुम् ।
न घूकघूत्कारपरंपराभिः, प्रच्छाद्यतेऽर्कः स्फुरदंशुजालः ॥ ८१ ॥
गच्छस्थितस्वच्छगुणज्ञकीर्तिर्येषां विशेषौपयिकी विवेके ।
लताप्रताने प्रथितप्रसूनलीला मधोरेव हि वक्ति भाग्यम् ॥ ८२ ॥
गुणे यदीये गुरुसाधुरम्ये, महत्त्वमन्योऽन्यकृतव्यपेक्षम् ।
महासरस्सङ्गि लसत्परागराजीवराजीपरभागशालि ॥ ८३ ॥
यद्गच्छनिष्ठा जगतो गरिष्ठाऽधिष्ठानभूमिः सुकृतस्य साक्षात् ।
इति स्थितज्ञानकलाविशिष्टां, शिष्टा न तां जातु परित्यजन्ति ॥ ८४ ॥
एकातपत्रं कलयन्ति धर्मम्, विभौ गुणज्ञे सुधियो यदीयाः ।
न ते स्वबोधामृतमग्नचित्ताः, संसारलीलापरमाद्रियन्ते ॥ ८५ ॥
गङ्गातरङ्गा इव वाक्यरङ्गाः, शृङ्गारसङ्गाद् विलसन्ति येषाम् ।
मज्जन्ति येषु हृतमुक्तलज्जं, विद्याधराऽमर्त्यवधूसमूहाः ॥ ८६ ॥
उक्तेर्विशेषेषु महाकवीनां, येषां मनोवृत्तिरतीव पट्वी ।
इति स्फुटीभाविविलासयुदर्कं, तन्वन्ति तर्कं किल तर्कविज्ञाः ॥ ८७ ॥
ये सूक्तपीयूषरसेन सिक्ता, द्रवन्ति चन्द्रोपलवज्जनेषु ।
स्वान्तस्य तेषामनुकूलवृत्तिं, स्तुमः प्रतीतां कियतीं विभूनाम् ॥ ८८ ॥

स्वच्छः स देशः खलु कच्छ एव, या जन्मभूमिः प्रथिताऽत्र येषाम् ।
मनोहरं नाम मनोहरं तत्पुरं परं यैः परिशीलितं यत् ॥ ८९ ॥

तैरत्यद्भुतभाग्यनूत्नकलिकासच्चातुरीसंचरच्चेतोवृत्तिगरिष्ठकोकिलकलाकल्लोलकिर्मीरितैः ।
स्फूर्जत्पुण्यवसन्तसन्ततयशोवल्लीविलासैर्घनैर्विश्वाश्चर्यदवर्यचित्रचरितैरानन्दमेदस्वलैः ॥ ९० ॥
तैलापूरसमप्रवर्तकमतिव्यापारविस्तारितस्फूर्जद्धाममहीपदीयकदशातुल्यक्रियाकेलिभिः ।
स्वच्छश्री**तपगच्छ**कच्छकुहरप्रत्युच्छलत्प्रौढता, गङ्गातुङ्गतरङ्गवाहितहितप्रत्यर्थिमानद्रुमैः ॥ ९१ ॥
चन्द्रस्येव कलेश्वरप्रणयिनी गङ्गावदुच्चोद्भवा, स्वैरं क्लृप्तसुयानपात्रतरणा वेलेव पाथोनिधेः ।
आवर्तैः प्रथिता नदीव जलमुग्धारेव तापापहा, श्रीपूज्यैः कृतमङ्गलावनिरिव ज्ञेया शिशोर्वन्दना ॥ ९२ ॥

तथा तत्र–

श्रीमद्**विनीताद्** **विजया**भिधानां, प्रसादनीया वरवाचकानाम् ।
यैः शक्यमेतद्गणनीतिसूत्रं, गम्भीरभावं विवरीतुमुच्चैः ॥ ९३ ॥
रविवर्धनाख्यविबुधा, विदितावसराः सरागचेतस्काः ।
आनन्दसागराख्या, विबुधा **धनविजय**विज्ञाश्च ॥ ९४ ॥
जसविजयाख्या विबुधा, नियुक्तमुख्याश्च **रामविजय**बुधाः ।
तत्त्वविजयाख्यगणयः, **सत्यविजय**संज्ञका गणयः ॥ ९५ ॥
इन्द्रविजयगणिमुख्या-श्च**तुरविजय**संज्ञकास्तथा गणयः ।
इत्याद्या ये श्रीमत्पूज्यचरणसेवकाः सन्ति ॥ ९६ ॥

नत्यनुनती सहृदयैः प्रसादनीये यथाक्रमं तेषाम् । अन्तिषदां च शिशोरप्यनुकूलितसकलपरिवारैः ॥ ९७ ॥

अत्र वः–

जसविजयाख्या विबुधाः, **सत्यविजय**संज्ञकास्तथा गणयः ।
हर्षविजयाख्यगणयो, **हेमविजय**संज्ञका गणयः ॥ ९८ ॥
तत्त्वविजयाख्यगणयो, **लक्ष्मीविजया**भिधास्तथा गणयः ।
वृद्धिविजयाख्यगणय-श्**चन्द्रविजय**संज्ञका गणयः ॥ ९९ ॥
शुभविजयाख्या मुनयो, मुनयः **कर्पूरविजय**संज्ञाश्च ।
कीर्तिविजयाभिधयतिः, स्थानाधिष्ठानमात्ररतिः ॥ १०० ॥

इत्येष साधुवर्गः संघोऽत्रत्यश्च भक्तिरसिकमनाः । श्रीपूज्यचरणकमलं, प्रणमति कामितसुरद्रुसमम् ॥१०१॥
सरसनवरीतिगर्भैः पद्यैस्तात्कालिकैरयं लेखः । दीपोत्सवे प्रगुणितः, प्रबोधदीपोत्सवं तनुताम् ॥ १०२ ॥

॥ इति मङ्गलम् । शुभं भवतु ॥

पूज्याराध्य { सकलसकलसुविहिततपागच्छभट्टारकशिरोरत्नभट्टारकश्री १०८ श्री श्रीविजयप्रभसूरीश्वरचरणारविन्दानामियं विज्ञप्तिः । } जीर्णदुर्गे

॥ 卐 ॥ सं० १७१७ वर्षे शिशुनयविजयस्य विज्ञप्तिः ॥ 卐 ॥

तपागच्छाचार्यश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति उदयविजयगणिप्रेषिता

[७] — विज्ञप्तिका —

卐 ॥ ऐं नमः ॥ श्रीर्जयति प्रत्यहम् ॥ 卐

[आदौ श्रीशान्तिजिनादितीर्थङ्करनमस्काराः –]

स्वस्तिश्रियः सन्ततमाश्रयन्ते, यत्सुप्रसादैर्विषयीकृतं ज्ञम् ।
स शान्तिनाथः शिवतातिरस्तु, प्रशस्तकारुण्यरसोर्मिमाली ॥ १ ॥
गर्भावतीर्णेन कृता धरित्र्यां, शान्तिर्जनानां सुखवृद्धिहेतुः ।
नामानुरूपं फलमर्पयन् स, प्रोल्लासयत्वद्भुतसम्पदं नः ॥ २ ॥
यस्य प्रसादाः परितः स्फुरन्तः, सर्वासु दिक्षु प्रबलीभवन्ति ।
एकैकशो यैर्विहितान्यभीष्टान्युच्चैः स्युरेभिः सकलैः कियन् न ॥ ३ ॥
तीर्थेशलक्ष्मीरपि चक्रिलक्ष्मीर्द्वे अप्युदीते प्रबलप्रभावात् ।
पूजा तदीया सुरवल्लिराविश्चर्कर्त्यभीष्टानि किमत्र चित्रम् ॥ ४ ॥
पारापतो यच्छरणं प्रपन्नश्चिरायुरासीदपयातभीतिः ।
सर्वाणि सौख्यानि ददत् सकामं, दीर्घायुराविः कुरुतात् सदा नः ॥ ५ ॥
सुतेर्विधातार इतीद्धभावा, भवन्ति भूयो गुणरत्नकोशाः ।
यस्य प्रभोः शान्तिरसौ ससौख्याः, श्रियश्चिरं दातुमथोद्यमी स्तात् ॥ ६ ॥
श्रीशान्तिनाथं सुषमासनाथं, पाथःपतिस्फारगभीरिमाणम् ।
प्रमाणभूतं कवितार्किकानां, वाणीसुधावारिधरं प्रणौमि ॥ ७ ॥
एनं तथा श्रीवृषभध्वजं च, श्रीनेमिनाथं जिनवर्धमानम् ।
श्रीपार्श्वनाथं धरणाधिराजसंसेव्यमानस्फुटतीर्थमीडे ॥ ८ ॥
पञ्चतीर्थीमिमां पञ्चकल्पवृक्षगुणाद्भुताम् । पञ्चपाण्डववनमुक्तिपाञ्चालीसरसां स्तुमः ॥ ९ ॥
एतान् जिनेश्वरान् पञ्चपरमेष्ठिपुरन्दरान् । प्रणम्य सम्यग् भावेन रम्यमाहात्म्यशालिनः ॥ १० ॥

[गच्छाधीशाधिष्ठितद्वीपबन्दिरवर्णनम् –]

महेभ्यानां ततिर्यत्र मनोऽभीष्टप्रदायिनी । अनयाऽध्यापिता मन्ये कल्पवृक्षाः समर्पणम् ॥ ११ ॥
एकेन्द्रियाणां दानादिचातुरी क्वोपलभ्यते । युग्मिनां किन्तु संगत्या कर्मभूमिषु लभ्यते ॥ १२ ॥
युग्मिनां प्रतिरूपास्तु यच्छ्राद्धा गुणशालिनः । दानभोगादयोऽमीषां वर्ण्याः के के न साम्प्रतम् ॥ १३ ॥
दानभोगमयं क्षेत्रं यदि तद् **द्वीपबंदिरम्** । युग्मिक्षेत्रमिव श्रीमत्पूज्यास्तत्र सुरद्रुमाः ॥ १४ ॥
दत्ते सुरद्रुमो भुक्तिं न तु मुक्तिं कदाचन । भुक्ति-मुक्तिद्वयं पूज्या इति तेभ्यो विशिष्टता ॥ १५ ॥
युग्मिक्षेत्रमिव श्रीमद्**द्वीपबन्दिर**माहितम् । सद्भोगशालिनो यत्र लोकाः स्युः क्षेत्रशक्तितः ॥ १६ ॥
लावण्यपुण्यसौभाग्यभाग्योत्कर्षस्समीक्ष्यते । यैस्तेषां द्वीपसुक्षेत्रप्रसङ्गो युज्यतेऽनिशम् ॥ १७ ॥
समुद्रे सन्ति रत्नानि स च य[द्]द्रंगसंगतः । रत्नार्थी कामनां स्वां तत् पूरयेत् तत्र नाद्भुतम् ॥ १८ ॥

दामिन्य इव कामिन्यः खेलन्ति चटुलाशयाः । झात्कारमादिमाः कुर्युश्चमत्कारं तदुत्तराः ॥ १९ ॥
भूषणे सर्वदोद्द्योतः कामिनीनां प्रभाजुषाम् । सौदामिनीनामप्येष समये ज्ञायतेऽद्भुतः ॥ २० ॥
यत्सुन्दरीणां सारूप्यमप्सरोभिः समंततः । गेहोच्चत्वं प्रवृत्त्यर्थं ताभिस्तत्तत्र सूचकम् ॥ २१ ॥
अप्सरोभी रंगरसं देवा अनुभवन्ति यम् । तं लोका यत्र नारीभिस्समं रंगरसाब्धयः ॥ २२ ॥

एवं च –

नार्यः सुरवधूतुल्या नरा गीर्वाणसन्निभाः । अत्युत्तमत्वं गेहानामिति वैमानिकं सुखम् ॥ २३ ॥
'दीव'लोकस्ततो देवलोकः कविभिरुच्यते । गुणोऽभवद्यतः पूज्यस्फुरद्आकरणादिह ॥ २४ ॥
गुरुर्देवो गुरुः स्वर्गेऽत्रापि देवगुरोः पदी । स्वर्गस्य **द्वीपदुंग**स्य वैरूप्यं तेन कीदृशम् ॥ २५ ॥
विरतिस्तत्र नास्त्येव सा पुना रमतेऽत्र तु । किंचिद्वैरूप्यमित्येतद् **द्वीप**-त्रिदिवयोरपि ॥ २६ ॥
विजयप्रभसूरीन्द्रानधिगत्यैव यज्जनाः । स्वं मन्यन्तेऽधिकं स्वर्गिलोकतः पुण्यपोषतः ॥ २७ ॥
एकं भोगसुखं स्वर्गे न तु योगसुखं मनाक् । भोग-योगसुखद्वैतमद्वैतमिह वर्ण्यते ॥ २८ ॥
तुर्यारकचरच्छाया समानीताऽत्र सूरिभिः । महाविदेह इत्येष श्रीगुरुस्तीर्थनायकः ॥ २९ ॥
सीमन्धरान्तरालेऽपि भूयांसः स्युर्जलादयः । अत्रापि ते दुर्निवाराः श्रीगुरोरन्तरे स्थिताः ॥ ३० ॥
महाविदेहे तीर्थेशाः केवलं ध्यानगोचराः । श्रीपूज्या अपि सद्ध्यानगोचरा दूरतः स्थिताः ॥ ३१ ॥
पापक्षयाय जायन्ते ध्याता सद्भक्तिशालिभिः । उभयोऽपीति वर्ण्यन्ते सद्यः पद्यैः कवीश्वरैः ॥ ३२ ॥
नवलक्षप्रभुः पार्श्वो योगीन्द्रोऽपि जगत्पतिः । लक्षाधिकधनास्तत्र लोकाः स्युः किमिहाद्भुतम् ॥ ३३ ॥
नवलक्षप्रभुर्नित्यं सेव्यते यन्निवासिभिः । सहस्रशो भवन्त्येषां स्वर्णमुद्रास्तदर्हति ॥ ३४ ॥
सुविधिस्तीर्थकृद्यत्र जागरूकः कृपानिधिः । तत्र नो विधिदौर्बल्यं स्वतः सिद्धमिदं ननु ॥ ३५ ॥
देवः सुविधिरप्यत्र गुरुः सुविधिरक्षकः । अविधिस्तत्र को नाम बलीयस्त्वं समीहते ॥ ३६ ॥
भोगराजी परित्यक्ता राजीमत्या समं सुखम् । येनायं नेमिनाथोऽस्ति यत्र मूर्तः सुरद्रुमः ॥ ३७ ॥
त्रयीयं तीर्थनाथानां जगत्त्रितयपूजिता । पूरयत्वीप्सितं पुण्यं करणत्रयशालिनाम् ॥ ३८ ॥
धन्यास्त एव यत्र श्रीपूज्याः सन्ति कृपालवः । अनुमोदनया तेषां दवीयांसोऽपि सत्फलाः ॥ ३९ ॥
श्रीपूज्यगुणरागेण धर्मिणो यत्र मानवाः । सप्तक्षेत्र्यां निजं वित्तं वपन्ति गुणरागिणः ॥ ४० ॥
तस्मिन्नानन्दसन्दोहकन्दकन्दलताम्बुदे । श्रीपूज्यपाविते श्रीमद्**द्वीपबन्दिर**सुन्दरे ॥ ४१ ॥

॥ इति द्वीपबन्दिरवर्णनम् ॥

[विज्ञप्तिप्रेषकस्य शिष्यस्य स्वकीयावासस्थानवर्णनम् –]

गोरसः प्रचुरो यत्र गोकुलानि बहून्यपि । कियन्तो भद्रका यत्र केचित् स्वीकृततत्पराः ॥ ४२ ॥
प्रा(?)यसो वादिनो लोका हतं मुञ्चन्ति नो कति । केऽपि संवेगिनामानो मनःपावित्र्यसंशयाः ॥ ४३ ॥
धर्मप्रीतिरता धन्या धनधान्यादिपूरिताः । रागवन्तो जनाः प्रायः पटिष्ठाः परमात्मसु ॥ ४४ ॥
स्मरन्ति नित्यं श्रीपूज्यान् गच्छरागेषु सादराः । व्याख्यानश्रवणादीनि कुर्वाणाः प्रतिवासरम् ॥ ४५ ॥
आवश्यकेषु सोद्योगाः द्विसन्ध्यामपि नित्यशः । ईदृशाः सन्ति यल्लोकाः सर्वदानन्ददायिनः ॥ ४६ ॥
राजधन्यपुरात् तस्मात् सविस्मयजनव्रजात् । राजसः प्रकृतिप्रायपुरुषश्रेणिशोभितात् ॥ ४७ ॥
विनयावनमन्मौलिर्भक्तिभावितमानसः । विनेयविधिसोत्साहसर्वतः प्रीतिपेशलः ॥ ४८ ॥
तरणिप्रमितावर्तवन्दनैः कृतनन्दनः । व्यातन्वते विज्ञप्तिं **उदयात् विजया**श्रवः ॥ ४९ ॥
यथाकृत्यमिह प्रातर्यथोचितसुपर्षदि । वाच्यते **भगवत्यङ्गं** प्रस्फुरद्वृत्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥

आवश्यकस्य सूत्रं तु स्वाध्याये वाच्यतेऽनिशम् । इत्यादिधर्मकृत्येषु जायमानेषु सादरम् ॥ ५१ ॥

पर्व पर्युषणानाम समायातमभीप्सितम् । तत्रापि धर्मकृत्यानि संजातानि यथोचितम् ॥ ५२ ॥

अथापि नित्यकृत्यानि धर्माण्युदयमीर्यति । कारणं तत्र सद्ध्येयः श्रीमत्पूज्यादिसंस्मृतिः ॥ ५३ ॥

अपरम्–

प्रतिगच्छं विराजन्ते शतशोऽपि गणाधिपाः । श्रीपूज्यानां समस्तेषां स्वमेऽपि महिमा कुतः ॥ ५४ ॥

भूयांसः सन्ति सद्विद्या भूयांसो रूपशालिनः । पुण्यप्रकर्षवन्तस्तु श्रीपूज्या एव केवलम् ॥ ५५ ॥

मुखे सरस्वती येषां हस्ते येषां पयोधिजा । वशीकरणलक्ष्मीस्तु पार्श्वे येषां सदा स्थिता ॥ ५६ ॥

यत्र तिष्ठन्ति तत्रत्या वश्यतां यान्ति मानवाः । दवीयांसोऽपि तच्चित्रं तद्वश्या सर्वदैव हि ॥ ५७ ॥

सोऽयं पुण्यप्रकर्षो हि येषामेवोपलभ्यते । न प्राचां तादृशो जातो नित्यमुद्यमशालिनाम् ॥ ५८ ॥

वृद्धिं नीतो गणः सर्वे मुनयः पण्डितीकृताः । सर्वेषां भक्तिरागोऽपि रोपितश्चित्तकानने ॥ ५९ ॥

सर्वेषामीप्सितं दत्तं दीयतेऽद्यापि तादृशाम् । लघवोऽपि महीयांसः कृताः केचिन्निरर्गलम् ॥ ६० ॥

राग-द्वेषौ परित्यक्तौ सर्वे समदृशेक्षिताः । स्वपार्श्ववर्तिनः सर्वेऽप्याकण्ठं परिपोषिताः ॥ ६१ ॥

इतोऽप्यधिकता हन्त, कल्पवृक्षेषु का भवेत् । कल्पद्रु-कामकुम्भाद्या हारिता यत्पुरस्ततः ॥ ६२ ॥

मिथ्येदं चेद् भवेत् तर्हि, दृश्यन्ते ते कथं न हि । लज्जया किन्तु ते नंष्ट्वा गताः कुत्राप्यगोचरम् ॥ ६३ ॥

तथा–प्राञ्चः सूरिवराः केचिद् गीतार्थावर्जनादिना । सातमुत्पादयामासुर्नासातं कस्यचित् परम् ॥ ६४ ॥

ये पुनः साम्प्रतं पुण्यबलबाहुल्यशालिनः । गणयन्ति न गीतार्थान् यादृक् तादृक् पदप्रदाः ॥ ६५ ॥

तथापि गीतार्थगणो भक्तिपूरितमानसः । दूरेऽपि ध्यानसंलीनः श्रीपूज्यानामहर्निशम् ॥ ६६ ॥

तैः श्रीपूज्यैर्जगत्पूज्यैः कृपादृष्टिः पटीयसी । रक्षणीयाऽधुना वृद्धभावान्मयि विशेषतः ॥ ६७ ॥

प्रसाद्यः **पत्तनादेशो** जातान्यब्दानि भूरिशः । प्रत्यब्दं प्रागभूत् तच्च सर्वेषामपि गोचरः ॥ ६८ ॥

पण्डिता **वीरविजया** वृद्धावस्थतयैषमः । **धीणोजवंशादि** वरं लम्भनीयाः पुरं ध्रुवम् ॥ ६९ ॥

समीक्षेत्रवरादेशो ज्ञानादिविजयात्मनाम् । विज्ञानां सुप्रसाद्यः श्रीपूज्यसेवाकृतां पुरा ॥ ७० ॥

वलमाने पुनर्लेषे(खे) प्रसाद्यं सप्रसत्तिकम् । वन्दना मम धर्तव्या राजहंसीव मानसे ॥ ७१ ॥

प्रसाद्याऽनुनतिः श्रीमत्पूज्यपादनिषेविणाम् । **महिमासुन्दरज्ञानां** परीक्षादक्षधीजुषाम् ॥ ७२ ॥

हेमादिविजयाह्वानां प्रधानपदवीभृताम् । **विमलाद्विजयज्ञानां**, श्रीपूज्यपदसेविनाम् ॥ ७३ ॥

ऋद्धेर्विजयविज्ञानां, लब्धेर्विजयधीमताम् । **नयादिविजयज्ञानां, रूपाद्विजयवाग्मिनाम्** ॥७४॥

अन्येषामपि साधूनां ज्ञाताज्ञाताभिधाभृताम् । **सुख-प्रेमादि-गङ्गादि-विजयाह्वानां** तपस्विनाम् ॥७५॥

अत्रत्यानां च **कुसलाद् विजया**दिमनीषिणाम् । **ज्ञानादिविजयानां** पाण्डित्यगुणपोषिणाम् ॥ ७६ ॥

नयाज्जिनादुत्तमाच्च विजयानां सुखस्पृशाम् । **मनजीकस्य** च ऋषेर्नतिर्धार्या स्वचेतसि ॥ ७७ ॥

सर्वः सङ्घः प्रणमति ध्यायन्ति मुनयः प्रभून् । अत्रोचितं पुनः कृत्यं प्रसाद्यं सुप्रसत्तितः ॥ ७८ ॥

मार्गशीर्षे सिते पक्षे त्रयोदश्यां पुनस्तिथौ । विज्ञप्तिलेखोऽलेखीति नित्यं मङ्गलमालिका ॥ ७९ ॥

एतल्लेखसहल्लेखकाव्यादिकरणादरः । विशेषतः प्रणमति **ज्ञानादिविजयः** शिशुः ॥ ८० ॥

एते च **ज्ञानविजया** अधीता विनयाश्रिताः । श्रीपूज्यानां कृपायोग्या मनोरञ्जनतत्पराः ॥ ८१ ॥

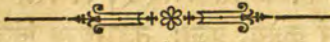
॥ पत्तनं सर्वथैव प्रसाद्यमिति तात्पर्यम् ॥

॥ श्रेयः श्रीरस्तु ॥

*

तपागणाधीशश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० मेघविजयगणिप्रेषिता

[८] — विज्ञप्तिका —



स्वस्तिश्रीमदमन्दमोदविनमद्देवेन्द्रमौलिस्फुरन्, माङ्गल्याङ्गयवाङ्कुराकरपरिग्लासाऽप्रयासाशया ।
यस्य श्रीजगदीश्वरस्य चरणाम्भोजन्मचिह्नच्छलात्, तस्थौ पीनतनूरनूनसुखभाग् गोकर्णजस्तर्णकः ॥ १ ॥
सर्वानन्दननन्दने भगवतः श्रीनन्दनेऽनन्दने', पादाम्भोरुहिरोहितोऽप्युपहितः सौभाग्यसम्राऽभवत् ।
नम्रानेकनृनाकिनायकवधूवृन्दस्य वीक्षाविधे-र्लावण्याभ्यनुशासनान्निजदृशोः पुष्यन्नदूष्यां श्रियम् ॥ २ ॥
सेवाऽसौ महतां सतां भगवती जीयाज्जयश्रीपदम्, सर्वाऽखर्वयशःप्रशस्तिसदनं सम्पादनं संविदाम् ।
कन्दः शर्ममहोदयक्षितिरुहः सौहार्दपात्रं श्रियः, सिद्धेः संवननौषधिर्निरवधिर्भाग्यस्य वारांनिधिः ॥ ३ ॥
सेवाया वशतः शतक्रतुपदं प्राप्ता नरोऽनेकशः, श्रीशान्तेर्जगदेकवीरपदवीं प्राप्तस्य मोहाहतेः ।
ताराणामधिपस्य पश्यत जनाः क्रोडे पृषत्याः सुतः, क्रीडत्येष विशेषतः प्रियसुहृत् प्रायः प्रभोः सेवकः ॥ ४ ॥
जाग्रन्मानविमानवासिमरुतां मौलौ कृतालङ्कृति-र्लक्ष्माल्लक्ष्मण एष किं मृगशिशुर्दिष्ट्याऽकरिष्यत् स्थितिम् ।
नासेविष्यत चेज्जगत्त्रयपतिं श्रीविश्वसेनात्मजम्, न स्यात् कस्य महन्निषेवणमहो नूनं महत्त्वाप्तये ॥ ५ ॥
ख्यातं सर्वजनेऽस्ति यन्मृगपतेः सर्वो मृगादिः प्रजा-वर्गः श्वापदपुङ्गवः स तु मतः सर्वस्य सेवोचितः ।
जज्ञेऽत्रैष विपर्ययप्रसुरभूद् देवाभिसेवी मृगो, नित्यं मण्डपमूर्ध्वगो हरिरयं तं सेवते भृत्यवत् ॥ ६ ॥
मूर्तेरासनसंस्थितं द्वयमिदं सिंहीतनूजन्मनोः, प्रत्यासन्नमपि प्रभोः परिचयाद् रंकुं न चाक्रामति ।
तद्वद्व्योमनि चन्द्रमण्डलगतो नायं पराभूयते, सिंहीदेहभुवा स्वयं विजयते सोऽयं प्रभावः प्रभोः ॥ ७ ॥
श्रीमच्छान्तिजिनेन्दुसेवनविधेः प्राप्तं न किं किञ्चलम्, बालेनाप्यमुना मृगेण सहसा भीतिर्निरस्ता हरेः ।
प्रीतिश्चन्द्रमसा बभूव भुवनश्लाघ्यात्मनश्शर्मणः, पावित्र्यं तदहो न किं वितनुते रङ्गत्सतां सङ्गमः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीप्रभुसेवाप्रयत्नरत्नवर्णनाष्टकम् ॥

अत्रान्तरे भाग्यवादी प्रावादीत्—

किं सत्सेवनवर्णनैर्ननु घनैर्मिथ्याकृतैः प्राकृतै-र्दिष्टं शिष्टमनिष्टमेव यदि वादिष्टं बुधैरुत्तमैः ।
विश्वस्यापि सुखासुखाधिगमने वित्तं निमित्तं सदा, पक्षस्यास्य विपक्षबाधकतया जैनागमो जागरी ॥ ९ ॥
दासो दाशरथेः कथं न हनुमान् पाथोनिधिं तीर्णवान्, नोत्खातं दशकन्धरस्य विपिनं किं तेन मूलादपि ।
सीताशुद्धिवचोमृतैर्न शमिताः सर्वाः सुपर्वाग्रहात्, राज्ञो दुस्सहविप्रयोगदहनज्वालाः कराला अपि ॥ १० ॥
नोऽलङ्कारमणी बभूव स पुनर्देशाधिपत्यं जगद्, व्यात्तं नाप्तमनेन भूषणमपि क्षोणीश्वरस्योचितम् ।
कौपीनं न नवीनमालभत तद्भाग्यस्य विस्फूर्जितम्, शुश्रूषा कियदेति का बत कियच्चक्रे वराकी बलम् ॥ ११ ॥
अध्वानाश्रयवान् वियद्रथवरे पादोऽपि चैकस्तथा, वाहाः सप्तनियन्त्रणस्य विषयः सन्दामिनीपन्नगः ।
इत्येवं विषमेऽपि सेवनविधौ बद्धादरः काश्यपिः, केनानूरुरभूद् रवेः प्रियतमः प्रेष्यः सहस्रत्विषः ॥ १२ ॥
भालोद्भूतदृशो भृशोदितबृहद्भानोरदीनार्चिषः, पार्श्वे पन्नगराजसंयतजटाजूटाग्रकूटाश्रयी ।
गङ्गाभङ्गतरङ्गसङ्गमभवक्षोभं दधानोऽनिशं, शीतांशुः प्रभुभालभूषणमयं संसेवते शङ्करम् ॥ १३ ॥

किं तस्य क्षयिता क्षयस्समभवत् किंवा कलङ्कव्ययः, किंवा राहुपराजयः किमथवा नास्ताचलस्याश्रयः ।
किंवा दैन्यदशा दिने दिनपतेस्तेजोभिजन्मागता, तस्मात् किं महदाश्रयेण जयतात् कर्मैव शर्मावहम् ॥ १४ ॥
मिथ्या किं कथनैर्घनैर्मैतिधनैः प्रागेवमावेदितम्, यत्कर्मैव शुभाशुभं समुदितं सम्पद्विपत्कारणम् ।
पारावारपरिश्रये हि सदृशेऽप्याजन्मतो भूभुजाम्, प्रेयांसो मणयो भवन्ति न पुनस्तत्संगताः क्षुल्लकाः ॥ १५ ॥
एके केऽपि लघुं श्रिता अपि जने निष्कम्पसम्पत्पदम्, विश्वश्लाघ्यतमा भवन्ति पृषतः शुक्तिप्रसक्ता यथा ।
तुम्बीजातफलाश्रयेऽपि सरितः पारं व्रजेयुः प्रजाः, तद्भाग्यस्य विजृंभितं विजयते ह्येकातपत्रं भुवि ॥ १६ ॥
किं चानेन मृगार्भकेण भगवत्सेवा विधेया कथम्, कार्याकार्यविवेकरिक्तहृदयतिर्यक्षु मिश्रुः स्फुटम् ।
तत्राप्येष वनेचरस्तृणचरः क्षुद्रः प्रकृत्या पुन-र्भाग्यादेव जिनेन्द्रसेवक इति ख्यातिं परां लेभिवान् ॥ १७ ॥

॥ इति भाग्यसौभाग्यवर्णनाष्टकम् ॥

अत्रोच्यते —

एतत्सर्वमपि प्रमादललितं दुस्तर्कसंपर्कजम्, यन्न्यायानुगबुद्धयः प्रतिपदं सर्वे वदन्त्यादिमाः ।
शम्भोः सेवनया दुरन्तदुरितं दूरे भवत्यङ्गिनो, भाग्यं भूरिविभूतिभाजनमलं जागर्ति कीर्त्या समम् ॥ १८ ॥
वातायोरपि बालको बलमुनेः सेवारसैर्वासित-स्वान्तःकान्तसुधाशनश्रियमतिप्राज्यां समाशिश्रियत् ।
पार्श्वश्रीजिनभास्वदास्यकमलस्यावेक्षणात् तत्क्षणात्, सर्पः श्रीधरणोरगेन्द्रपदवीं चक्रे दविष्ठेतराम् ॥ १९ ॥
आबाल्यादपि पापपङ्ककलुषश्चौरश्चिलातीसुतः, संसर्गात् सुगुरोर्विवेककलितः स्वर्गालयं भेजिवान् ।
दग्ध्वा मोहमहाटवीं पटुमतिर्नित्यं नृहत्यादिकृत्, सत्सेवाभिगमाद् दृढामिहननो निःश्रेयसं जग्मिवान् ॥ २० ॥
भाग्यस्योदयतस्तदेतदखिलं जातं मतिश्चेदियम्, देवस्याथ गुरोः सतः सुमनसः शुश्रूषयाऽस्योदयः ।
योगक्षेमसमानमानय मनस्तर्कं कृतं विस्तरैः, साध्यं सिध्यति सामभिर्ननु तदा किं विस्तृतैः प्रस्तरैः ॥ २१ ॥
सर्वोत्पत्तिनिमित्तमुक्तमियता ग्रन्थेन कर्मैव यत्, तत्सर्वं व्यभिचारभृन्मणिकृताऽगम्यागमादौ कृतम् ।
यो वाऽर्हत्समयः स चापि विशदः कालादिपञ्चाश्रयः, प्रामाण्यं भजते नयेन न पुनः कर्मप्रपञ्चात्मना ॥ २२ ॥
यच्चाप्युक्तचरं मरुत्तनुरुहानूरुक्षपास्वामिनाम्, व्यक्ता भक्तिरपि क्षणादविकलं नासूत पूतं फलम् ।
तत्तेषां मनसामशुद्धिरिति मे जाग्रन्मुखी शेमुषी, यद्वा तत्फलसंभवोऽपि समभूद् भूयान् स हि श्रूयताम् ॥२३॥
पूज्यत्वं जगतां सदाभ्युदयिता देवेषु मुख्यं यशः, शक्तिर्व्योमसमुद्रलङ्घनविधौ विश्वोपकारी भवः ।
दुष्टध्वान्तकृतान्ततारिपुजना सङ्गेऽप्यखण्डाङ्गता, शुश्रूषा महतां शुभा सुरगवी किं किं न दिश्यात् फलम् ॥२४॥
तुल्येऽम्भोधिनिषेवणेऽपि मणिषु क्षुद्रेषु शङ्खेषु वाऽऽभीष्टानिष्टमतिस्तदेतदुदितं स्वार्थस्य लीलायितम् ।
यद्वाल्पत्वबहुत्वयोर्विलसितं ज्ञेयं पुनर्वारिधेः, संसर्गाज्जनतासुपावनमतिः ख्यातैव शङ्खेन किम् ॥ २५ ॥
क्षुद्रो बाल्यवया विवेकविकलः सेवाविधौ निर्बलो, नैतच्चेतसि संनिधेयममलप्रज्ञाधनैः सज्जनैः ।
भक्तिर्भावविशेष एव स गुरौ क्षुद्रेऽपि साधारणो, भावग्राहमहाग्रहा हि विभवस्तुष्यन्त्यणीयस्यपि ॥ २६ ॥

अथैवं व्यवस्थापने लेखपद्धतिः —

एवं समर्थयति सद्गुरुपर्युपास्तेर्जाग्रत्प्रभावविभवं हरिणोऽङ्कशायी ।
यस्य प्रभोस्तमचिरादचिरातनूजं, भक्त्याभिनम्य करुणाचरणाशरण्यम् ॥ २७ ॥

तत्र श्रीमत्सरसिरसिकैरास्तिकैः श्वेतपक्षैः, पूर्णे पूज्यक्रमजलरुहैर्नीतपद्माकरत्वे ।
सेवाप्रौढैर्मनसि हसितः कर्मणा नर्मवादम्, कृत्वा तत्त्वाश्रयणविषये प्रेषयत्येष मेघः ॥ २८ ॥ युग्मम् ॥

*

अथ श्रीमज्जिनराजवर्णनान्तरं क्रमासन्नीभूतश्रीगुरुपादपावनीकरणतीर्थरूपनगरवर्णनप्रस्तावदानाय भाग्यवाचाह –

सत्यमेतदुदितं नु तथापि, काऽपि भाग्यवचनावचनानाम् ।
नास्ति गोचरचरिष्णुरतोऽस्थुः सूरयो लघुपुरेऽपि गुणाढ्ये ॥ २९ ॥
मञ्जरीभिरजिरेऽजनि मञ्जुर्वञ्जुलच्छविरिव त्रिदिवेन्दुः ।
भूरिभाग्यसुलभास्थितसुस्थः, श्रीपुरीति नगरे भगवान् यत् ॥ ३० ॥
भाग्यवैभवभवात् प्रभुयोगात्, श्रीरपीत्युपनता जनतायाः ।
उत्तमा हि वितमा वसुधाऽऽसीत्, सद्रुमा सपदि विद्रुमसारा ॥ ३१ ॥

तद्यथा –

यन्निवासशिखरेष्वखरांशुर्घृष्टवानपि न कश्मलशून्यः ।
पौरयुग्मपरिभुक्तविमुक्ताद्, गन्धधूलिभरमर्दनलेपात् ॥ ३२ ॥
द्वीपतो जलशयादिव भर्तुरागता गुरुपदाम्बुजरागात् ।
श्रीरुपासकगणैः सममत्रात्याहता किमु सधर्मविमर्शात् ॥ ३३ ॥
स्वर्णशैलमभितो भ्रमकर्त्रे, दुःस्थितद्विजवराय चिराय ।
उच्छलज्जलधिवीचिकराग्रैः, सा पुरी वितरतीव सुमुक्ताः ॥ ३४ ॥
एकतो जलधिमध्यजरत्नैरन्यतो विविधशालिवनैः सा ।
नीलवस्त्रयुवतीव विरेजे, स्फारहारमणिमौक्तिकसक्ता ॥ ३५ ॥
उत्थिता जलनिधेरतिलोला, ऊर्मयोऽत्र गुरुदर्शननम्राः ।
अग्रपल्लवकरैस्तटवृक्षैर्धर्मलाभकघनैः प्रतिबोध्याः ॥ ३६ ॥
श्रीगुरोः पदपयोरुहयोगाद्, दैवतोऽत्र कमलाश्रयताऽऽसीत् ।
तेन तद्वहजनस्य न चित्रं, यद्बभूव पुरुषोत्तमभावः ॥ ३७ ॥

अत्रोच्यते –

या प्राकृता द्वीपपुरे स्थितानां, सूरीश्वराणां सुरपत्तने वा ।
स्वल्पाऽपि सेवा ह्यभिवन्दनाद्यैर्वल्लीव सा पल्लविता नराणाम् ॥ ३८ ॥
तदैषमोऽभूत् सुषमा द्विधापि, पुर्यां परदुःषमया न सङ्गः ।
कर्पूरसंग्राहिणि भाण्डमध्ये, नाविर्भवेत् किं स सुगन्धबन्धः ॥ ३९ ॥
लघुर्गुरुः स्याद् गुरुसेवनेन, महान् लघुः स्याद् गुरुलाघवेच्छुः ।
इतीव मन्ये बहुगौरवश्रीर्जज्ञे पुरोऽस्या वरपत्तनेभ्यः ॥ ४० ॥
आदाय चैत्योपरि दण्डकुम्भौ, पताकयाऽभ्रं परिमार्ज्य मन्ये ।
सा पूर्महोत्साहदशां स्वकीयां, सम्यग् लिपीकर्तुमिव प्रवृत्ता ॥ ४१ ॥
श्रीमद्गुरोरागमनेऽङ्गनाभिर्विकीर्णलाजैर्धवलैस्तरद्भिः ।
जहास सोल्लासमसौ पुरीव, प्रवृत्य नृत्ये चलकेतुहस्तैः ॥ ४२ ॥
अस्यां नगर्यां भगवन्निवासे, दानं समभ्यस्य वदान्यलोकात् ।
अब्दे गते विस्मृतमम्बुदोऽस्मिन्, वर्षे भृशं वर्षति सर्वदेशे ॥ ४३ ॥
कुर्वन्ति गुर्वन्तिकबद्धरागाः, श्रद्धालवोऽहर्निशमेव सेवाम् ।
तस्याः प्रभावो भुवनेऽपि तेषां, रेखां यशः प्रापितवान् विशेषात् ॥ ४४ ॥

सतां क्षणादीक्षणमप्यणूनां, सौभाग्यलाभाय भवत्यवश्यम् ।
चान्द्रे सुधाविर्भवनं सुधांशोर्दृष्ट्यैव तत् किं गुरुसेवनायाः ॥ ४५ ॥

अथैवं व्यवस्थापने सत्येतत्पुरकनामज्ञापनाय प्रस्तावयन् भाग्यवाद्याह –

सेवा स्वसेवातिशयाद् गुरूणां, निःसंशयं भासयते सुखानि ।
प्रसाधितं युक्तिपदैस्तदेवं, तथापि वांसाधिगमे तु दैवम्[1] ॥ ४६ ॥
किं वर्ण्यते तन्नगरं गरिम्णो, यस्याभिधैवाभिदधाति रूपम् ।
श्रीगूर्जरत्रावदनसदैव्यां(?), तत्पृष्ठिभागो ह्युचितः प्रतीच्याम् ॥ ४७ ॥
पृष्ठे पटिष्ठेऽप्यबलो बली स्यात्, पृष्ठे विनष्टे सुभटोऽपि बिभ्येत् ।
वासानिवासादिति गूर्जरत्रा[2], स्वस्थानताऽध्यक्षतयैव लक्ष्या ॥ ४८ ॥
वासेति नाम प्रकृतिर्नितान्तं, सहोपसर्गैव[3] बुधैर्निबद्धा ।
स्फुरत्प्रकारा यदि वा विनीता[4], कारेव कौलीनेनिबद्धसख्या[5] ॥ ४९ ॥
भर्तुर्विविक्ताशयनेऽङ्गने वात्युत्कण्टका भूरविबद्धकान्तिः ।
पराक्रमेणैव धवस्य योग्या, भोग्या भुजङ्गैर्बहुभोगरङ्गैः ॥ ५० ॥
पुरस्य सत्यापयितुं किमाख्यां, पृष्ठ्योपजीवी[6] सकलोऽपि लोकः ।
क्षमश्च भारं परिवोढुमुच्चैर्देहेऽहिवत्संहितकृत्तिवासाः[7] ॥ ५१ ॥
सीतानुरागी गहने वियोगी, त्रिकण्टकस्यापि च चूर्णकारी ।
सर्वो जनो दाशरथी रणार्थी, चित्रं पुनः पुण्यजनैः[8] स्वरूपात् ॥ ५२ ॥
अन्यान्यबन्धादिव जातशाखाश्लेषाविशेषात् तरवोऽपि यत्र ।
चौरे च पौरे क्वचनाविभेदः, स्नेहातिरेके किमिहाद्भुतं तत् ॥ ५३ ॥
शमीगणो यस्य वने जनानां, दुर्भिक्षदुःखेषु धृतोपकारः ।
ववर्ष शम्बामिषतो रसालीस्ता एव संजीवनमेष्वभूवन् ॥ ५४ ॥
अहो करीरेऽपि परोपकारीभावः प्रसङ्गान्मनुजस्य यस्य ।
पुष्पैः फलैर्यजनवृत्तिहेतुस्त्रिर्वत्सरे दुर्बलवत्सलः स्यात् ॥ ५५ ॥
छेदैर्विहीने मनुजे करीरद्रुमे च बद्धोत्कटकण्टकास्त्रे ।
रक्षाकरेऽक्षेमकरे विपक्षे, पश्यन्तु सन्तः खलु वत्सलत्वम्[10] ॥ ५६ ॥
विराजिता यत्परितः स्फुरन्ती, नीलाटवी कण्टकिनां द्रुमाणाम् ।
अमातमाशूरभयादियाय, क्षमापतेः किं शरणं पुरोऽस्याः ॥ ५७ ॥
कालः स केलीकलिकालवालः, क्षितेः प्रदेशो बहुवित्तरेशः ।
ग्रामोद्युंसङ्ग्रामरुचिः[11] स्मरामस्तदैव शिष्टिं ननु दुर्निवाराम् ॥ ५८ ॥

अत्रोच्यते –

किं दैववार्ताभिरमूभिरग्रे, दुष्कर्मनर्मापि करोति तावत् ।
यावद्गुरोर्भक्तिरसौ कृपालुर्मच्चित्ततल्पेऽस्ति भृशं शयालुः ॥ ५९ ॥

---

१ वांसालक्षणं दैवं धिगर्थें कूत्सब्दं एतु(?) । २ पक्षे गूर्जरत्रासु अस्थानता । ३ वर्णनपक्षे उपसर्गः उपकारः । ४ नीति उपसर्गं इति चेत्, निवास इति चेत्, कारा इव । ५ कौलीनाम्ना तस्करविशेषस्तत्स्वामिना । ६ पृष्ठवाद । ७ पक्षे ईश्वरावतार इत्यर्थः । ८ धर्मैकः राक्षसः । ९ वस्त्रैः पत्रैः । १० पक्षे वत्सभक्षकत्वम् । ११ षर्णभेस्वर्गं(?) तदभावे प्रत्यहं कलहः ।

जाग्रत्स्वभावादथ तत्प्रभावादुपाश्रयः सर्वगुणाश्रयोऽत्र ।
प्राप्तः समाप्तः सकलोऽनुतापो, द्वीपोऽम्बुराशौ परिमज्जतेव ॥ ६० ॥
यथा त्रिनेत्रं ननु नालिकेरं, दृष्टापि दिष्ट्या तनुते जनानाम् ।
तद्वद्गवाक्षत्रयवान्मुनीनामिहालयः पालयते स्वसङ्गम् ॥ ६१ ॥
पितेव तं रक्षति योऽङ्कमध्ये, प्रासाद उद्यद्रुचिरार्हतोऽस्ति ।
श्रीविश्वसेनाङ्गभुवा सनाथः, पाथःप्रपेवाङ्गिमनोविनोदी ॥ ६२ ॥
यच्चैत्यमासाद्य विशालशृङ्गं, जयत्यदः पत्तनमेव लक्ष्म्या ।
वस्तूनि नाना प्रतिसार्थमस्मात्, पुरः पुरो ढौकयतेऽस्य भक्त्या ॥ ६३ ॥
मन्ये चतुर्दिक्षु चतुर्मुखोऽयमुद्भूय रक्षाकरवत् पुरस्य ।
अहर्निशं विघ्नविघातनाय, बिभर्ति कुन्तं वरदण्डकं(दं?)भात् ॥ ६४ ॥
युधिष्ठिरो भीमरुचिः परेषु, यशोऽर्जुनः श्रीविजयस्य बन्धुः ।
कुन्तानुरागी सहदेवसेवोऽस्त्यत्रोदयात् सिंह इति क्षितीशः ॥ ६५ ॥
गभीरनीरान्तरजैस्तरङ्गैः, सरस्सजत्यत्र तटद्रुबन्धून् ।
तेऽपि स्वशाखापवनैश्च पुष्पैः, सन्तर्पयन्त्येतदतिप्रसज्य ॥ ६६ ॥
वारांनिधिर्मन्थनजातभीतिः, प्रीतिं महारण्यवरेण कृत्वा ।
सदोपसंपद्य पुरं च लङ्काशङ्काकृदस्थात् सरसीमिषेण ॥ ६७ ॥
गवाङ्गणः सर्वदिगङ्गणेषु, प्रातः प्रसारी चरणाय यत्र ।
मूर्तेव कीर्तिर्नगराधिभर्तुः, क्रीडां चरीकर्तुमिव प्रयाति ॥ ६८ ॥

इतश्च—

श्रीमद्गुरूणां करुणाकटाक्षः, पयोदवृन्दं परितस्ततान ।
तद्विद्युता मूर्तिमताऽसिनेव, व्याक्षेपि दुर्भिक्षकरालरक्षः ॥ ६९ ॥
तन्निर्विलीना तरवोऽपि पीना, मीना जले केलिकलां विचक्रुः ।
दीना नदीनामपि गन्धवाहाद्, वाहा इवोत्साहमधुप्रवाहाः ॥ ७० ॥
सन्तापिता भूः खलु वल्लभा नः, क्रूरेण शूरेण करप्रयोगैः ।
इतीव वैराज्जलदोऽपि धाराकैर्ममर्दाम्बुजिनीमुखाब्जम् ॥ ७१ ॥
अन्तर्द्रुमाम्भःसरसश्छलेन, तटस्थमाद्यन्महिषीगणस्य ।
भूभामिनी कज्जलरेखितं प्राग्, विधाय चक्षुः किमिवैक्षताब्दम् ॥ ७२ ॥
मत्ता महिष्यो भुवि पीनपुण्यपयोधराः श्यामतयाऽतिरम्याः ।
दिनाधिनाथेऽम्बुधरेण रुद्धे, स्थाने विचेलुर्विभयं सबालाः ॥ ७३ ॥
विनाम्बरं योगिजने प्रसाद उन्मादसादः खलु विप्रयुक्ते ।
दुर्भिक्षनाशाद् हसितेव पुष्पैर्जातिः पयोवाहसुहृन्ननर्त ॥ ७४ ॥
एकातपत्रे जलवाहराज्ये, प्रसृत्वरे स त्वरतिप्रदेऽस्मिन् ।
उदङ्कुराभूः समभूत् समग्रा वियोगनाशादिव नीलवासाः ॥ ७५ ॥
बभुर्वलीकेषु पृषन्मिषेण, सतां मनोभिः सह निर्मलानि ।
सुभिक्षपक्षक्षितिनाथदेशप्रवेशजातक्षणमौक्तिकानि ॥ ७६ ॥

॥ इति प्रावृड्वर्णनाष्टकम् ॥

अथ समाचारः –

वर्षासु हर्षातिशयादिहैवं, प्रगे मया संसदि सज्जनानाम् ।
स्वाधीयते ह्युत्तरपूर्वशब्दा-ध्यायो निकायः प्रशमोदयस्य ॥ ७७ ॥
श्रीमद्गुरोर्वर्णनयानुषक्तं, व्याख्यायते शान्तिविभोश्चरित्रम् ।
ततो यथार्हं मुनिपाठनाद्याः, क्रियाः क्रियन्ते विधिसावधानाः ॥ ७८ ॥
क्रमेण लब्ध्वाभ्युदयं सुपर्व, सांवत्सरं पर्वशतैः परीतम् ।
श्रीधर्मभूभर्त्तुरिवर्त्तुपट्टे, भोग्यं सदुद्यानमतिप्रसन्नम् ॥ ७९ ॥
जनः समासाद्य जिनाधिराजस्नात्रैर्मुमोचाङ्गमलीनभावम् ।
तद्धर्मकर्मोत्सवदृष्टितुष्टः, शरत्प्रसत्त्या जलदस्तथैव ॥ ८० ॥
गुरूपदेशोद्भरैर्नराणां, प्रशान्तिमायात् प्रतिथानलोऽपि ।
इरम्मदः खेऽपि शशाम नाम, स्थाने मुनेरागमनान्न किं स्यात् ॥ ८१ ॥
दीनेषु दानानि वदान्यलोकः, प्रचक्रमे दातुमिहाक्रमेण ।
तदग्रतो दातुमिवोत्सुकोऽब्दस्तदञ्जलौ स्थापितवान् जलं खम् ॥ ८२ ॥
न्यवारि मारिः पटहात् पशूनां, जनेन संपूर्य धनैस्तदाशाम् ।
जलैस्तदाशाः परिपूर्य सर्वा, जगर्ज मेघोऽपि नृमारिवारी ॥ ८३ ॥
जिनेन्द्रपूजा गुरुवन्दनासु, श्रद्धालुराधाद् बहुवर्णचित्रम् ।
वैकक्षमैरावतमम्बुवाहो, न्यग्भूय पीताब्धिमुनिं निनंसुः ॥ ८४ ॥
क्षेत्रेषु सर्वेष्वपि कल्यशालिः, क्षणैर्यथावापमवाप शोभाम् ।
आकर्णदेशं शिखयेव पट्टावह्या युतः सत्फलसंभवेन ॥ ८५ ॥
प्रतिप्रदेशं क्रमतः प्रसादं, सतां मनोवत्समियाय नीरम् ।
निःपङ्कताऽभूद् भुवने द्विधापि, सन्मार्गचारः कमलोदयश्च ॥ ८६ ॥
निरन्तरायः समवाय एष, पुण्यस्य शस्यो द्युसदां स्थलेऽपि ।
अदीपि दुःपापदशां पिधाय, तच्चेष्टितं श्रीगुरुपर्युपास्तेः ॥ ८७ ॥

अथैवं समाचारसूचनद्वारा सेवाव्यवस्थापने सति क्रमाक्रान्तं श्रीपरमगुरुवर्णनं सूचयन् भाग्यवादी आह –

श्रीमद्गुरोर्गीयत एव भाग्यं, द्विधा सुधर्मासु सता सभासु ।
यस्य प्रभावात् प्रभुताऽद्भुताऽभूत्, तपागणे देवमणेरिवार्च्या ॥ ८८ ॥
सूरीशितुः श्रीविजयादिदेवस्याङ्गाद् गुणानां गणवत्सु मूर्तिः ।
स्फूर्तिं विधत्ते तदयं प्रदीपात्, प्रादुष्कृतो दीप इव व्रतीशः ॥ ८९ ॥
अहो महोभिर्मरुतामधृष्यैर्भालं विशालं बहुभाग्यशंसि ।
प्रत्यक्षमैक्षत एव सूरेः, सुरांशुपूरेण निबद्धसख्यम् ॥ ९० ॥
स्वयंवरां श्रीविजयादिदेवैः, सज्जीकृतां शासनराज्यलक्ष्मीम् ।
लेभे स्वभाग्यात् प्रभुरद्भुताङ्गो, युक्तं यतः श्रीर्ननु वीरभोग्या ॥ ९१ ॥
यदिष्टदिष्टैः करवालधाराप्रायैर्विकालः खलु खण्ड्यमानः ।
नाभूत् सुराष्ट्राविषये प्रसारी, ध्यायेत कस्तं न युगप्रधानम् ॥ ९२ ॥
देवे गुरौ सत्यपि धर्मधीरे, याऽऽसीन्मुनीनां शिवपूरगम्या ।
यस्याधिपत्येऽभ्युदितेऽधिभोग्या, साऽभूदतो युक्तमिहैष वीरः ॥ ९३ ॥

वराकपाका इव केऽप्यशक्ता, अन्तर्बहिः श्यामलतां भजन्तः ।
नूनं यदाज्ञाविमुखा भवेयुः, पराभवा वा सदृढप्रबन्धाः ॥ ९४ ॥
पुण्याढ्यभूभर्तुरिवेशभाग्यं, कश्चिद्द्विपश्चिद् यदि वक्ति युक्त्या ।
तं ब्रूमहेऽशुद्धधियां पुरोगं, क्षोदक्षमो नास्य यतो विमर्शः ॥ ९५ ॥
लब्धप्रशंसो भुवनेऽस्य वंशः, सौन्दर्यमर्यस्य मनोजवर्यम् ।
कलाकलापः सकलातिशायी, धीरेषु रेखा प्रथमा विशेषात् ॥ ९६ ॥
आकस्मिकत्वात् सुकृतोदयस्य, तौल्यं विकल्प्येत विकल्पशिल्पैः ।
वाच्यस्तदोदाहरणे धुरीणः, सविक्रमो विक्रमभूमिभर्ता[1] ॥ ९७ ॥
सौभाग्यकल्पद्रुममञ्जरीयं, डिण्डीरपिण्डीकरणा पयोधेः ।
कृतज्ञतावेणिलताप्रसूनं, गोष्ठीपदं केलिकलन्दिकानाम् ॥ ९८ ॥
श्रीमान् प्रभुर्धार्मिकपुङ्गवानामगण्यपुण्यैर्जनितो विधात्रा ।
वैदुष्यसीमामहसां निधानं, सन्धानभूर्बोधचरित्रयोश्च ॥ ९९ ॥
यद्भाग्ययोगेऽभ्युदितेऽभ्युदीतः, प्रतीतनामा तपगच्छ एषः ।
ज्ञानक्रियाशालिषु निर्विशेषं, सामान्यताध्यक्षतयैव वेद्या ॥ १०० ॥

अत्राहुः – सत्यम् –

किं भाग्यसंवर्णनयाऽनया हि, नयाश्रयात् केवलया बलं स्यात् ।
उपासनाऽप्यस्य गुरोर्गरिष्ठा, पुण्यस्य देवस्य गुरोः कृतेष्टा ॥ १०१ ॥
आबाल्यतो ब्रह्मनिषेवणेन, सूरिर्द्वितीयोऽजनि वज्रसूरेः ।
दूरेः प्रसर्पन् विजितः स्मरस्तत्, स्त्रीभ्रूधनुर्निर्गुणमेव धत्ते ॥ १०२ ॥
दानं प्रकृत्याऽस्य परोपकृत्या, निभाल्य लज्जामलिनोऽवनम्य ।
स्वकण्ठपीठे किमिवाम्बुवाहः, खड्गं तडिद्दण्डमिषादधत्त ॥ १०३ ॥
मन्ये कलेर्भीतमिव प्रतीतं, धन्यानगारादितपःसमग्रम् ।
गुरौ श्रितं बीजमिवाङ्कुरौघस्तस्यैव शीर्षे महसां समूहः ॥ १०४ ॥
गाढानुरक्ता दयितेव सूरेर्जाने दया चित्तमिव प्रविष्टा ।
तत्किं तदीया ननु विस्सरन्ति, भावा विभावानुगताः स्वभावात् ॥ १०५ ॥
अहर्निशं ध्यानविधावधानाद्, भक्तिर्जिने शक्तिरिवाङ्गजन्मा ।
स्पष्टैव निष्टङ्क्यत एव देवे, गुणा गुणेष्वेव रजन्ति जात्या ॥ १०६ ॥
अवास्तवैर्द्रव्यबहुस्तवैः किं, भावस्तवस्यार्थसमर्थनं स्यात् ।
तद्ध्यानलेशोऽभिनिवेशशून्यो, महोदयं प्रापयति प्रसह्य ॥ १०७ ॥
चारित्रलीलाललितैर्मुनीन्दुस्तनोति षट्कायनिकायरक्षाम् ।
तद्विस्मयान्निश्चलशीर्ष एव, क्षमां निधत्ते कलयैव शेषः ॥ १०८ ॥
उपासना स्वीयगुरोरनेन, मुनीन्दुनाऽकारि विकारमुक्ता ।
साक्षी जिनस्तत्र गुरुस्वसिद्धः, स्वात्मा च देवः सकलस्त्रिलोक्याम् ॥ १०९ ॥

[1] 'श्रीश्रेणिकः क्ष्माम्बुजपद्मिनीशः' इति वा पाठः ।

यः स्याद् बहुस्वार्थनिबद्धबुद्धिः, स चर्मचक्षुर्विषयामुपास्तिम् ।
करोति तत्त्वे तु निविष्टदृष्टिस्त्रिधापि तत्राभ्यधिकं हृदेव ॥ ११० ॥
अवामनन्ते न मनोऽखिलार्थप्रसाधने ज्ञानधनैर्निगीर्णम् ।
तपःक्रियाबोधनिरोधनाद्यैः, सिद्धं मनः पारदवत् स्वसिद्धौ ॥ १११ ॥

वयं तु पश्यामः—

श्रीइन्द्रभूतिः प्रथितोऽस्ति शास्त्रे, श्रीवीरसंसेवनकर्मधीरः ।
हेतुं पुनः प्राप्य जनप्रबोधादिकं स दूरे विजहार देशे ॥ ११२ ॥
आदीक्षणाज्जैनपदाब्जसेवी, देवीभिरुद्गीतयशाः सुधर्मा ।
पट्टेशिताऽभूत् स इवैष सूरिर्गुरोरुपास्तेर्ललितं तदेतत् ॥ ११३ ॥
तस्मात् कृतं केवलभाग्ययोगव्यावर्णनैर्येन गुरावनेके ।
कृताश्रयाः सन्ति गुणा यदीडाविधौ विधिर्न प्रभुरुग्रधीमान् ॥ ११४ ॥
तदस्तु वस्तु प्रतिपत्तिहेतुः, सेवैव देवैरपि कांक्षणीया ।
यस्याः स्मृतौ श्रीगुरुराजमग्रे, प्रत्यक्षतो लक्ष्यमिवानमामि ॥ ११५ ॥
एवं विवादे बहुभाग्यलभ्यान्, सभ्यान् परीक्षाकरणे महेभ्यान् ।
नमाम्युपाध्यायगणद्विपेन्द्रान्, श्रीमद्विनीताद् विजयाभिधानान् ॥ ११६ ॥
लक्ष्मीसलक्ष्मीकृतपूर्वलक्ष्मीः, परः स लक्ष्मीविजयः कविस्तम् ।
पयोधरस्पर्धनधीररावं, पार्श्वस्थभावेन बलान्नमामः ॥ ११७ ॥
प्रभोः पदाम्भोजरसोपलम्भाद्, भृङ्गायितं यैः सुधियां वरेण्यैः ।
तान् वादसंवाददृशोऽवनम्रानन्वानतः श्रीरविवर्द्धनाख्यान् ॥ ११८ ॥
लघौ गुरुत्वं च गुरौ लघुत्वं, संस्थापयन्तो भगवन्नियोगात् ।
प्राज्ञा यशस्तो विजयाः सदाराधना धनादेर्विजयाः कवीन्द्राः ॥ ११९ ॥
सतत्त्वतत्त्वाभिनिविष्टबोधास्तत्त्वादिसम्यग्विजया गणीन्द्राः ।
श्रीहेम-सौभाग्य-जयादयोऽन्ये, गणिप्रधाना गुरुसन्निधानाः ॥ १२० ॥
युक्तोऽत्र हर्षाद्विजयेन नाम्ना, तथा जयादेर्विजयाभिधेन ।
गुरुप्रसादाप्तबहुप्रमोदश्रिया प्रमोदाद्विजयाह्वयेन ॥ १२१ ॥
नत्वाऽनुनम्याथ यथार्हमेतान्, गुरोः पुरोऽहं विनिवेदयामि ।
विज्ञप्तिमेतामनुभाव्य सद्यः, प्रसद्य देयं ननु पत्रकं मे ॥ १२२ ॥
पादान्तभाक्त्वेन लघुर्गुरुः स्याच्छन्दस्तदावेदयते प्रमाणम् ।
भाष्येऽपि सिद्धं गुणतः प्रसिद्धे, शब्देन जातेर्विषयी विमर्शः ॥ १२३ ॥ इति रहस्यम् ॥
श्लेषात् क्वचिल्लक्षणया क्वचिद्वा, वैचित्र्यभृत्पत्रपिकाह्वपत्री ।
श्रीमत्प्रभोर्मानसकल्पवृक्षे, विश्राम्यतां रम्यगिरा प्रमोदी ॥ १२४ ॥
पश्चाद् गुरोर्दृष्टिसुधाप्रवाहैराप्लाव्यमानं दलमेव देयम् ।
स्मार्यश्च कार्येषु जिनार्यनामे(?), भुजिष्यमुख्योऽस्त्विति मङ्गलश्रीः ॥ १२५ ॥

तपोगच्छपतिश्रीविजयदेवसूरिं प्रति श्रीविजयसिंहसूरिप्रेषिता

[९] — विज्ञप्तिका —

[आदौ श्रीमहावीरजिनवरनमस्काराः ।]

स्वस्तिश्रीमुद्यदुद्यद्द्युसदधिपनमन्मौलिमौलिस्थरत्न-प्रोत्सर्पद्दीप्रदीप्तिप्रकरझरभरोन्मग्नमूर्त्तिः स्वयं यः ।
चित्रं नानाभवाब्धिर्भवभयसलिलोन्मज्जदङ्गिव्रजेभ्यः, प्रस्फूर्जद्भक्तिभाग्भ्यो जगति जिनपतिस्तारयेत् स श्रिये स्तात् ॥१॥
स्वस्तिश्रीपृष्ठभासः क्रमणनखभुवः सर्वदिङ्मण्डलेषु, प्रांशुप्रत्युग्ररज्जुव्रजवदिव समाकर्षयन्त्यः स्फुरन्ति ।
सद्र्यः किं दत्तुकामाः प्रभवसमरमा अच्छदिग्वैभवस्य, यस्योच्चैर्वश्यभावं नयतु स भगवान् माद्यदन्तर्विपक्षान् ॥२॥

स्वस्त्यस्माभिः समत्वं किमवयवनखैस्तज्जिनेन्दोः पदानां,
लब्धुं शक्नोति साकं स्वदशशतकरैरप्यहो ! व्योमरत्नम् ।
यस्मादन्तस्तमोघा वयमिति च हसन्त्युच्छ[ल]द्भिः करैस्तं,
यत्पादोद्यन्नखौघाः स मयि निजदृशौ[शा] तुष्टिपुष्टी विदध्यात् ॥ ३ ॥

स्वस्तिश्रीसमवायि वीरभगवत्पादद्वयं स्तान्निजाद्वैतध्यानविधानशुद्धमनसां तच्छ्रेयसे भूयसे ।
नम्राखण्डलमण्डलप्रतिफलन्मौलिस्थमौलिस्फुरन्मालालीसुमनोव्रजः किमपि तत्तेजोऽभजद् यद्गुणात् ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीप्रतिबद्धरागरसिका यत्पादकामाङ्कुशाः, प्रोच्चैः स्वीयकरप्रसारकरणैः संसूचयन्तीति किम् ।
अस्मद्वच्चरणाश्रितौ भगवतो ये रक्तचित्ताः स्वयं, ते केनोर्ध्वगतिं भजन्ति सततं निश्छिद्य सद्यस्तमः ॥ ५ ॥
स्वस्तिश्रीरिति यस्य शस्यचरणाम्भोजन्मयुग्माश्रितेः, श्रीरेव प्रतिवासरं समभजत् स्वस्मिन् प्रकृष्टान्वयम् ।
मन्ये तच्च विचित्रकृद्भगवतो यद्भक्तियुक्ताङ्गिनः, सद्यः स्वस्तिसमन्विताः प्रतिभवं भूयासुरस्मिन्न के ? ॥ ६ ॥
स्वस्तिश्रीरिव नः समाश्रयकृतेरासाद्यतां वन्द्यतां, स्वर्लोकादिजगत्त्रयेषु भविनः संवीक्ष्य किं सम्मुखम् ।
जल्पन्तीति करप्रसारकरणाद् यत्पादकामाङ्कुशाः, स श्रेयस्तनुतां सतां स्तुतिकृतां तां तां ततां तां पुनः ॥ ७ ॥
स्वस्तिश्रीर्बहुरूपिणां समभजद् विद्यां यदंह्रिश्रयात्, तद्भक्तिप्रणताङ्गिनोऽनुगमनाद् यस्यानुभावात् स्फुटम् ।
तत्सत्यं यदनेकनम्रभविभिस्तत्पादकामाङ्कुशश्रेणीषु प्रतिबिम्बितैः प्रतिदिनं कैः कैर्न साऽऽसाद्यते ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीपरिभूषिताः प्रतिदिशं यत्सन्नखाभीशवो, दीप्यन्ते किममर्षतस्त्विति सदा रक्तास्तमोध्वंसिनः ।
अस्मद्भक्ति[कृ]तां कथं परिभवत्येतज्जगज्जन्मिनां, स श्रेयोव्रततीततीनवघनः श्रीवर्धमानः श्रिये ॥ ९ ॥
स्वस्तिश्रीप्रतिपूर्णतां तनुमतां दत्तां स वीरप्रभुर्यस्योद्यन्नखराः करैर्दिशि गतैः किं ज्ञापयन्तीत्यहो ! ।
अस्माकं द्युतिनिर्झरेषु विहितैः स्नानैः शुचीभूय भो !, श्रीमन्तः ! प्रतिपद्यतां नतिकृतेः शस्यात्मतां जन्मिनः ॥१०॥
स्वस्तिश्रीस्मितवारिजन्मवदना वक्षःस्थलस्थायिनी, मुक्ताहारलतेव यत्क्रमभवस्फूर्जन्नखानां ततिः ।
तस्याः किं स्फुरदोष्ठसंक्रमणतश्चञ्चत्प्रवालद्युतिर्भाति स्वस्ति तनोतु वः स भगवान् श्रीत्रैशलेयो जिनः ॥ ११ ॥
स्वस्तिश्रीततिसद्मनः परिणमत्क्ष्मापैः स्वयं मूर्ध्नि यान्, धृत्वाऽऽसादि समस्तशस्तकमला दुष्टांहसां च क्षयः ।
लिप्सोस्तत्तुलनां ह्रियोऽपि नहि तेनोकैः पुरस्कुर्वतः, सूर्यं यस्य नखाः करैरिव हसन्त्येवं स वः श्रेयसे ॥ १२ ॥
स्वस्तिश्रीजनकोऽस्तु यन्नखततिर्भास्वत्करैः संनमत्, सन्मौलिं परिमृज्य सम्मुखमिवाऽऽलोक्येति वक्ति स्फुटम् ।
चेदभ्यन्तरदुस्तमोहतिपरास्तन्नः स्वचित्ते स्थितिं, धत्ताऽस्मत्स्थितितः प्रयाति न कुतो यस्मात् तमः सर्वतः ॥१३॥

तस्यास्त्वस्तु जिनेश्वरस्य चरणोद्भूतप्रभूतप्रभा-स्फारीभूतनखोत्करस्य च रवेः साम्यं कुतश्चिद् गुणात् ।
एकं किन्तु समाश्रिता अपि विभामायत्तमोनाशिका, नीचैस्तत्परमाश्रितास्तु नितरामुच्चैर्गतिं प्राप्नुयुः ॥ १४ ॥
स्वस्तिश्रीगरिमागरिष्ठभगवान् सत्पुण्यपुष्टः प्रथं, शिष्टानां श्रयतां सतां यतिमतां तन्यात् प्रकृष्टं(ष्टां) श्रियम् ।
यस्योद्यन्नखरोच्छलत्करभरः पिण्डीकृतस्तर्क्यते, रागः संस्तुवतां जयादिव पदे लग्नोऽस्ति रागोऽथवा ॥ १५ ॥
स्वस्तिश्रिया समधिगम्य यतः प्रसारं, मन्दारतो व्रततिवन्मरुतां प्रजग्मुः ।
सच्छायकायरुचिरः शरणं भवान्तर्भ्रान्ताङ्गिनामिह स मोक्षफलं प्रदत्ताम् ॥ १६ ॥
स्वस्तिक्रमाब्जनखदर्पणमण्डलेषु, यः पश्यति स्ववदनं नतिकृत् प्रभाते ।
श्रीवर्धमान इव कः खलु वर्धमानो, न स्यात् स यन्नयविदुक्तिरनन्यथा स्यात् ॥ १७ ॥
स्वस्तिप्रशस्तपदपद्मपुनर्भवश्रीसंक्रान्तमद्भुततरश्रि विलोकयन्ति ।
पद्मं तडाग इव वक्त्रममर्त्यगौर्यश्चित्रं तदत्र जडतोपचितं न तद् यत् ॥ १८ ॥
स्वस्तिश्रियाऽऽश्रितविशिष्टपदारविन्दद्वन्द्वस्य यस्य जिनपस्य समाश्रयेण ।
आमोदलब्धिरभवन् मधुपायितानां, चित्रं समापि मधुपत्वमहो ! नतैर्यत् ॥ १९ ॥
स्वस्तिश्रियं प्रथयतात् प्रथितां स देवो, यस्य प्रभोर्जगति चित्रकरं चरित्रम् ।
स्वर्वासिमौलिमणिकान्तिजलाशयेषु, स्वस्नानतोऽतिविमलीकुरुते स्म तान् यः ॥ २० ॥
स्वस्तिश्रीभिर्भास्वदस्यांऽह्रियुग्मं, यत् सँस्ताभिः श्रीयते तच्छ्रयेण ।
यद्वद् वृक्षैः सङ्गतेश्चन्दनस्याऽऽमोदाश्लिष्टैर्भूयते नैव कैः कैः ॥ २१ ॥
स्वस्तिश्रीभिस्तत्पदं शिश्रिये श्रा(स्रा)ग्, मत्वा तत्त्वाश्रित्य बाह्यां किमाह्याम् ।
यस्मादस्मिन्नो तदन्या भवान्तर्भ्रान्तिश्रान्तश्रेणिकानां पदाप्तिः ॥ २२ ॥
सत्पादाम्भोजन्मपद्माङ्कितं यत्, तस्मात् तत् स्यात् तन्निधानावलब्धिः ।
युक्तं यत्सान्वर्थसृष्टिर्विधातुर्यद्वल्लोके शीतरश्मिः सुधांशुः ॥ २३ ॥
मन्ये गत्वा तत्पदाम्भोजपद्मा, चौर्यं पद्मं तोयदुर्गं प्रविष्टम् ।
पश्चा[दा]दचौरवत् तत् तदादि, तस्माल्लेभेऽन्तःपुरःस्थायितां नो ॥ २४ ॥
तत्त्रापि प्राप तत्तुल्यभावं, किन्तु स्वस्मिन् दूषणं पङ्कजत्वम् ।
युक्तं यस्माद् यद् यदूर्ध्वं विधत्ते, स्वः सल्लोकस्तत्तथा किं तदन्यत् ॥ २५ ॥
साम्यानाप्तौ स्पर्धितस्याभवत् तत्, पद्मं लब्ध्वाऽगाधपानीयदुर्गम् ।
मत्वा तत्सत्पादपद्मः स्वरूपं, मन्ये जज्ञे कोपटोपात् स रक्तः ॥ २६ ॥
पश्चाद्धृत्वा वज्रचक्रादिचक्रं, तत्पादस्तत् स्वीयलक्ष्म्या जिगाय ।
अप्युच्चैस्तं जाड्यदुर्गप्रभेदं, सल्लोकानां निर्मिमीते तदादि ॥ २७ ॥
तस्मान्मन्ये तत्पदस्यैव भीत्या, पद्मश्रेणिः कम्पतेऽद्यापि नित्यम् ।
गुञ्जद्वायुप्रेरिताङ्गच्छलेन, किं नैजं तं तोयदुर्गं प्रविश्य ॥ २८ ॥
चित्रं चित्रं यस्य सत्पादपद्मो, नीरागोऽपि स्पष्टरागी स्वयं यः ।
भक्त्या नम्रप्राणभाक्षु द्विधाऽपि, तद्धर्ता यत्तद्विशेषाजनानाम् ॥ २९ ॥
तं लब्ध्वाऽपि प्राणभाजो भजन्ते, तन्नः सिद्धिप्रङ्गवासं परत्र ।
चित्राच्चित्रं तत्सतामेति चित्ते, किं वा सन्तोऽचिन्त्यमाहात्म्यभाजः ॥ ३० ॥

किञ्चिन्निजध्यानविधानतो यो, नयँस्त्रिलोकीं निजवश्यभावम् ।
विश्वत्रये यः किल पूज्यतेऽर्हँश्चित्रं स लेभे नहि धूर्तभावम् ॥ ३१ ॥
य उत्तमानामिह मध्यवर्ती, जहाति नो मानसतस्करत्वम् ।
विचित्रकृत् तस्य चरित्रमेतत्, श्रीवर्धमानस्य विलोकयन्तु ॥ ३२ ॥
धत्ते स वज्रप्रमुखान् स्वपाणावपि स्फुटं हन्ति विपक्षपक्षान् ।
निरिछद्य पापानि तथापि लेभे, सिद्धिं स्वयं तत्खलु चित्रकर्तृ ॥ ३३ ॥
चोद्यं कथं मुक्तिपदप्रगामी, भवेज्जिनेन्द्रस्त्रिशलाङ्गजन्मा ।
अद्यापि यावन्महतां मनोभ्यः, स्पष्टं समाप्नोति न यश्च मुक्तिम् ॥ ३४ ॥
चित्तं सतां वासगृहं विधाय, तत्र स्थितस्तद्विमलीकरोति ।
यः श्रीजिनाधीश्वरवर्धमानश्चित्रं तथाप्येष ममत्वभृन्नो ॥ ३५ ॥
यं संस्तुवन्तः पुनरेव निन्दापरायणाः स्वोचितमाप्नुवन्ति ।
शुभाशुभं यच्चरणाद् विचित्रं, स रागविद्वेषहरस्तथापि ॥ ३६ ॥
अगम्यलक्ष्मीरपि योगिनां यो, न दानदाता तदपि क्षमायाम् ।
तदेकरक्तात्मिजनव्रजस्य, चित्रं तथाप्येष समीहितप्रदः ॥ ३७ ॥
येभ्यो जिनाधीश्वरयोगभृद्भ्यः, कदापि नो दूरतरं भवान् यः ।
तेषां न दत्ते निजगम्यभावं, चित्रं स कार्पण्यधरः कथं नो ॥ ३८ ॥
जिनाधिपानां कलनीयरूपं, किञ्चिच्चरित्रं भुवने त्वदीयम् ।
जाग्रन्महिम्नाऽपि निवासगेहं, मनःकृतं यत्परमाणुरूपम् ॥ ३९ ॥
स्वस्तीन्दिरा यस्य सदैव सेवां, तदेकलुब्धा सरसां विधत्ते ।
सच्छङ्ख-पद्मावपि यो बिभर्ति, स्वपाणिपद्मे स तथापि दुर्गतः ॥ ४० ॥
भक्तिप्रगल्भाङ्गभृतां मनोब्धिमध्यं वचोवीचिगणास्तु यन्तः ।
यथा यथा जग्मुरहो ! तथा तथा, चित्रं बभूवेत्यजडाशयं तत् ॥ ४१ ॥

[नानाविधचित्रालंकारमयानि पद्यानि ।]

जनानां विहितामोदं वन्दे श्रीवीरतीर्थपम् । परमश्रीप्रदं देवं दमकाननीरदम् ॥ ४२ ॥ –मुशलबन्धचित्रम् ।
जनय श्रीजिनाधीश ! भववारक ! सन्मत ! । तत्त्वज्ञ ! ज्ञत्वतत्सार ! रसातं तत तं ततः ॥ ४३ ॥ –त्रिशूलम् ।
जज्ञनीतु ततं सातं तत् स मेऽर्हन् ! सदा भुवि । विभुर्दासजगल्लोकः कलोदयिकलायुतः ॥ ४४ ॥ –शङ्खः ।
जम्भजिद् भक्तिभरभाग् यस्य तं संस्तुवे समम् । मतिमन्तमहं मत्यममत्वमतामसम् ॥ ४५ ॥ –चमरम् ।
जगत्तारकविस्तारि गम्भीरवरवाक्चयम् । यशोभरलसद्राजजगद्व्यासततश्रियम् ॥ ४६ ॥ –श्रीकरी । युग्मम् ।
जय त्वं जगदानन्दप्रद ! प्रास्तमहद्भय ! । यन्नप्तः(?) स्तुतिकृद्विश्वदैवतो दममोदरः ॥ ४७ ॥ –हलबन्धः ।
जन्तुजातजयश्रीस्तत्, तन्याद् वः परमं पदम् । दरभूच्छायसङ्घाततरणिश्चञ्चदायत[:] ॥ ४८ ॥ –भल्लः ।
जगदुद्धृतिमातन्यान्न्यायवल्लीपयोधरः । रञ्जितानेकभूपालो गतितर्जितसामज[:] ॥ ४९ ॥ –धनुः ।
जय श्रीकरपङ्कज ! निजामलकुलध्वज ! । जगदुद्धर वीर ! त्वं प्रमदप्रकरं ददन् ॥ ५० ॥ –द्वाभ्यां खड्गः ।
जतुर्जरामहाकंससम्भेदसुरपानुज ! । जलोद्यत्सद्घनारावराजद्गुणभरो जनुः ॥ ५१ ॥ –शक्तिः ।
जन्मिनां मङ्गलव्रातं जनय श्रीविभो ! ततम् । शमश्रीललनाहृसङ्ग ! विश्वविबोधकृत् ! ॥५२॥–छत्रं । युग्मम् ।

जहीहि भगवन्! नित्यं मदं तनु नुतं दमम्। कुरु भक्तियुतं लोकैर्नगधीर! रथीगण! ॥ ५३ ॥ —रथः।
जगतीगतसत्कीर्तिर्जिननिर्जितदुःस्मरः। रक्ष ततोऽरमिद्धी(द्धी?)र, सुमनोमनदत्त स ॥ ५४ ॥ —कलशः।
जप दासे भवोत्तंसपरदानप्रदः सतः। दादी(दा?)नघ! रमादेवौ सेनघनवरप्रभ! ॥५५॥ —अर्धभ्रमः। युग्मम्।
जज्ञे येन वृता सर्वा सद्बुद्धिः सिद्धिगामिनी। भजे तं तप्तदुस्तापतपसं सकलं जिनम् ॥ ५६ ॥ —शरः।
जग्मुर्यस्माद् विपक्षौघा भजेयं भवभेदकम्। कम्बुकण्ठं कलाकम्रं रंकताककं तकम् ॥ ५७ ॥ —मुद्गरः।
जवात् त्यक्त्वा मदं भव्य! भज सन्ततमीश्वरम्। रजनीनाथवदनं गत्वाऽसममतङ्गजम् ॥ ५८ ॥ —वज्रम्।
जडताभेदिपादाम्भोजन्मानं जिनपुङ्गवम्। जनतातारकं वन्दे, जपापुष्पौघपूजितम् ॥ ५९ ॥ —स्वस्तिकबन्धः।
जङ्घास्तम्भयुगश्रीभिर्जितशुण्डां(ण्डं) लसत्प्रभम्। भक्तियुग् भविसम्भारतमोरविकरं परम् ॥६०॥ —ध्वजबन्धः।
कल्याणवत्कान्तकरो जनव्रजकष्टार्त्तिभिन्न्यायकजे विभावसुः।
कल्याणवृन्दानि करोतु निर्भ्रमः, कलायुतः कञ्जकरो नमद्धरिः ॥ ६१ ॥
जयश्रियं चेद् वरितुं समुत्सुकास्तत् त्रैशलेयं भजतां कथं न तत्।
यदीयसत्कीर्त्तिसुपर्वनिम्नगा, निर्माति नित्यं विमलं जगत्त्रयम् ॥ ६२ ॥ —अष्टारचक्रम्।
आनन्दनं जनमनस्तनयेन मान-श्रीनन्दनत्रिनयनं विनतिं नयैनम्।
नूनं जिनं विनयनम्रनरा नरेनं, पीनध्वनद्घनघनस्वनमानतेनम् ॥ ६३ ॥ —२८ दलकमलम्।
सुरनरभरपरशरणं, रदरम्यरमारतारतरवक्त्रम्। सुरवरकारस्करमारहरमरं वरकरं धीरम् ॥ ६४ ॥
स्मरपरवरकरचरणं रतिरकरं दरहरं निरस्तारम्। नरवारपरस्थिरतरपरमारं मारमारहरम् ॥ ६५ ॥ —यमलम्।
विनमे नमतं तेन विनतं नयिनन्दनम्। भिन्नं मानवनं ध्यानस्थानं सन्नयनं जन! ॥ ६६ ॥ —गोमूत्रिकात्रयम्।
मादान्तरायमदनोत्कटदुष्टकुम्भिकुम्भिद्विषन् प्रवरभागतभीतिनीतिः।
नीतिप्रयुक्तनतसङ्गतपाददामादा मानवान् प्रति कुरुष्व जिनेन्द्र सन्माम् ॥ ६७ ॥ —दर्पणः।
संसारापारसारप्रबलसममहाकष्टक(कृ)न्नक्रवास[ः], संयुक्ताम्भोधिसाधिव्रुडदसमनृणां पातृपाच्छ्रीविलासः।
सत्त्वान् पायादपादत्त भव सकुशलस्तारहारप्रकाशः, सर्वज्ञः प्रत्नसातः प्रणतसततसत्सिद्धिसिद्धिप्रदः सः॥६८॥श्रीवत्सः।
श्रीवर्धमानभगवानसमानमानः, श्रीवर्धमानभगवानसमानमानः।
श्रीवर्धमानभगवानसमानमानः, श्रीवर्धमानभगवानसमानमानः ॥ ६९ ॥
इत्थं वर्णनपद्धतिं प्रणयतां नानाविधालङ्कृतिश्रेणीभूषितनैकवृत्तनिवहैरानन्दनं सर्वतः।
नत्वा तत्त्वविदां महोनिधिमिमं सैद्धार्थितीर्थङ्करं, ह्री-श्री-बुद्धिनिवासमन्दिरमहो! सस्फूर्तिकीर्तिश्रियम्॥७०॥

श्रीमहावीरजिनप्रणामकरणपद्धतिः।

*

[अथ यत्र गच्छाधिपतेर्वर्षावासः, तन्नगरीवर्णनम्।]

अथ सा नगरी नरामरासुरसद्विस्मयकारिणी परा। पथिकैः प्रथमं निजागतेरतिथित्वं समनायि चक्षुषोः ॥ ७१ ॥
परिपीय तदेकमन्दिरं, नवनव्यं प्रथमानमुत्सवम्। अपि तैर्जनितं विचित्रितैरिव जीवद्भिरहो! सविस्मयैः ॥ ७२ ॥
वरवर्त्मविवर्तिनस्ततो, विषयीभूतविनोदिवस्तुनः। विशदास्पदमेत्य तां पुरं, परमानन्दपदं विजज्ञिरे ॥ ७३ ॥
तदवेक्षणतः स्वचक्षुषोः, किल निर्माय सुपारणां ततः। पुरि तत्र विमेनिरे निजं, स्थितिमाधाय कृतार्थमागमम् ॥ ७४ ॥
स्फटिकाद्रिसमस्फुटस्फुरत्स्फुटिकागारकराकरैरिव। दधती परिहासिकां तु या, प्रथितायास्तत एव किं दिवः ॥ ७५ ॥
किल तत्र समस्तवस्तु यत्, सकलं तन्नगरे सदूषणम्। सकलङ्कतया त्वनीदृशं, नगरेऽत्रास्ति तदद्भुतत्वभृत् ॥ ७६ ॥
—अर्थतः कुलकम्।

तथा हि–

धनदः पुरि तत्र योऽस्त्यहो !, स पुनः किं पुरुषेश्वरः स्मृतः। इह ते प्रतिसौधमद्भुता, विजयन्ते नवनव्यभोगिनः ॥७७॥
किल तत्र य ईश उच्यते, स च षण्ढः ससुतोऽस्थिमालिकः। इह ते शतशो विरेजिरे, सुपुरोऽनर्घ्यविभूषणं महत् ॥७८॥
न च तत्र तपोगुणाश्रिता, सुमनःपङ्क्तिरहोऽवतिष्ठते । इह सा च तदादिसद्गुणावलिकेलिप्रवरास्पदं मुदा ॥ ७९ ॥
अपि तत्र महत्यहो ! वने, किल पञ्चैव चकाशिरे द्रुमाः। कुसुमैः सुरभीकृतान्तरे, विपिनेऽस्यामपसंख्यपादपाः ॥८०॥
विबुधाधिप एककः पुनः, स तु गोपाभिधया प्रसिद्धिभाक्। इह वासकृतः परःशता, विजयन्ते त उदीत्वरश्रियः ॥८१॥
न गरीयनगरीयसो गुणानिति तस्या अमरावती पुरी। अनुगच्छति किं यदत्र वै, स्फुरति श्रीमहिमा प्रभोर्महान् ॥८२॥
विविधामलरत्नजालयोत्थितब्रह्माण्डहतस्ववेगतः । प्रणमत्करसङ्गतः पुनर्दिवि वैचित्र्यमधाद् यतस्त्वियम् ॥ ८३ ॥
द्युविमानविमानताकृतोऽतिविशिष्टत्वगरिष्ठधर्मिणाम्[1]। स्फटिकोपलकल्पितालयाः, किमु तद्दानजकीर्तयो बभुः ॥८४॥
विधुबिम्बमिलत्स्वमौ[2]···बहुरूपालिकनेत्रताभृतः। [3]स्फटिकाग्रिमविग्रहा गृहाः, किमु नाऽऽपुर्ध्वजगं गयेशताम् ॥८५॥
रविकान्तमयालयाभया, कृतमार्तण्डभिया यया रयात् । वदनं सदनं कुतीर्थिनामदधत् प्रापितभीतिदुस्तमः ॥ ८६ ॥
प्रसृतायतया पताकयाऽऽवृणते चञ्चलया यदालयाः। निजकाञ्चनकुम्भसन्निभं, समवेक्ष्य द्युमणिं स्म लज्जया ॥८७॥
विमलाङ्गभृतां शिरःसु नः, सकलङ्कः स्थितवान् कथं भवान्। इति यन्निलयाः पताकया, ददते चन्द्रमसोऽतिताडनाम् ८८
परमार्थभृतोऽमलात्मनः, सकलङ्का विकलङ्किनः पुनः। निगदन्त इदं यदालयाः, शशिलक्ष्माऽऽवृणते ध्वजोच्छ्रयैः॥८९॥
सततं पुरतश्च पृष्ठतः, प्रसरन्नीलमणीगृहत्विषा । परिचुम्बितदृष्टभूतलास्तृणबुद्ध्या पशवोऽभवन् नताः ॥ ९० ॥
यदगारशिरःस्थगैरिकोद् घटितस्पष्टघटोपलब्धितः । अभवद् द्युमणिभ्रमान्निशि द्युनदीपद्मगणो विकाशभाक् ॥ ९१ ॥
सुदतीवदनानुबिम्बतो, यदगारे विधुबिम्बशङ्कया । कृतपञ्जरसंस्थितिर्दिवा, विकटं कूजति चक्रमण्डली ॥ ९२ ॥
निशि तारकबिम्बितेक्षणाच्छशिकान्तालयभित्तिभूमिषु । कजबुद्धिभृतो न तत्यजुर्मधुपास्तान् धृतवार्मधुभ्रमाः ॥ ९३ ॥
वियदायतवर्त्मगाहनादिव किं स्विद्यति शीतदीधितिः। गलदच्छसुधामिषादिति, व्यजनन् वीक्ष्य यदालयध्वजः ॥९४॥
शशिकान्तजयद्गृहावली, विगलद्वारिझरा बभौ निशि। स्वभया विजयादिवाभवत्, श्रमखिन्ना द्युविमानसन्ततेः ॥९५॥
अत एव किमत्र मीयते, द्युसदैश्वर्यभृता कृता इव। प्रतिबिम्बिततारकोत्करच्छलतः सत्कुसुमौघवृष्टयः ॥९६॥–युग्मम्।
परिकीर्णमणीन् यदापणस्थल इङ्गालधिया व्यलोक्य तान्। ग्रहणोचितविक्रमोऽभवन्नगरे यत्र चकोरपक्षिणः ॥९७॥
गुरुपादविलोकनेच्छया, दिव एत्य द्युपुरी तपस्विनी। अभवत् परिखामिषादसौ, सनिमित्तो हि विधिर्विधेयजः ॥९८॥
क्रमतस्तपसोपलभ्य सा, स्वमभीष्टं पदसेवनादि यत् ।
चलवीचिजलानुबिम्बितच्छलतो नृत्यति किं प्रमोदतः ॥ ९९ ॥ –युग्मम् ।
न चमत्कृदिदं क्षणेऽगुणं, प्रथमे द्रव्यमतार्किं तार्किकैः । प्रथमानगुणा·········[4], सह यद्यत्र जनुर्जनैर्दधुः ॥१००॥
गुणिनां गणनातिगा गुणाः, पुरि यत्र प्रसरन्ति सर्वतः। इव तद्भुव एव कीर्तयः, परिपूर्णेन्दुविभा इवामलाः ॥१०१॥
अपि यत्र च सद्म ईप्सितैः, किल वर्षत्यखिले महीतले। अभवत् समशस्यवस्तुनः, परिलुब्धिसुखिनस्ततोऽर्थिनः ॥१०२॥
अपि राजसमं विरेजिरे, कृतिनो यत्र विशिष्टदीप्तयः । अतिनिर्मलतामिताः पुरीललनाहारसमानसम्पदः ॥ १०३ ॥
जिनशासनमग्र्यभूषणं, शुशुभे यत्र दधज् जनव्रजः । नगरी पुनरेव तं ततो, वसुधामण्डलमेव तां पुरीम्॥ १०४॥
अधिगम्य कलाः सदीप्सितां, किल जग्मुर्यदनेकनागरान्। कमलासुतमित्रमुन्नता, इव सर्वाः क्षितिरुट्परम्पराः ॥१०५॥
अपि यत्र निवासिनः पुनः, सदृशौपम्यमुदन्वतः कुतः। अपि दिक्षु विदिक्षु विसृतं, गुणरत्नैरितरस्य यत्त्वधः ॥१०६॥
नयशास्त्रमनन्यथापदं, जनतोदाहरणान्नयत्यदः । तपनीयमिव स्वशुद्धितां, कषपाषाणपरीक्षणेक्षणात् ॥ १०७ ॥
इति रम्यगुणालिमण्डिता, नगरी नागरनागरीभृता। जयति प्रथिता विचित्रकृत्, स्वभया भूतलवर्तिचेतसाम् ॥१०८॥

1 आदर्शे 'धार्मिकाणां'। 2 आदर्शे पतितमक्षरद्वयमत्र। 3 आदर्शे 'स्फुटि°'। 4 अक्षरचतुष्टयं पतितमत्रादर्शे।

अपि च यस्याम्–

वराकाराः स्मराधारा राजन्ते मृगलोचनाः । कलाकलापराजिन्यो न्यस्तकण्ठैकभूषणाः ॥ १०९ ॥
सारागारावलीचारुरुचाध्वस्ततमोभराः । गुणप्रणयिसद्धाररञ्जितामरमण्डलाः ॥ ११० ॥
रुचिरानेकसद्वस्तुविस्मितानन्तमानसाः । लुलन्मुग्धकनीवक्त्रकान्तिस्मितलसद्दिशाः ॥ १११ ॥
गुणवत्यः स्फुरद्धारा रुचिरद्युतिभासुराः । नानाविहितशृङ्गारा राजत्पीनपयोधराः ॥ ११२ ॥
जयन्ति समलङ्कारास्तेजस्विन्यः कलस्वराः । पुरीगौर्यो मनःसारा लीलया रतिजित्वराः* ॥११३॥
– चम्पकमण्डितसिंहासनबन्धः ।

माराग्र्यशस्त्रस्फुटदीप्तिराजीराजीवनेत्रातिगुणाभिरामाः ।
रामाङ्गनाशीलगुणाः सुरामा रामालिवत्पत्रभृदस्त्यनामा ॥ ११४ ॥ – दर्पणबन्धः ।

यत्राऽऽभाप्रभमन्दिराणि च मही या संशयाऽनेकशो, ऽशोकं श्रीदललद्दशा वितनुते श्रीभाजनं भासिनी ।
तत्त्वातत्त्वविचारसारचतुराली सत्सलीलं सदा, दासश्रीतततत्तदद्भुतमहादानं मुदा तत्त्वभृत् ॥११५॥ –मत्स्ययुग्मम् ।
रङ्गत्कासारसारं जलभरनिभृतं कोककोट्याढ्यनीरं, लब्धानन्तस्य शस्यश्रितिवरममलं सारसानन्दधारम् ।
रत्नौघाबद्धशुद्धप्रसृमरविमलाशोभिसोपानमालं, लग्नोद्यद्भृङ्गव(?)लाद्वरजलजततीराजि राजत्यजस्रम् ॥ ११६ ॥
– श्रीवत्सः ।

यस्यां पुर्यां सदाऽऽरामे नन्दनप्रतिमोपमे । उत्फुल्लकुसुमश्रेणीविकाशितदिगन्तरे ॥ ११७ ॥
सदालवालं किल रत्नविग्रहं, हन्ति प्रसारि स्फुटदुस्तमस्तमम् ।
विभ्राजि सत्काननमद्भुतं तरोः, सानन्दलोकाश्रितमुन्महःश्रि ॥ ११८ ॥ – युग्मम् । शरावसम्पुटचित्रम् ।

यस्मिन् महाहारिगुणो नरौघो, ललत्कलोद्यद्यत नः स सम्पत् ।
चञ्चच्चरित्रः सुसुमालितत्तत् कृताततश्रीपरमेष्ठिपूजः ॥ ११९ ॥
यस्यां सदा दानरुचिश्रिदाढ्या, ससंमदा सत्समरूपपट्टी ।
वरं रमाभा ललना हि नानाशृङ्गाररम्याऽपगताभिमाना ॥ १२० ॥
यत्राऽङ्गनानामसमो महस्वी, गाङ्गाम्बुदीप्रप्रभ एव वर्यः ।
गुणो नरान् सन्ततमोददो दोषभेददत्तादर एष भाति ॥ १२१ ॥
यदिभ्यसंसत्सदनं नगेन्द्रभाभामलश्रीश्रिततारररम्यम् ।
सत्यं त्यजद् ध्वान्तभरं सुशंसं, रराज जम्भारिविमानतुल्यम् ॥ १२२ ॥ – चतुर्भिर्वृत्तैर्नन्दावर्तबन्धः ।
सद्वाससोघप्रविराजमाना, नानागुणौघा प्रति सन्निवासम् ।
सद्वासना सल्ललनाऽस्ति यत्र, त्रपालुरुद्यद्यशसां निवासम् ॥ १२३ ॥ – भद्रासनबन्धः ।

दैवतेन्दुमुखी जिष्णू रामासङ्गः स्फुरद्रुचाः । राजते स्वर्णराजिश्रीर्यत्रासंख्यकलावली ॥ १२४ ॥ – नागपाशः ।
इत्यादिचित्रकलितं यन्नगरं लेख इव विभातितराम् । विविधालङ्कारगृहं विबुधव्रजवर्णनीयगुणम् ॥ १२५ ॥
तत्र श्रीमति नगरे अवरङ्गाबादसंज्ञके नगरे । विविधविलासर्द्धिधरे तातपदन्यासपूततरे ॥ १२६ ॥

[यस्मिन् स्थाने विज्ञप्तिप्रेषकसूरिणा वर्षास्थितिः कृता, तत्स्थानस्य वर्णनम् ।]

अभ्रंलिहानि सुधया धवलीकृतानि, देवाधिदेवभवनानि सतोरणानि ।
नानाविधानि पुरि यत्र विभान्ति सम्यग्, हारश्रियं किल दधन्ति पुरेन्दिरायाः ॥ १२७ ॥

---

* 'तिलकांशुतमोहराः – पाठद्वयम्' इति मूलादर्शे ।

श्रीवर्धमानजिनराजगृहं विभाति, यस्मिंश्च देवकुलिकाश्रितमद्भुतश्रि ।
किं नीतिरीतिविधिमीक्षितुजातकामः, शृङ्गालिमण्डितगिरीशगिरिः समागात् ॥ १२८ ॥
यस्मिंश्च वीरजिनराजगृहे प्रदीपाः, शोभां दधुः पवनप्रेरणघूर्णिताङ्गाः ।
श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्दितुमिच्छया किं, भास्वानिवेत इह कल्पितभूरिरूपः ॥ १२९ ॥

विपक्षपक्षक्षयकार्यदक्षो, विराजते यत्र महीमहेन्द्रः ।
विशेषतो न्यायविधेर्विधाता, स्वीयप्रजापालनबद्धरागः ॥ १३० ॥

तस्मात् कलाशालिजनालिभास्वच्छ्रियं दधानाद् गुणराजमानात् ।
भूभामिनीसत्तिलकायमानात्, **सरोतरा**तोऽनिशलब्धमानात् ॥ १३१ ॥
संयोजितश्चारुसुभक्तिमात्रा, **भावा**भिधानस्य पितुर्निदेशात् ।
औत्सुक्यभूमीपतिशासनेन, निमन्त्रितः सम्मदधीसखेन ॥ १३२ ॥
उल्लासवान् स्नेहभरप्रबुद्धः, प्रमोदसम्पूरितचित्तवृत्तिः ।
उत्कण्ठया कुण्ठकृतप्रमादः, संयोज्य पाणिद्वितयाम्बुजन्म ॥ १३३ ॥

विज्ञप्तिकां वितनुते सुविधिप्रधानामानन्दतो **विजयसिंह**शिशुः प्रबर्हाम् ।
आवर्तकैस्तरणिमूर्त्तिमितैर्विधाय, सद्वन्दनं विनयनम्रशरीरयष्टिः ॥ १३४ ॥

कृत्यं यथोद्गच्छति तिग्मभानौ, जम्भारिदिग्भूधररत्नसानौ । प्रध्वस्तविस्तारितमःसमूहे, सचक्रवाकीसुदमादधाने॥१३५॥
पयोजिनीखण्डितनायकानां, हिमांशुसम्मार्जनकृत्यकृत्यैः । प्रसारितस्मेरतदीयवक्त्रप्रलम्बनैजप्रथितांशुपाणौ ॥१३६॥
माङ्गल्यगीतध्वनिपूरितोद्यद्दिग्मण्डले कूजति पत्रिपङ्क्तौ । बालार्करक्तद्युतिकुङ्कुमौघविलिप्तधात्रीललनाननाब्जे ॥ १३७॥
स्मेरीभवत्पङ्कजपुञ्जगर्भप्रसुप्तषट्पादपदोपघातैः । पतत्प्रभूताद्भुततत्परागसौरभ्यसम्पूरितजीवलोके ॥ १३८ ॥
मृदङ्गभेरीतततालतालीवीणाद्यवाद्यक्वणितप्रसारैः । व्यामोहितानेकसुविद्यविद्याधरव्रजस्तम्भितसद्विमाने ॥ १३९ ॥
घरट्टसंघट्टनपिष्टसक्तुप्रादुर्भवत्सौरभरञ्जुराज्या । स्वसद्मसंसर्पणबद्धरागशश्वत्समाकर्षितपान्थसार्थे ॥ १४० ॥
विनिर्मितस्वस्तिकपूरणायाममात्यभूपालविराजितायाम् । श्रद्धाभिरामप्रवरार्हतार्हतीसम्पूरितायामनिशं सभायाम्॥१४१॥
स्वाध्याये सद्विधिना श्रीमत्**प्रज्ञापना** जिनाभिहिता । विविधविचाररसालाऽभिवाच्यते मोक्षतरुबीजम् ॥ १४२ ॥

व्याख्यानवाचनविधिः **प्रथमाङ्गसूत्र**वृत्तेर्बभूव वरिवर्ति विदां पुरस्तात् ।
अध्यापनं दमिजनेऽध्ययनं स्वयं च, सार्वप्रणीतवरशास्त्रगणस्य शश्वत् ॥ १४३ ॥

योगोपधानवाहनमनिशं तद्योग्यताविशिष्टेषु । सानन्दनन्दिमण्डनपूर्वकमुद्यद् व्रतोचारः ॥ १४४ ॥
इत्यादिधर्मकृत्ये प्रवर्तमाने प्रमोदसन्दोहात् । कृतसङ्केतमिवाऽऽगाद् वार्षिकपर्वापि पर्ववरम् ॥ १४५ ॥
तस्मिन् द्वादशदिवसान् यावदमारिप्रवर्तनं प्रकटम् । षष्ठाष्टमादिदुस्तपतपसस्तपनं विशेषेण ॥ १४६ ॥
दुष्टकुकर्मनिवृत्तिः साधर्मिकपोषणं सुसन्तोषम् । श्रीफलपूगफलाद्यैः प्रभावनाविरचनं लोके ॥ १४७ ॥

महोत्सवाद्वैतनवक्षणेषु, सदिभ्यसभ्याढ्यसमाजिकायाम् ।
गीर्वाणकारस्करकल्प**कल्पसूत्र**स्य वृत्त्या सह वाचनं च ॥ १४८ ॥

गम्भीरशब्दबधिरीकृतजीवलोकम्, वादित्रवृन्दविधिवादनपूर्वकं च ।
नानाविलासयुवतीजनगीयमाने, श्रीजैनचैत्यपरिपाटिकया प्रवृत्तम् ॥ १४९ ॥

इत्यादिधर्मकृत्यं प्रवर्तितं जायते च (स्म) निर्विघ्नम् ।
श्रीतातनाममन्त्रप्रसादतः श्रेयसा सहितम् ॥ १५० ॥

अपरं –

को दुग्धाब्धिभवां बभार समरे कीदृग्भवेद् भाग्यभा, कः कृष्णाग्रजभूः पुनः सुकृतिनः कृत्येषु कां कुर्वते ।
पुण्याङ्गिप्रतिबोधका भगवतः का चन्द्रतुल्यं च किं, प्रद्युम्नरिपुर्जनाः प्रति शिवं गन्तुं वितन्वन्ति काम् ॥
पाश्चात्योऽक्षरयुग्ममुक्तित इह स्याद् व्यस्तमानन्दता,
कुर्वे संस्तुतिगोचरं सुविधिना श्रीमद्गणाधीश्वरम् ॥ १५१ ॥ –षट्पदी ।

॥ श्रीमद्विजयदेवसूरिगुरवे नमः ॥

सकलभूतलमण्डनमद्भुतं, विजयकारिपदद्वयपङ्कजम् ।
भविककल्पितदानकरं सदा, मतिततिप्रकरं करुणाधरम् ॥ १५२ ॥
भविककोककदम्बकभानुभं, जगति विस्तृतवामयशःश्रियम् ।
विमलकोमलकोकनदप्रभक्रमयुगं गजभासुरगामिनम् ॥ १५३ ॥
निजकुलामलपङ्कजकाननारुणसमं समतारससागरम् ।
करणकान्तिजितामरभूधरं, **विजयदेवगुरुं** नुतिमानये ॥ १५४ ॥ –परिधिः ।

कमलाकरकर्तारं भूविस्तृतयशोभरम् । लक्ष्मीलीलासु कमलललत्सत्पाणिपुष्करम् ॥ १५५ ॥
मनोज्ञोद्यत्कलाधारं तन्वन्तं भूरि मङ्गलम् । जन्तुसङ्घातकमलकाननाम्भोजसोदरम् ॥ १५६ ॥
पद्मन्यक्कारिसुकरं द्वयं भाभारभासुरम् । पटिष्ठसद्गुणाधारं जनोद्धृतिकृतादरम् ॥ १५७ ॥
विशदाचारनिकरं करणं प्रणतामरम् । ततकल्कहरं धीरं नरप्रश्नकृतोत्तरम् ॥ १५८ ॥
रम्यानेकगुणागारं दासीकृतनरामरम् । तिरस्कृतद्वेषिवारं तिथ्याद्याराधने परम् ॥ १५९ ॥
कलाभृत्समसत्तेरकमलं सिद्धिकृत्करम् । नाथं कलाचक्रवालरत्नसन्ततिसागरम् ॥ १६० ॥
विस्तारिज्ञानसम्भारं कोमलक्रमपुष्करम् । कर्पूरभररुक्चौरबन्धुरश्लोकविस्तरम् ॥ १६१ ॥
भासुरानेकचतुरभक्तलोकप्रियङ्करम् । गणनाति[ग]सत्सारं विनतानेकनागरम् ॥ १६२ ॥
तप्तानन्ततपोवारं मतिमद्वरबुद्धिरम् । संशयालिरसासीरं **यवनो**द्बोधतत्परम् ॥ १६३ ॥
मदनादिविजेतारं कोपपादपकुञ्जरम् । रत्नत्रितयदातारं कमनीयवचोभरम् ॥ १६४ ॥
दर्शनामोदितापारभव्यभव्यजनोत्करम् । मन्दराचलवद्धीरं गन्धमातृप्रभाकरम् ॥ १६५ ॥
जयश्रीप्रस्फुरद्धारसुभगाभोगभास्वरम् । गात्रसौरभ्यमन्दारनगप्रतिमताधरम् ॥ १६६ ॥
जगत्स्थवस्तुवेत्तारं लावण्यावलिबन्धुरम् । रत्नाकरसुगम्भीरं कष्टाटविदवानलम् ॥ १६७ ॥
कारुण्यजलनेतारं नारीगीतगुणोत्करम् । नयनानन्दधातारमज्ञतानलपुष्करम् ॥ १६८ ॥
मधुकृत्स्थितिसत्तारं रत्नद्युतिनखोत्करम् । सागरोन्मादभेत्तारं रङ्गत्सिद्धान्तसागरम् ॥ १६९ ॥
रसज्ञहृद्द्रुमे कीरं काञ्चनद्युतिवत्करम् । जिनोक्तानुगगीर्वारमभीप्सितपदार्थरम् ॥ १७० ॥
भूतप्रेतनिशाचरलब्धभीत्यभयं करम् । जगज्जनगणाधारं देवदेवीमबोहरम् ॥ १७१ ॥
गुरुतापारकूपारं नुवत श्रीमुनीश्वरम् । मानवास्त्रिजगत्तारं ये समिच्छन्तु मङ्गलम् ॥ १७२ ॥
महानन्दपुरीद्वारं जन्तुव्यामोहकृत्स्वरम् । देशनाभिन्नसंसारं सूरिसन्मौलिशेखरम् ॥ १७३ ॥
गुरुं सर्वार्थविस्तारवेत्तारं हतभीभरम् । [†.............................. ॥ १७४ ॥]

–कङ्कणबन्धचित्रम् । एकोनविंशतिभिः(त्याः?) कुलकम् ।

---

† अत्र सार्धैकः श्लोकः पतितः प्रतिभाति मूलादर्शे(?) । यतोऽग्रेतनस्य श्लोकस्य १७६ इत्येवं क्रमाङ्क उपलभ्यते ।

रसेन नन्दनं सारलक्षणं नरकीर्तिरम् । रक्षकं कमलाकारं रङ्गद्भूषणं स्मर ॥ १७५ ॥

कङ्कणमध्यस्थस्वस्तिक १ चमर २ बीजपूर ३ कमल ४ धनुः ५ स्थपनिका ६ दिचित्रमयश्लोकः ॥

कुमत्युच्छलदर्पकंसप्रणाश !, प्रसृष्टौ मुकुन्द ! प्रबर्हप्रशंस ! ।
ललन्नीतिसद्रीतिकृत्कप्रकीर्त्ते !, भवन्तं स्फुरद्ध्यानमानौम्यशङ्कम् ॥ १७६ ॥
महानन्तभावारिमालाविशालद्रुमोद्भेदमत्तद्विपेन्द्रैकसारा ।
सदा तावकी नाकिनम्य प्रकुर्यात्, सुमूर्तिः प्रशंसापदं मामगम्यम् ॥ १७७ ॥
चकास्ति प्रभो ! प्रास्तसान्द्रामतन्द्रान्धकारा वचश्चातुरी तेऽतिचन्द्रा ।
नमत्सच्चकोरावलीनां प्रमोदप्रदाने हि नक्तं दिवा सावधाना ॥ १७८ ॥
तितीर्षा यदि स्यादपारं विसारं, प्रसारि प्रतिप्राज्ञसंसारनीरम् ।
कथं तन्न भक्तः प्रभोः प्रत्तसंसारपारस्य कन्त(कं त)द्भयालिप्रकप्रः[म्प्रः] ॥ १७९ ॥
भजेयं भवन्तं भवद्दम्भनाशं, भदन्ताभयानाभमायेभसिंहम् ।
महायःस्फुरत्तत्त्वसद्दत्तभासं, विसन्तापमानातिसद्येति भीह ! ॥ १८० ॥

—प्रथममध्यमणिहारबन्धः ।

प्रतिष्ठाप्रकृष्टः सुरैर्वन्द्यपादः, स्फुरत्तीक्ष्णप्रज्ञावताऽगम्यभावः ।
रतीशक्षितीशाभिमानप्रहर्ता, शिवं रातु रम्भासदागीयमानः ॥ १८१ ॥
खरांशुप्रभस्ते प्रभोऽरं प्रतापो, जनाम्भोजखण्डप्रमोदैककारः ।
प्रकाशी यतः सर्वदिक्ख्यातकान्तिर्यतोऽनेकप्रद्वेषिघूका असौख्याः ॥ १८२ ॥
तरी कोपमानाऽस्ति ते श्रीमुनीश !, प्रमज्जत्सतः सन्ततं तारणश्रीः ।
प्रभो ! हृत्पयोजे ममैवं विचित्रं, जडत्वं न प्रस्पृष्टमस्ति त्वयैव ॥ १८३ ॥
हृतानन्तलोकौघपङ्कं मनोजान्धकारापहं संभज ध्वस्तकल्कम् ।
रसायां यतः स्युः स्फुरद्ब्रह्मभाजस्तमोमण्डलं ध्वंसतो नारतीव्रम् ॥ १८४ ॥
जम्भारिमुख्यानतसर्वदेवं, वन्दे सदा प्रास्तकुमानमायम् ।
यमासमश्रीपरिसेविताङ्गं, गतामयं श्रीकरमङ्गभाजः ॥ १८५ ॥
नयश्रियं दारितसर्वकोपस्ततस्वगीर्वारितपापपङ्कः ।
यशोमलः सन्ततवीतशङ्कोऽकोपप्रभुस्तापहरः शिवाय ॥ १८६ ॥
वशाभिगीतोऽवतु सूरिराजो, वन्दारुनॄणां शिववर्धकश्रीः ।
विवर्जितावज्ञजिनावलीनां, वरेण्यसम्बोधिवचःप्रपञ्चः ॥ १८७ ॥—पदकडी ।
तितिक्षाक्षमं प्रीतिगीतं भजामो, जगत्यां रतिप्रीतिकृच्चारुगीतम् ।
तिलोत्फुल्लपुष्पाभरूपस्वनाशासुदीर्घाकृतिन्यक्कृतोद्यत्प्रदीपम् ॥ १८८ ॥
तिरश्चीनमुच्चैः प्रकाशं जगाम, प्रतापैकतिग्मद्युतिस्ते मुनीश !
तथा चेन्न तद्दुस्तमस्तत्कथं भोऽतिनीचैर्गतं दृश्यते तत्त्वतस्तत् ॥ १८९ ॥
तमानम्यतां मुक्तदुर्दम्भमादं, जनौघामितप्रत्तसातप्रमोदम् ।
दरोद्भेदबद्धादरं प्रस्फुरच्छ्रीभरं सम्मदं बोधितानेकविप्रम् ॥ १९० ॥
महासूरिसंसन्मणे ! दम्भभीते, पदं ते समं सेवते यः समोदम् ।
प्रशस्यश्रियो भूरिसत्तिग्मभानुप्रतापी न प्रष्ठा लभेत् कः सुनीतिः ॥ १९१ ॥

नतामानमायानघाले नमस्या, नरस्य(स्ये?)न चन्द्राननश्रीर्नमस्ते ।
असामाद्भुतायागदाले ममास्या, न तस्येह मद्राम्बुजश्रीगभस्ते ॥ १९२ ॥ – द्वितीयमध्यमणिः ।
यशःपूरिताशं तमोनुन्नपाशं, भजामो जयश्रीपयोजैकभानुम् ।
तवांह्रिद्वयं सूरिसत्पञ्चवक्त्रप्रभ ! प्रीणितप्रस्फुरत्सर्वभूप ! ॥ १९३ ॥
रमाभारविस्तारसत्सारकारं, स्मिताशं वरश्लोकसोमैकभासा ।
तपोद्युम्नभाजं हताकामसार्थं, नमस्यामि तं संहरन्तं विशङ्काम् ॥ ॥ १९४ ॥
तनुश्रीप्रभो ! ज्ञानदानं विशालं, मयि प्रत्ततन्वस्त्वधैर्यासमान ! ।
महामोहमत्तेभनाशप्रकृष्ट !, द्विपारेः समक्रीडितस्वस्तिवास ! ॥ १९५ ॥
कपाटाभवक्षःस्थलं राजमान(नं?), स्फुरत्कीर्तिकम्रं सृजन्तं गतारा(र)म् ।
सुलोकावलीं संश्रये रञ्जितोद्यज्जनौघं वसुस्फारसद्दीप्तिभारम् ॥ १९६ ॥
कुकर्ममत्तद्विपदन्तिशत्रुर्महद्धनिः कामितकामकुम्भः ।
रङ्गद्गुणोऽमन्दमुदः प्रकुर्यात्, तमःप्रहर्ताऽमितमोहभेत्ता ॥ १९७ ॥
– मध्यमणिद्वयमण्डितवृत्त३पदकडीकलितहारबन्धचित्रम् ।

कुशलकमलासम्यक्चन्द्राननातिलकप्रभ ! । प्रवरनखरप्रख्यातश्रीप्रवर्द्धकरव्रजः ॥ १९८ ॥
यतितततिपतिः सन्तं ततं ददन् प्रमदं प्रति । नयनुतं परं सातं कान्तं नमत्सकलासुर ! ॥ १९९ ॥
– दवरककाव्यम् ।

नयेऽहं तरुणीगीतवरानन्तयशोभरम् । रङ्गद्घनाघनारावं तं नुतिं धीरतानगम् ॥ २०० ॥ – मुशलम् ।
नमस्यं श्रीकरं सत्त्वचित्तेप्सितमरुन्नगम् । गणतातानगन्तारारतागं सुममंसुगम् ॥ २०१ ॥ – त्रिशूलं । यमलम् ।
नंनममत्यसा पापं सापारश्रीदमच्छगम् । गच्छमंदम्भसम्भाररम्भागर्जदनेकपम् ॥ २०२ ॥ – शङ्खः ।
नय त्वं तपसा पञ्चप्रमाददनोऽज्ञपः । परमः ससमत्वश्रीश्रीसम्भारं रसज्ञ ! ॥ २०३ ॥ – श्रीकरी ।
नमस्तमस्तमक्षिप्रभेदतत्पर ! नैकप ! । परपद्मापरम्परापरास्पद पदापत ॥ २०४ ॥ – चामरः ।
नतमादं महोधामापमानारामयाऽस्ति तम् । तत्त्वभृत्त्वां महद्ध्यानं भजे महत्सु साहसम् ॥ २०५ ॥ – हलः ।
न मानखिन्नयामोदं परमार्थप्रदैनसः । सदा क्षयंकरामन्ददमनन्ददयाप्रद ! ॥ २०६ ॥ – भल्लः ।
नन्दार्कप्रप्रभादक्ष ! स्तुत्येष्टप्रकरप्रद ! । दमिमानद ! सत्पादतुष्टिपुष्टी भवज्जन ! ॥ २०७ ॥ – धनुः ।
नयसद्व(द्ध?)नकं दानसदागदविनाशन ! । नमामि त्वां सतां शर्मप्रदं परमसत्पन ! ॥ २०८ ॥ – द्वाभ्यां खड्गः ।
नमन्नरवराधाममतिप्रशमभृन्मन ! । नरानन्दद ! जीयास्त्वं यावारप्रकरानम ॥ २०९ ॥ – शक्तिः ।
न सममहं प्रकामं नवीमि समनिर्भरम् । मम सद्दंहतापायं महन्मद्रप्रदाभय ! ॥ २१० ॥ – छत्रम् ।
नरौघाभिनतो वाम ! यमनाममनामयम् । यत्नतो हर सूरीन्द्र ! दमभाररभामद ! ॥ २११ ॥ – रथः ।
ननु भानुसमीज्ञानगुणवद्गुरुतास्पद ! । दमी ननदरः कंजनयनो जय सच्छमी ॥ २१२ ॥ – कलशः ।
नम मीमं न दामीमं मनमानद ! निर्भ्रमी । मीमाभतारयो निन्दा मंनतानन्तरं दनम् ॥ २१३ ॥ – अर्धभ्रमः ।
नतवासवनाङ्गन ! नगेनासमधीरतः । नरधीप्रद सद्दान ! नदा संगम्यवातन ! ॥ २१४ ॥ – कमलम् ।
नमन्तु वरविद्यादिप्रदं कम्रसुलोचनम् । नराश्चञ्चद्गुणं तं श्रीविष्टरारामतासमम् ॥ २१५ ॥ – शरः । – त्रिभिर्विशेषकम् ।
नव्यनिन्दां कजस्यासं घ्नन्तं च सकलं तमः । मदमद्यमहामन्ददमधामसमं नम ॥ २१६ ॥ – मुद्गरः ।
नक्षत्रदमिभिः क्लृप्तचक्षुःसर्ववरोद्गमः । मङ्क्षिन्दुरिव निर्भिन्द्याद्दुस्तमस्ततमीश ! नः ॥ २१७ ॥ – वज्रम् ।
नन्दिं वितनु सद्ध्यानिन् ! नद्धमाशु तमोगणम् । नराणां हर सद्रीतिनयशर्मप्रदः सदा ॥ २१८ ॥ – स्वस्तिकः ।

नदीव सारवाग्ज्ञाता तेऽमला कामदुर्मदान् । दीनो हन्त्येव यत्पङ्कान् संसारशङ्करस्वर ! ॥२१९॥ – पताकाबन्धः ।
तं श्रीमन्तं महस्विप्रवरमभिनुमः सर्वदा दत्तसातं, तत्त्वं पञ्चप्रमादक्षम ! नम नमं नो दिशन्तं नितान्तम् ।
तत्तच्छ्रीदं परार्थप्रद ! ससमगुणं सप्रसर्वं सुकान्तं, रङ्गज्जम्पत्पतत्सद्दननमयदमी नंनमन्मं न दारम् ॥ २२० ॥
– परिधिकाव्यम् । एभिश्चित्रैर्विंशतिदलकमलबन्धचित्रम् ।

सतां मुत्प्रकरोपारिभिद्रं भुवि गतालयः । दत्तां निस्तारकृद्भव्यगुणैस्तारतरोरुकः ॥ २२१ ॥
श्रीमन्मुनीन्द्र ! पापानि, छिन्द्याद् भुवनमण्डन ! । भक्तिनिर्भरसद्भव्यवन्दितांह्रिसरोरुहः ॥ २२२ ॥
– नागपाशबन्धः ।

ससम्मदमुदा तारं नूनं मां कुरु रञ्जक ! । यशोधःसुनुताधीतिकारः सन्याययादरः ॥ २२३ ॥
यतनाश्रीर्हरा नाऽद्यारजभोघमदानिह । नयतत्तमहो ! रम्याभापरो निर्दरस्तु वः ॥ २२४ ॥
जगत्तादमने भावं हतप्रयासधीवर ! । प्रत्तमानय मन्दारप्रभ ! स्वश्रेयसं ददन् ॥ २२५ ॥
जय सद्व्रतसन्नानामन्दश्रीद ! महन्मुने ! । रादाभानानावद्यारहरनूत ! जनप्रभो ! ॥ २२६ ॥
मायाघकुसुमं रुग्धी दारवं निर्जरं हकम् । प्रणयन्तं यशोमन्तं धनतत् सुयमं नुमः ॥ २२७ ॥
हन्ता दारधी रम्याऽतिप्रभाकाभपरस्वर ! । सत्श्रेणिन्यायदो यः स रयादनु ददन् वरम् ॥ २२८ ॥
– युग्मम् । परिधिः ।

कञ्जपादद्वयाम्भोजश्रीकृताम्भोजसज्जयम् । संवरारिसमाभासं सस्फूर्तिश्रीकलाभृतम् ॥ २२९ ॥
तत्त्वाधारं गजेन्द्राभगमनश्रीप्रधारकम् । कष्टाम्भोधिनिमज्जन्नृतारणैकतरीप्रभम् ॥ २३० ॥
नागगुणकलावामं दम्भदावाग्निवारिदम् । श्रीमुनीशं स्फुरज्ज्ञानं दरवारनिवारकम् ॥ २३१ ॥
कलसं मरुतां कामं कामिते कर्ममर्महम् । प्रणमन्मानवानां मुद्दायकं नायकं सताम् ॥ २३२ ॥
राजमानं तपःश्रीभिर्नेमुषां विहताघकम् । कलधौतप्रभोद्यत्श्रीभासुरं महिमाकरम् ॥ २३३ ॥
नाराचभ्रूलतं मानारभेदविहतादरम् । यां प्रति प्रगतश्लोकं वर्णितग्रन्थपेटकम् ॥ २३४ ॥
कन्दगर्जद्रवं मोहभिदं कन्दर्पशङ्करम् । तिग्मभानुस्फुरदनूनप्रतापश्रियं सदा ॥ २३५ ॥
जगज्जनगणाधारं तपस्विव्याधिवारकम् । कथितानन्तसन्मार्गं प्रभूतविजयश्रियम् ॥ २३६ ॥
भोजभानतभूपं माकुशलारामनीरदम् । घनतीर्थकदम्बैकयात्रासुविधिकारकम् ॥ २३७ ॥
कजश्रेणिसमश्वासं प्रकाशितमहागमम् । तपागणपतिं भीरुयनिर्भयदायकम् ॥ २३८ ॥
दासीभूतसुरश्रेणिं धीरसङ्घातततायकम् । कदर्थितमहाकोपं वरचन्द्रसमाननम् ॥ २३९ ॥
निरवद्यतपोभाजं कलया कलयाश्रितम् । हंसाभगमनश्रीभी रञ्जितानेकलोककम् ॥ २४० ॥
करुणाजलधिं विप्रदत्तधर्मं सुमानिनम् । विच्छिन्नप्रबलापायं शोकभूधरवज्रिणम् ॥ २४१ ॥
यशस्विगुणविख्यातं तत्रादिजयकारकम् । कच्छपोन्नतपादाब्जमरुणाधरपल्लवम् ॥ २४२ ॥
ततप्रदत्तसद्बोधं सुन्दराकारमण्डितम् । तथैव कृतसिद्धान्तं नयशास्त्रादिधारकम् ॥ २४३ ॥
कमनीयमहान्यायं भवभ्रान्तहतश्रमम् । नखश्रेण्युच्छलद्भानुं तारस्वर्णमणीकरम् ॥ २४४ ॥
हरिवर्ण्ययशोभारमष्टदुष्कर्मभेदकम् । कलिकालेऽपि गरिमदायकं सर्वशङ्करम् ॥ २४५ ॥
रक्षाकरं जनव्याधीतिध्वंसकरणे परम् । याचकावलिसङ्गीतं लक्षणान्वितमूर्तिकम् ॥ २४६ ॥
कदनच्छेदकं क्षिप्रं तन्वन्तं दिक्षु सत्प्रभाम् । संहरन्तं जगच्छङ्कां रत्नद्युतिरदप्रभम् ॥ २४७ ॥
परोपकरणे दक्षं भट्टारकविशेषकम् । कल्पितत्वच्छरण्यानां स्वर्गापवर्गसौख्यदम् ॥ २४८ ॥
लक्ष्म्यालीविशदावासं न्यायसिन्धुनिशाकरम् । निन्दावल्लीकुठाराभं श्रेयस्ततिविधायकम् ॥ २४९ ॥

कलाशालिमहापायचाणूरैकमुरच्छिदम् । गणाधीशं जगद्ध्येयं यानरत्नं शिवाध्वनि ॥ २५० ॥
ललितप्रस्फुरद्वाचं संकीर्तीकृतनारकम् । कमलोपमपादाब्जं दलभीत्यपहाभिधम् ॥ २५१ ॥
तुष्टचित्तः ससम्मोदं रञ्जितो मुखदर्शनात् । वन्दामि श्री**स्थिरा**सूनुं दर्शनस्य प्रभावकम् ॥ २५२ ॥
गतप्रत्यागतरीत्या परिधित्रयराजितं ९६ दलकमलबन्धचित्रम् । २४ कुलकम् ।

तपगणकमलविकाशनदशशतकिरणैकसममहं वन्दे ।
श्री**विजयदेव**सूरिं कामितवरकामकुम्भनिभम् ॥ २५३ ॥—इयं परिधिः ।

तमपथदशशतकिरणं पञ्चजनव्रातशरणसमचरणम् । गणसिन्धुशीतकिरणं नवपातकपङ्कभरहरणम् ॥ २५४ ॥
कमलैकतुल्यचरणं मदरेणुमरुत्समानताधरणम् । लब्धिविधिनीतिकरणं विश्वामण्डलविभाकरणम् ॥ २५५ ॥
कारुण्यासममवनं सम्पूर्णप्रवरशीतकरवदनम् । नयनविभावरनलिनं दर्शनस(सं?)मोदिताङ्गिजनम् ॥ २५६ ॥
शशधरकरवरसुगुणं संसारस्यैकतारणं तरणम् । तपनीयचारुकरणं कितवदिवान्धैकवरतपनम् ॥ २५७ ॥
खगर्जत्सजलघनं नैकमहःश्रीनिवासपदनलिनम् । काष्ठौघकंसभेदनसंवररिपुजनकतुल्यगुणम् ॥ २५८ ॥
मदमत्तमहावारणमतङ्गजारिं मनोभवेशानम् । हंसगमनासमानं वरतेजःपादपालिवनम् ॥ २५९ ॥
देवीविगीतगानं श्रीमद्गुरु**विजयदेव**नामानम् । विद्याक्षितिरुहकाननजलदसमानैकमहिमानम् ॥ २६० ॥
यतनाविधाननिपुणं देशनया रञ्ज्यमानमघवानम् । वचनरचनासमानं सूरिसमज्यारमाभरणम् ॥ २६१ ॥
रिक्तीभवदभिमानं कासारसमं महोजले तूर्णम् । मिषभेदविधिविधानं तन्त्रादिवशीकृतौ निपुणम् ॥ २६२ ॥
वर्णितशास्त्रार्थगणं रम्यरमानिकरकेलिवरभवनम् । कार्श्यं गतततकदनं मन्दरगिरितुल्यमहिमानम् ॥ २६३ ॥
कुमतिमदमृगमृगेनं भज भो जन! प्रवरसूरिराजानम् । निजविद्योतितजननं भक्तमनोवनकुरङ्गेनम् ॥ २६४ ॥
इन्द्राणीमनमोहनयशःसमूहं प्रसारिसज्ज्ञानम् । पण्डितसंशयहरणं रिपुगणसम्भेदिसद्ध्यानम् ॥ २६५ ॥
—४८ कमलदलम् । १२ कुलकम् ।

नवीमि सूरिराजानं ब्रह्माण्डसुयशोऽवधिम् । कल्पितानल्पदातारं सुराचार्यलसन्मतिम् ॥ २६६ ॥
नन्दितानेकराजानं स्वस्तिश्रीश्रेणिसन्निधिम् । नुवामि दमिनां नाथं निर्मलाचारराजिनम् ॥ २६७ ॥ —कर्णिका ।
श्रीमन्तं विगलद्भीतिं विशदस्वर्णवद्द्युतिम् । जगद्विस्तारिसत्कीर्तिं यशोजितनिशापतिम् ॥ २६८ ॥
देवप्रशस्यसज्ज्ञातिवंशाकाशदिवापतिम् । सूरीन्द्रं विस्फुरन्नीतिं लिपिचञ्चुकृतस्तुतिम् ॥ २६९ ॥
श्रीपर्णपर्णसद्वर्णं **स्थिरराजस्य** नन्दनम् । राजन्मोहितनाकीनं गणस्थगणतारणम् ॥ २७० ॥
जन्तुसार्थकृतज्ञानं माननिष्पाद्यकारणम् । नुवामि सत्कलापीनमगण्यगुणधारिणम् ॥ २७१ ॥
—कमलोपरि चमरद्वयम् । ४ कलापकम् ।

कौककैककककाकंकोकुककेकांककांककः । ककुक्ककिकांकाकोककंककाककः ॥ २७२ ॥ —एकव्यञ्जनचित्रम् ।
आनमेनममानामं नमन्मुनिमनूननम् । मुनीनामेनमुन्मानिन्! मुने! नेना अनाममम् ॥ २७३ ॥ —व्यञ्जनद्वयचित्रम् ।
तत्तत्तां तनुतां तातानन्तानन्तेन तानतम् । ततनीति तते तेनानननूनेति तां ननु ॥ २७४ ॥ —व्यञ्जनद्वयचित्रम् ।
ममोद्दाममहाकाममदहामम ते नमः । सद्दासममविनमन्! मर्त्यानाममहागम! ॥ २७५ ॥
—बीजपूरादि ९ चित्रमयश्लोकः ।

इत्थं सतां चित्रकरैः सुचित्रैः, स्तुवन्ति साध्यासुरमानवौघाः ।
यान् पूज्यपादान् सुराजपूज्यान्, शिवाप्तये वाञ्छितऋद्धिवृद्ध्यै ॥ २७६ ॥

गतप्रमादैरपि सत्प्रमादैर्वक्त्राब्जसन्तर्जितशीतपादैः ।
तैस्तातपादैरवधारणीयोपवैणवं भक्तिभृतो नतिर्मे ॥ २७७ ॥

प्रमोदपात्री पृथुहर्षदात्री, सम्यग्विधात्री हितहेतुमात्री ।
कल्याणकर्त्री निखिलार्तिहर्त्री, कृपैकपुत्री गुणपङ्क्तिधर्त्री ॥ २७८ ॥

इत्यादिगुणविशिष्टा सौवाङ्गारोग्यकथनचारुतरा । पूज्यैः प्रसादनीया त्वरितं प्रतिपत्रिसितपत्री ॥ २७९ ॥
किञ्च ममानुप्रणतिः प्रसादनीया प्रसादमासाद्य । श्रीतातचरणपङ्कजसेवनधन्यात्मनां शमिनाम् ॥ २८० ॥
तत्रत्यानां वाचककुलकोटिकिरीटरत्नतुल्यानाम् । निरवद्यहृद्यविद्याविशारदानां विमलधाम्नाम् ॥ २८१ ॥
वैयाकरणसुतार्किकसैद्धान्तिकपङ्क्तिलब्धशोभानाम् । परमोपकृतिरतानां विद्याधनदानधनदानाम् ॥ २८२ ॥
श्रीतातपादपादाम्बुजसौरभलीनचित्तवृत्तीनाम् । श्रीकुशलसागराणां सद्धर्मविधानकुशलानाम् ॥ २८३ ॥
लाभाणन्दबुधानां प्रशस्तसत्तर्कतर्कनिपुणानाम् । श्रीपूज्यपादसेवाविधानसंलब्धश्लोकानाम् ॥ २८४ ॥
मानादिमविजयानां मुनिजनशिक्षाक्षणैकदक्षाणाम् । मुनिचन्दविजयनाम्नां विधुहाससमानगमनानाम् ॥२८५॥
षे(क्षे)मयुतविजयनाम्नां सुलेखलिखनादिकृत्यदक्षाणाम् । सदुदयविजयगणीनां काव्यरसास्वादविदुराणाम् ॥२८६
अभिरामरामनामकविजयगणीनामनिन्द्यवृत्तीनाम् । सुमतिमतिविजयनाम्नामनेकमुनिकोटिशस्तानाम् ॥ २८७ ॥
चारित्रसागराणां दर्शनचारित्रसद्गुणधराणाम् । कल्याणसागराणां कल्याणसमानकान्तिभृताम् ॥ २८८ ॥
नययुतनयविजयानां प्रभुपादाम्भोजभजनचित्तानाम् । कर्पूरपूरचञ्चलयशस्विकर्पूरविजयानाम् ॥ २८९ ॥
गणिहीरसागराणां हीरोज्वलहारि[सु]विशदरदानाम् । सुदयाद्यपदाभ्यर्थितसागरपदनामधेयानाम् ॥ २९० ॥
सुविनीतविजयनाम्नां सुविनेयविनेयपङ्क्तिप्रतिष्ठानाम् । कृष्णपदयुक्तविजयाह्वानानां तातकृत्यविदाम् ॥ २९१ ॥
कमलाणन्दगणीनां कोमलकमलाभवदनकमलानाम् । विजयाणन्दमुनीनां पठनोद्योगप्रधानानाम् ॥ २९२ ॥
मुनिविजयसागराणां सारस्वतपाठपठनचञ्चूनाम् । सुविशालसागराणां मुनिविस्मयकारिवचनानाम् ॥२९३॥
शान्तेर्विजयमुनीनां चीवरवरकोशरक्षणपराणाम् । लालादिमविजयानां मुमुक्षुसन्तोषणपराणाम् ॥ २९४ ॥
सुप्रीतप्रीतिसागरनामकदमिनां गणित्वयुक्तानाम् । शैक्षकउत्तमसागरनाम्नामाह्लादितान्यधियाम् ॥ २९५ ॥
षष्ठाष्टमादितपसो विधायकानां सुपार्श्वविजयानाम् । गणिवरमतिविजयानां गोचरविधिसावधानानाम् ॥२९६॥
मुनिगजसागरनाम्नां जयादिविजयाभिधानसाधूनाम् । रत्नत्रयसत्यापनकुशलानां रत्नकुशलानाम् ॥ २९७ ॥
चाम्पश्री-प्रेमश्री-सहजश्रीप्रभृतिसाधुसाध्वीनाम् । नत्यनुनती प्रसाद्ये अत्रत्यानां मुनिजनानाम् ॥ २९८ ॥

प्रीतेर्विमलबुधानां रोहाभिधग्रामवेदमासकृताम् ।
लालकुशलाख्यविदुषां शिष्याध्यापनप्रवीणानाम् ॥ २९९ ॥

गणिहस्तिविजयनाम्नां ऋद्धिसोमाभिधानशमिनां च ।
सत्यादिमविजयानां सिद्धेर्विजयाभिधानानाम् ॥ ३०० ॥

दीपाद्विजयमुनीनां गणिदर्शनविजयसंज्ञकयतीनाम् ।
उदयविजयाभिधानां सुमुक्तिपदयुक्तविजयानाम् ॥ ३०१ ॥

दर्शनविजयगणीनां हर्षादिमविजयसंज्ञकगणीनाम् ।
गणिवीरकुशलनाम्नां जीताद्विजयाभिधानानाम् ॥ ३०२ ॥

वीरादिमविजयानां शिवपदसंयोजनाप्तविजयानाम् ।
लक्ष्मीविजयगणीनां रविविजयानां गणित्वजुषाम् ॥ ३०३ ॥

कुशलादिमविजयानां लब्ध्यादिमकुशलसंज्ञकमुनीनाम् ।
ऋषिलाडिकाख्यदमिनां देवर्ष्यभिधानधातॄणाम् ॥ ३०४ ॥

मुनिविजयसोमनाम्नां चाम्पर्षेर्वृद्धिविजयदमिनां च ।
वृद्धिविमलाख्यशमिनां विद्याविमलाभिधानस्य ॥ ३०५ ॥

इत्यादयः ससङ्घास्ते प्रणमन्ति प्रभोः क्रमान् । †································ ॥ ३०६ ॥

विद्वेषिमार्जारभयप्रणाशी, प्रेक्षावतां रञ्जतु मानसानि ।
नवाङ्कषट्कैरवबन्धु१६९९वर्षे, दीपालिकापर्वणि लेख एषः ॥ ३०७‡ ॥

॥ इति श्रेयः ॥



* * *

† अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धः पतितः प्रतिभाति मूलादर्शे । ‡ मूलादर्शेऽत्र ३१० क्रमाङ्को लिखितो लभ्यते । ततो मध्ये कुत्रापि ३ पद्यानि पतितानीति ज्ञायते ।

श्रीमेरुविजयगणिप्रेषिता

[१०] — विज्ञप्तिः । —



स्वस्तिश्रीः क्रमपङ्कजं क्रतुभुजां राजीभिरभ्यर्चितं, भव्यानामपुनर्भवप्रतिभुवस्तस्य प्रदिश्यात् सदा ।
यन्मूर्धानमलञ्चकार चिकुरश्रेणीमिषेणोल्बण-व्यालः किं वदनेन्दुमण्डलवचःस्वच्छामृतेच्छादधिः ॥ १ ॥
आबाल्याधिगमाद् वयं प्रणयतो मूर्धानमारोपिताः, सौभाग्यैकभुवो बभूम भगवान् कस्मादकस्मादथ ।
अस्मान्नाशयतीत्यसातवशतः श्यामानवेक्ष्येव तान्, केशान् मूर्धनि किं दधौ व्रतविधौ कारुण्यपुण्योदधिः ॥ २ ॥
स्वाहाभुक्प्रभृतिं चतुर्विधगतिं त्यक्त्वा व्रतादानतो, मूलादुद्धनितावशेषविषमद्वेषादिदोषाङ्कुरः ।
वर्तिष्ये सततोच्चपञ्चमगतावेवं किमावेदयन्, स्पष्टं मुष्टिचतुष्टयेन कृतवान् लोचं कचानामसौ ॥ ३ ॥
समस्तसुरसुन्दरीदलितनेत्रनीलच्छटा-कटाक्षलहरीजलस्नपितपादपीठस्थलम् ।
तमाप्तमुकुटं जटानिशितखड्गखण्डीकृत-प्रचण्डमदनद्विषं मनसि कृत्य नित्योदयम् ॥ ४ ॥

—श्रीऋषभजटामुकुटवर्णनम् ॥

यत्राऽभ्रंलिहशम्भुपुङ्गवगृहप्रोत्तुङ्गशृङ्गप्रभा, शुभ्रादभ्रविभूतिविभ्रमवती वेल्लत्पताका बभौ ।
पूर्णस्वर्णघटो यदीयनिकटे प्रष्ठप्रतिष्ठां दधावम्भःकुम्भ इवाऽभ्रवर्त्मसरितो मुक्तः प्रतीरस्थले ॥ ५ ॥
यत्राऽभ्रङ्कषपौरुषोत्तमगृहे गौरीगुरुस्पर्धके, शृङ्गारोपितरौप्यकुम्भविलसत्केतूत्प्रभूतप्रभौ ।
जानीमः समवेक्ष्य दक्षतनयाधीशान्तरिक्षापगे, ह्रीतै प्राविशतां महानटजटाजूटाटवीकोटरम् ॥ ६ ॥
अस्ति स्वस्तिमती मदीयतनया पद्मालया सम्प्रति, क्रीडन्ती प्रतिराजपत्कजरजःपुञ्जेन पुण्यीकृते ।
द्वीपेऽस्मिन्निति मूलतः कलयितुं वार्तामुदन्वानिव, प्रैषीत् स्वोत्कलिकां कलङ्कविकलां यच्चैत्यकेतुच्छलात् ॥ ७ ॥
किं निर्लज्जतया विपर्ययरतिं निर्मापयन्तीं जगत्, प्रत्यक्षं समवेक्ष्य नीरनिधिना सार्धं नभोनिम्नगाम् ।
ह्रीता कीर्तिकनी मुनीशितुरसौ चिक्षेप गोप्तुं तयोरूर्ध्वं प्रावरणं यदाप्तशरणे विस्तीर्णकेतुच्छलात् ॥ ८ ॥
धत्तेऽतिधौतकलधौतविनिर्मितो यत्प्रासादसंस्थितघटः प्रकटप्रतिष्ठाम् ।
किं व्योमवर्त्मगमनश्रमखिन्नभास्वदश्वाननान्निपतितोज्ज्वलफेनपिण्डः ॥ ९ ॥
यस्मिन् विहारहरिणाङ्कविभासिकुम्भ-दम्भेन यन्निहितकेतनकोमलाङ्गी ।
प्रासूत नूतनमिवाण्डमखण्डमेतत्, श्रीसूरिभासुरयशस्तरुणप्रसङ्गात् ॥ १० ॥
यस्मिन् विहारशिखरस्थितशातकुम्भ-कुम्भं निभाल्य तरुणीस्तनकुम्भयुग्मम् ।
व्रीडानिपीडितमशुक्लमुखं विधाय, नंष्ट्वा प्रविष्टमिव कञ्चुलिकान्तराले ॥ ११ ॥
यत्रोच्चकाञ्चनशिलोच्चयदर्शनीय-प्रासादशृङ्गनिशिताग्रशताङ्गभङ्गात् ।
मध्यन्दिने दिनकरस्त्वरया प्रयाति, भीतो न विष्णुपदमध्यभुवं गतः किम् ॥ १२ ॥
अभ्रंलिहार्हद्गृहतुङ्गशृङ्ग-संयुक्तमुक्ताफलपङ्क्तिराभात् ।
यदङ्गनावक्त्रविधेर्दिदृक्षा-व्यग्रा ग्रहाणामिव मालिकेयम् ॥ १३ ॥
यस्यां पुरि स्मेरमुखीमुखाब्ज-राजीसमुज्जृम्भितकान्तिनिर्जितः ।
तेने तपःश्वेतघटच्छलादिव, च्छायाभृदर्हत्सदने तदात्मये ॥ १४ ॥
यदङ्गनामङ्गलकेलिगीतनिर्ह्रादतृप्ताऽर्पयति स्म तासाम् । सारङ्गराजी निजदृक्सरोजश्रियं किमु प्रत्युपकारहेतवे ॥१५॥

भवेदमीषां दिविषद्द्रुमाणां, चैतन्यमन्यच्च मरुन्मणीनाम् ।
तदाऽऽनुयातां कथमप्यमू यत्, श्रद्धावतां दानसमानभावम् ॥ १६ ॥
यत्पर्वतप्रतिमवप्रशिरस्समाने, वैडूर्यसूर्यमणिराजिविराजमाने ।
अभ्राङ्गजागमननिम्नगयोर्विधत्ते, भ्रान्तिं मिथो मिलितयोर्मिलदंशुजालः ॥ १७ ॥
गौरीव सेवितमहाव्रतिसन्निधाना, सुस्वामिकामजननी विजयासमाना ।
वामभ्रुवां भ्रमति पङ्क्तिरितस्ततो यत्, पौरी परं स्फुरति चित्रमिदं न चण्डी ॥ १८ ॥
यस्या गुरुः स्तनभरो विभवोऽपि भास्वांस्ताराकलापि विपुला जघनस्थली च ।
छायाभृदङ्गलतिका स्मितलोचनेयं, यस्मिन् व्यधायि विधिना दिविषन्मयीव ॥ १९ ॥
गोत्रान्तकर्ता दिवि देवभर्ता, न यत्र कुत्रापि कदाचिदासीत् ।
लङ्कानगर्यामभवन्निवासः, कीनाशराशेर्न तु यत्पुरान्तः ॥ २० ॥
सत्सन्निधानोपवने वियोगो, न गीयते भोगिजनेषु यस्मिन् ।
चिरं सरोगा विहगा यदीया, न केऽपि लोकाः क्वचिदप्यभूवन् ॥ २१ ॥
पङ्क्तिः सपत्राकृतिरंह्रिपाणावारामभूमावभवन्न यस्मिन् ।
सदैव देवायतने विषादी, श्मशानवेश्मेव परं न पौरः ॥ २२ ॥
तत्र बुधमधुपचुम्बिततत्रभवच्चरणकजरजःपूते । श्री**द्वीपबन्दिर**महासरोवरे घनरसाकुलिते ॥ २३ ॥
जयति नगरीनारी विश्वेशितुर्विशिखामुखा, विविधविपिनोद्यानश्रेणिप्रवेणिविराजिता ।
सुकृतनिरतस्वान्तश्रद्धावदार्षविलोचन-द्वितयसुषमा चक्षुष्या या जिनालयनासिका ॥ २४ ॥
सद्दानमानमहनीयगुणाभिराम-श्रीधामधार्मिकविभूषितमध्यभागात् ।
सम्मर्दकर्दमविमर्दमघर्मरश्मि-श्रीवीतरागसुगुरुस्मरणैकरागात् ॥ २५ ॥
सौभाग्यभाग्यपरभागपरागराजी-राजीवमानवनिवासविभासमानात् ।
तद्-**देवपत्तन**पुरादसुरारिनारी-सब्रह्मचारिरमणीरमणीयगानात् ॥ २६ ॥
सन्नीतिरीतिविनयावनतोत्तमाङ्ग-विन्यस्तहस्तपरिदर्शितभक्तिभावः ।
आयल्लकोत्पुलकिताङ्गलताविभागः, प्रह्लादमेदुरमना विनयस्वभावः ॥ २७ ॥
निर्मापितग्रहपतिप्रमितप्रणामं, विज्ञप्तिकापुटकिनीमयमेकचित्तः ।
भक्त्यावतारयति वर्णविशिष्यमाणां, शिष्याणु**मेरुविजयः** सनयस्तथा हि ॥ २८ ॥
यस्मिन्नाशु विशप्रसूतविकसत्कोशादिवाऽऽकर्षति, स्फूर्जत्तिर्यदभङ्गभृङ्गरमणीश्रेणीमिषेणारुणः ।
निस्त्रिंशं स्वकरैस्तमोरिनिकरान्निघ्नन्तुमभ्युद्यतस्तेजस्वी द्विषतां श्रियं न सहते स्वस्याऽऽधिपत्ये सति ॥ २९ ॥
आरूढे सरसीरुहां परिवृढे प्राचीनपृथ्वीधर-प्रस्थे श्रीभुवनप्रबोधनविधिप्रारम्भकुम्भे शुभे ।
प्रातस्तत्र जरज्जपासुमनसां राशिप्रकाशे दिशां, सर्वासां विहसन्मुखेष्वनुदिनं कृत्यं यथाऽस्मिन् पुनः ॥ ३० ॥
पर्षद्यमर्षमुषि हर्षमुषि प्रसिद्ध-श्रद्धावदिभ्यजनराजिविराजितायाम् ।
श्री**पञ्चमाङ्ग**वरसूत्रपवित्रवृत्तेर्व्याख्याकृतिः सुकृतिनिर्मितहृत्प्रसत्तेः ॥ ३१ ॥
सन्देहवृन्दवनकर्तनकर्कशास्त्र-शास्त्रानुयोगभवनं मुनिमण्डलीनाम् ।
हृद्योपधानवहनं सदुपासकानामङ्गीकृतग्रहपुषप्रमितव्रतानाम् ॥ ३२ ॥
चातुर्यतुर्यनियमोच्चरणप्रवीण-सानन्दनन्दिभवनं भवनं रमायाः ।
इत्यादिधर्मिजननिर्मितधर्मकर्म, सञ्जायते स्म दिवसं प्रति जायते च ॥ ३३ ॥

किञ्च प्रमोदपदवीपथिकीकृताङ्गित्राते निवारितपरस्परवैरभावे ।
पर्यायतो विदितपर्युषणाभिधानपर्वण्यखर्ववरपर्वसुपर्वशैले ॥ ३४ ॥
आसीन्नवक्षणनवक्षणकल्पकल्पश्रीकल्पसूत्रपरिवाचनमादरेण ।
नानातपस्तपनमप्रतिमप्रभावपूगप्रदानमसमानजिनार्चना च ॥ ३५ ॥
चैत्ये जिनाधिपतिसप्तदशप्रकारपूजाविधानविमलीकृतबोधिवृद्धिः ।
श्रीजैनशासनगुणग्रहणप्रवीणनिःशेषमार्गणगणद्रविणप्रदानम् ॥ ३६ ॥
साधर्मिकैः सुमनसा विहितान्यतुच्छ-वात्सल्यकानि कलिकश्मलनाशकानि ।
इत्यादिपर्वसुकृतानि कृतान्यविघ्नं, श्रीपूज्यपादचरणस्मरणप्रसादात् ॥ ३७ ॥

[अथ श्रीपूज्यवर्णना –]

अखण्डगुणमण्डलीकलितकीर्तिसीमन्तिनी-वशीकृतजगत्त्रयीमनुजपूज्यपादाम्बुजः ।
जयत्यमरभूधरस्थिरतरप्रतिज्ञाधरः, स्मरस्मयशिवाधवः प्रवरसाधुवृद्धश्रवाः ॥ ३८ ॥
किमिव देव ! तव प्रमुखं मुखं, समवलोक्य विधुर्विधुरोऽभवत् ।
भ्रमति भीतवदेष तिरोभवन्नभसि दुर्दिनमध्यगतो यतः ॥ ३९ ॥
असमसौम्यगुणेन भवन्मुख-प्रतिमतामुपगच्छतु चन्द्रमाः ।
क्षिपति किं नु स बाह्यगतं तमस्तनुमतां मनसि स्थितमप्यसौ ॥ ४० ॥
ननु निपीय तवाऽऽस्यवचःसुधां, विधुसुधां विदधुर्विबुधा मुधा ।
समभवन्निव शैवलवल्लरी, तदुपरि स्फुरदङ्कमिषेण तत् ॥ ४१ ॥
किमिदमद्भुतसम्पदहं न वा, समवलोक्य मुखं भगवंस्तव ।
इति परीक्षितुमङ्कमिषात् करे, हिमकरो मुकुरं किमचीकरत् ॥ ४२ ॥
यतिपते ! त्वदतुच्छमुखच्छविं, किमु निशम्य हिमद्युतिरद्भुताम् ।
मलिनतां वहति स्म तमामसौ, वपुषि लक्ष्ममिषादमुखोदयात् ॥ ४३ ॥
सुविधिना विधिना विधुमध्यगां, किमु सुधां परिगृह्य विनिर्ममे ।
तव मुखं प्रमुखं कथमन्यथा, भवति चिह्नमिदं तुहिनद्युतेः ॥ ४४ ॥
भुवि भवद्वदनेन समं हिम-च्छविमवेक्ष्य गतं प्रतिपक्षताम् ।
मृदवलिप्तकरः स्थविरः क्रुधा, प्रहरति स्म किमङ्कमिषादिमम् ॥ ४५ ॥
यदि सितद्युतिमण्डलमन्वहं, वहति निर्मलमुत्पलयामलम् ।
विकचलोचनयुग्मभवन्मुखोपमितिमेति तदा कथमप्यदः ॥ ४६ ॥
सदृशतां भवदास्यशशाङ्कयोर्हृदि विचार्य विरञ्चिरचीकरत् ।
किमुपलक्षितुमैन्दवमण्डलेऽचलकलङ्कमिषादुपलक्षणम् ॥ ४७ ॥
शशभृतं कृतवानिव तावकाननविनिर्मितये प्रतियातनाम् ।
शतधृतिः समतामवगाहते, कथमिदं भृशमस्य न चेदिति ॥ ४८ ॥
यदाननेन्दोः स्फुरदंशुजालविलासदासीकृतदर्पणस्य ।
सहस्रचक्षुः किमभूदभूतपूर्वं हरिर्द्रष्टुमभीष्टरूपम् ॥ ४९ ॥
यस्याऽऽस्यमासीन्ननु पुष्पदन्तयोर्द्वयोस्तुलामाकलयद्गुणालिभिः ।
उन्मीलितानल्पकलामृणालिनि, विद्वच्चकोरस्पृहणीयमूर्तिमत् ॥ ५० ॥

शङ्के मृगाङ्कोऽप्यवलोक्य यन्मुख-श्रियं विशिष्टामटति स्म विस्मितः ।
इतीक्षितुं वस्तु किमस्ति वा न यत्, समानतामर्हति यन्महीतले ॥ ५१ ॥ –मुखवर्णनम् ।
सम्पूर्णपार्वणनिशामणिवर्णनीय-ज्योतिष्मदष्टदिशि यस्य यशोऽभिगीतम् ।
जानीमहे मनुजखञ्जनलोचनाभिः, श्रोतुं प्रजापतिरभूदयमष्टकर्णः ॥ ५२ ॥
विमलीकुरुते वसुन्धरां, प्रसरन् यस्य यशोमहोदधिः । इह यत्र सुधांशुमण्डलं, शुशुभे पाण्डुरपुण्डरीकवत् ॥ ५३ ॥
सुरनिकरकराग्र्यव्यग्रचामीकराद्रि-क्षुभितजलधिमध्यस्पर्धिवर्धिष्णुरोचिः ।
गगनतलकुवेलेऽनर्गलं खेलति स्म, प्रतिदिनमिह यस्य श्लोकलीलामरालः ॥ ५४ ॥
तैः सुप्रपञ्चितचरित्रगुणप्रवीणैरस्तोकशोकविषयव्यवसायरीणैः ।
तातैः प्रसादितनिजाङ्गपरिच्छदाङ्गवार्त[र्ता]प्रवृत्तिकलितं प्रतिपत्रमीहे ॥ ५५ ॥
तातेन तेन मुनिमानवसेवितेन, तुष्ट्यै शिशोः शशभृतेव कुमुद्वतस्य ।
सद्यः प्रसद्य निरवद्यहृदा प्रसाद्या, पत्री प्रसत्तिकलिता वरचन्द्रिकेव ॥ ५६ ॥
श्रीतातपादैः प्रगतप्रमादैर्महाप्रसादैर्मुनितिग्मपादैः । त्रिसायमंशुप्रमिता नतिर्मेऽवधारणीया गणिपुङ्गवैश्च ॥ ५७ ॥
ब्रह्माण्डमण्डलसरःप्रसरच्छरदिन्दुकीर्तिकुमुद्वनाः । श्रीकनकविजयवाचकसरोजिनीजीविताधीशाः ॥ ५८ ॥
विहितगुणमणिपरीक्षणविचक्षणाभरणसत्यसौभाग्याः । अवगतधर्माधर्मस्वरूपकविधर्मचन्द्राश्च ॥ ५९ ॥
श्रीदेवविजयकवयः श्रीमत्पूज्यक्रमाब्जविशदवयाः । सन्मूर्तिकीर्तिविजया विशारदद्विजपतिप्रतिमाः ॥ ६० ॥
वरसुमतिसुमतिकुशलाः कुशलाः पाखण्डखण्डने मुशलाः ।
कुंअरविजया गणयः प्रवीणजननलिनदिनमणयः ॥ ६१ ॥
निर्मितवैयावृत्त्या गणयः श्रीखीमविजयनामानः । सद्बुद्धिऋद्धिविजयाभिधानगणिरोहिणीरमणाः ॥ ६२ ॥
लावण्यपुण्यवसतिश्रीमल्लावण्यविजयनामानः । श्रीसौम्यसोमवदना गणयः श्रीसोमविमलाश्च ॥ ६३ ॥
निरमर्षचतुरहर्षप्रकर्षगणिहर्षविजयनामानः । सन्मानदानगानप्रधानमुनिमानचन्द्राह्वाः ॥ ६४ ॥
नीलोत्पलदलदर्शनगणिदर्शनविजयनामधेयाश्च । सद्भावभावविजया मुनयः प्रतिपन्नवरविनयाः ॥ ६५ ॥
सद्धर्मधर्मविजयाभिधानमुनयः प्रधानगुणनिधयः । विलसद्गुणमणिरोहणधरणीधरसाधुगुणविजयाः ॥ ६६ ॥
तेजस्वितेजविजया मुनयोऽपि च मेघविमलनामानः । सिद्धिविमलाभिधानाः कल्याणप्रवरसौभाग्याः ॥ ६७
साध्वीश्रीरूपाई-सुनयश्रीलालबाइसाध्व्यश्च । राजश्री-सहजश्री-चाम्पासाध्व्यश्च वरसाध्व्यः ॥ ६८ ॥
इत्यादितातपादप्रसादनारसिकसाधुसाध्वीनाम् । प्रणमत्यनुनती मे, शिशोः प्रसाद्या कृपावद्भिः ॥ ६९ ॥
इहत्याः किञ्च कवयः श्रीलब्धिविजयाभिधाः । शान्तिविजयनामानश्चारित्रविजयाभिधाः ॥ ७० ॥
सूरविजयनामानः सत्यादिविजयास्तथा । मुनीन्द्रविजयाह्वाना वेलाकूलस्थिता अपि ॥ ७१ ॥
श्रीमत्पण्डितलावण्यविजयाः प्राप्तसज्जयाः । चन्द्र-वीरादिविजयौ रविविजयनामकाः ॥ ७२ ॥
इत्यादिकाः प्रशमिनः सकलश्च सङ्घः, श्रीपूज्यपादगुणगानविधानदक्षाः ।
कुर्वन्ति तातचरणाम्बुरुहप्रणामं, सर्वंसहानिहितमस्तकपुण्डरीकाः ॥ ७३ ॥
विद्वन्मनोयुवविनोदपदप्रचारा, श्लेषप्रगल्भरससारवचःप्रपञ्चा ।
चेतश्चमत्कृतिकरी हरिणेक्षणेव, पत्री मुनीश्वरकरग्रहणं करोतु ॥ ७४ ॥

['अस्य लेखस्याऽऽद्यन्तकाव्यद्वयं गतं ज्ञायत इति ज्ञेयं ज्ञानविद्भिः ।'–इति आदर्शे टिप्पणिः ।]

॥ सं० १७४१ वर्षे श्रीभुजनगरे श्रेयः सर्वसङ्घस्य ॥

तपोगच्छाधीशश्रीविजयसेनसूरिं प्रति महोपाध्यायकीर्तिविजयप्रेषिता

[११] — विज्ञप्तिपत्रिका —

॥ ऐं नमः ॥ श्रीविजयसेनसूरिगुरुभ्यो नमः ॥

स्वस्तिश्रीर्भजते भवार्णवभयं हर्तुं क्षमाधीश्वरम्, श्रीपार्श्वं प्रवरप्रियङ्गुसदृशं ज्योतिःप्रकर्षं मुदा ।
आबाल्याज्जिनपेन येन कृपया निष्कास्य सत्स्वेच्छया, भोगीन्द्रं ज्वलनात् शठेशकमठो दूरीकृतोऽज्ञानवान् ॥१॥
स्वस्तिश्रीसहितं फणीन्द्रमहितं पद्मावतीसेवितम्, निःशेषाङ्गिजनेप्सितार्थकरणे चिन्तामणीसन्निभम् ।
पार्श्वं पार्श्वपतिं प्रणौमि परमप्रीत्या पदं सम्पदाम्, किं कल्याणमयं स्वकीयरुचिरक्षेत्रप्रभापेशलम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीः सुरराजराजिरचितार्चासञ्चयं सच्छ्रियम्, भूमीनायकमश्वसेनतनयं सुश्रेयसे शिश्रिये ।
स्वीयं प्राणपतिं जनार्दनमिति ज्ञात्वा च हित्वा द्रुतम्, संसाराश्रितजन्तुजातकरुणाप्रारब्धचित्तोदयम् ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रीनिकरं समस्तभविकश्रेयस्करं सत्करम्, लावण्यैकसरोवरं भजत भो ! पार्श्वं जिनाधीश्वरम् ।
आधिव्याधिहरं हिरण्यसदृशक्षेत्रप्रभाभास्वरम्, भास्वत्कान्तिभरं मनोज्ञपयसा सन्तर्जितो मे स्वरम् ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीर्वरवारिवाहतनुभाप्राग्भारसंशोभितम्, सेवासक्तमनाः सना श्रयति यं श्रीपार्श्वपार्श्वेश्वरम् ।
मत्वात्मीयपतिं जडाश्रयमिति त्यक्त्वा च शर्मेच्छया, सर्वोत्कृष्टगुणाश्रयं शिववधूकण्ठैकहारोपमम् ॥ ५ ॥

स्वस्तिश्रियाश्रितमनोज्ञपदारविन्द, सौवर्णवर्णवरकोमलकायकान्तम् ।
सल्लोचनद्वयपराजिततारपद्मं, श्रीमारुदेवमनिशं भज भूरि भूत्यै ॥ ६ ॥
स्वस्तिश्रिया कलितमञ्जुलदेहरूपं, श्रीनाभिभूमिरमणीरमणाङ्गजातम् ।
सेवे सदा सकलवाञ्छितशर्ममर्मसम्पादनैकसुरभूरुहरूपरूपम् ॥ ७ ॥

स्वस्तिश्रीसहितस्य यस्य वृषभश्चिह्नच्छलात् सेवते, विज्ञप्तिं करणाय पत्कजमिति कारुण्यपुण्याम्बुधे ! ।
तिर्यक्त्वं मम दुःस्थितस्य सहसा दूरीकुरु त्वं प्रभो !, विश्वे विश्वजनव्रजेप्सितमहानन्दौघसम्पादकः ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीर्वृषभादितीर्थपगणं संशोभमानप्रभम्, श्रीमन्तं प्रणिपत्य भक्तिवशतः संयोज्य हस्तद्वयम् ।
निःशेषातिशयाभिरामतटिनीप्राणाधिराजेश्वरम्, प्राज्याल्हादविवर्धनैकरजनीप्राणप्रियं नायकम् ॥ ९ ॥

श्रीगौड-चौडादिकदेशमुख्यम्, समस्तलक्ष्मीललनानिवेशः ।
तिरस्कृतानेकसुरादिदेशः, श्रीगूर्जरो भाति वरप्रदेशः ॥ १० ॥

तत्रैकदेशे वररायदेशः, सद्धर्मपक्षैककृतप्रवेशः । निराकृतानेकनिशाचरेशः, सन्यायकक्षीकृतसर्वदेशः ॥ ११ ॥
विराजते यत्र पुरं प्रधानमिलाभिधानं कमलानिधानम् । विशालवापीवनवप्रविप्रविहारविद्वज्जनशोभमानम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् पुरे राजति काननाली, कास्मीरजन्माम्रसुवृक्षराजी ।
राजादनश्रीफलचारुताली-प्रियङ्गुपुन्नागलताकराली ॥ १३ ॥

सन्नागवल्लीततमंडपाढ्या, रम्भातिरम्भालवलीलतायाः । कदम्बकैश्चम्पकपुष्पजाति-सत्केतकीमालतिकाभिरामैः ॥ १४ ॥
विराजते यत्र विचित्रपद्मपद्माकरः कोमलपूरितान्तः । सहस्रपत्रैः शतपत्रपूरैः, सदष्टपत्रैश्च विराजमानः ॥ १५ ॥
यथा सरो मानसनामधेयं, सद्राजहंसैः प्रविराजमानम् । अनेकचक्रावलिचातकैश्च, पारापतैः खञ्जनयामलैश्च ॥१६॥
विराजते यत्र पुरे जिनानां, प्रासादपङ्क्तिः प्रवरप्रभाभिः । प्रोत्तुङ्गदण्डाग्रशिरःप्रदेशध्वजप्रभापूरितदेहदेशाः ॥ १७ ॥

श्रीमज्जिनानां प्रतिमा विभान्ति, प्रासादमध्ये वरकान्तिकान्ताः ।
अनेकदेवेन्द्रसुरेन्द्रचन्द्रासुरेन्द्रनागेन्द्रकृतैकसेवाः ॥ १८ ॥
प्रासादपङ्क्तौ विरराज कुम्भः, सुवर्णवर्णप्रभयाभिरामः ।
भव्याङ्गिनां कामितपूरणाय, क्षोणीतले कामघटेव नित्यम् ॥ १९ ॥
यस्मिन् पुरे राजति राजलोकः, सदैव दूरीकृतसर्वशोकः । सन्मानसंशोभितसाधुलोको, दाक्षिण्यचातुर्यगुणोपपेतः ॥२०॥
पण्याङ्गनापात्रपरंपराभिर्विराजते वर्यपुरं पुराग्रम् । अष्टादशाग्रेसरवर्णवर्यं, महीधरश्रेणिविराजमानम् ॥ २१ ॥
सुश्राविका यत्र पुरप्रधाने, विवेकचातुर्यगुणैकराजी ।
सिद्धान्तशास्त्रार्थविचारदक्षा, साक्षात् सदा भाति सरस्वतीव ॥ २२ ॥
यस्मिन् पुरे खञ्जनमञ्जुलाक्षि-लक्ष्मीव साक्षाल्ललना विभाति ।
सुवर्णमुक्ताफलभूषणौघ-विभूषितक्षेत्रमनोज्ञयष्टिः ॥ २३ ॥
यस्मिन् पुरे भाति सदा सदाभा रामा रमेव प्रतिवासरं हि ।
प्रकुर्वती स्वीयपतेश्च सेवां, स्वकीयनाथानुगतैकचित्ता ॥ २४ ॥
यस्यां नगर्यां रमणीयरामा, विभाति नित्यं सुगुणैकधामा । सद्धर्ममार्गे कृतगीतगाना, सुराङ्गनागानसमानगाना ॥२५॥
यस्यां नगर्यां प्रमदा समोदा, हर्षप्रकर्षेण ददाति दानम् । वाचंयमानां वरसंयमानां, महोदयानन्दसुखप्रदानाम् ॥२६॥
यस्मिन् पुरे भाति सदा सतीव, सीमंतिनीश्रेणिरतीव नित्यम् ।
पतिव्रतादिप्रगुणाभिरामा, सद्धर्ममर्मैकसुसावधाना ॥ २७ ॥
विभ्राजते यत्र पुरे मृगाक्षी स्वकीयगत्या जितराजहंसी । मनोज्ञमाधुर्यवचःप्रपञ्चसन्तर्जितानेकपिकैकगाना ॥ २८ ॥
उपाश्रये यत्र विभाति रामा, श्रीमद्गुरूणां पुरतः सकामा ।
मुक्ताफलस्वस्तिकसत्समूह-सम्पादनैः शोभितदेहदेशा ॥ २९ ॥
सुश्राविका भान्ति पुरप्रधाने, यत्रापणश्रेणिविराजमाने । समस्तलक्ष्मीधनदोपमाना, सद्धर्मकार्येषु सुसावधाना ॥३०॥
उपासका यत्र पुरे जयन्तु, चातुर्यधैर्यादिगुणाभिरामाः । निःशेषशास्त्रार्थविचारसार्थविज्ञातजीवादिकतत्त्वतत्त्वाः ॥३१॥
जयन्तु यस्मिन्नगरे समस्त-श्राद्धाः सुधाकल्पवचःप्रपञ्चाः ।
सन्यायमार्गार्जितहाटकौघाः, संवर्धितानेकपवित्रपुण्याः ॥ ३२ ॥
यस्मिन्निलादुर्गवरे जयन्तु, सुश्रावकाः पुष्कलि-शङ्खतुल्याः ।
सद्धर्ममार्गप्रवरप्रतिज्ञा, देवासुरश्रेण्यहतप्रभावाः ॥ ३३ ॥
स्वदारसन्तुष्टिभृतः सुशीलाः, सुदर्शनश्रेष्ठिसमप्रतिज्ञाः ।
श्रद्धालवः श्राद्धगुणप्रकृष्टा, जयन्तु यस्मिन्नगरे गुणज्ञाः ॥ ३४ ॥
श्रीतातपादाम्बुजरेणुपुञ्ज-पवित्रिते श्रीमति तत्र दुर्गे । इलाभिधाने नगरप्रधाने, निःशेषलक्ष्मीललनानिधाने ॥ ३५ ॥
श्रद्धापरश्राद्धसहस्रयुक्तात्, मनोज्ञहर्म्यावलिशोभमानात् ।
विद्यापुराद् वर्यवशासमूहात्, प्रज्ञातसिद्धान्तरहस्यपौरात् ॥ ३६ ॥
क्षोणीतले न्यस्तनिजोत्तमाङ्गः, संयोजितात्मीयकराम्बुजन्मा ।
सत्कीर्तिपूर्वं विजयाभिधानः, शिशुः प्रकृष्टाणुनिभः सहेलम् ॥ ३७ ॥
हर्षप्रकर्षैकमनोज्ञचित्तं, सोत्साहसंयुक्तमतीव भक्त्या । स्वोत्कण्ठसञ्जातसमन्वितं च, सद्द्वादशावर्तकवन्दनेन ॥३८॥
विज्ञप्तिकां संतनुतेऽभिवन्द्य, यथा प्रयुक्तं हि यथात्रकृत्यम् । प्रौढप्रभाते कमलाकरेषु, प्रबोधितानेकपयोजराशौ ॥३९॥
समस्तचक्रावलिचक्रवाकीप्रमोदसन्दोहविधानदक्षे । भानौ प्रभापिञ्जरितास्य लोके, समुत्थिते कुङ्कुमरक्तभानौ ॥४०॥

महेभ्यसभ्यावलिशोभितायां, समग्रदेवेन्द्रसो(शो)भानिभायाम् ।
अनेकचातुर्यगुणप्रकर्ष-सुश्राविकाश्रावकशोभितायाम् ॥ ४१ ॥
प्रज्ञप्तिसूत्राङ्ग-सुराजप्रश्नी-ससूत्रवृत्तेर्विधिवत् सुवाचनम् ।
सदर्थसंदर्भनयान्वितायाः, सदर्थतः शम्भुसमुद्भवायाः ॥ ४२ ॥
समस्तवाचंयमशास्त्रपाठनं, सदैव योगोद्वहनं च वाहनम् । तुर्यव्रतोच्चारणपूर्वकं च, श्रद्धापरश्राद्धपरंपराणाम् ॥४३॥
सदोपधानादिक्रियाकलाप-सुवाहनं मोक्षसुखाभिलाषिणाम् ।
सुश्राविकाश्रावकसञ्चयानां, सानन्दनन्द्युत्सवपूर्वकं च ॥ ४४ ॥
निःशेषधर्मादिककृत्यजातं, संजायते जातमघोत्सवेन । क्रमागते वार्षिकनामपर्वणि, प्रमोदितानेकनृसत्सुपर्वणि ॥४५॥
समस्तपर्वप्रकरप्रगर्व-प्रहारिणि प्रोद्धुतशर्मणीह । निरन्तरं सप्तदशप्रकार-जिनार्चनं श्रीजिनमन्दिरेषु ॥ ४६ ॥
पूगीफलश्रीफललड्डुकादिभिः, प्रभावनापूर्वकमद्भुतं च ।
साधर्मिकाणां शुकभक्षिकादिभिः, सुभक्तिपूर्वं प्रतिपक्षिकादिषु ॥ ४७ ॥
सद्रव्यसङ्घातसुदानपूर-प्रमोदितानेकवनीपकौघम् । समस्तसत्त्वाभयदानकानां, प्रघोषणं प्रोद्धुतशब्दकौघैः ॥ ४८ ॥
यथाक्रमं चाक्रिकतैलिकादि-कुकर्ममर्मालिनिवर्तनं च । अनेकवादित्रसमस्तसङ्घ-पुरस्सरं श्रीजिनराजवन्दनम् ॥४९॥
दुष्टाष्टकर्मावलिकाष्ठपुञ्ज-प्रज्वालनं प्राग्र्यधनं जयाभम् । अनेकपक्षक्षपणाष्टमादि-सुदुस्तपं श्रेणिविधानपूर्वकम् ॥५०॥
इत्यादिपर्वावलिपुण्यकृत्यं, विघ्नाद्यभावेन सुखेन जातम् । श्रीतातपादप्रवराम्बुजन्म-प्रौढप्रभावादपरं सुदृष्ट्या ॥ ५१ ॥
प्रभो ! त्वदीयं वदनं निरीक्ष्य, समस्तलक्ष्म्याः सदनं सदोदयम् ।
तमस्विनीप्राणपतिर्जगाम, सू(शू)न्यालये सर्वकलोज्झितः सन् ॥ ५२ ॥
वाचंयमाधीश्वर ! तावकीनं, वृत्ताननं वीक्ष्य कलाभिरामम् ।
दोषाकरोऽहं निजकीयचित्ते, ज्ञात्वेत्यगात् सू(शू)न्यपदे सलज्जः ॥ ५३ ॥
प्रभो ! त्वदीयाननकौमुदीशः, चकास्ति विश्वत्रितये मुनीश ! ।
प्रोल्लासयन् पावनपुण्यमार्गः, चकोरसङ्घातमतीव प्रीत्या ॥ ५४ ॥
विभ्राजते त्वन्मुखशर्वरीशः, क्षोणीतले प्रोन्नतसन्नरेशः । प्रकर्षयन् पण्डितमानवौघ-श्रोतस्विनीप्राणपतिं सहेलम् ॥५५॥
समस्तसूरीशमनोज्ञवक्त्र-सुधाकरः कान्तिसुधाप्रयुक्तः ।
विबोधयन् मानवकैरवौघं, संकोचयन् दुर्मदवादिवारिजान् ॥ ५६ ॥
श्रीमत्थिरानन्दन ! तावकीनं, समीक्ष्य वक्त्रं विबुधा वदन्ति ।
किं कौमुदीशः कलकान्तिमत्त्वात्, किं दर्पणः पेशलकान्तिमत्त्वात् ॥ ५७ ॥
विभ्राजते त्वन्मुखपूर्णिमेन्दुर्विस्वे(श्वे) यथा मञ्जुलरक्तकन्दुः ।
मनोज्ञलावण्यसुचन्द्रिकौघं, विराजमानः थिरराजपुत्र ! ॥ ५८ ॥
श्रीमद्गणाधीश्वर ! तावकीनमुखौषधीप्राणपतिर्विभाति । हर्षप्रकर्षं जनयन् नितान्तं, समस्तभव्यव्रजकैरवाणाम् ॥५९॥
त्वदीयवक्त्रप्रभया जितः सन्, पद्माकरः पद्मसरोवरेषु । पङ्कप्रकर्षेषु गृहं चकार, से(शे)वालसंयुक्तशरीरयष्टिः ॥६०॥
दृष्ट्वा त्वदीयाननकान्तकान्तिं, पाथोरुहं पद्मसरोवरेषु ।
सी(शी)तादि दुःखं सहते सदैव, प्राप्तुं प्रभो ! त्वन्मुखकान्तिसाम्यम् ॥ ६१ ॥
महीतले त्वद्वदनारविन्दं, विराजते सूरिशिरोवतंसम् । अनेकभव्यव्रजराजहंसैः, संसेव्यमानं कमलानिधानम् ॥६२॥
इत्यादिकसद्गुणसो(शो)भितायां, समस्तसूरीशशिरोमणीनाम् ।
अत्रैव मां मोदकरा भविष्यति, प्रसादपत्री करुणापराणाम् ॥ ६३ ॥

श्रीतातपादैर्विगतप्रमादैः, सदैव शिष्योपरि सुप्रसादैः। प्रसादपत्री प्रवरा प्रहेया, मन्मानसानन्दकृतेति शीघ्रम्॥६४॥
श्रीतातैरवधार्या त्रिसन्ध्यमपि मन्नतिर्विशेषेण। नत्यनुनती प्रसाद्ये, कृतस्थितीनां निजोपान्ते॥ ६५॥

अथ सर्वेषां नत्यनुनती–

षट्त्रिंशत्सूरिगुणसहितश्रीमत्श्री**विजयसिंहसूरी**णाम्। शीलादिव्रतगुणमणिरोहणगिरिसंनिभानां च॥ ६६॥
जैनप्रमाण-शैवप्रमाण-सिद्धान्तविदिततत्त्वानाम्। वाचकशिरोमणीनां, वाचक**चारित्रविजया**नाम्॥ ६७॥
साहित्यतर्कशास्त्र-च्छन्दप्रमुखैकनिपुणबुद्धीनाम्। कान्त्या जितमदनानां, वाचक**लावण्यविजया**नाम्॥ ६८॥
श्रीशत्रुञ्जयकार्यप्रविधानप्रवणचित्तवृत्तीनाम्। सौजन्यगुणगरिष्ठश्रीपण्डित**देवविजया**नाम्॥ ६९॥
सुरगुरुसमबुद्धीनां लिवीकृतानेकलेखपत्राणाम्। सकलप्रधानमुख्यश्रीपण्डित**कुशलविजया**नाम्॥ ७०॥
नूतनजिनवरभुवनाभिनवार्हतबिम्बमुदितचित्तानाम्। श्रीगुरुसेवारसिकश्रीपण्डित**कुमरविजया**नाम्॥ ७१॥
स्वाध्यायविनयकारकगणिवर**गणिपद्मविजय**संज्ञानाम्।
गणि**षीमविजय**नाम्नां समस्तमुनिभक्तिचित्तानाम्॥ ७२॥
गणि**हंसविजय**नाम्नां, स्वकीयचातुर्यविजितहंसानाम्। गणि**हर्षविजय**नाम्नां, गुरुसेवारसिकचित्तानाम्॥७३॥
गणि**सोमविमल**नाम्नां, सुवर्णसंयुक्तसोमवदनानाम्। गणि**वृद्धिविजय**नाम्नां, विद्याविनयैकचित्तानाम्॥ ७४॥
गणि**प्रेमविजय**नाम्नां, चन्द्राननचन्द्र**विजय**संज्ञानाम्। गणि**भावविजय**नाम्नां, कुशाग्रसमशेमुषीणां च॥७५॥
गणि**साधुविजय**नाम्नामधीतगाथाशतप्रविदितानाम्।
मुनि**मेघविजय**नाम्नां **षिमाविजय-किरणविजया**नाम्॥ ७६॥
सदादिविजयनाम्नां, रङ्गितदशनालि**रङ्गविजया**नाम्। श्रीगुरुसेवारसिकक्षुल्लकमुनि**हस्तिविजया**नाम्॥७७॥
गणि**सत्यविजय**नाम्नां, सत्यादिकगुणगणाभिरामानाम्। गणि**मानविजय**नाम्नां, दुःकरतपकारकाणां च॥७८॥
गणि**लाभविजय**नाम्नां, श्रीगुरुचरणारविन्दमधुपानाम्।
गणि**लक्ष्मिविजय**नाम्नां, क्षुल्लकमुनि**लक्ष्मिविजया**नाम्॥ ७९॥
गणि**हेमविजय**नाम्नां वाचकचरणारविन्दमधुपानाम्। मुनि**हेमविजय**नाम्नां, **रविविजयानां** मुनिवराणाम्॥८०॥
इत्यादिसकलमुनिवरपुरन्दराणां च साधुसाध्वीनाम्। अत्रत्ययतिजनानां गणिवरगणि**मानविजया**नाम्॥ ८१॥
गणि**देवविजय**नाम्नां मुनिवरमुनि**धर्मविजय**संज्ञानाम्। **लक्ष्मीविजय**मुनीनां कृपा**कृपाविजय**संज्ञानाम्॥८२॥
थिरविजयप्रमुखाणामित्यादिकसकलमुनिवराणां च। श्रीतातैर्गतपापैर्नतिरवधार्या त्रिसन्ध्यमपि॥ ८३॥
अत्रत्यसकलसङ्घः क्षितितलविन्यस्तमस्तको नित्यम्। प्रणमतितरां सुभक्त्या गुरुराजं गुरुगणगरिष्ठम्॥ ८४॥
श्रीतातैर्जिननमनावसरे च स्मृतिपथं सदा कार्यः। शिष्याणुकः स्वकीयः सुन्दरजिनभवननिकरेषु॥ ८५॥
यत् क्षुण्णं लेखान्तर्मात्राक्षरबिन्दुकार्थयतिभिश्च। तत्सर्वं क्षन्तव्यं श्रीगुरुराजैः क्षमावर्यैः॥ ८६॥
मार्गशीर्षसिते पक्षे, पञ्चम्यां च तिथौ मुदा। लिवीकृतो मया लेखो, भूरि भक्त्येति मङ्गलम्॥ ८७॥

*

[पत्रपृष्ठे–'उपाध्यायश्रीकीर्तिविजय' इति शिरोलेखः।]

* * *

तपोगणप्रतिश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं० अमरचन्द्रप्रेषिता

[१२] — विज्ञप्तिका —



स्वस्तिश्रीपतगेश्वरध्वजवधूर्यस्य क्रमाम्भोरुहं, भेजे चञ्चलतामपास्य विलसत्कैवल्यकान्तागृहम् ।
स्वर्वापीव तरङ्गपाणिकमलेनालिङ्ग्य पाथोनिधिं, स श्रीनाभिनरेन्द्रवंशगगनप्रद्योतनद्योमणिः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीशिवसुन्दरीस्तनतटासक्तोऽपि संकीर्त्यते, यो विश्वत्रितयेषु निर्जितजराभीरुर्विपश्चिज्जनैः ।
श्रीनाभेयरविर्हिनस्तु दुरितध्वान्तं वचोभानुभिर्भक्तिप्रह्वतनुस्पृशां त्रिजगतीध्येयाभिधानो ह्यसौ ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीर्भ्रमरीव पादकमलं भेजे युगादिप्रभोः, कल्याणद्रुमसिञ्चनेषु जलदं श्रेयःश्रियामाश्रयम् ।
संसाराम्बुपतत्समस्तमनुजान् संरक्षणे तीर्थपो, जीयान्नाभिवसुन्धरापतिसुतः पोतायमानः प्रभुः ॥ ३ ॥
स्वस्ति क्षीरतरङ्गमालिदुहिता सिन्दूरपूरायते, सीमन्ते भवभूरुहेषु विलसज्ज्वालाकलापानलः ।
नम्रस्वर्गिनरेन्द्रमौलिमुकुटे शोणत्वमुत्पादयन्, श्रीमन्नाभिनरेशबालनखरो माञ्जिष्ठशोभां दधन् ॥ ४ ॥

अजितं जितकर्मवैरिणं, विकचाम्भोजपलाशलोचनम् ।
विजयातनुजोऽपि योऽभवद्, विजयाकामुक एव केवलम् ॥ ५ ॥

अजितं जितशत्रुवाहिनीपतिनेमीललनाधवाङ्गजम् । विजयातनुजोऽपि कीर्त्यते, विजयोत्पादक एव यो बुधैः ॥ ६ ॥

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिज्योत्स्ना-विडम्बि वक्त्रं पदलक्ष्मदम्भात् ।
दोषाकरत्वं मयि जातमीश ! कुतः प्रभो ! प्रष्टुमिवागतोऽयम् ॥ ७ ॥

चन्द्रप्रभं भव्यकुमुद्वतीषु चन्द्रप्रभं तीर्थपतिं भजध्वम् । चन्द्रानना यद्वदनं विलोक्य, पलाशपत्रप्रतिमं वदन्ति ॥८॥
भजत शीतलतीर्थपतिं जना भवति मुक्तिवधूकरपीडने । अधरयन्निव चन्दनविप्रुषो मधुरया सुगिरा यदि वाञ्छना ॥९॥
प्रणतदेवनरोरगनायक-प्रवरमौलिमणीकषतेजितम् । क्रमणपङ्कजयामलमर्हतो, नमत शीतलतीर्थपतेरिदम् ॥ १० ॥
······यसद्विमललोचनशोभास्पर्धकं किमु मृगं रुषयेव । विश्वसेनतनयः कृतवान् यो, बन्दिनं निजपदाङ्कमिषेण ॥११॥
वृक्षजा मृगपतेरिति वामदेवसन्निधिमतुसुविलोक्य । लाञ्छनच्छलतयैव कुरङ्गाश्शांतिपादयामलं भजन्ति स्म ॥१२॥
समुद्रभूपालकुलाब्धिचन्द्रनेमेः क्रमाम्भोजयुगं चकास्ति । यत्पर्युपास्त्या भुवनत्रयेषु, त्रिरेखतां तत्समवाप कम्बुः॥१३॥

त्रिविक्रमत्वं च चलप्रियत्वं, जातं कुतो यस्य हरिः स जीयात् ।
विज्ञप्तिकामः किमु पाञ्चजन्यमप्रैषि नेमेः पदलक्ष्मदम्भात् ॥ १४ ॥
निरीक्ष्य पार्श्वो भवपातकेन, वचोगुणैः खिन्नजनानुद्धृत्य ।
सप्तेषु सप्ताहिफणस्य दंभात्, सप्तार्गला यो नरकेषु चक्रे ॥ १५ ॥
सप्तस्फटालङ्कृतनागराजमधत्त किं सप्तभुवः पतित्वम् ।
आसाद्य वामेयजिनः स जीयात्, मौलौ कृतान्यातपवारणानि ॥ १६ ॥
निःकामविश्वत्रितयस्य बन्धोः, पादाम्बुजं वीरजिनेश्वरस्य ।
आसाद्य मुक्तिं किमु लक्ष्मदम्भात्, देहीति वक्तुं हरिरागतोऽयम् ॥ १७ ॥

सिद्धार्थधात्रीपतिराजवंशनभोऽङ्गणाहर्मणिरेष वीरः । पतित्वपितृत्वसमानधर्ममारोप्य यं या भजति स्म चित्रम् ॥१८॥

॥ इति श्रीजिनवर्णनम् ॥

अथ नगरवर्णनम् –

बभुर्विहारा वसुधाविशालसीमंतिनीभाललतामतुल्याः । जगत्पतीनां सुरभूपतीनां, पदप्रदा धर्मनरेन्द्रगेहाः ॥ १९ ॥
बभुर्विहारा धरणीतलेषु विमानराजी किमु नाकिभूपतेः । विलोक्य भूपीठसमागतेयं जगद्विभूनामिति तर्क्यते बुधैः॥२०॥
यत्रार्हतां वेश्मशिरस्सु बद्धा बभुर्नवीना विलसत्पताकाः ।
जित्वा दिवं शीघ्रजयत्वसूचाकराणि चिह्नान्यनिशं दधौ किम् ॥ २१ ॥
यस्यां वलक्षा वरवैजयन्त्यो, विभान्ति हर्म्येषु जिनेश्वराणाम् ।
विज्ञातुकामः त्रिदशापगौघः, पुरस्समृद्धिं समियाय मेने ॥ २२ ॥
क्षीणाष्टकर्माश्रयशीर्षभागे, बभुः पताकाः परितो लुलन्त्यः ।
किमाह्वयन्ति प्रणतिप्रवीणान्, जनान् क्वणत्किंकिणिकारवेण ॥ २३ ॥
यत्रार्हतां सद्मनि वैजयन्त्यो, विरेजिरे वायुवशाल्लुलन्त्यः । निवारयन्तीव तमःप्रवेशं पुरिप्रदेशे परितो विचित्राः ॥२४॥
जिनेन्द्रहर्म्यध्वजतुङ्गदण्डाः, स्फुरन्मणीभिः खचिता विरेजुः ।
विरंचिनोर्ध्वं धरणार्थमुच्चैः धृता मरुन्मन्दिरवीविधानाम् ॥ २५ ॥
यस्यां पुरि श्रीजिनमन्दिरेषु, सोपानपङ्क्तिः परितश्चकास्ति ।
सिद्ध्यग्रभागाश्रयणाय मेने, निःश्रेणिका किं विधिना कृतेयम् ॥ २६ ॥
सदा ये प्रभुं भावशुद्ध्या भजन्ते, त्रिकालं नरास्ते व्रजन्त्यूर्ध्वमेव ।
जिनेन्द्रगृहोत्तुङ्गशृङ्गे सुवर्णाः, ब्रुवन्तो यथाऽस्माकमेवेति कुम्भाः ॥ २७ ॥
यस्यां गृहस्थ प्रमदाजनानां, चन्द्राश्मरत्नप्रविनिर्मितायाम् ।
प्रणालिकायां स्नपनानि ग्रीष्मे, भवन्ति नीरेण विनापि बाढम् ॥ २८ ॥
यत्रार्हतद्युम्नवतां गृहाणि, स्फुरन्मणीभिः खचितानि येषु । साशङ्कमेताः प्रमदा विरेजे, संक्रान्तदेहाः स्वपतिं भजन्ति॥२९॥
गृहे गृहे यत्र विभान्ति नार्यो, विनिद्रपाथोजसुपत्रनेत्राः ।
समभ्यसन्तीव भुवस्समागता, निमेषविद्यां किमु नाकिपत्न्यः ॥ ३० ॥
अलक्ष्यलक्ष्मीश्वरमन्दिरेषु, पयोनिधेर्देहभवां कुशीलम् ।
विलोक्य विज्ञाय विमर्षभावात्, कृष्णोऽपि कृष्णत्वमवाप देहे ॥ ३१ ॥
भासते विशदपौषधशाला, धर्मदन्तिपतिखेलनशाला । चित्रविचित्रितपवित्रविशाला, स्वस्तिकादिकृतमङ्गलमाला ॥३२॥
श्रियः पदे श्रीमति **गूर्जराह्व**निवृद्धरास्त्रीतिलकायमाने । प्रोत्तुङ्गवप्रप्रविराजमाने, श्री**पत्तने** भूवलयप्रसिद्धे ॥ ३३ ॥
श्रीमद्गुरोः पादसुपर्वपादपविन्याससंचारपवित्रिते वरे । सुश्रीमति श्रीमति तत्र भूतलद्रङ्गोत्तमे मोदरसातिपूरिते ॥ ३४ ॥
चारुमानसुधना अपि लोका भूरि भूरि जितनागरलोकाः । आर्जवादिसुगुणा गतशोका बुद्धिभिर्विजिताखिललोकाः ॥३५॥
तीर्थाधीशविहारवारितमहापापप्रकर्षोदयाद् वेलानिर्जितवासवैर्गृहपतिव्रातैस्सदा सेवितात् ।
दुर्गस्थैः कपिशीर्षकैर्वरकरैस्त्रैलोक्यलक्ष्मीं हठादाह्वातुं रविद्योतनात् शुभमयाद् रङ्गात् **सुरात् पत्तनात्** ॥ ३६ ॥
सानन्दमुल्लासितपूर्वकायं, स्वभालविन्यस्तकराब्जयुग्मम् ।
विराजि रोमाङ्कुरभृद् विधत्ते, विज्ञप्तिकां द्राग् **अमरादिचन्द्रः** ॥ ३७ ॥
पूर्वाद्रिशैले शिखरानुकारे, चञ्चत्प्रभाराजिविशालबिम्बे । पयोजबन्धोर्महतां समाजे, हर्षादुपेते सदुपाश्रयान्तः ॥३८॥

अपि च –

श्रीमद्धनिनां पुरतः प्रातः प्रातः सुपर्वसद्दशानाम् । वाच्यते करणं मुक्तेर्वृत्तिर्वर**योगशास्त्रस्य** ॥ ३९ ॥
सुविहितसाधुजनानां पठनं परिपाठनं सदानुमतम् । सन्नन्दिभवनयोगोद्वहनादिसुकृत्यमतिरम्यम् ॥ ४० ॥

सततभवोल्बणतापापनोदमेघागमे सुकृतिरम्ये । परिपाट्यां समुपेयुषि पर्वणि सांवत्सराभिधे रम्ये ॥ ४१ ॥
विश्वविश्वजनवाञ्छितवस्तुप्रापणे सुरतरोरतिरम्ये । कल्पसूत्रवरसूत्रवाचनं, याचनं सुकृतवार्द्धिसुतायाः ॥ ४२ ॥
श्रीमज्जिनपतिशासनमहोदयोद्दामविजयकृत्परमः । द्वादशदिवसामारिप्रदानकृत् भवति पट्टुपटहः ॥ ४३ ॥
नार्डिधमनिर्णेजककुलालकैवर्ततक्षकसुखानाम् । यत्र च न भवति कृत्यं घूतकृतां तन्तुवायानाम् ॥ ४४ ॥

किं बहुना ?–

इत्याद्यनेकसौकृतकृत्यं निर्विघ्नमहितविध्वंसि । समहामहं बभूव च सदोदयं दलितपापभरम् ॥ ४५ ॥
तत्रानन्दसुखानुबन्धिभगवत्पादारविन्दद्वयी, ध्यानोद्भूतशुभोदयैः फलवतो जाग्रन्महापुण्यतः ।
जज्ञे यत्परिपूर्त्तिरुज्वलतरा धर्मस्य धर्मात्मनां, निर्द्धूताखिलकल्मषं कलिकलाप्लोषैकदुष्टात्मनः ॥ ४६ ॥

अथ श्रीतातपादानां वर्णनम्–

त्वत्पर्युपास्तिः फलदा मुनीश ! विशुद्धभावेन कृता जनैर्यैः । अमर्त्यभावं समवाप्य सद्योऽपुनर्भवं ते सततं लभन्ते ॥४७॥
तपोधनद्वन्द्वचरे पतङ्ग !, ये स्युस्तवाराधनतो वियुक्ताः ।
निःश्रेयसं दुर्मतिभिर्दुराप्यं, कार्यं भवेत् कारणतो विना न ॥ ४८ ॥
नैयायिका निर्भयतो वदन्ति, द्रव्ये गुणानां समवेतभावः । चेतश्चमत्कारकृतेन चैतत्, भवद्गुणानां गमनं ककुप्सु ॥४९॥
त्वदीयमूर्तिं प्रविलोक्य लोका, अमन्दमानन्दभरेण नित्यम् ।
वितर्कशीलाः किमु चन्द्रज्योत्स्नां, भवन्ति किं शान्तरसप्रदेशाः ॥ ५० ॥
त्वदीयरूपं जलशायिकान्तासूनोस्समानं प्रविलोक्य मोदम् । वामभ्रुवो रात्रिदिनं भजन्ते, त्वद्द्वेष्यभावो हि न साधुधर्मः ॥
त्वदीयमूर्तिं कृतकृत्यभावं, निर्माय मेने हि सरोरुहासनः ।
अहं जगन्मोहनकप(?) मन्ये, त्वदाकृतेस्साम्यवियोगभावात् ॥ ५२ ॥
इत्यादिकैः सद्गुणशोभमानैः, भूपालसंसत्समवासमानैः । श्रीतातपादैर्विगतापवादैस्सदावधार्या प्रणतिर्मदीया ॥ ५३ ॥

तत्रत्य–

श्रीमत्तातपदाम्भोजसेवाविधिसमुत्सुकाः । श्रीराजसुन्दराह्वाना विबुधश्रेणिभूषणम् ॥ ५४ ॥
श्रीहस्तिहस्तिविजया विबुधा बुद्धिशालिनः । श्रीऋद्धिसोमविबुधा विनयर्द्धिविभूषिताः ॥ ५५ ॥
प्रज्ञावज्ञातधिषणाः कोविदश्रेणिमण्डनम् । उदयाद्विजयाह्वाना मुक्तितो विजया बुधाः ॥ ५६ ॥
श्रीसत्यविजयविज्ञाः श्रीहर्षविजया बुधाः । शिवाद्विजयगणयो रवितो विजयास्तथा ॥ ५७ ॥
गणिगङ्गदर्शनाख्याः सिद्धितो विजया अपि । विजयात्सोमगणयः सर्वेऽप्यन्येऽपि साधवः ॥ ५८ ॥
इत्यादिसाधुसिंहानां प्रत्येकं मुनिपुङ्गवैः । प्रसाद्या[द्य]नुनतिर्मे श्रीमत्तातैः क्षमाधरैः ॥ ५९ ॥

तथात्रत्य–

कोविदा लीलचन्द्राह्वाश्चारित्राचन्द्रनामकाः । लावण्यचन्द्रगणयो गुणचन्द्राभिधानकाः ॥ ६० ॥
हेमचन्द्राभिधः साधुर्जिनचन्द्राभिधो मुनिः । इत्यादियतयस्सर्वे नमन्ति स्म निरन्तरम् ॥ ६१ ॥
आश्विनाभिधमासस्य पक्षे शुक्लेतरे तिथौ । सप्तम्यां लिखितो लेख इति मङ्गलमालिका ॥ ६२ ॥
तातपादपदाम्भोजसेवाव्रतमधुव्रतः । प्रणति स्म लीलचन्द्रस्त्रिसायं बहुभक्तियुक् ॥ ६३ ॥

लेख्य० देवकपत्तनात् उ० श्रीअमरचन्द्रगणिः । पूज्याराध्यसकलसकलानूचानशिरःकोटीरहीर-
श्री१९श्रीविजयसिंहसूरिसिंहानामियं विज्ञप्तिः । श्रीपत्तननगरे ।

*

तपोगणपतिश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० उदयविजयप्रेषिता

[१३] — विज्ञप्तिपत्रिका —



स्वस्तिश्रियः केवलसम्पदश्च, चक्रित्वलक्ष्म्याः सुषमाः प्रभाश्च ।
गिरश्च सर्वोत्तममान्यताश्च, यच्छक्तिनद्यां विकसन्ति पद्माः ॥ १ ॥
श्रीजीरिकापल्ल्यभिधा पुराऽऽसी[त्], पुरी परीता परमर्द्धिलोकैः ।
समण्डनीभावमियाय सा पूर्येनोग्रधाम्ना स शिवाय पार्श्वः ॥ २ ॥
वामाऽप्यवामाऽजनि यस्य माता, पाता प्रजानां च पिताऽश्वसेनः ।
प्रभावती यस्य च धर्मपत्नी, नाम्नाऽपि सौभाग्यरमाप्रमाऽभूः ॥ ३ ॥
वाराणसी येन पवित्रिता भूः, स्वजन्मना भानुमतेव पूर्वा ।
नागोऽपि नागाधि[प]राजलक्ष्मीमवापितः सद्गुरुणेव शिष्यः ॥ ४ ॥
साध्वी यदीयाऽजनि **पुष्पचूला**, कूलानुगा या भववारिराशेः ।
गणाधिपा यस्य दशाऽप्यभूवन्, नरस्त्रियो यद्वचनेन तीर्णाः ॥ ५ ॥
प्रतिस्थलं यस्य विहारमाला अद्यापि बह्व्यो भुवने स्फुरन्ति ।
जनस्य तत्कारयितुर्यशांसि, मुक्ताकलापा जगतीस्त्रियो वा ॥ ६ ॥
बिम्बानि भूयांसि च यस्य लोके, माहात्म्यपीयूषघटा इवास्मिन् ।
स्फुरन्ति तत्रापि स कोऽपि **जीरापल्ली**पतिः शक्तिसुधापयोधिः ॥ ७ ॥
श्रीस्तम्भतीर्थावनिभोगशाली, विश्वार्थसार्थानुभवोऽपि रम्यः ।
कामानुरूपोऽधिककामदोऽपि, कामप्रजेता भगवान् प्रकामम् ॥ ८ ॥
वामासतीकुक्षिखनीमहार्घ्यमणिर्जनाभीष्टविधानदक्षः ।
रविच्छविभ्योऽपि हि यस्य बोधच्छविः स लोके च चकास्त्यलोके ॥ ९ ॥
मन्त्रा यदीयाः शतशः सुराणामधिष्ठिताः कामितपूरकाश्च ।
वंशाम्बुजे यश्च निजेऽस्ति हंसः, क्रीडापरः केवललक्ष्मिहंस्या ॥ १० ॥
दिव्योपभोगः स च दिव्यदानी, गतान्तरायोऽप्यजरामरश्च ।
नित्यो विभुः शाश्वतसम्पदाढ्यो, जयत्यनन्तो जगदेकवीरः ॥ ११ ॥
किं द्युमणीनामिव यो महिम्नामाधारभूतः परमोपकारी ।
तं पार्श्वनाथं सुषमासनाथं, भक्त्या नमस्कार्यपदेऽभिषिच्य ॥ १२ ॥
पुराभिधं **बन्दिरमन्दिरायाः**, पदं मुदामेकखनीव भाति ।
धर्मार्थकामत्रयकुत्रिकाट्टप्रायं प्रियं विश्वजनावलीनाम् ॥ १३ ॥
जानीमहे नो जलधिप्रसङ्गाद्, रत्नाकरस्तन्नगरं गरीयः ।
द्रङ्गस्य सङ्गाद् यदि वा पयोधी, रत्नाकरत्वैकयशो बिभर्ति ॥ १४ ॥

साक्षादतिक्रामति सिन्धुसङ्गात्, सीमानमेतत्पुररत्नभूर्न ।
यद्वा पुरस्यास्य सदा प्रसङ्गात्, सीमानतिक्रामक एष सिन्धुः ॥ १५ ॥
श्रीणामजस्रं प्रभवः पयोधिर्मन्ये पुरस्यास्य समीपवृत्तेः ।
समीपवृत्तेर्यदि वा पयोधेः, पुरं पुरं वा श्रिय एकभूमिः ॥ १६ ॥
अस्माकमत्यच्छतराशयानां, सन्तापको मित्रतयापि पापः ।
सुधावलेपा इति यत्र गेहाः, सूरं ध्वजाग्रैः परिताडयन्ति ॥ १७ ॥
खरस्वरूपोऽपि हि मित्रनामा, व्यतीतवस्त्रीभवदब्दवृन्दः ।
शुद्धाशया यत्र सुधावलिप्ता, गृहा ध्वजैस्तं परिधापयन्ति ॥ १८ ॥
राजाऽपि रात्रौ परितः प्रचारं, करोषि(ति) तद्द्रष्टुमनर्ह एव ।
प्रच्छादयन्तीति यदीयगेहाः, सुधाकरं नक्तमिह ध्वजाग्रैः ॥ १९ ॥
वस्तूनि सर्वाण्यपि यत्र काममगण्यताभाञ्जि भवन्ति नित्यम् ।
सद्रोहणाद्राविव रत्नमाला, तारावली वा गगने प्रदीप्रा ॥ २० ॥
सौगन्धिकाट्टेषु समाततास्ते, कस्तूरिका वा हिमवालुका वा ।
तदट्टलक्ष्म्याः किल नित्यतायै, निशादिने साधु नियन्त्रिते ते ॥ २१ ॥
यदुच्चगेहावलिरार्हती गीरिवानिशं निर्मलतां बिभर्ति ।
वाणीं पिकानां शितिपाक्षिकाणां, कुहूमयं तेन वृथा करोति ॥ २२ ॥
यस्मात् सुधाभिः सितिमानमेते, गेहा दधाना निजदीप्तिदर्भैः ।
निधीन् समग्रानपि पूर्णिमायाः, श्रियं प्रदीप्रामपि लम्भयन्ति ॥ २३ ॥ –यमलम् ।
क्रयाणकानां निकरः पयोधिमार्गेण यत्रैति पुनः प्रयाति ।
मीनादिराशाविव पद्मपाणिमुख्यग्रहाणां गगनाध्वनौघः ॥ २४ ॥
उग्राश्च भोगाश्च सुनागराश्च, स्फुरन्ति यस्यां शतशोऽपि लोकाः ।
भोगार्णसां वासकृते द्युनद्यां, मीनाकरा वा मकराकरा वा ॥ २५ ॥
त्रिभिस्त्रिधा यत्र भृशं विभक्ता, पुरस्य सर्वाऽपि हि राजधानी ।
अर्थेन कामेन वृषेण चेति, सम्यग् मिलित्वा विगलद्विरोधे ॥ २६ ॥
श्रीपूज्यविष्णुप्रतिबद्धवासे, भोगाम्बुधौ द्रङ्गमणीयमाने ।
इत्यादिवृत्तैरुपवर्ण्यमाने, पुराभिधे तत्र पुरप्रधाने ॥ २७ ॥ –इति नगरशोभा ।

*

यत्पूज्यपादैः प्रथमं व्यलोकि, स्वभक्तिसंयुक्तजनोपसेव्यम् ।
जीराउलीपार्श्वजिनेन्द्रचैत्यादिभिः सनाथीकृतमध्यभागम ॥ २८ ॥
मुनिद्विषोऽस्यां कटुकाः पुराऽपि, चैत्यद्विषो लुम्पकपक्षदक्षाः ।
द्वयीद्विषः साम्प्रतमत्र केचिद्, विशेष एष प्रबभूव नव्यः ॥ २९ ॥
सुश्रावकास्तेन च येऽत्र जैनचैत्यादिपूजाविधिसावधानाः ।
तन्मानिनः स्वानपि पूर्वजान् ये, व्यामूढरूपानिव मानयन्ति ॥ ३० ॥
श्रीपत्तनं धर्ममयं च राजद्, रङ्गाभिधं द्युम्ननिवासभूमिः ।
कामाश्रयः सूर्यपुरं त्रयीमुत्क्रयीमयं वैतदिदं न विद्मः ॥ ३१ ॥

इत्यादिवृत्तैरुपवर्ण्यरूपादकथ्यरूपाञ्जलधीरितार्थम् ।
श्रीस्तम्भतीर्थादतिदम्भलोकाच्छ्रीपूज्यतत्त्वीकरणप्रवीणात् ॥ ३२ ॥
भक्तीरितः श्रीतिपवित्रितात्माऽऽत्मारामलीनैकमना मनाग्ज्ञः ।
ज्ञत्योदयादिर्विजयः स्थिरश्रीः, प्रमोदसिन्धुः कृतवन्दनादिः ॥ ३३ ॥
विनीतभावस्तरणिप्रमाणावर्तान् विनिर्माय नतिं वितन्वन् ।
विज्ञप्तिमाविष्कुरुते यथाऽत्र, कृत्यं प्रभातेऽरुणपूतलोके ॥ ३४ ॥
स्वाध्याय आद्याङ्गमुखागमानां, व्याख्यानमावश्यकवृद्धवृत्तेः ।
तदुत्तरं पर्व समभ्युपेतं, श्रीवार्षिकं नाम सुधर्मसेव्यम् ॥ ३५ ॥
जिनालये सप्तदशप्रकारा, पूजा चतुःपारणकादि सर्वम् ।
पर्वोचितं कल्पसुवाचनादि, तत्रापि जज्ञेऽस्ति च जायमानम् ॥ ३६ ॥
श्रीपार्श्वनाथस्य पदप्रसादः, श्रीपूज्यरागेण स सद्वितीयः ।
निबन्धनीभावमियाय तत्राधुनाऽप्यसावेव तदीयहेतुः ॥ ३७ ॥

अपरम्—

मातुं न शक्नोति गुणान् यदीयान्, ब्रह्माऽपि मानातिगताप्रपन्नान् ।
तत्संख्ययैते गगने विकीर्णास्तारागणास्तेन परिस्फुरन्ति ॥ ३८ ॥
यद्गच्छमध्ये बहवोऽपि मूढा, अपि स्फुरद्धस्तमहामहिम्ना ।
क्षणेन पाण्डित्यरमां भजन्ते, न हीरसूर्यादिषु तत्प्रसिद्धम् ॥ ३९ ॥
विद्याऽपि येषां स्वत एव सिद्धा, रूपं च वाणी च विशालरूपा ।
एकैकभावस्य कथाप्रबन्धे, पाथोजजन्माऽप्यसमर्थ एव ॥ ४० ॥
सीमातिगानां गुणमण्डलानां, मुक्ताफलानां प्रविधातुकामः ।
मालां विधिः पारमनाप्नुवंस्ता, विमुक्तवांस्ता वियतीह ताराः ॥ ४१ ॥
सभूषणा सम्प्रति सा सुराष्ट्रावनी कनी हेममणीखनीव ।
पन्न्यासमुच्चैः सुविहारलक्ष्म्या, श्रीपूज्यतो या पुरवद् बिभर्ति ॥ ४२ ॥
यदीयगच्छे कवयोऽप्यनेके, क्रियापरास्तार्किकपुङ्गवाश्च ।
व्यापारिणां वा जगतीपतीनां, कोशेषु माणिक्यपरम्परेव ॥ ४३ ॥
भाणी यदीया जननी प्रतीता, शिवाङ्गणाख्योऽपि च यत्पिताऽऽसीत् ।
क्रियापरो यस्य च शिष्यवर्गः, स्वर्गङ्गया यस्य यशः समानम् ॥ ४४ ॥
अहो महज्ज्ञानमहो क्रियेयमहो तपः क्रोधजयोऽप्यहो सः ।
विशिष्य कः ख्यातुमलं गुणांस्तान्, यद्देहपेटीमणिरत्नराशीन् ॥ ४५ ॥
गुणैरनेकैरिति वर्णनीयैर्मम प्रणामो मनसाऽवधार्यः ।
अनुप्रणामः प्रभुसेवकानां, प्रसादनीयः प्रततव्रतानाम् ॥ ४६ ॥
तथा हि—लक्ष्मीविजयाख्यविज्ञा, यशःपदाद्या विजयाः समग्राः ।
धनादयो वा विजयास्तथाऽन्ये, विज्ञाश्च हेमाद्रिजयादयोऽपि ॥ ४७ ॥
इत्यादिकानां पुनरार्यिकाणां, मानेन्दिराणामपरापराणाम् ।
नामोऽनुनामश्च विधापनीयः, प्राप्तः स्मृतेर्गोचरतां गणेन्द्रैः ॥ ४८ ॥

मदीयसम्पर्किमुनिव्रजस्य, श्रीपूज्यभक्तिप्रवणाशयस्य ।
तथा हि—वीराद्विजयाः प्रबुद्धा, रवेः पदाद्या विजयाश्च विज्ञाः ॥ ४९ ॥
दीपादयो वा विजया गणेशाः, शिवादिमाः सद्विजयाः सधर्माः ।
ततः परं सत्कुशलप्रधाना, गणेशवर्या विजयाग्रशब्दाः ॥ ५० ॥
देवादिमाः सद्विजया जिनाद्या, लाधादयोऽन्ये स्थिरवासभाजः ।
गणिः कृपाद्यो विजयश्च हेमादिमः पुनः सद्विजयो गणीष्टः ॥ ५१ ॥
झञ्झाभिधानश्च मुनिः सुवृद्धसत्यादयोऽत्रत्यजनाः प्रतीताः ।
अत्रत्यसङ्घोऽनघभक्तिशाली, सर्वेऽपि चैते प्रणमन्ति पूज्यान् ॥ ५२ ॥
श्रीपूज्यनाम्नाऽत्र जिनाधिनाथाः, प्रीत्या नमस्याविषयीक्रियन्ते ।
प्रणामवेलामधिगम्य तेषामहं स्वचित्तेऽपि विधेय आर्षैः ॥ ५३ ॥
सद्यस्कपद्यैर्लिखितेन शीघ्रं, वैयग्र्ययोगाच्च मनोऽप्रसक्तेः ।
यथातथागुम्फितमेतदास्ते, दूष्यं न वैदुष्यपयोधिभिस्तत् ॥ ५४ ॥
श्रीगूर्जरक्ष्मावलयेऽत्र वर्षे, पादोऽवधार्योऽथ विपर्ययो वा ।
इत्यादि विस्तारवदेव सर्वं, प्रसादनीयं कृतनिर्णयं यत् ॥ ५५ ॥
सत्फाल्गुने मासि वलक्षपक्षे, यौगप्रमेयप्रमकर्मवाख्याम् ।
कनीव पत्री प्रगुणीकृतेयं, पाणौ गृहीता प्रतनोतु भद्रम् ॥ ५६ ॥

॥ पूज्याराध्यसकलभट्टारकदेवभट्टारकश्री१९श्रीविजयप्रभसूरीश्वर-
चरणसरोजानां श्रीपुरबन्दिरे । सं० १७१८ वर्षे ॥

***

तपोगणपतिश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० लाभविजयप्रेषितो

[१४] — विज्ञप्तिलेखः । —

॥ श्रीमद्वामाजानिजन्मा जयति जयति ॥ वाग्देव्यै नमः । श्रीसद्गुरवे नमः ॥

स्वस्तिश्रीवनिताकटाक्षलहरीसञ्चारिसच्छङ्खपुर्नारीकण्ठविहारिहारिविलसद्धारोपमानः प्रभुः ।
श्रीमत्पार्श्वजिनो बभस्ति सकले विश्वत्रये भास्करो, भव्याम्भोजविभासने शिवकरः श्रीआश्वसेनिर्जिनः ॥ १ ॥

स्वस्तीन्दिरालिङ्गितचारुदेहः, समस्तगोपालकुलावतंसः ।
वशीकृतो येन महोरगेनः, श्रीपार्श्वराड् वः स जिनः श्रियेऽस्तु ॥ २ ॥
वाग्देवतायां जनको जनानां, सुखंकरः सृष्टिकरः स्वयंभूः ।
श्रीपार्श्वराट् शंखपुराधिराजो, ददातु सौख्यान्यखिलानि वो नः ॥ ३ ॥
शंभुः शिवेशः फणिसेवितोऽसौ, गणाधिनाथाभिनतांह्रिपद्मः ।
कन्दर्पदर्पापहको ददातु, वो नः श्रियं शङ्खपुरेशपार्श्वः ॥ ४ ॥
शङ्खादिपुर्नायकपार्श्वदेवो, **देवासपुर्यां** कृतसन्निवासः ।
पूतीकृतं येन जगत्रयं स रातु श्रियं सर्वगुणाभिरामः ॥ ५ ॥

ह्रीँ ॥ स्वस्ति रमां स जिनो मम दद्याद्, यत्पदकोकनदं समुपास्ते ।
अङ्कतया हरिणोऽम्बककान्त्या, निर्जित एष ततो जिनशान्तेः ॥ ६ ॥
लोचनकान्तितयापि मृगाक्ष्यो, मां जिनराज ! जयन्ति नितान्तम् ।
वक्तुमितीव मृगः पदसेवामातनुते किल किं मृगकेतोः ॥ ७ ॥
जिनवरेश ! कुरङ्ग इति प्रभो मदभिधानमिदं प्रवदन्ति यत् ।
अपनय त्वमितीव वदत्ययं, हरिणको हि यदीयपदम्बुजे ॥ ८ ॥
यदा जितः स्त्रीनयनैः पृथिव्यां, गत्वा खमिन्दुं किल संश्रितोऽहम् ।
तदा प्रभृत्येव वदन्ति लोका, मदीयसङ्गात् सकलङ्कमेतम् ॥ ९ ॥
अतः परं नाथ ! व्रजामि कुत्र, दीनो वराको बहुलज्जितश्च ।
इतीव विज्ञप्तिमसौ तनोति, मृगो यदीयांह्रिकजद्वयेऽरम् ॥ १० ॥

ह्रीँ ॥ स्वस्तीन्दिरा सुन्दरमन्दिरं सद्धरेन्द्रदेवेन्द्रनतक्रमाब्जः ।
चतुर्मुखः सौख्यकरः स देवो, ददातु सौख्यं मुनिसुव्रताख्यः ॥ ११ ॥

सकलसेवकलोकसमीहितफलसमर्पणनाकितरूपमम् । यदमलांह्रिकजद्वयमुत्तमं जयति कूर्मवरान्वितमन्वहम् ॥ १२ ॥
चरणद्वितयं किल यस्य विभोर्भुवनत्रयसिद्धिमतिप्रवराम् ।
प्रददाति यदेतदिदं न किमु नितरामपि चित्रकरं सुधियाम् ॥ १३ ॥

यदीयपत्पद्मसुपेत्य कूर्ममिषान्मुरद्विद् किमितीव वक्ति । भवार्णवात्तारयसि त्वमीश ! सर्वांस्ततो मामपि तारयस्व ॥१४॥
यक्रमाम्बुजगन्धरसौघमत्ति(?) नाकिमनुजालिगणोऽरम् । यस्य पत्पयसि तस्य सुसेवां कुर्वते मुनिजनद्विजराजाः ॥१५॥
स्वस्तिश्रियं यच्छतु वामवामासूनुर्मनूनद्युतिभासमानः । सुधाङ्गरो भद्रकरः स पार्श्व **उक्केशपाटे** कृतसन्निवासः ॥ १६ ॥

यदीयदानं प्रविलोक्य नाकिद्रुमा नितान्तं किल लज्जिता वै ।
गतप्रभा नन्दनकानने गता विलज्जिता यान्ति नगाटवीषु हि ॥ १७ ॥
ओजोऽन्वितामन्वहमादरेण, यदीयमूर्तिं प्रविलोक्य पूषा ।
दासो बभूवेति किलावजाने, ददाति नो चेत् किमयं प्रदक्षिणाम् ॥ १८ ॥
अहिमहीपतिरंह्रियुगे विभोर्वसति यस्य सुधाझरशर्मणः ।
कथयितुं किमितीव विषोज्झितं, कुरु विभो! किल मां सुधयान्वितम् ॥ १९ ॥
जयति यस्य यशो जगतस्त्रये, जनमनःसुखदं विशदं सदा ।
यदधिपीय नराः प्रविमेनिरे, मनसि मिष्टतराऽपि सुधा मुदा ॥ २० ॥
ह्रीँ ॥ स्वस्तिश्रीमधुपीनिषेवितपदम्भोजं जगज्जीवनमीडे नागह्रदे स्थितं भगवतं (?) तं वामवामाङ्गजम् ।
कैलासोदरसोदरं गुणभरं बिभ्राणमानन्ददम्, संसारोदधितारणं गतमदं शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २१ ॥
यदीयवक्त्रस्य मनोहरत्वं, विलोक्य वार्जं बहुलज्जितं सत् ।
लीनद्विरेफालिमिषात् किमेतद् भुङ्क्ते विषं दोषविशेषशेषम् ॥ २२ ॥
यदीयवक्त्रं निखिलाम्बुजन्मराजं चकाराम्बुजभूर्यदेतत् । तदास्यदास्यं कुरुते हि मञ्जुकञ्जद्वयं नेत्रयुगच्छलेन ॥ २३ ॥
यदास्यपद्मं प्रविलोक्य पद्मं जले ममज्जातिविलज्जितं सत् । बुधैर्जनैरेव विमन्यते स्म नो चेदिदं प्रादुरभूत्ततः किमु ॥२४॥
यस्यास्यपाथोजमलं विलोक्य, लज्जाप्रपूर्णं जलजं बभूव ।
ततो द्विरेफालिमिषात् करालां, निजोदरे प्रक्षिपतीव शस्त्रीम् ॥ २५ ॥
सर्वभद्रकरं देवपञ्चकं नौम्यहं लसत् । सद्गुणौघधरं दुष्टकर्महं स्वच्छमानसम् ॥ २६ ॥ —धनुर्बन्धः ।
सकलमङ्गलकेलिकलागृहम्, विबुधपङ्कजकाननभास्करम् ।
समभिनम्य मुदा जिनपञ्चकममरसद्मकृतस्थिति सर्वदा ॥ २७ ॥

॥ इति जिनवर्णनम् ॥

अथ परमगुरुपदपवित्रीकृतपुरवर्णनम्—

ह्रीँ ॥ यस्मिन् पुरे काननमस्ति रम्यं तमालताम्बूलपियालशालि ।
मालूरजम्बीरकरीरसारं सत्तालमालामलकीविशालम् ॥ २८ ॥
मत्तभ्रमद्भृङ्गकुलैः कलश्रि सत्कोकिलाकेकिकलारवालि । विलासियूनोर्हृदयस्य चौर्यकरं हरिद्वस्त्रधरं नरश्रि ॥ २९ ॥
रसालसाला बहुनम्रशाखाः, फलातिभारेण नतोत्तमाङ्गाः ।
वदन्ति यस्मिन् विपिने नितान्तं, विश्वंभरां स्वां जननीं मुदेव ॥ ३० ॥
कि(क?)म्रोऽस्ति वप्रो न विनम्रदेहो, हिरण्मयः सर्वबुधैः प्रवर्ण्यः ।
विस्मेरकान्तिः कपिशीर्षकालिशालिस्तु वृन्दारकशैलरूपः ॥ ३१ ॥
मेनेऽहमेवं नहि वप्र एष मेरुस्समादाय दिवं करे स्वे । स्वर्लोकलोकैः परिभूषिताङ्गस्समागतस्सद्गुरुवन्दनाय ॥३२॥
यस्मिन् पुरे भान्ति निकेतनानि, मरुल्ललत्पल्लवसद्ध्वजाभिः ।
देवापगाराजितमूर्धदेशा अनल्पदेहा इव मेनकेशाः ॥ ३३ ॥
यस्मिन् पुरे वेश्मशिरःस्थलेषु, भान्ति ध्वजावायुचलत्प्रदेशाः ।
सद्माधिनाथस्य लसन्ति कीर्तयः, किमु प्रधाना गगनाङ्गणेऽन्वहम् ॥ ३४ ॥
यस्मिन् पुरे सद्मवरैर्मनोहरैर्ध्वजव्रजै राजितसच्छिरोभिः ।
विभासमानैः किमु तन्यतेऽरं हास्यं सुपर्वालिपतिर्नगर्याः ॥ ३५ ॥

यस्मिन् पुरे कान्तनिकेतनानि, सत्केतुभिर्भान्ति भृशं नितान्तम् ।
जित्वा श्रिया स्वर्गपुरीं किमेतैर्मौलौ भ्रियन्ते खलु निर्जयाङ्काः ॥ ३६ ॥
यस्मिन् पुरे रात्रिवरं गृहाल्यश्चुम्बन्ति सर्वा ध्वजजिह्वया वै ।
तप्ता रवेरातपतोऽह्नि नित्यं, सुधांशुबिम्बं समबाणरम्यम् ॥ ३७ ॥
यस्मिन् पुरे सद्वलभीपताकामिषाद् विजाने सुरनद्य एताः ।
स्नानेन देवाः परिपीडयन्ति, गताः शरण्यं नगरस्य तस्मात् ॥ ३८ ॥
यस्मिन् पुरे साधुसुधाविलिप्तैः, सौधैर्धरामण्डलमावभासे ।
निष्कास्य दुष्टां विधुवैरिणीं तिथिं, स्थितेव रम्या खलु पूर्णिमा तिथिः ॥ ३९ ॥
यस्मिन् पुरे बालमृगाम्बकानां, स्नानेन जाताऽतिकषायिताशया ।
नासीत् प्रसन्नाऽखिलया निशापि, वापीवराङ्गा ग्रहिलेव भामिनी ॥ ४० ॥
यस्मिन् पुरे हट्टपथे घरट्टजैः शब्दैर्लसत्सक्तुकरैर्विवादम् ।
घनेन सार्धं क्रियते हि यस्मात्, तस्मात् स जातो घनघर्घरस्वरः ॥ ४१ ॥
क्रीणन्ति पत्रेण मदेन साकं, गुञ्जन्तमप्येवमलिं मलीमसम् ।
तद्गन्धलुब्धं वणिजश्चतुःपथे, जना रविः(वैः?) पूरितकर्णदेशाः ॥ ४२ ॥
यस्मिंश्च कस्मीरजपुञ्जराजयः, प्रदोषकाले किल संप्रसारिताः ।
रेजुर्वरा अस्तमितस्य भास्वत इव प्रभारक्ततरा निरन्तरम् ॥ ४३ ॥
यस्मिन् पुरे चारुचतुःपथानि, विभान्ति वेदाह्विकुलैर्मितानि ।
तद्वर्णनं कर्तुमहं क्षमो नो, स्वल्पैर्दिनैरेकरसज्ञको वै ॥ ४४ ॥
यस्मिन् पुरे चारुणि राजमाने, जिनालयानां छलतः किमेते ।
अनल्पकैलासदरीभृतोऽभवन्, सुधान्विताः शम्भुनिवासयोग्याः ॥ ४५ ॥
यस्मिन् पुरे तोरणधोरणीभिर्विराजितं वेश्म मुनीश्वराणाम् ।
भातीव पुर्बालमृगाम्बकाया ललाटचित्रं बहुचित्रशालि ॥ ४६ ॥
यत्पत्तनं भाति पयोधिपुत्रीप्रालिङ्गितं सर्वगुणाभिरामम् ।
सत्तार्क्ष्यकेतोर्हृदयाम्बुजन्मस्थलं कलङ्केन विनिर्गतं वै ॥ ४७ ॥
श्रीमत्तातपदस्पर्शपावनीभूतभूतले । श्रीमति **पत्तने** तत्र यथास्थाने गुणान्विते ॥ ४८ ॥

॥ इति गुरुचरणनीरजपरपरागपुञ्जपवित्रीकृतपुरवर्णनं समाप्तिं पफाण ॥

अथ नगरवर्णनम्—

ह्रीँ ॥ **लङ्का** शङ्कावती येन, **काशी** व्याशा कृता तथा । कम्पमाना कृता **चम्पोज्जयिनी** जितकान्तिका ॥ ४९ ॥
क्रीडाशैलः सोऽस्ति यस्योपकण्ठे, चारुत्वं यस्यावलोक्याब्धिमध्ये ।
मैनाकाद्या लज्जिताः सन्निपेतुरन्ये ये मह्यां स्थिता निस्त्रपास्ते ॥ ५० ॥
गलन्झराणोंनिवहच्छलेन करेणुराजेव बभास्ति शैलः ।
शावत्वमस्याखिलसानुमन्तो मैनाकमुख्या दधति प्रकामम् ॥ ५१ ॥
क्रीडार्थमस्मिन्नचले नितान्तं, व्रजन्ति लीलाकलिताबलानाम् ।
धवस्य कण्ठार्पितदोर्लतानां, यूथान्ययुग्मार्गणपीडितानाम् ॥ ५२ ॥

चण्डी प्रचण्डद्युतिभासमाना, चतुर्भुजा राजति यत्र शैले ।
चक्रत्रिशूलांकुशशस्त्रवृन्दं, कृत्वाऽघनाशाय करे स्थितेव ॥ ५३ ॥
चण्डीसमीपे विमलाम्बुकुण्डं, दरी च तिष्ठत्यथ संवसन्ति ।
तपस्विनः सञ्चितवह्निकाष्ठमात्रोपजीव्या अचले च तस्याम् ॥ ५४ ॥
द्वितीयपार्श्वे बहुराजसेव्या देवी भवानी भवदुःखहर्त्री ।
कल्याणकर्त्री बहुधूपधूमश्यामीकृताङ्गा जननिर्विभाति ॥ ५५ ॥
आदित्यवाहैः प्रमितानि नीरकुण्डानि चण्डीनिकटे विभान्ति ।
वराणि कान्ताकुचचन्दनानां, प्रक्षालनात् संकलुषीकृतानि ॥ ५६ ॥
पयोभरैः पूर्णपयोधराश्च, श्यामाः स्वनन्त्यो नगमेखलायाम् ।
चरन्ति गावो गगनाङ्गणे च, पयोदमाला जनसौख्यकाराः ॥ ५७ ॥
एकत्र गोपीकलगीतशब्दैरूर्ध्वीकृतश्रोत्रमृगा रमन्ति ।
एकत्र मेघध्वनिसक्तकर्णा, नृत्यन्ति यस्मिन्नचले मयूराः ॥ ५८ ॥
परिरमद्युवतीजनसंकुलं मधुकरैः परिराजितभूरुहम् । विपिनमत्र विभाति दरीभृति जनमनोधनतस्करमद्भुतम् ॥ ५९ ॥
कल्याणदासभक्तेन योगमार्गानुगामिना । कृतौकं भाति शैलस्य मेखलाया मनोरमम् ॥ ६० ॥
ष(ख)र्जूरनारङ्गलवङ्गपूगं सचम्पकश्रेणि च चारुचूतम् ।
सचन्दनं नन्दनकाननाभं वनं बुधैः पूरितमध्यभागम् ॥ ६१ ॥ –(युग्मम्)
छटोच्छलद्वारिलसत्तटाको, बभस्ति रम्यो निकटे वनस्य ।
सत्केकिकोकद्विजचक्रवाकविलासिनारीजनसेव्यदेशः ॥ ६२ ॥
यस्मिन् पुरे वप्रवरश्चकास्ति, सन्मृन्मयश्छप्परराजिताङ्गः ।
विराजितो गोपुरराजिभिश्च, भटैः सशस्त्रैर्बहुसेवनीयः ॥ ६३ ॥
पराबलालोकनके गताक्षाः, परापवादे गतजिह्वकाश्च ।
परस्वग्राहे गतदोर्लताश्च, यस्मिन् पुरे श्राद्धवरा वसन्ति ॥ ६४ ॥
नयशोभाजनाः श्राद्धाः सन्ति यस्मिन् पुरे कुजाः । अपूर्वदानिनो धर्मानुरक्ता गुरुसेवकाः ॥ ६५ ॥
मत्तमातङ्गगामिन्यो दोषाकरमुखास्तथा । सन्ति यस्मिन् पुरे श्राद्ध्यः, कौलेयक्यो दयापराः ॥ ६६ ॥
अर्हद्वेश्मत्रयं यत्र भाति यत्रानुबिम्बिताः । तारकाः कुर्वते भ्रान्तिं मुक्तानामन्वहं नृणाम् ॥ ६७ ॥
मुनीनां निलयं यत्र दूरीकृततमोभरम् । धर्मकार्याणि यत्रैव चलन्ति हि निरन्तरम् ॥ ६८ ॥
पुरात् तस्मात् विनेयाणु**र्लाभादिविजयो** मुदा । विज्ञप्तिपत्रिकां भक्त्या, श्रीगुरावुपढौकते ॥ ६९ ॥
कृत्यं यथा प्रभाते प्रजायते सभ्यशोभितसभायाम् । व्याख्याने **षष्ठाङ्गं** स्वाध्याये **पञ्चमाङ्गं** च ॥ ७० ॥
प्रभातेऽत्र यतिः कश्चिन्नैषधं पठति द्रवम् । **नाट्यग्रन्थान्** यतिः कश्चित् कश्चित् **सिद्धान्तकौमुदीम्** ॥७१॥
चम्पूकथां यतिः कश्चित् कश्चि**ल्लिङ्गानुशासनम्** । कश्चित् विचारशास्त्राणि कश्चित् **सारस्वतं** तथा ॥ ७२ ॥
वृत्तरत्नाकरं कश्चिद् **वाग्भटालङ्कृतिं** तथा । कश्चित् **कुमारकाव्यं** च कश्चित् **सिद्धान्तचन्द्रिकाम्** ॥७३॥
योगं श्रीपञ्चमाङ्गस्य, वहन्ति मुनयो मुदा । श्रावका धर्मबुद्ध्या च, द्वादशव्रतपौषधान् ॥ ७४ ॥
इत्यादिसुकृतकृत्यैः प्रवर्तमाने क्रमात् प्राप्तम् । पर्युषणापर्व सद्धर्मदं बोधिदं श्रेष्ठम् ॥ ७५ ॥
जिनभुवनभूरिपूजननर्तनगानं च दानमानादि । कल्पादिसूत्रवाचनमभवच्छ्रीमद्गुरोर्ध्यानात् ॥ ७६ ॥
साधर्मिकवात्सल्यैरष्टमषष्ठैस्त्रयोदशैर्दशमैः । एतैः सह संजातं सर्वं श्रीमद्गुरोः स्मरणात् ॥ ७७ ॥

अथ श्रीमत्परमगुरुवर्णनम् –

भवापगानाथसमाप्तपारं, श्रीसिद्धिनारीकुचहारिहारम्। विवेकदृष्ट्या जितदेवमारं, जगज्जनानन्दकरं विदारम् ॥७८॥
यशोलतामण्डपमेघनीरं, प्रतापवह्नौ प्रवरं समीरम्। भव्याम्रपृथ्वीरुहवृन्दकीरं, सूक्तादिशास्त्राब्धिपराप्ततीरम् ॥७९॥
रीत्यादिकाव्याङ्गविचारपूर-शोभायमानं बुधपद्मसूरम्। जगद्विहारीकृतकीर्तिपूरं, यमीश्वरं धर्मवने मयूरम् ॥ ८० ॥
तावद्भजेहं वरसूरिवीरं, दयाकरं दुःखदवाग्निनीरम्। वरप्रभं संयमिमौलिहीरं, न्यायादिविद्यानिपुणं गभीरम् ॥८१॥

पद्यचतुष्टयस्य कमलबन्धचित्रम्। तत्परिधौ श्रीगुरोरभिधानम्।

महन्मुनिभिः प्रणतांह्रिपद्ममहं भजे मञ्जुयशःसुधाम।
मदीयनेत्रामलपद्मयुग्म महःपतिं सन्महसां सुधाम ॥ ८२ ॥ – खड्गबन्धचित्रम्।

प्रवृद्धशीलाङ्गरथाधिरूढस्तपःकृपाणः क्षमणः स्फुरोग्रः। धनुर्धरः शीलतनुत्रधारी विशिष्टशक्तिः सपृषत्कचक्रः ॥ ८३ ॥
श्रीसूरिराजः प्रजघान रागद्वेषौ महीमण्डलवज्रपाणी। अतः पताकाद्वितयं जयस्य भ्रूयुग्मनासामिषतश्चकास्ति ॥८४॥

कर्तुं स्वयंभूर्गुरुराजवाणीमिन्दोः सकाशादमृतं लुलुण्ट।
तद्दुःखभाक् सन् कृशतामुपैति, बिभर्ति कार्ष्ण्यं हृदये च कोपात् ॥ ८५ ॥
कर्तुं मनोभूर्गुरुवाचमिन्दुं, निपीड्य यन्त्रे कुहुनाम्नि दुष्टे।
सुधां जग्राह प्रवरो ततोऽभूद्, विधुः कलङ्कच्छलतः सरन्ध्रः ॥ ८६ ॥
पद्मासनः श्रीगुरुनाथवाणीं, विधातुमिन्दोरमृतं जग्राह।
तद्दुःखभाक् सन् जलधौ ममज्ज, नो चेत् कथं प्रादुरभूत्ततोऽयम् ॥ ८७ ॥
वराणि वाक्यानि गुरोर्निपीय, जाने नृणां नाकिगणेन साम्यम्।
पीयूषपूरादधिकां नरोगां, बुधाः सुधां साधुतमां पिबन्ति ॥ ८८ ॥
तव गिरं गुरुराज! विधिर्व्यधादमृतमण्डलतः प्रविलुण्ठ्य तत्।
पतित एष ततो रससीकरः, समभवद् रजनीरमणः खलु ॥ ८९ ॥
तृप्तिः परा स्यादमृताशनानां, पीयूषपानेन यथा विशेषात्।
तथा त्वदीयाननसूक्तिसारपानाद् भवेद् भूरितरा नराणाम् ॥ ९० ॥
वेधा विधातुं गुरुराजवाचं, सर्वां सुधां वै जगतो जग्राह।
देवो वृषाङ्कस्तदनाप्तिभाक् सन्, भुङ्क्ते विषं साधु सुधाशनोऽपि ॥ ९१ ॥

गिरं विधातुं हि विधिर्जग्राह सुधामशेषाममृतस्य कुण्डात्। अनन्तनागस्तदनाप्तिदुःखान्ममज्ज मद्यामपि मूर्च्छयित्वा ॥९२
पीयूषपानं सुखदं तथापि वृथैव मच्चेतसि भाति यस्मात्। पीयूषपानादधिकानि कर्णे श्रुतानि वाक्यानि गुरोर्मयारम् ॥९३॥

गुरोर्गिरस्ता जगतीतलेऽलं, जयन्ति यासां विमलैर्विलासैः।
बोधिर्जनेऽरं भवतीव मुक्ताशुक्तौ पयोबिन्दुभिरानिलेपैः (?) ॥ ९४ ॥
गिरं गुरोर्वर्णयितुं क्षमो नो, सहस्रजिह्वोऽपि सहस्रवर्षैः।
स्वल्पैर्दिनैरेकरसज्ञकोऽहं, शक्नोमि तां वर्णयितुं कथं वै ॥ ९५ ॥

रूवविणिज्जअ [मय]णो मणहरदेहो पसत्थगुणनिलओ। सिरिविजयप्पहसूरी जयउ महीमंडले सयले ॥ ९६ ॥
स्नातस्याप्रमितस्य मेरुशिखरे शच्या विभोः शैशवे, यस्यास्यं धवलीकृतं नयनयोः कान्त्योल्लसद्दीर्घयोः।
श्रीमच्छ्रीत्रिशलाङ्गजस्य गणपस्तस्यैष पट्टोद्धुरः, सूरिश्रीविजयप्रभो विजयताद् विश्वम्भरामण्डले ॥ ९७ ॥
भव्यानां चित्तपाथस्तनयवनगणे सञ्चरद् भृङ्गराजः, पुण्याब्धिः प्रीतिदायी सितरुचिरिव यः स्वीयगोभिस्तमांसि।
विध्वंसन् दुष्टकर्मद्रुमविपिनगणे मत्तहस्तीयमीन्द्रः, श्रीमच्छ्रीसूरिराजो जयतु वसुमतीमण्डले यावदर्कः ॥ ९८ ॥

पुष्पायुधस्य विजये विषयाम्बकाभं, कल्पान्तकालपवनं खलु मोहदीपे ।
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुसेतूपमं सकलसूरिवरं प्रणौमि ॥ ९९ ॥
श्रीसूरिराजसदृशं समवाप्य नाथमन्यं गुरुं क इह मूर्खजनो भजेत ।
त्यक्त्वा शिशुं शुभमणिं प्रविहाय काचमन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ १०० ॥
निबिडमई सुहकरणो दुहहरणो सयलपावविसहरणो । आणंदिअसयलजणो जयउ वरो सयलमुणिणाहो ॥ १०१ ॥
इत्याद्यनेकगुणमणिधरणे सद्रोहणाचलभैश्च । अवधार्या प्रणतिर्मे स्वशिशाववधार्य हितपूरम् ॥ १०२ ॥
निःशेषशास्त्रजलधेर्गतपारकाणां, स्वस्वाङ्गसुन्दरतया जितहृच्छयानाम् ।
श्रीमद्विनीतविजयाभिधवाचकानां, वाच्या तथा गुरुवरैः प्रणतिर्मदीयाः ॥ १०३ ॥
तथा—कवयो नयधौरेया **नयादिविजयाह्वयाः** । **रव्यादिवर्धनास्ते**ऽघघातिनः कृतिसत्तमाः ॥ १०४ ॥
यशोविजयिनः प्राज्ञा **यशोविजयसंज्ञिकाः** । **रामाद्विजया** धीमन्तः श्रीमन्तः स्फीतकीर्तयः ॥ १०५ ॥
धन्यादिविजयाः प्राज्ञाः सदाचारविशारदाः । तत्त्वज्ञानविदस्**तत्त्वविजया** गणयो वराः ॥ १०६ ॥
सिन्धादिविजयाः सन्तश्चतुराश्चतुराह्वयाः । **केसराद्विजयाः** स्मेरकेसरच्छविसाधवः ॥ १०७ ॥
इत्यादियतयो ज्ञाता, अन्येऽपि च भवन्ति ये । नतिश्चानुनतिस्तेषां विज्ञाप्या गुरुभिः सदा ॥ १०८ ॥
तथा—अत्रत्या गणयः सन्तः, **शुभादिविजयाह्वयाः** । विनेया **विनयाद्याश्च**, विनयान्वितचेतसः ॥ १०९ ॥
वृद्ध्यादिविजयाः शास्त्राध्ययनाभ्यासकारिणः । **भीमादिविजयाः** सन्तो योगमार्गानुगामिनः ॥ ११० ॥
साध्वादिविजयाः शैक्षाः साधुमार्गे रताः सदा । शङ्कराः सर्वलोकानां शैक्षाश्च **शङ्करर्षयः** ॥ १११ ॥
इत्याद्या यतयस्सर्वे विनयानम्रमस्तकाः । संयोजितकराम्भोजा नतिं कुर्वन्ति सद्गुरौ ॥ ११२ ॥
तथाऽत्रस्था वरा साध्वी **गुणलक्ष्म्याह्वया** सदा । **कर्मश्रीश्च** तथा साध्वी तनोति प्रणतिं गुरौ ॥ ११३ ॥
तथा **गम्भीरचन्द्राख्यः** श्राद्धः सङ्घपतिर्वरः । **पुञ्जराजस्**तथा देश-मण्डलाधिपतिः पुनः ॥ ११४ ॥
छीतराख्यस्तथा पौरजनानामीशिता वरः । श्रावको **राजचन्द्राख्यो जीवराजाभिधः** पुनः ॥ ११५ ॥
श्राद्धः **सहस्रमल्लाख्यो वत्सराजाभिधो** धनी । **तारणादासकः** श्राद्धः संघमुख्यो महद्धनी ॥ ११६ ॥
स्तवनकथनदक्षः श्रावको **मोहनाख्यो**, जिनपतितिपूजाकोविदः **केसवाह्वः** ।
निकटनिलयकस्थः श्रावको **वर्धमानो**, मुनिजनवरदाने दत्तसभ्यादरोऽसौ ॥ ११७ ॥
नारायणाभिधः श्राद्धः, **प्रेमराजो** बुधप्रियः । **प्राग्वाटाः** श्रावका एते, नमन्ति श्रीगुरुं मुदा ॥ ११८ ॥
मोहनश्चतुरुश्राद्धः **कर्मचन्द्रो** दयाघनः । **अमरसी**मुखा वृद्धोत्केशज्ञातिन इभ्यकाः ॥ ११९ ॥
प्रधानो **देवचन्द्राख्यो**, **जिनदासो** महामतिः । **मनजी**प्रभृतिश्राद्धा, नमन्त्युत्केशमण्डनाः ॥ १२० ॥
मुख्या श्राद्धीवरा **वारां**नाम्नी धर्मानुगामिनी । **हर्षां**नाम्नी तथा श्राद्धी नमति श्रीगुरोः पदम् ॥ १२१ ॥
इत्याद्यत्रत्यसङ्घो यो वन्दते तस्य वन्दना । अवधार्या विशेषेण, गुरुभिर्गणनायकैः ॥ १२२ ॥
संपुटीकृतहस्ताब्ज**वृद्ध्यादिविजयस्य** च । अवधार्या नतिर्नित्यं, विशेषाद् गुरुनायकैः ॥ १२३ ॥
मदर्हं चापि कार्यं वै, विस्तार्यं मयि सेवके । तथा कृपाप्रतानिन्यां, भाव्यं जीमूतवत् सदा ॥ १२४ ॥
वलमाना हिताशीश्च, प्रसाद्या गुरुपुङ्गवैः । अर्हद्दर्शनावसरे, स्मारणीयः शिशुस्तथा ॥ १२५ ॥
सालङ्कारा सदाकारा, सुभगा सुमनःप्रिया । वर्णनीया सकर्णानां, पत्रिका पुत्रिका मम ॥ १२६ ॥
कुर्यात् सूरिवरस्येयं, पाणिग्रहणमादरात् । जाता भाद्रत्रयोदश्यां, शुक्लायामिति मङ्गलम् ॥ १२७ ॥

॥ इति विज्ञप्तिलेखः ॥

तपोगच्छीयभट्टारकश्रीविजयदेवसूरिं प्रति उपाध्यायश्रीधनविजयगणिप्रेषिता

[१५] — विज्ञप्तिका —



स्वस्तिश्रीसुकनी स्वयंवरवरा चञ्चत्कलाशालिनी, तीर्थेशं श्रयति स्म यं सुरसरित् शम्भुं मुकुन्दं रमा ।
श्रीमद्दाशरथिं यथा जनकजा सर्वाचलं मेनिका, शीतांशुं किल रोहिणीव विलसत् पृथ्वीव पृथ्वीपतिम् ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीः श्रयति स्म यं जिनपतिं निश्शेषशोभाभरं, वैकुण्ठं प्रसभं पुराणपुरुषं गोपाङ्गनासङ्गिनम् ।
दासार्हं स्वपतिं जनार्दननरं प्रोत्सृज्य कृष्णद्युतिं, ज्ञात्वा वारिधिशायिनं च सहसा दामोदरं केशवम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीः कलहंसिकेव भजते यस्येशितुर्नित्यशः, पादाम्भोजयुगं स्वभावसुभगं संसारनीरातिगम् ।
सल्लक्ष्म्येकसुकेसरं गतमलं दुःकण्टकैर्वर्जितं, वन्द्यं विश्वनरामराधिपतिभिर्विघ्नौघनिर्नाशकम् ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रीः कमलाभिराममनघं यत्पादपद्माकरं, शिश्रायाभयदं सदा मुनिजनैः संस्तूयमानं स्तवैः ।
ज्ञात्वेति स्वकजं सकण्टकमहाभृङ्गारवैर्भीषणं, सीतक्लेशपदं जडैः परिचितं दुष्टैर्बकोटैर्हतम् ॥ ४ ॥

स्वस्तिश्रियः सर्वत एव सर्वा जिनोत्तमं प्राणपतिं प्रपन्नाः ।
यं प्रास्तदोषं जितरोषपोषं, विभाव्य चित्ते परयाऽतिभक्त्या ॥ ५ ॥
यस्याष्टकर्मक्षपणोद्यतस्य, नताङ्घ्रिवृन्दारकपादपस्य ।
कथा स्मृताऽपीह पिपर्त्यभीष्टं, सतां नृणां कामगवीव वन्ध्या ॥ ६ ॥
यो मूर्त्तिमान् जङ्गमकल्पवृक्षः, समप्रदः सर्वजनैरिहोच्यते ।
समञ्जसं तन्न विभासते यत्, भयप्रदो नैव जनेषु कर्हिचित् ॥ ७ ॥
यस्य क्रमाम्भोरुहि लाञ्छनस्थं, तुरङ्गमावीक्ष्य दधामि तर्कम् ।
तिर्यक्त्वमास्फेटयितुं स्वकं किं, सेवां तनोत्येष जिनाधिपस्य ॥ ८ ॥
तापाकुले तापनमण्डलेऽहं, रथस्य भारोद्वहनेऽप्यशक्तः ।
ततः क्व यामीति विचार्य लक्ष्मच्छलाद्धयो यत्पदमाश्रयत् किम् ॥ ९ ॥
संसारनीराकरतस्त्वयोद्धृताः, स्वामिन्नरौघा भवतोंऽह्लिलीनाः ।
कृपां विधायोद्धर मामितीव, शङ्के हयः शंसति लाञ्छनस्थः ॥ १० ॥
यस्यार्हतः स्वप्नगणार्चितस्य, मुक्तिं प्रति प्रस्थितिमा दधातुम् ।
संप्रेषितः किं विधिनाऽतिभक्त्या, हयः पदस्याङ्कमिषेण मन्ये ॥ ११ ॥
जातिस्तिरश्चामहमष्टमङ्गलः, स्वप्नेऽपि नादर्शि कथं जनन्या ।
इतीव विज्ञप्तिकृते यदंह्लिलक्ष्मच्छलाद् यत्पदमाश्रयत् किम् ॥ १२ ॥
येनार्हता स्वर्णरुचा स्वकान्त्या, स्थैर्याच्च किं निर्जित एव मेरुः ।
तत्साम्यमाप्तुं व्यजने तपोऽर्थं, जगाम यद् दृग्विषयोऽधुना न ॥ १३ ॥
यत्पृष्ठिभामण्डलकैतवात् किं, निषेवतेऽहर्पतिरेव मन्ये ।
स्वरांशुतामत्र जनेऽतिनिन्द्यां, निषेधनार्थं सुमनाः स्वकीयाम् ॥ १४ ॥

गर्भे समागत्य जिनेन येन निर्धाटिता दोषततिर्जनानाम् ।
सा तं समासादितमेव यत्तत्, तथ्याऽभवत् शम्भव इत्यभिख्या ॥ १५ ॥
यद्दिष्टदानाम्बुदवर्षणेन, नृणां परिप्लावितदौःस्थ्यवृक्षाः ।
न ते प्ररोहन्ति पुनर्यथा सरित्पूरेण सम्प्लावितपार्श्ववृक्षाः ॥ १६ ॥
संवेद्मि कालत्रयमेव तत्त्वत्रयं च विश्वत्रयमित्यवैमि ।
प्रज्ञापनार्थं शिरसि स्वकीये छत्रत्रयं योऽत्र जिनो बभार ॥ १७ ॥
सद्वर्ण············वा निरासीद्, यस्तीर्थराडित्यवधार्य येह ।
यत्पार्श्वतो भक्तिभृतां न चैवं, ज्ञानादिरत्नस्य कुतोऽन्यथाऽऽप्तिः ॥ १८ ॥
सेनासतीकुक्षिसरोमरालं, जितारिसर्वावनिनाथसूनुम् ।
तं तीर्थनेतारमनन्तसारं, प्रेम्णा प्रणम्यामलशम्भवाख्यम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनम् ॥

पुरं स्फुरत् सूर्यपुराभिधानं, मनुष्यरत्नप्रवरं निधानम् ।
कस्यास्ति नाह्लादकृते सुतेजश्चक्षुःपथस्थं हि यथा सुवर्णम् ॥ २० ॥
वैडूर्यमुक्ताफलशङ्खशुक्तिप्रवालमुख्यैर्विविधैः पदार्थैः ।
भृशं भृतायाः पुरतो हि यस्या, जलावशेषत्वमवाप वार्द्धिः ॥ २१ ॥
श्रीमद्गुरूणां चरणारविन्दरजोम्भसा क्षालितभूतलायाः ।
अनेकसत्पुण्यजनाश्रिताया, यस्याः पुरस्तादलकाऽलकाभा ॥ २२ ॥
जाने दृशोर्ह्लादकरञ्जनानां, पुरं सुधाकुण्डमवेत्य यत् किम् ।
तद्रक्षणार्थं स्वयमेव मूर्तः, शेषोऽत्र वप्रच्छलतोऽभ्युपेतः ॥ २३ ॥
पुराद् यतः श्रीनिलयादलक्ष्मीप्रवेशलेशप्रतिषेधनार्थम् ।
मन्येऽहमेवं विहिता विधात्रा, किं खातिका वारिभृता समन्तात् ॥ २४ ॥
यस्मिन् पुरासन्नवने निकामं, पिकाङ्गनानां मिषतस्समेताः ।
किं नाकनार्यः सुरलोकतो द्राक्, सङ्कीर्तयन्त्यः सुगुरोर्यशोऽत्र ॥ २५ ॥
अगण्यपुण्यप्रभवस्य लक्ष्मीं, निरीक्ष्य यस्यामरपत्तनं किम् ।
स्वर्गे निवासं व्यरचत् वितर्के, विषस्सचित्तं(?) घनलज्जयैव ॥ २६ ॥
चन्द्रानना वारिजपत्रनेत्रा, यत्राङ्गना वीक्ष्य गवाक्षसंस्थाः ।
ऊहं दधुर्ज्ञा इति पूर्णिमायामुदेति किं चन्द्रशतं रजन्याम् ॥ २७ ॥
तेनुः सकर्णाः प्रविलोक्य तर्कं, यस्योपकण्ठे तपनात्मजां नदीम् ।
समागताऽस्तीति विलोकितुं किं, पितुः स्वकीयस्य पुरं प्रवर्हम् ॥ २८ ॥
सुश्रावकान् यत्र निरीक्ष्य मन्ये, जीवादिसत्तत्त्वविचारदक्षान् ।
स्वात्मानमाधाय सहस्रधा किं, समागतः स्वर्गिगुरुर्गरीयान् ॥ २९ ॥
सम्प्रेक्ष्य नारीर्ददतीः सुदानं, मध्यंदिने यत्र गता मुनीशाः ।
कलौ युगे सन्ति न कल्पवल्ल्यश्चक्रुर्विचारं तदलीकमेव ॥ ३० ॥
सुरालयात् स्वायतिसाधनाय, सुराङ्गना एव समागताः किम् ।
श्राद्धाङ्गनानां मिषतोऽत्र मन्ये, दानं ददन्त्यो व्रतिनां हि यत्र ॥ ३१ ॥

यत्राब्जदृग् रत्ननिबद्धभित्तौ, सङ्क्रान्तमालोक्य निजं स्वरूपम् ।
निहन्ति पादेन रुषा सपत्नीबुद्ध्येति मन्ये दिवसावसाने ॥ ३२ ॥
यत्रागताः पान्थजना विशेषं, विन्दन्ति नो घस्रनिशीथिनीनाम् ।
रत्नप्रदीपैश्च गृहे प्रदीप्रैर्वियत्प्रदीपैर्दलितान्धकारे ॥ ३३ ॥
यत्रार्हतश्चैत्यशिरःप्रदेशे, प्रोत्तम्भितं दण्डमवेक्ष्य मन्ये ।
श्रीतीर्थनाथद्विषतां निहन्तुं, किं वेधसोर्द्धीकृत एष दण्डः ॥ ३४ ॥
यस्मिन् नराणां च जिनेश्वराणां, नरेश्वराणां वरमन्दिराणि ।
स्वतोऽधिकान्येव विलोक्य जग्मुर्मन्ये सुरौकांसि विमानतां किम् ॥ ३५ ॥
सद्वर्णवर्ण्यं वरशब्दयुक्तं, विभक्तिमन्मूर्खजनैरगम्यम् ।
बह्वर्थभुल्लक्षणवच्च यत्पुरं, विशारदैः संश्रितमेव भाति ॥ ३६ ॥
प्रद्वेषो यत्र पापे दृषदि कठिनता निर्दयत्वं कृपाणे, रुद्रत्वं व्योमकेशे दिनकरकिरणे तापकर्तृत्वमस्ति ।
जाड्यं न्यक्षे च वृक्षे कचवरनिचये बन्धनं वर्णिनीनां, दुष्टाचीर्णे विषादो बहलमलिनता कज्जले नैव लोके ॥ ३७॥
श्रीमत्तपागच्छगुरोः पदाब्जन्यासेन संपावितभूप्रदेशे ।
निरन्तरं साधुजनप्रवेशे, श्रियान्विते श्रीमति तत्र देशे ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीनगरवर्णनम् ॥

श्रीतातपादांह्रिपयोजसेवास्पृहालवः श्राद्धगणाः सुभक्ताः ।
वसन्ति यस्मिन् नगरे प्रकृष्टे, पुरात् ततो राजपुराभिधानात् ॥ ३९ ॥
संयोजितकरद्वन्द्वपद्मपेशलकुड्मलः । विनयनतसर्वाङ्गो धनादिविजयः शिशुः ॥ ४० ॥
सानन्दं सप्रमोदं च बहुमानपुरस्सरम् । सौत्सुक्यं सादरं जाग्रद्भक्तिसम्भारपूर्वकम् ॥ ४१ ॥
विनयनयाञ्चितचेता हर्षात्संवर्धमानभक्तिरसः । सातिशयं सौवाशयनिवेदनाय प्रकटवचसा ॥ ४२ ॥
योगाभिमतपदार्थैर्गणितावर्त्तैः सदा समभिवन्द्य । प्रणयति विज्ञप्तिमिमां विधिवद् रोमाञ्चकञ्चुकितः ॥ ४३ ॥
कार्यं यथा चात्र सहस्ररश्मौ समागते पूर्वगिरीन्द्रशृङ्गे ।
सद्भिस्सभ्यैः परिपूरितायामानन्दतः संसदि सङ्गतायाम् ॥ ४४ ॥
श्रूयमाणं सुधायानमिव श्रोतृसुखावहम् । श्रीमतः पञ्चमाङ्गस्य व्याख्यानं दुरितावहम् ॥ ४५ ॥
सिद्धान्तन्यायशास्त्रादेः पाठनं पठनं मुदा । योगोपधानयोर्नित्यमुद्वाहनमनेकधा ॥ ४६ ॥
भविनां नन्दिकृन्नन्दिभवनं विधिसंयुतम् । द्वादशव्रततुर्यादिव्रतस्योच्चारणं शुभम् ॥ ४७ ॥
इत्यादिदिनकृत्यानि निर्विघ्नानि समाधितः । सिद्धिं प्राप्तानि सर्वाणि सञ्जायते स्म चाधुना ॥ ४८ ॥
क्रमागते श्रीमति सर्वपर्वगर्वान्धकारा(?) दिवसेश्वराभे ।
श्रीक···पर्वणि सर्वदेवैः, कृतोत्सवे धर्मभराभिरामे ॥ ४९ ॥
स्नात्रं श्रीजिनसदने पूजा जिनपस्य सप्तदशभेदैः । गीतनृत्यादि(?) युक्ता पुस्तकपूजाऽङ्गपूजा च ॥ ५० ॥
श्रोतृजनसेवकल्पितकल्पद्रुमकल्पकल्पसूत्रस्य । सक्षणनवक्षणैरपि व्याख्याऽखिलशास्त्रसारस्य ॥ ५१ ॥
षष्ठाष्टमवराष्टाहपक्षक्षपणमुख्याकः(?) । तपोविधिरष्टकर्मक्षपणप्रवणो ········ ॥ ५२ ॥
साधर्मिकजनपोषणमघसन्ततिशोषणं सुकृतकरणम् । बहुजिनगुरुगुणगायनमनुजानां द्रविणदानं च ॥ ५३ ॥
द्वादशदिनान्याव······भयदानघोषपटुपटहः । चैत्यपरिपाटिकायाः करणं सद्बार्चनं चैव ॥ ५४ ॥
इत्यादिपर्वकर्माणि ससौख्यानि निरन्तरम् । निरपायतया सम्यक् प्रावर्त्तन्त महोदयम् ॥ ५५ ॥

श्रीतातनाममन्त्रस्मरणासाधारणैककारणतः । यद्वद्दिनकरकिरणैस्सहस्रपत्राणि विकसन्ति ॥ ५६ ॥

अपरं च–

यन्नाममन्त्रस्मरणं सुधातोऽधिकं परिप्रत्यवधारयामि । आद्यं चिदानन्दकरं जनानां पीता सती तुष्टिकरा यतः सा ॥५७॥

येनात्मरूपेण तृणीकृतः प्राक्, श्रीनन्दनः साधुजनोपगर्ह्यः ।
भवाम्बकोद्भूतहिरण्यरेतसा, नो चेत् कथं दह्यत एव शीघ्रम् ॥ ५८ ॥
यद्वक्त्र राकाशशिना समत्वं, सम्बिभ्रता चन्द्रमसा यदाप्तम् ।
दुश्चिह्नमद्यापि घनाश्रयस्थस्त्वदर्शयत् पङ्कमिषात् किमिन्दुः ॥ ५९ ॥
कैलासशैलोदरगौरकान्तियशो यदीयं नितरां भ्रमत् किम् ।
कृत्वा त्रिलोकीं धवलामवैमि मरुत्पथे, क्रीडति चन्द्रदम्भात् ॥ ६० ॥
धर्मोपदेशावसरे यदीयमुखेन्दुसंसूतवचःसुधा यत् ।
निपीय केचित् सुमनःस्वभावं, केचित् व्रजन्त्यक्षरतां च धन्याः ॥ ६१ ॥
दृष्टेष्वनिष्टेषु च यस्य साम्यं, संवीक्ष्य दोषाः कृतरोषपोषाः ।
कुशिक्षशो(शै?)क्षा इव ते स्वदोषमज्ञायमाना हि परं प्रपन्नाः ॥ ६२ ॥
यस्योत्कटं ध्यानबलं विचार्य, दूरं गताः सप्त दरा भियेव ।
तेऽप्राप्यमाणा वसतिं जनेऽस्मिन्, यद्वैरिणां वासगृहं प्रविष्टाः ॥ ६३ ॥
येन स्वगत्या जिनराजहंसो, विलज्जितोऽगाद् वरमानसे किम् ।
यद्वक्त्रमित्रं कमलं निरीक्ष्य, वैरं स्मरन् चञ्चुपुटेन हन्ति ॥ ६४ ॥
निषेवतेऽयं जलधिस्समेत्य, पदोर्ध्वरेखाच्छलतः किमेषः ।
विज्ञप्तिकां कर्त्तुमितीश ! जह्यान्मे क्षारदोषं जगतामनिष्टम् ॥ ६५ ॥
योऽगाधसंसारपयोधिमध्ये, पतज्जनानां करुणास्पदानाम् ।
स्ववाक्तरण्यामधिरोप्य पारं, नयत्यजस्रं वरनाविको यथा ॥ ६६ ॥
कर्पूरपूरोपमया यदीयकीर्त्त्या त्रिविश्वं भृतमेवमन्ये ।
चेन्नैवमेषा जगति प्रपूर्णे, कुतोऽन्यथा प्राज्ञजनैः प्रगीयते ॥ ६७ ॥
सद्विद्यया वज्रमुनीश्वरस्य, लब्ध्येन्द्रभूतेस्तपसोद्बलेन ।
श्रीमज्जगच्चन्द्रमुनीशितुः सद्ध्यानेन च श्रीमुनिसुन्दरस्य ॥ ६८ ॥
श्रीसिद्धसेनस्य कवित्वशक्त्या, साम्येन च श्रीगुरुहीरसूरेः ।
षट्त्रिंशदाचार्यगुणैर्गरिष्ठो, यः साम्यमाबिभ्रति सूरिराजाम् ॥ ६९ ॥
गुणैकसद्रत्नसुरोहणानां, कृपारसप्रीणितसज्जनानाम् ।
स्वस्थैर्यतस्तर्जितमन्दराणां, गाम्भीर्यतो धिक्कृतसागराणाम् ॥ ७० ॥
श्रेयोवतां भाग्यवतां तपस्विनां, महात्मनां पुण्यवतां यशस्विनाम् ।
भक्त्योल्लसद्वासववन्दितानां, तेषां गुरूणां नयनन्दितानाम् ॥ ७१ ॥

स्वहस्तलिखितस्याशुलेखस्यागतिमुत्तमाम् । समीहते शिशुर्नित्यं मनःसन्तुष्टिपुष्टये ॥ ७२ ॥

तेन श्रीमद्गुरुभिर्गुणगुरुभिः प्रवरबुद्धिजितगुरुभिः । छन्दोऽलङ्कृतितर्कागमशास्त्रे निहितनिजमतिभिः ॥ ७३ ॥

सौवश्रीसारवपुःपरिकरनैरुज्यसूचनाचतुराः । लेखाः प्रसादनीयाः प्रसद्य सद्यः स्वकीयशिशौ ॥ ७४ ॥

प्रणतिरवधारणीयौपवैणवं शैशवी विशेषेण । श्रीतातैरभ्रान्तैर्निष्णातैर्विश्वविख्यातैः ॥ ७५ ॥

तत्रापि विगततन्द्राः श्रीमत्श्रीवाचका **अमरचन्द्राः** । श्रीतातचरणवारिजसेवारसरसिकमधुपेन्द्राः ॥ ७६ ॥

विबुधाः **क्षिमादिविजया** विबुधवरा **रामविजयगणयश्च** ।
प्राज्ञा **विनीतविजया** धृतहृदयाः परमगुरुकूले ॥ ७७ ॥
सद्विद्या **नयविजया** विबुधा विबुधाश्च **वीरविजयाह्वाः** ।
मतिमन्तो **मतिविजया** विबुधवराः परमगुरुभक्ताः ॥ ७८ ॥
कृष्णविजयविबुधा अपि पण्डितमुख्याश्च **शान्तिविजयाह्वाः** ।
अमरविजयवरविबुधा [विबुध]वरा **लीलचन्द्राश्च** ॥ ७९ ॥
गणयोऽपि **गङ्गविजया जसविजय**गणिवराश्च गणयोऽपि ।
रामविजयनामानो गणयोऽपि च **लालविजयाख्याः** ॥ ८० ॥
जयविजयाभिधगणयो गणिनी **चम्पा** तथा सती **प्रेमा** ।
शीलवती च **जयश्री-[सु?]मतिश्रीः** सत्यशीलधरा ॥ ८१ ॥

इत्यादिसाधुसाध्वीवर्ग्गाणां तातचरणभक्तानाम् । अनुनतिरपि प्रसाद्या सद्योबन्धैस्त्रिदशततिभिः ॥ ८२ ॥

अत्रत्या धीमन्तः **प्रेमविजय-कुंअरविजयगणयश्च** ।
सौभाग्य-सिङ्घविजयाः, तेजविजयगणिवरा अपि च ॥ ८३ ॥
सहजश्री-जयतश्रीप्रमुखाः प्रणमन्ति तातगुणरक्ताः ।
सङ्घसकलोऽत्रत्यो विशेषतो भक्तितो नमति ॥ ८४ ॥

न्यक्षं विज्ञस्यनौचित्यं क्षन्तव्यं क्षन्तुमर्हितैः । हिताशिषः प्रसाद्याश्च विशेषोदन्तगर्भिताः ॥ ८५ ॥

नमतितरां वरभक्त्या विशेषतः **सिङ्घविजय**शिशुरणुकः । बाहुलबहुले पक्षे पञ्चम्यां सशिवमिति भद्रम् ॥ ८६ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ श्रीसूरतबन्दिरे । पूज्याराध्यसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारकभट्टारकश्रीविजयदेवसूरीश्वरचरणेन्दीवराणां विज्ञप्तिरियम् । राजपुरात् उ० श्रीधनविजयगणिलेखः ॥ सम्वत् १७०४ ॥

*

तपागच्छपतिभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० श्रीउदयविजयगणिप्रेषिता

[१६] — विज्ञप्तिका —



स्वस्तिश्रीपार्श्वनाथस्य पादपद्मनखांशवः । विस्तारयन्ति तरणेः प्रकाशमिव भानवः ॥ १ ॥
त्रयी धर्मार्थकामानां यदुपास्ति लतासुमम् । तत्फलं पुनराख्यातं कैवल्याद्याः श्रियोऽखिलाः ॥ २ ॥
श्रद्धामात्रमपि प्रोच्चैर्यत्र सौख्यनिबन्धनम् । तद्युक्ताया उपास्तेस्तु फलं केन प्रमीयते ? ॥ ३ ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयी यस्मिन्ननावृता । इन्दौ द्योतित्वसौम्यत्वाह्लादकत्वत्रयी यथा ॥ ४ ॥
यस्मादाविरभूत् पापोपशामकगुणोऽद्भुतः । वार्दलानावृतस्यांशोरिव पङ्कप्रशोषिता ॥ ५ ॥
अनावरणरूपाय तस्मै भगवतेऽर्हते । श्रीमते पार्श्वनाथाय नमः शाश्वतसम्पदे ॥ ६ ॥
एनमेनस्तमःस्तोमनिराकरणभास्करम् । सर्वातिशयसम्पन्नं प्रणम्य परमाशयम् ॥ ७ ॥
धनं धान्यं हिरण्यं च मणिमाणिक्यजातयः । पयांसीव पयोराशौ यत्रासंख्याः पदे पदे ॥ ८ ॥
गृहे गृहे विराजन्ते यत्र रामा रमा इव । ईहमाना यथाभीष्टं पुरुषोत्तममुत्सुकाः ॥ ९ ॥
परिभूता अपि परैरुच्चाः स्युरुपकारिणः । ध्वजाहतोऽपि यच्चैत्यात् कुम्भाभापूरकोंऽशुमान् ॥ १० ॥
चन्द्रकान्तगणाश्चन्द्रशालायां यत्र मण्डिताः । भृशं स्निग्धा इवाऽऽभान्ति राज्ञासित्त्वयः(?) किलामृतैः ॥११॥
गगने च पुरे चापि तारकैर्मणिभिर्भृते । सौम्यो नीत्या च कौमुद्या राजा चित्तदृशोः प्रियः ॥ १२ ॥
यत्र कर्पूरकस्तूर्यश्चूर्णिता अपि भोगिभिः । कुर्वते भृशमामोदं महतां रीतिरीदृशी ॥ १३ ॥
टङ्कच्छिन्नं कषारूढं तापितं च पुनः पुनः । यत्र स्वर्णं महामूल्यं सेयं सुजातरूपता ॥ १४ ॥
निशायामपि रत्नानि सुप्रकाशानि यद्गृहे । व्यालुप्यन्ते न तमसा नूनं सेयममूल्यता ॥ १५ ॥
श्रावक-श्राविका यत्र धर्मकर्मणि कर्मठाः । चकोरा वा चकोर्यो वा श्रीपूज्यशशिदर्शने ॥ १६ ॥
भरतैरवतप्रायाण्यन्यक्षेत्राणि मन्महे । श्रीपूज्यपावितं क्षेत्रं महाविदेहभूरिव ॥ १७ ॥
नित्यं धर्मार्थकामाढ्ये श्रीपूज्यपदपाविते । तस्मिन् श्रीजीर्णदुर्गाख्ये व्यावर्ण्ये पण्डितैरिति ॥ १८ ॥

*

अथ श्रीसिद्धपुरतः पुरतः सुखपूरकात् । अपूर्वचातुरीयुक्तश्राद्धलोकसमन्वितात् ॥ १९ ॥
अप्रमेयगुणापूर्णादसङ्ख्येयविधिश्रितात् । बृह···पूज्ययुगलीपवित्रीकृतभूतलात् ॥ २० ॥
श्रीपूज्यानामिदानीं च दर्शनोत्सुकमानवात् । श्रावक-श्राविकादत्तयथासमयसौख्यतः ॥ २१ ॥
प्रीतचेता विनीतात्मा श्रीपूज्यगुणरागवान् । प्रेमपाथोधिरुद्वेल औत्सुक्यतरुवारिदः ॥ २२ ॥
द्वादशावर्त्तविधिनाऽभिवन्द्य प्रणयाञ्चितः । प्रीत्या **उदयविजयो** विनीतात्मा तनोत्यमूम् ॥ २३ ॥
विज्ञप्तिं ज्ञप्तिधर्त्तव्यां (?) सुदक्षजनकामिताम् । विनयादिगुणश्रेणीमणीमञ्जूषिकामिव ॥ २४ ॥

यथावत् कृत्यं चात्र—

व्यतिक्रान्ते निशाध्वान्ते घातिकर्मणि दूरतः । केवले प्रकटीभूते सूर्यालोके जगन्मुनेः ॥ २५ ॥
वनाद्वनान्तरं यान्तः पक्षिणस्त्रिदशा इव । सूर्यांशुकेवलोत्पत्तिं ख्यापयन्तीव सोद्यमाः ॥ २६ ॥
प्रातस्त्यैर्नूतनोद्घोषैर्हर्षकोलाहलोपमैः । झङ्कारैर्मधुपानां तु वीणादीनामिवारवैः ॥ २७ ॥ — युग्मम् ।
इति व्यावर्णनौचित्यमादधाने समन्ततः । प्रत्यूषसमये जाते दिक्कन्यानवयौवने ॥ २८ ॥

सप्रभायां सभायां श्रीभगवत्यङ्गवाचनम् । व्याख्याने श्रोतृपुरतः स्वाध्याये साम्प्रतं पुनः ॥ २९ ॥
ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य वाचनं पाठनं पुनः । पाठार्हाणां तथा योगोपधानोद्वाहनादिकम् ॥ ३० ॥
धर्मकृत्यमभूत् सर्वं पर्व पर्युषणाऽपि च । क्रमायाता सती पर्वोचितसर्वोत्सवोदधिः ॥ ३१ ॥
साडम्बरं सकुशलं साधुसन्मानिताधिकम् । श्रीपूज्यचरणोपास्तिस्तत्राजनि निबन्धनम् ॥ ३२ ॥

अपरम्—

येषामशेषवैदुष्यभूषणीभृतधीमताम् । गुणाः केनापि नो मेया ज्ञानिनाऽपि महात्मना ॥ ३३ ॥
एकतो यदि पश्यन्ति कवयो यान् स्फुरत्तमान् । जल्पेनैकेन नो तर्हि वर्णनां कर्तुमीशते ॥ ३४ ॥
अहो ! रूपमहो तेजः ! काऽप्यहो दक्षताऽद्भुता ! । अहो औदार्य-चातुर्य-धैर्य-गाम्भीर्य-वर्यताः ॥ ३५ ॥
नम्यता येषु लोकानां सुदृशां येषु गेयता । ध्येयता येषु धीराणां वर्ण्यता येषु धीमताम् ॥ ३६ ॥
भक्तिपीयूषधाराभिर्वर्षणं कर्त्तुमिष्यते । पुष्करावर्त्तपाथोदं रूपेण मयकाऽनिशम् ॥ ३७ ॥
धर्मक्षेत्रेषु येष्वेवं शस्यसंपत्तिहेतवे । अतिस्निग्धेन मुग्धेन रासैस्तैस्तैः प्रसृत्वरैः ॥ ३८ ॥ —युग्मम् ।
अस्मादृशाश्चकोराभा येषु चन्द्रेष्विवाधिकम् । दधन्ते परमानन्दमेकपाक्षिकरागिणः ॥ ३९ ॥
एकपक्षोऽपि रागोऽयं क्रमशः सर्वैर्वर्द्धते । अन्तरा यदि नैव स्युः परैर्वादलवृन्दवत् ॥ ४० ॥
भक्तिरागो घनो येषु समुल्लसति मादृशाम् । पैशुन्यकारिणो वाता यदि न स्युस्तदन्तरा ॥ ४१ ॥
यद्वा वाता अपि प्रोच्चैर्मेलकाः सज्जना इव । औदीच्याः केऽपि भुवने वर्षतेऽभ्रा यदीरिताः ॥ ४२ ॥ —युग्मम् ।
इत्यनेकगुणश्रेणीजन्यो रागो दिवानिशम् । राजते मादृशां येषु चक्राणां भास्करेष्विव ॥ ४३ ॥
तैः श्रीपूज्यैर्जगत्पूज्यैर्वन्दना मामकी भृशम् । धर्त्तव्या मानसेऽन्येषामपि सा स्मृतिगोचरे ॥ ४४ ॥
ढौकनीया तथा श्रीमत्पूज्यपत्कजसेविनाम् । अनुनामश्च नामश्च प्रसाद्योऽत्र व्रतस्पृशाम् ॥ ४५ ॥

तथा हि—

विनीतविजयाह्वानाः श्रीवाचकधुरन्धराः । **रविवर्द्धन**विद्वांसो **यशोविजय**पण्डिताः ॥ ४६ ॥
गणयस्**तत्त्वविजया** अन्येऽप्यज्ञातसेवकाः । ये केऽपि तेषां व्रतिनां सर्वेषां पूज्यसेविनाम् ॥ ४७ ॥

अत्र च—

पण्डिता **धीरविजया वीरादिविजया** बुधाः । पण्डिता **रविविजयाः शिवादिविजयास्**तथा ॥ ४८ ॥
जीतादिविजया देवविजया मुनयः पुनः । **जिनादिविजया लालपुरे** च गणिपुङ्गवाः ॥ ४९ ॥
कमलाद्विजयाह्वानाः सधर्मविजयाभिधाः । एतेषां मुनिरूपाणां नतिर्धार्या महत्तमैः ॥ ५० ॥
अत्रोचितं प्रसाद्यं च कृत्यं कृत्यविदुत्तरैः । श्रीमतोऽनघसङ्घस्यावधार्या वन्दना पुनः ॥ ५१ ॥
कार्तिकस्य सिते पक्षे सप्तम्यां सोमवासरे । प्रेम्णा विज्ञप्तिलेखोऽयं लिखितो रातु मङ्गलम् ॥ ५२ ॥

॥ इति शुभम् ॥

पूज्याराध्यभट्टारकसभासरोजराजीराजीविनीजीवितेश्वरभट्टारकश्री १००८ श्रीविजयप्रभसूरीश्वरचरणसरोरुहाणामियं विज्ञप्तिः । श्रीजीर्णदुर्गमहानगरे ॥

***

तपागच्छाधीशश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति उपाध्यायश्रीकमलविजयगणिप्रेषिता

[१७] — विज्ञप्तिका —

॥ ऐं नमः ॥

स्वस्तिश्रीणां निधिरनवधिस्थामधामाधिरामः, श्रीमान् पार्श्वः प्रथयतु सतां सन्ततीर्मङ्गलानाम् ।
यन्मूर्द्धस्था फणमणिघृणिश्रेणिरुद्द्योतयन्ती, शैवं सद्म प्रसरति तिरश्च(श्चि)त्रमेतत् प्रतीमः ॥ १ ॥
कामं कामप्रमथनकलाकौशलं त्र्यम्बकस्य, श्रीपार्श्वस्य स्फुरति शिरसि स्फायमाना फणाली ।
अह्नायांहोविलयनिलया दूरतो वीक्षिताऽपि, स्वाहाभुग्भिः समभिलषिता या नवा जाह्नवीव ॥ २ ॥
भर्तुर्मौलौ विलसतितरां मल्लिकामोदरम्या, स्फाराकारा रसिकहृदयाह्लादकर्त्री फणाली ।
यत्राश्रान्तं भुवनजनतानेत्रपुष्पन्धयौघश्चित्रं चित्रार्पित इव चिरं सुस्थिरात्माऽधितस्थौ ॥ ३ ॥
जाने स्थाने त्रिभुवनगुरोर्मूर्ध्नि दृष्ट्वा फणालीम्, हर्षोत्कर्षं खलु सुमनसः प्रापुरुच्चैर्हृदन्तः ।
स्वस्याभीष्टाधिगतमजनि प्रेप्सितार्थोपलब्धेः, के वा न स्युर्मुदितमनसः सुप्रियानुग्रहेण ॥ ४ ॥
सानौ सानोरमरनगरीवासिनां भासमानाम्, फुल्लाटोपस्फुटफलवतीं किन्तु मन्दारमाला ।
एके जानन्त्यभिमतफलश्रेणिसम्पूरणाभिस्तामत्युक्तास्तदनु सुलभस्वेष्टलाभा जहर्षुः ॥ ५ ॥
अन्ये जन्येतरभवभयावारपारप्रसारे, मज्जन्तस्तां सुकृतसरसाः संविदां चक्रुरन्तः ।
बाढं गाढग्रथितनिबिडापातपोतायमानम्, यत्तद्ध्यानाधिगमसमयप्राप्तसंसारपाराः ॥ ६ ॥
कल्याणानां प्रकटयति या कोटिमालोककानामन्तर्भूमिं बहिरपि तिरः प्राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीः ।
उच्चैर्वास्तोष्पतिपरिचितं वैजयन्तावतंसम्, क्षेत्रं सिद्धेरपि भगवतो दीपमाला फणाली ॥ ७ ॥
यत्रो······र्दलयति तमो जीवलोकव्यवस्थम्, नालंभूष्णु प्रसृमरमहः कौमुदीकान्तबिम्बम् ।
ध्वस्तं दूरात् प्रवितमभितस्तत्प्रसर्पत् फणाली, रत्नावल्याः किरणततिभिः कोऽप्यहोऽर्हत्प्रभावः ॥ ८ ॥

॥ इति फणाल्यष्टकं प्रथमम् ॥

स्वस्तिलतापरिशीलनकोमलमञ्जुलमलयसमीरम् । प्रसृमरपरिमलमिलदलिपटलद्युतिडम्बरितशरीरम् ॥ १ ॥
प्रणमत पार्श्वजिनेन्द्रमुदारं, निर्लोठितकमठाहङ्कारं, प्रभावतीभर्तारम् ॥ ध्रुवपदम् ॥
सहृदयहृदयमहीरुहकीरं मन्दरगिरिवरधीरम् । कलिमलपटलदवानलनीरं सागरवरगम्भीरम् ॥ २ ॥ प्रणमत० ॥
मुनिजनमानसमानसहंसं भुवनत्रितयवतंसम् । सन्ततदुरिततमोभरहं संप्रद्योतितनिजवंशम् ॥ ३ ॥ प्रणमत० ॥
अमलकमलदलमञ्जुललोचनयुगलविराजितवदनम् । बन्धुरमधुरसुधामधुराधरविद्रुममणीयितरदनम् ॥४॥ प्रणमत० ॥
अवहेलितहुङ्कृतिमुखमदनं निर्म्मितदुर्म्मतिकदनम् । सज्जनजनकामितसम्पादनमद्भुतगुणगणसदनम् ॥५॥ प्रणमत० ॥
वासववारवधूजनगीतं वरपरभागपरीतम् । निर्जरसुरपुरपरिवृढलोचनदशशतसन्ततपीतम् ॥ ६ ॥ प्रणमत० ॥
रजतकनकमणिमयसुरनिर्म्मितसमवसरणकृतवासम् । वीतरागमपि विहितविलासं केवलकमलावासम् ॥ ७ ॥ प्रणमत० ॥
धरणराज-देवीपद्मावत्यधिवासितपदपार्श्वम् । अनुगतशासनसुरवरपार्श्वं स्मरत जना जिनपार्श्वम् ॥ ८ ॥ प्रणमत० ॥

॥ इति गूर्ज्जरीरागेण एकतालेन वसन्तरागेण वा गीयते ॥

॥ इत्यष्टकं द्वितीयम् ॥

श्रियमुच्चपदाभिलाषिणीमधिगम्य प्रियमेलकः प्रभुः । इह तामभियोज्य जिष्णुना प्रणतेन स्वयमास कामदः ॥ १ ॥
कलिकालकरालकज्जलैर्विदधुर्ये नयनाञ्जनं जनाः । खलु भावदृशां निमीलनं, समवापुस्तत एव तेजसा ॥ २ ॥
तदमुष्य विशिष्य भेषजं प्रणतिः श्रीप्रभुपादपद्मयोः । अलमस्त्युपचारकर्मणेऽत्रामुत्रापि च नित्यशर्मणे ॥३॥ – युग्मम् ।
कमनीयतया कनीयसीमपि चक्रुः प्रभुपर्युपासनम् । प्रभवेद् भविनां भवे भवे यदमीषां शिवसम्पदे हि सा ॥ ४ ॥
न रविर्न शशी न मङ्गलो न बुधो नापि गुरुर्न चोशनाः । न शनिर्न तमः पराभवं कुरुते यस्य सखोरगध्वजः ॥ ५ ॥
बहुधा विविधावलेपनैः किमु धावन्ति मुधा सुधाशयाः । विबुधा अबुधा अपीक्ष्यते यदियं निर्भरनेत्रयोः प्रभोः ॥ ६ ॥
कुशली किल सैष लभ्यतेऽतः प्रणयात् परिरभ्यते भृशम् । वपुषा वचसा च चेतसा पदपद्मस्तव चिन्तनं प्रभोः ॥७॥
सुररत्नघटादयो घटामुपटीकन्त इतः परां परे । अधरीकृतदेवपादपा विजयन्ते पदरेणवः प्रभोः ॥ ८ ॥

॥ इत्यष्टकम् ॥

एवं जीरापल्लीपार्श्वजिनं वृजिनकन्दकुलपार्श्वम् । श्रितधरणाधिपपार्श्वं प्रणयनरात्(?) प्रणिपनीपत्य ॥ २५ ॥

अथ नगरवर्णनम् –

यत्राभ्रंलिहरत्नसौधशिखरे नक्षत्रतारोत्करः, खिन्नः खिन्न इव व्रजन् प्रविरलीभूतः स्वतः संस्थितः ।
अग्रे बम्भ्रमणक्रमव्यपगमं निर्मातुकान्तिप्रियः, [सत्यं] सत्पदवीमवाप्य सुखितो देदीप्यते वा न कः ॥ २६ ॥
यत्रोर्ध्वं मणिकुट्टिमे मृगदृशः क्रीडन्ति हर्म्ये मिथो, मुग्धाः स्वप्रतिबिम्बतोऽपरधिया द्रुह्यन्ति मुह्यन्त्यपि ।
जानन्त्यो विनिवारयन्ति चतुराः सख्यः समेता हि ता, अन्योऽन्यार्पितहस्ततालमितरैर्हसन्त उत्प्रेक्षकैः ॥२७॥
क्वापि प्रोषितभर्तृका चटुलदृक् स्वं रूपमालोकयत्यादर्शायितरत्नभित्तिवलये प्राप्ता मणीमन्दिरम् ।
किं रूपं किमु यौवनं विरमणं ध्यायन्त्यगान्मूर्च्छनां, हा हा हे! ति वचो मिलत्सखिजनैरुन्मृज्य सम्बाध्यते ॥२८॥
यत्र स्वर्मणिगर्बहृन्मणिमया वासाश्रयानुग्रहा, वाणिज्याब्धिपथप्रवासजनितायासं विनापीश्वराः ।
अन्येषां कृतविस्मयाः समभवन्निःसङ्ख्यलक्ष्मीजुषः, सानन्दा अपरेन्दिराऽर्जनकृते मन्दादरा नागराः ॥ २९ ॥
यत्र स्फाटिकरत्नकोटिघटितप्रासाददम्भादगात्राके शङ्करसङ्करोत्तरशिराः(?) कैलाशशैलः किमु ।
ईशानं परमेश्वरं शिवमिह श्रीकण्ठमुत्कण्ठया, विज्ञायोपगतं महाव्रतिपतिं श्रीवामदेवं गुरुम् ॥ ३० ॥
यत्रोत्तुङ्गमहेन्द्रनीलभवनश्रेणीवलभ्यां स्थितः, फुल्लत्फुल्लदलावलीकवलनाच्चन्द्राङ्कशायी मृगः ।
प्राप्तस्तुन्दिलतां ततः स्थगयति क्वापि क्षणे कौमुदीकान्तं तेन सितेतरः किमभवत् पक्षो वलक्षोऽपरः ? ॥ ३१ ॥
कुत्राप्युद्वलचन्द्रकान्तरचितप्रासादपङ्क्तेः क्षरत्-पीयूषप्रसरत्प्रवाहनिवहे स्नानं वितेनुर्जनाः ।
आयासेन विनापि चत्वरपथे नैदाघदाघार्दिता, नक्तं पूर्णकुमुद्वतीवरयितुः स्फीतोदये कौतुकात् ॥३२॥ – युग्मम् ।
यत्रार्कोपलकोटिक्लृप्तनिलयव्यूहः सहस्रद्युतौ, मध्याह्ने परितः स्फुरत्यभिनभः पास्फाति यद्युद्घनः ।
हालाजिह्वजटालपिण्ड इव तद् दृष्ट्वेति भर्तुर्भुवो, मूर्त्तः किं प्रबलः प्रतापनिवहः सम्भाव्यतेऽभ्यागतैः ॥ ३३ ॥

॥ इति नगरवर्णने सौधाष्टकम् ॥

जिनभवनवितानोत्तुङ्गशृङ्गावनद्धा, कनकमणिमयोद्यत्किङ्किणीक्वाणरम्या ।
श्रियमिव दशदिग्भ्यस्तूर्णमाकारयन्ती, नवनवपवमानप्रेरिता वैजयन्ती ॥ ३४ ॥
त्वमसि परिणतैकश्रीदमस्मि प्रभूतोपचितधनदयुक्तं चैकसद्देवराजम् ।
अहमिह बहलेन्द्रं चैककैरावताढ्यं, बहुभिरिभवरेन्द्रैर्भासमानं तथाहम् ॥ ३५ ॥
त्वमसि मम पुरः किं लेखकोल्लेख्यहर्षं, सुरपुरमिति तर्ज्जन्येव यत् सन्ततर्ज्ज ।
जिननिलयसमीरप्रेरणेतस्ततः सत्, प्रसरणगुणवल्गद्वैजयन्त्या मिषेण ॥ ३६ ॥ – युग्मम् ।

गुरुपदपरिचर्याकारिणां कीर्त्तिकन्या, वियति विचरयिष्यत्याशशाङ्कस्य बिम्बम् ।
जिनभवनपताका प्रेरिता वातपूरैस्तत इयमिदमीयं मार्गमादौ प्रमार्ष्टि ॥ ३७ ॥
त्रिभुवनगुरुसद्मस्फायमानोत्तमाङ्गे, किल धवलदुकूलाङ्गायती वैजयन्ती ।
त्रिदिवसरिदिवाभान्मूर्ध्निभर्त्तुर्भवान्याः, किरणनिकरनीरस्फाररङ्गत्तरङ्गा ॥ ३८ ॥
परमियमसुमन्तं दूरतः प्रेक्षिताऽपि, प्रसभदुरितहर्त्री द्राक् पवित्रीकरोति ।
सलिलसवनकर्त्तुः सा तु बाह्याङ्गमेवाशुचितनुमलकेशाकीर्णमध्या पुनाति ॥ ३९ ॥
तरुणजिनविहारोत्तंसपौंस्नोत्तमस्य, प्रवरतरवराङ्गस्येव चूलापताका ।
ललितमरकतोस्रैर्मेचकीभूतवर्णा, विनतविवृतमध्यप्रान्तमूला प्रलम्बा ॥ ४० ॥
जिनपतिगृहशीर्षस्थाणुसौवर्णकुम्भाऽऽ-कृतिरिह किमु पूषा तिष्ठति स्वोपरोधात् ।
रविरथहयराज्या वैजयन्त्या लता या, निभृतमसितुलिष्णा निश्चलाया अनन्ते ॥ ४१ ॥

॥ इति नगरवर्णने जिनसद्मशृङ्गसङ्गिपताकावर्णनाष्टकम् ॥ २ ॥

स्पृहयन्ति न के न केलये प्रवरं तत्पुरमीप्सितास्तये । विपणौ बत यत्र लभ्यते पतिता मौक्तिकरत्नसन्ततिः ॥ ४२ ॥

कथमिति चेदुच्यते–

क्वचिदिभ्यकुमारिकाजनो मणिमुक्ताफलभूषणोद्भटः । रमते प्रतिचत्वरं मिथो हठहल्लीसकबालकेलिभिः ॥ ४३ ॥
रभसात् त्रुटिता पतेदपि श्लथबन्धा मणिमौक्तिकावलिः। निपुणा अपि नो गवेषयन्त्यपरास्ताः पृथुपू···पूरिताः ॥४४॥
समये समवाप्यते न कैः पथि गच्छद्भिरथापणान्तरा । किरणैस्तरुणारुणस्य सा द्युतिदीप्ता प्रकटीकृताऽभितः ॥४५॥
रमणायतनं पितुर्गृहात् कृतभूषा क्वचिदिभ्यवल्लभा। विपणेः पथि तामपातयत् किल यान्ती सहसा स्मरातुरा ॥ ४६ ॥
अथवा कुतुकावलोकने रसिका काऽपि पणाङ्गना। क्वचिद् बहुमण्डनमण्डिता स्थिता विपणेर्वर्त्मनि लोकसङ्कुले ॥४७॥
हृदयं हृदयेन दल्यते बहुसम्मर्दवशाच्चतुःपथे ।
मणिमौक्तिककञ्चुकाच्युतां तामन्तःक्षिति साऽभ्यपातयत् ॥ ४८ ॥ –यमलम् ।
यदि वा व्यवहारिणां कराद् व्यवसाये मणिमौक्तिकार्पणे। मनसोऽनुपयोगतश्च्युता पतिता सा सहसा निशामुखे ॥४९॥

॥ इति नगरवर्णने विपणिपथवर्णनाष्टकम् ॥ ३ ॥

पुरे यत्र चित्रापणश्रेणिशोभां निभाल्याध्वगा दूरदेशादुपेताः ।
विकल्पैनरल्पैः प्रजल्पन्ति कल्पा मिथोऽन्योऽन्यहस्तार्पितोत्तालतालम् ॥ ५० ॥
क्वचिद्यत्र कर्पूरपूरोपरिष्ठाद् द्विरेफोत्करोऽङ्गारभूयं बिभर्ति ।
निलीनं स्फुरत्सौरभास्वादलुब्धो भ्रमन् रौति नामेति कर्त्तुं वृथैव ॥ ५१ ॥
क्वचित् कृष्णकस्तूरिकाराशिसंस्थं, निलीनं न जानन्ति कालालिचक्रम् ।
अपि ग्राहका दायकास्तुल्यमूल्यं, तदप्यश्नुते किं नवा साधुसङ्गात् ॥ ५२ ॥
क्वचित् कान्तकाश्मीरजप्राज्यपुञ्जं, विलोक्यात्र लोकाः प्रजल्पन्त्यमीषाम् ।
अजर्य्यं हि काश्मीरदेशाधिपेन, प्रभूतं दरीदृश्यते नागराणाम् ॥ ५३ ॥
क्वचिज्जात्यसच्चन्दनैः पूर्यमाणापणश्रेणिमालोक्य मन्दादराः स्युः ।
नरा नन्दने चन्दनद्रौ तदद्रौ यतो निष्ठितार्था भवन्ति स्म ते तैः ॥ ५४ ॥
क्वचित्तारहारोत्करो मौक्तिकानां, भ्रमं वासुकेः प्रेक्षकाणां प्रदत्ते ।
समेतस्य भोगावतीगर्वसर्वंकषं यत्पुरं वीक्षितुं स्वीयदृष्ट्या ॥ ५५ ॥

कुलाद्रौ वितीर्य क्षमाभारमब्धौ शयाने हरौ जातु निश्चिन्तचेताः ।
अथात्रैव तन्नागरीनेत्रलीलाकटाक्षैर्ध्रुवं यन्त्रितात्मेव तस्थौ ॥ ५६ ॥ —यमलम् ।
क्वचिच्चीनपीनांशुकैर्ल्लीनदेशः स्फुरद्धामहेम्नाम्भरैः स्वर्णशैलाः ।
विशुद्धौषधीभिः समाकृष्टुमिष्टः सपादोत्तरो लक्षनामा गिरिः किम् ॥ ५७ ॥

॥ इति नगरवर्णने हट्टवस्तुविशेषवर्णनाष्टकम् ॥ ४ ॥

एवं सर्वाङ्गीणप्रसमरपरभागपूरिते तत्र । श्रीमति पत्तननगरे गुरुपदकमलस्फुरत्कमले ॥ ५८ ॥
साम्प्रतसमयसमुत्थितनैसर्गिकभोगिभुक्तभूभागात् । श्रीस्तम्भतीर्थनगरोत्तरबन्दिरतो गुणाश्रयतः ॥ ५९ ॥
स्निग्धानन्दसुधाम्भोधिसवनसावनीभवन् । औत्सुक्यदिव्यवासोभिः संवीतस्फीतसञ्चरः ॥ ६० ॥
गुरुभक्तिरसस्फारवारहारविराजितः । श्रीमद्गुरुगुणग्रामपुष्पदामसमन्वितः ॥ ६१ ॥
हृल्लेखघुसृणोल्लेख्यविशेषकविशेषितः । अप्रमेयप्रमेयोक्तिरसताम्बूलपेशलः ॥ ६२ ॥
पाणिसंयोजनास्वर्णमुद्रामण्डनमण्डितः । व्यवहारसदाचारव्यवहारीभवन्मनाः ॥ ६३ ॥
विनेयोन्नेयविज्ञेयविनयश्रीफलोद्वलः । गुर्वर्चिःप्रमितावर्त्तवन्दनार्होत्तरीयकः ॥ ६४ ॥
संश्रयस्मयसंस्कारपरीहारकृतादरः । यौगाभिप्रेतजीमूतप्रसूनैकगुणाश्रयः ॥ ६५ ॥
महीतलमिलन्मौलिर्ल्ललाटघटिताञ्जलिः । प्रपञ्चयति विज्ञप्तिं कमलाद्विजयाह्वयः ॥ ६६ ॥
यथानिमित्ताधीनात्मलाभमभ्युद्गते रवौ । पठत्सु वेदगर्भेषु वेदोद्गारमहर्मुखे ॥ ६७ ॥
उत्तालोत्कलिकाकोलाहलं कुर्वत्सु सर्वतः । क्वचित्कुलायकूलेभ्यः प्रचलत्सु शकुन्तिषु ॥ ६८ ॥
विकस्वरेभ्यः कोशेभ्यः सरस्सु सरसीरुहाम् । मधुव्रतेषु निर्यत्सु झङ्कारमुखरोन्मुखम् ॥ ६९ ॥
अन्योऽन्याजल्पाक······पानीयाहारिकास्वपि । पेयपानीयमानेतुं प्रयान्तीषु सरः प्रति ॥ ७० ॥
क्वचित्सुरतसम्मर्दोन्मुक्ताहारपरिच्युताः । मुक्ताफलानां सारिकाः शयनीयनिकेतने ॥ ७१ ॥
बाढं गवेषयन्तीषु कान्तासु निभृतेक्षणम् । तद्दासीषु भ्रमन्तीषु वीक्षितुं ता इतस्ततः ॥ ७२ ॥ —यमलम् ।
क्वचिन् मङ्गलतूर्येषु नन्दत्सु नृपमन्दिरे । झल्लरीस्फारझात्कारे प्रसर्प्पति गृहेऽर्हताम् ॥ ७३ ॥
एवं नवनवानेकप्रातस्त्यार्हप्रयोजने । सञ्जायमाने पार्श्वग्रहृद्यायां प्रौढपर्षदि ॥ ७४ ॥
वाचनं पञ्चमाङ्गस्याचाराङ्गस्याप्यनुक्रमात् । अध्यापनं मुमुक्षूणामियत्स्वेवार्हकर्मणि ॥ ७५ ॥
वर्तमाने क्रमायातं पर्व्व पर्युषणाभिधम् । सर्व्वपर्व्वाखर्व्वगर्व्वसर्वंकषमतिश्रुतम् ॥ ७६ ॥
कियद्दिनोदितामारीपटहस्फुटघोषणैः । कियत् कुकर्मव्यापारनिवर्त्तननिवर्त्तनैः ॥ ७७ ॥
षष्ठाष्टमादिदुस्तप्यतपोव्रतैरनावृतैः । साधर्मिकजनश्रेणितोषणैः पुण्यपोषणैः ॥ ७८ ॥
अर्हद्भुवनभूयिष्ठस्नानपूजाप्रवर्त्तनैः । मार्गिताधिकदानेन मार्गणश्रेणितोषणैः ॥ ७९ ॥
कल्पद्रुकल्पश्रीकल्पसूत्रनव्यनवक्षणैः । प्रभावनाभिः श्रीखण्डापूगीश्रीफलनाणकैः ॥ ८० ॥
इत्यादिपर्वप्रायोग्यकृत्यैः सज्जितविक्रमम् । महामहसहायेन निर्व्यूढं निरपायतः ॥ ८१ ॥
प्रमापणपथारूढप्रत्यूहव्यूहसम्भवात् । श्रीमत्पूज्यपदाम्भोजप्रभावोदयतोऽपरम् ॥ ८२ ॥

अथ गुरुवर्णनम्—

सहृदयाः सदयं हृदयं विदुः सुविहितेन्द्रतपागणधारिणम् । अवितथं कथमित्यवसीयते यदुदयाददयत्वमितीक्ष्यते ८३
असममोहमहेन्द्रमहाबलोद्भटभटाग्रिममन्मथपार्थिवम् । प्रमथनाथ इव ज्वलितः क्रुधा यदुदभून्नयनातिथितां नयन् ॥ ८४ ॥
सुरपतेरपि सत्त्वमपातयन्नरपतेरपि मानमखण्डयन् । जिनपतेरपि हन्त कियद्दिनीमभिमतः प्रथिताक्षतविक्रमः ॥ ८५ ॥
तमजितौजसमाः शिशुतावधेः प्रसभमत्तकरीन्द्र इव द्रुमम् । समुदमूलयदात्मबलेन यो रतिपतिं सदयत्वमदः कथम् ॥ ८६ ॥

अपृथगात्मकमाजननावधेर्जनितदार्ढ्यमरङ्गमभङ्गुरम् । प्रणयमेकहृदां सुहृदां मिथः प्रलयमेकलयं नयति स्म यः ॥८७॥
नरकनिम्नगतेः प्रतिभूरभूद् बहुतरासुमतां सुमतान्तिकः । तमपि कोपमलोपममारयद्रयत एव कथं सदयः सकः ॥ ८८ ॥

अहह ! बाहुबलिर्बहलीपतिर्भरतभूमिपतिं भरतेश्वरम् ।
युधि विजित्य बभूव जितेन्द्रियस्तमपि यः स्म विडम्बयति स्वतः ॥ ८९ ॥
तमपि मानममानभुजौजसा द्रुतमगालयदम्भ इवोल्वणम् ।
लवणखण्डमखण्डमहाबलः प्रभुरसौ सदयः सदयः कथम् ॥ ९० ॥

वितनुते सहनं वशवर्त्तिनं विदलयत्यपि दुर्जयविद्विषम् । किमपि धूर्त्तजनं जनयत्यसौ स्वरसिकं समकं प्रियवादिनम् ॥९१॥
परिणता वनितात्मकमेकका प्रकुरुते कुरुतेतरवाचिका । प्रवरपौंस्नवतंसमसंशयं बलवतीव विधेरतिशायिनी ॥ ९२ ॥

अविरमां परमां चिरमात्रिको निकृतिमन्तयति स्म कृतान्तवत् ।
न गणिता गुणवत्यबलेत्यपि स्वयमयं कथमास दयाशयः ॥ ९३ ॥

यदुदयेन जना वधबन्धनाद्यभिभवेन भवेऽत्र कदर्थनम् । बहुविधं विबुधा अपि लेभिरे स्वजनसज्जनवैरनिबन्धनम् ॥९४॥
सकलदूषणमूलनिकेतनं निजवशीकृतविश्वसचेतनम् । बहुभवभ्रमणाय पुरातनं ननु निमित्तमनन्तममेधसाम् ॥ ९५ ॥
घनघरट्ट इव प्रगुणीभवन् कणगणं क्षणतस्तु पिपेष यः । तमपि लोभमदम्भमनःप्रभुः कथमथो हृदये सदयोद्बलः ॥९६॥
सकलकर्मकुटुम्बकनायकं कुसुमसायकपावकभावुकम् । तमपि मोहमहाबलमादराद्दलयितुं यतमानमनारतम् ॥ ९७ ॥
सुविहिताग्रिमसूरिशिरोमणिं नयनयोः पदवीमदवीयसीम् । समवतार्य विचारविदः कथं सदयता दयिता दयितं विदुः ९८

॥ इति निन्दास्तुत्या हृदयनिर्दयत्वप्रकाशकं षोडशकम् ॥ १ ॥

हृदयं सदयं मुनीशितुः समयज्ञैर्यदभाणि नान्यथा । हृदयालुदयालुलक्षणं स्फुटमेवात्मनि लक्ष्यते हि तत् ॥९९॥
अपरानुपतापिता स्मृता समयज्ञैर्विबुधैर्दयाज्ञया । इयमङ्गवती विजृम्भते गणभृच्चेतसि वै निसर्गात्मनि ॥ १०० ॥
यत आर्हतसम्मतागमे किल जीवा द्विविधाः प्ररूपिताः । अपराश्च चरा अनेकधाऽप्युभये बादर-बादरेतराः ॥१०१॥
इह बादरता ह्यपेक्षया प्रथिता नन्वणुभावभेदवत् । ध्रुवमेषु मुमुक्षुतावधेर्यतनाधिक्यमये यतीशितुः ॥ १०२ ॥
पृथिवीजलवह्निमारुतास्तरवोऽमी स्थिरजीवराशयः । विकलाः सकलास्त्रसाः पुनः षट् सङ्ख्या इति जन्तवः समे ॥१०३॥
परमेषु परेऽपि साधवः प्रयतन्ते प्रतिपालनादिषु । यदनुग्रहतो विशेषतः कथमेते प्रभवादयो···ताः ॥ १०४ ॥
अपराऽपि कृपालुता प्रभोः खलु तां पश्यत पश्यतेति भोः । अपकारिषु योपकारिता न हि सा स्याद् हृदये दयां विना १०५
परमागमतत्त्वचिन्तनप्रभवध्यानबलेन दुर्जयम् । अपि मोहममुं वशंवदं प्रविधाय प्रथमानविक्रमः ॥ १०६ ॥
अपराधविरोधकृत्यलं क्रुधि माने निकृतौ परिग्रहे । मृतमारणमित्युपेक्षणं कृतवान् यो भगवान्निकृन्तने ॥ १०७ ॥
लययोगरसानुयोगतः स्वयमेव प्रलयं ययुश्च ते । क्व गतेति विभोर्दयालुता तत एतान् न कदापि निघ्नतः ॥१०८॥
परमारणमन्तरा कुतो भणिता निर्घृणता विचक्षणैः । हृदये सदये यतीशितुर्न भवेत् कार्यमकारणं क्वचित् ॥ १०९ ॥
अबले स्वबलं महौजसो न च कुर्युः क्वचनेति नीतिवत् । समशान्तरसामृतः प्लुतः स कथं नाम विनिर्दयः प्रभुः ॥११०॥
यदयं पुनरेकमन्तकं त्रिजगल्लोकविडम्बकस्मरम् । अपि मोहरिपोरनीकिनीभटकोटिघटमानडम्बरम् ॥ १११ ॥
अधिगत्य निहत्य कृत्यविच्छुशुभे शान्तमनाविलः······ । नयवन्निजराजलक्षणं क्षणमेकं फलवच्चकार तत् ॥११२॥
अशठप्रतिपालनं शठाग्रिमदमनं श्रितपूर्वपोषणम् । इति राजकचिह्नी(ह्न?) माचरन् मुनिराजः सुतरां कृपापरः ॥११३॥

प्रभवो हि भवन्ति भीमतानिभृताः किञ्चनकान्ततावृताः ।
अयमप्यधिभूतस्तपस्विनां न तथा किन्तु तपागणाधिपः ॥ ११४ ॥

॥ इति श्रीगुरुवर्णने हृदयसदयत्ववर्णने षोडशकं द्वितीयम् ॥ २ ॥ द्वाभ्यां संयोगे निर्दयत्व-सदयत्वद्वात्रिंशिका ॥

इत्यनेकप्रकारैस्तैः तैर्व्यावर्णितैर्बुधैः । अभङ्गभाग्यसौभाग्यवैराग्यगुणगुम्फितैः ॥ ११५ ॥
औदार्यधैर्यगाम्भीर्यशौर्यस्थैर्यार्जवोर्जितैः । तैः श्रीसूरिवरैः सौववपुःपाटवसूचकः ॥ ११६ ॥
लेखोल्लेख इवोल्लेख्यहल्लेखः सुखपोषकः । प्रेष्यः प्रेष्याणवे पूर्णहृदयानन्दसम्पदे ॥ ११७ ॥
यथा प्रथाविशेषाय समवायतदागमः । भवेदभिभवे नारिवर्गेभ्यस्त्यज्यते जनः ॥ ११८ ॥
सौख्यं सौहित्यमह्नाय हृदयास्थानिकामलम् । अलङ्करोति तल्लेखलेखागमनतः खलु ॥ ११९ ॥
अवधार्या हृदाधार्यैः श्रीआचार्यैर्नतिर्मम । त्रिसायं मयि कार्या च कृपामृतभृता सुदृक् ॥ १२० ॥
तथा तत्रत्यसत्याह्वराजसुन्दरधीमताम् । येषां श्रीगुरुसेवायां साम्प्रतं निभृतं मनः ॥ १२१ ॥
श्रीगुरुक्रमसेवायां रेवायामिव हस्तिनाम् । श्रीहस्तिविजयाख्यानां सत्सौख्यानां मनीषिणाम् ॥ १२२ ॥
विदुषां ऋद्धिसोमानां परकार्यविधायिनाम् । श्रीमद्गुरुपदाम्भोजभ्रमरायितचेतसाम् ॥ १२३ ॥
ऋजुस्वभावसज्जुषां सत्याद्विजयधीमताम् । दर्शनाद्विजयाह्वानां सुधियां स्वच्छचेतसाम् ॥ १२४ ॥
न्यायन्याय्यकविव्यक्तशक्तिसंसक्तसंविदाम् । उदयाद्विजयाभिख्यसञ्ज्ञावज्ञा(?)तवज्रिणाम् ॥ १२५ ॥
श्रीमुक्तिविजयव्यक्तवतंसानां यशस्विनाम् । हर्षाद्विजयसंज्ञानां पण्डितानां सुमेधसाम् ॥ १२६ ॥
रवेर्विजयसंज्ञानां प्राज्ञानां पीनमेधसाम् । सिद्ध्यादिविजयाख्यानां गणीनां गुणशालिनाम् ॥ १२७ ॥
सद्रङ्गगङ्गविजयमुनीनामधिकौजसाम् । वीराद्विजयनाम्नां च धाम्नां सद्गुणसम्पदाम् ॥ १२८ ॥
कुशलाद्विजयाह्वानां प्रह्वानां गुरुसेवने । कमलाद्विजयानां च देवाद्विजयसंज्ञिनाम् ॥ १२९ ॥
विजयात्सोमनाम्नां च व्रतभाजां महात्मनाम् । कर्पूरविजय-प्रेमविजयाख्यव्रतस्पृशाम् ॥ १३० ॥
साधोर्विजयसाधूनां पुण्याद्विजयसंज्ञिनाम् । देवादिविजयानां च मतेर्विजयसंज्ञिनाम् ॥ १३१ ॥
इत्यादिसर्वसाधूनां साध्वीनां च यथाक्रमम् । प्रसाद्याऽनुनतिस्तत्र भवद्भिर्नतवत्सलैः ॥ १३२ ॥
तथा चात्र स्थिता विद्वद्धन्यादिविजयाह्वयाः । गणयो हर्षविजयाः कर्णाद्विजयनामकाः ॥ १३३ ॥
भोजादिविजयाह्वाना दयादिविजयाभिधाः । गणयश्च तथा देवात् जयाद्विजयसंज्ञकाः ॥ १३४ ॥
जिनात्सत्यान्मतेर्नाम्नो विजयाद्या मुमुक्षवः । तथा वीरर्षि-डाहर्षि-साध्वीप्रभृतयोऽपि च ॥ १३५ ॥
पण्डितशुभादिविजयाः तच्छिष्याश्चन्द्रविजयगणयोऽत्र । वार्द्धक्यवयोप्युग्रतपश्चरणगुणसज्जुषः ॥ १३६ ॥
नमन्ति नित्यं भूलग्नभाला बाला इव ध्रुवम् । श्रीमत्प्रभुपदाम्भोजमम्भोजमिव षट्पदाः ॥ १३७ ॥
अत्रत्योऽपि पवित्रात्मा सङ्घोऽप्यनघभक्तितः । नंनमीति प्रभोः पादपद्ममन्वहमादरात् ॥ १३८ ॥
यथा कोक इवालोकं भावनीयं समीहते । तथा प्रभुमुखाम्भोजदर्शनं दूरगोऽप्यहम् ॥ १३९ ॥
कुर्वे गुरुगुणोद्घोषमन्तःसभमदम्भहृत् । मोदन्ते स्म तदा सभ्यास्तद्वक्तुं वाक्पतिः प्रभुः ॥ १४० ॥
तथा तथा प्रथाकर्त्तुर्गुणोत्कर्षः प्रवर्द्धते । प्रासादकारकस्येवोन्नतकार्यविधायिनः ॥ १४१ ॥
वलमानं कृपापत्रं प्रसाद्यं हितवत्सलैः । अर्हद्वन्दनवेलायां स्मारणीयोऽहमन्वहम् ॥ १४२ ॥
कियानुदन्तः प्राज्ञानां विज्ञेयः पत्रवाचनात् । अश्वयुक्पूर्णपूर्णायां पूर्णा पत्रीति मङ्गलम् ॥ १४३ ॥

॥ इति भद्रम् । शुभं भवतु ॥

॥ स्तम्भतीर्थात् उ० श्रीकमलविजयग० पं० रविविजयलिखितम् ॥

॥ ब्रह्माण्डाखण्डमण्डलशुक्तिसम्पुटस्फुटविमलमुक्ताफलायमानआचार्यवर्य-
विजयसिंहसूरिपदपङ्कजानां विज्ञप्तिलेखः ॥

तपागच्छाधीशश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं० लावण्यविजयगणिप्रेषिता

[१८] — विज्ञप्तिका —

॥ ऐं नमः ॥

स्वस्तिश्रीः श्रयणीयमंह्रिकमलं श्रान्तेव यस्याश्रयात्, त्रैलोक्ये किमितस्ततो भ्रमणतो जङ्घालितां बिभ्रती ।
चाञ्चल्यं परिचीयमानमनिशं सन्त्यज्य सुस्थैर्यतः, स श्रीपार्श्वजिनस्तनोतु सुतरां श्रेयांसि भूयांसि वः ॥ १ ॥

स्वस्तीन्दिरा संश्रयति स्म यस्य प्रभोः पदद्वन्द्वममर्त्यपूज्यम् ।
त्यक्त्वा नितान्तं मधुपैः प्रकृत्या मलीमसैश्चुम्बितमम्बुजन्म ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रियो यत्पदपुण्डरीकं भेजुर्यथा सिन्धुपतिं श्रवन्त्यः ।
स स्तादभीष्टाय विशिष्टमूर्त्तिर्भूयिष्ठकीर्तिः परमेष्ठिनाथः ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रिया संश्रितपादपद्मः पद्मां स पार्श्वः सततं वितीर्यात् ।
राजेव यो राजति नव्यभव्यचकोरचक्रप्रमदप्रदाता ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रियाश्रितपदाम्बुरुहं यदीयं नेदीयसीं शिवरमां समुपासितं सत् ।
विश्वत्रयी तनुभृतां वितनोति सद्यः, सोऽस्तु श्रिये जिनपतिस्त्रिजगत्प्रतीक्ष्यः ॥ ५ ॥

सन्नम्रसङ्क्रन्दनकोटिकोटीकिरीटसंटङ्किमणिप्रभाभिः । मितदुभयं (?) लहरीभिरेव, लेभे यदंह्रिद्वयमद्वितीयम् ॥ ६ ॥
यद्भूघने पूर्णघने विनीले, हरेर्धनुर्भूयमियर्त्ति भूयः । किमीरितं नैकविधेन्द्रमौलिमणिप्रभाभिः पदपद्मयुग्मम् ॥ ७ ॥
यदंह्रिपद्मद्वितयं चकास्ति, प्रवालबालारुहपाटलश्रि । नमत्सुपर्वाधिपसुन्दरीणां, किं सङ्गमात् कुङ्कुमरागकान्तेः ॥ ८ ॥
यस्य प्रभोः पादतलप्रभायाः, सिन्दूरपूरद्युतिपाटलायाः । व्याजाद् ध्रुवं सद्गुण···, प्रवालवल्लीव तटान्तलग्ना ॥ ९ ॥

स्वकीयगत्या विजितैः प्रसह्य, स्तम्बेरमैर्ढौकनिकी कृतेव ।
सिन्दूरलक्ष्मीः किमु सन्धिहेतोर्विभ्राजते शोणरुचिर्यदंह्र्योः ॥ १० ॥
सुव्यक्तभक्तिप्रणमत्समग्र-सुपर्व-सौवर्णकिरीटकोटौ ।
माणिक्यलीलां बिभरां बभूवुर्नखा यदङ्घ्र्योः स्फुटरागयुक्ताः ॥ ११ ॥
नभोमणिर्यस्य विभोः सपर्यां, चरीकरीति प्रमुदा नितान्तम् ।
विधृत्य शङ्के दशमूर्तिभावं, नखच्छलेन प्रकटप्रभावम् ॥ १२ ॥

तं श्रीमन्तमनन्तसद्गुणमणिप्राग्भाररत्नाकरम्, दृप्यद्दर्पकभूरिदर्पदमनप्रोन्मत्तगङ्गाधरम् ।
कल्याणद्रुमसिञ्चने जलधरं कारुण्यपुण्याकरम्, श्रीमत्पार्श्वजिनं प्रणामपदवीमानीय विश्वेश्वरम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनं सम्पूर्णम् ॥

भूभामिनीकण्ठतटे वितेने, स्वयम्भुवा गूर्जरतारहारः । तत्रेदमत्यद्भुतनायकस्य, बिभर्ति तौल्यं नगरं गरीयः ॥१४॥

स्वर्लोक-भूलोकगतानि नूनं, भवन्तु भूयांसि पुरोत्तमानि ।
शश्वद् यदस्योपमितिं बिभर्त्ति, श्रुतं न तत् क्वापि निरीक्षितं च ॥ १५ ॥

विश्वम्भराप्रौढवधूविशालभालस्थलीशायिललामतुल्यम् । निःशेषविश्वाद्भुतऋद्धिरम्यं, विराजते यन्नगरं नितान्तम् ॥१६॥

आकस्मिकं विस्मयमादधानां, श्रियं समुद्वीक्ष्य पुरस्य यस्य ।
मन्ये समुत्पन्नमनःप्रभूतातङ्का पयोधौ विशति स्म लङ्का ॥ १७ ॥
दिने दिने यत् सुषमां समीक्षितुं, व्याजं विधृत्यारुणसारथेश्चिरम् ।
पुरी हरेर्विस्मयदर्शनोत्सुका, बिभर्त्ति किं दर्प्पणमद्भुतद्युतिम् ॥ १८ ॥
भोगावतीभुवनभूषणमद्भुतश्रि, बिभ्रत् पुरन्दरपुरीरुचिरोपमत्वम् ।
संवीक्ष्य **राजनगरं** परमर्द्धिपूर्णं, तूर्णं पलाय्य बलिसद्म विवेश मन्ये ॥ १९ ॥
यस्मिन् विभाति त्रिजगत्प्रभूणां, प्रासादपङ्क्तिर्विमला विशाला ।
भास्वत्सुधादीप्तिभराभिरामा, जगज्जनानन्दिविचित्रचित्रा ॥ २० ॥
चतुष्पथे यत्र विचित्रचित्रैः, किर्मीरिता राजति हट्टपङ्क्तिः ।
अगण्यपण्यैः परिपूर्णमध्या, गवाक्षलक्षैः किल वीक्षणीया ॥ २१ ॥
सम्यक्त्वमूलाङ्कमितव्रतानि, सम्यग् दधानाः श्रुतसावधानाः ।
जीवादितत्त्वैकविचारदक्षाः, सुश्रावका यत्र वसन्त्यनेके ॥ २२ ॥
श्राद्धी ततः कल्पलतेव यत्र, भाति प्रसर्प्पच्छुभशीलमूला ।
दानोल्लसत्स्फारफलाभियुक्ता, सौभाग्यसद्वासनवासिताङ्गा ॥ २३ ॥
विमानमभ्युन्नतमभ्युपेतमुपाश्रयस्य व्यपदेशतः किम् । श्रीमद्गुरुं वन्दितुमीप्सितार्थसार्थप्रदानप्रवणाभ्युपायम् ॥२४॥
उपाश्रये यत्र विभाति शश्वद् वितानमाला वरवर्ण्यवर्ण्या ।
छिद्रैर्विमुक्ता चतुरन्तयुक्ता, काव्यावली किं कविभिर्निबद्धा ॥ २५ ॥
जलार्थमायातनितम्बिनीनामुन्निद्रवक्त्राम्बुजराजमाने ।
कूलङ्कषास्वच्छजले यथेच्छं, यस्योपकण्ठे करिणां शतानि ॥ २६ ॥
कुर्वन्ति केलिं कलशैर्वृतानि, समुन्नताम्भोधरसन्निभानि ।
उच्चैस्तराणीव समागतानि, किमञ्जनाद्रेः शिखराणि साक्षात् ? ॥ २७ ॥
श्रीमज्जैनविहारहारिवसुधाऽऽदर्शे निवेशे श्रियां, श्रीमत्तातपदारविन्दरजसा पावित्र्यमाबिभ्रति ।
नम्रानेकविवेकिलोकविहितश्रीजैनधर्मोत्सवे, विख्याते भुवि तत्र **राजनगरे** राजन्वति श्रीमति ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीनगरवर्णनम् ॥

त्रैलोक्यलक्ष्मीललनाविलासनिवासभूताद् धनधान्यपूर्णात् ।
प्रभावकश्रावकराजमानात्, पुरोत्तमाद् **योधपुराभिधानात्** ॥ २९ ॥
सानन्दं सोल्लासं सोत्कण्ठमकुण्ठभक्तिसंयुक्तम् । सप्रणयं रणरणकप्रपूर्णसुद्युक्तिसुव्यक्तम् ॥ ३० ॥
हर्षोत्कर्षविशेषो .... । विनयावनतशिरस्कं प्रमोदमेदुरितचेतस्कम् ॥ ३१ ॥
भालस्थलसंस्थापितयोजितकरकमलयमलकुड्मलकः । श्रीतातपादचरणाम्भोरुहमधुपायितस्वान्तः ॥ ३२ ॥
पङ्कजपाणिप्रमितावर्त्तैरभिवन्द्य विधिवदादरतः । विज्ञप्तिपत्रमुपदीकुरुते **लावण्यविजयशिशुः** ॥ ३३ ॥
यथाकृत्यमिह प्राचीपुरन्ध्रीतिलकायिते । भास्करे तत्करोत्फुल्लकमले कमलाकरे ॥ ३४ ॥
प्रध्वंसप्रतियोगित्वं प्राप्तेऽशेषतमोभरे । परस्वहरणादिभ्यो विनिवृत्तनिशाचरे ॥ ३५ ॥
बालार्कातपकाले यच्छटासिक्तचराचरे । वियोगविगमात्यन्ततुष्टे द्वन्द्वचरे वरे ॥ ३६ ॥
मागधोद्गीतमाङ्गल्यगीतनिर्निद्रनागरे । प्रभातावसरे श्रीमत्सभ्यशोभितसंसदि ॥ ३७ ॥

श्रीश्रावकप्रतिक्रान्तिसूत्रसद्वृत्तिवाचनम् । प्रश्रुताध्यापनं योगोपधानादिकवाहनम् ॥ ३८ ॥
नन्दिमण्डनमानन्दिपाक्षिकापारणानि च । इत्यादि सौकृतं कृत्यं निष्प्रत्यूहं प्रवर्त्तते ॥ ३९ ॥
तथा क्रमागते सर्वपर्वगर्वापहारिणि । श्रीमत्पर्युषणापर्वण्यतुच्छोत्सवहारिणि ॥ ४० ॥
श्रीमदर्हत्सप्तदशभेदपूजाप्रवर्तनम् । सक्षणैः क्षणनवकैः कल्पसूत्रानुवाचनम् ॥ ४१ ॥
साधर्म्मिकजनाकं[ठ]पोषणं पुण्यजोषणम् । भूरिवित्तप्रदानेनानेकयाचकतोषणम् ॥ ४२ ॥
इत्यादिधर्मकर्माणि सशर्माणि महामहः । निरपायमजायन्त सञ्जायन्तेऽधुनापि च ॥ ४३ ॥
सर्वार्थसाधनव्यग्रभाग्यातिशयशालिनाम् । श्रीमतां तातपादानां प्रसादोदयतोऽपरम् ॥ ४४ ॥

अथ श्रीगुरुराजवर्णनम् –

श्रीवर्द्धमानेशपदप्रतिष्ठः, सद्धैर्यगाम्भीर्यगुणैर्गरिष्ठः । जीयाच्चिरं देवकृतांह्रिसेवः, सूरीश्वरः श्रीविजयादिदेवः ॥ ४५ ॥
शरत्सुधादीधितिजिष्णुशङ्खजिष्णुद्युतिर्विष्णुपदीमिषेण ।
क्षीराब्धिवीचीचयचारुरोचिः, कीर्तिस्त्रिलोक्यां स्फुरति त्वदीया ॥ ४६ ॥
दिशो दशापि प्रसरद्यशोभिः, श्रीमद्गुरुर्द्राग् विशदीप्रकुर्वन् ।
श्यामत्व-शुभ्रत्वभवं जनानां, बिभेद मेदस्वितरां विरोधम् ॥ ४७ ॥
भवद्यशःकल्पमहीरुहस्य, प्रशस्यमूलं भुजगाधिराजः ।
स्कन्धश्च गौरीगुरुरेष शैलः, शाखाः समग्राः खलु दिग्गजेन्द्राः ॥ ४८ ॥
तेषां च दन्तावलयः प्रशाखाः, सुगन्धिफुल्लत्कुसुमान्युडूनि ।
फलं विधोर्मण्डलमद्भुतश्रि, स्वचेतसीति प्रकटं प्रतीमः ॥ ४९ ॥ – युग्मम् ।
क्षीराब्धिरङ्गत्तरलातितुङ्गतरङ्गमालाविलसद्दुकूला । सम्पूर्णशीतद्युतिसप्तसप्तीभाजिष्णुताडङ्कयुगं वहन्ती ॥ ५० ॥
विशुद्धकैलासतुषारशैलप्रोत्तुङ्गपीनस्तनरम्यरोचिः ।
कीर्त्तिर्नरीनर्त्ति गुरो ! त्वदीया, सन्नर्तकीवाम्बरमण्डपेऽस्मिन् ॥ ५१ ॥ – युग्मम् ।
जगत्रयीं गन्तुमनास्त्वदीयकीर्त्तिस्त्रिधा मूर्त्तिरभूत् किमेषा । सुधाशनानेकपशैवशैलशेषोरगेन्द्रच्छलतो मुनीश ! ॥५२॥
त्वत्कीर्त्तिकान्ता किल भूरि बद्धादराऽपि वृद्धा भुवनप्रसिद्धा ।
विशिष्य सवान् विषयान्नितान्तं, सम्बोभुजीति स्फुटमद्भुतं तत् ॥ ५३ ॥
ऐरावतः स्प्रष्टुमनर्ह एव, मातङ्गभावं न जहाति जातु ।
दुग्धोदधेः सन्निधिरेव नार्हः, कुसङ्गरङ्गं स बिभर्त्ति यस्मात् ॥ ५४ ॥
न तुष्टिपुष्टिं शशभृद् विधत्ते, कुरङ्गसङ्गः किल येन दध्रे ।
इत्यादयो दोषविशेषभाजः, कथं लभेयुस्तव कीर्त्तिसाम्यम् ॥ ५५ ॥ – युग्मम् ।
स नैव पीयूषमयूखबिम्बे, न कुन्दवृन्देऽपि न पुण्डरीके ।
कर्पूरपूरेऽपि च नैव नैव, स्निग्धेषु दुग्धेषु न दुग्धसिन्धौ ॥ ५६ ॥
पद्मेशयस्यापि न पाञ्चजन्ये, नोच्चैःश्रवःश्वेतगजेश्वरेषु । हिमाद्रिकन्याहरशैलहंसे, डिण्डीरपिण्डे द्युनदीषु नैव ॥५७॥
श्रीखण्डखण्डे न च चारुहारे, मन्दारतारास्वपि जातु नैव ।
अदभ्रशुभ्रेऽपि न शारदाभ्रे, या शुभ्रिमा त्वद्यशसः समूहे ॥ ५८ ॥ – त्रिभिर्विशेषकम् ।

यत्कीर्त्तिः शशिमौलिमौलिविगलद्गङ्गातरङ्गोज्ज्वल-प्रालेयाचलकन्यकोत्कुचतटीसण्टङ्किहाराकृतिः ।
प्रोद्यत्पार्वणशारदेन्दुविशदा विश्वत्रयं व्यानशे, शेषाहिस्फुटिकाचलाभ्रमुपतिव्याजेन जानीमहे ॥ ५९ ॥

भीतः शीतरुचिर्विवेश सहसा छायाच्छलात् पार्वणः, पाथोदुर्गमिवेक्ष्य दुर्ग्रहतरं यस्य स्वजैत्रं यशः ।
प्रालेयाचलनिर्गलत्सुरसरित्कल्लोलमालाप्लुत-क्रीडद्राजमरालमूर्त्तिरुचिरच्छायातिरस्कारकृत् ॥ ६० ॥
भूयस्तारकतारहारविकसन्मन्दारजिष्णुद्युता, स्पर्द्धिष्णुस्तव सूरिसिंह! यशसा वर्द्धिष्णुशोभागता ।
मन्ये कैरविणीप्रियः समजनि प्रोद्भूतदाघज्वरः, स्वच्छायाव्यपदेशतोऽम्भसि कथं तेनान्यथा स्थीयते ॥ ६१ ॥
—इति यशःषोडशकम् ।

यस्यानन्योपमेयं स्फुटमहिमचयं विश्वभास्वत्प्रभावं, सद्धैर्यं वीक्ष्य लज्जाभरनिचितमनाः स्वर्गिशैलः प्रकामम् ।
चैतन्याभावमेष त्वरितमुपगतश्चेतसीति व्यतर्कि, स श्रीमान् सूरिराजः प्रभवतु भविनामीप्सितार्थैकसिद्ध्यै ॥ ६२ ॥
आस्वाद्याभिनवं वचोऽमृतरसं माधुर्यवर्यं मुदा, विश्वे विश्वजना बभूवुरमृते त्यक्तादराः सन्ततम् ।
ज्ञात्वेतीव नवस्वकीयमनसा पीयूषकुण्डानि किं, जग्मुर्दानवमन्दिरं प्रतिदिनं सोऽस्तु श्रिये श्रीगुरुः ॥ ६३ ॥
विश्वाशेषसमीहितार्थकरणप्रध्वंसमीक्ष्येव किं, यस्यौदार्यमनन्यतुल्यमसकृत्सञ्जातभूरित्रपाः ।
जग्मुः स्वर्गिमहीरुहा अपि समे स्थानं दृशोऽगोचरं, स श्रीसूरिशिरोमणिर्विजयताद् विश्वत्रयीवत्सलः ॥ ६४ ॥
निरीक्षितेऽस्मिन् गणनातिरेकप्रोद्भूतसद्भूतगुणाम्बुराशौ ।
सदोदयान् दृष्टिपथं प्रपन्नान्, मन्यामहे सम्प्रति पूर्वसूरीन् ॥ ६५ ॥
यस्य प्रभोः फणिपतिः शरदिन्दुधाम, विभ्राजितं गुणगणं गणनातिरेकम् ।
जिह्वासहस्रमपि बिभ्रदभून्न शक्तो, वक्तुं द्विजिह्व इति विश्रुतिमाप तस्मात् ॥ ६६ ॥
इत्थमनेकसकर्णैः संवर्णितवर्ण्यवर्णवादानाम् । ऊकेशवंशवारिधिवृद्धिविधौ शीतपादानाम् ॥ ६७ ॥
सच्चकचक्रचेतःप्रह्लादननवसहस्रपादानाम् । निरुपमबुद्धिविनिर्जितदुर्द्धरतरवादिवादानाम् ॥ ६८ ॥
गतसकलविषादानां स्वसेवकप्रत्तसुप्रसादानाम् । सजलाम्बुदनादानां श्रीमत्श्रीतातपादानाम् ॥ ६९ ॥
कोऽपि प्रसादवरलेखनवाम्बुदोऽथ, सम्प्रीणयिष्यति मदीयमनोमयूरम् ।
तेनाथ स स्वकशरीरपरिच्छदोद्यन्नीरोगतादिसदुदन्तजलाभिरामः ॥ ७० ॥
सद्यः प्रसद्य निजशिष्यमनोमयूरप्रौढप्रमोदविधये सततं प्रसाद्यः ।
किञ्चोपवैणवमथ प्रणतिर्मदीया, श्रीयुक्ततातचरणैरवधारणीया ॥ ७१ ॥
गाम्भीर्यौदार्यधैर्याद्यनघगुणमणीरोहणक्ष्माधरेन्द्रान्, प्रेङ्खत्पीयूषयूषानुकरणनिपुणप्रौढवाणीविलासान् ।
प्रादुर्भूतप्रभूतप्रवरतरपटुप्रोल्लसद्भि······युक्त्या, वन्दे विश्वप्रतीक्ष्यान् भुवनजनहितान् श्रीमदाचार्यसिंहान् ॥७२॥
निःशेषवाङ्मयार्णवपारङ्गमिनः प्रशस्तमतिविभवाः । श्रीमद्धन[ादि]विजया वाचककुलमौलिसन्मणयः ॥ ७३ ॥
जैनप्रमाणसद्युक्तितर्जितानेकवादिनः । श्रीऋद्धिविजयाह्वानाः प्राज्ञाः सद्बुद्धिऋद्धयः ॥ ७४ ॥
उदयश्रीपरिरम्भणनिपुणाः श्रीउदयविजयवरविज्ञाः । शमरसभावितचित्ता विबुधाः श्रीशान्तिविजयाश्च ॥७५॥
कर्पूरविजयविबुधाः सुयशःकर्पूरवासितदिगन्ताः । वैराग्यरञ्जितान्तःकरणा रामादिविजयबुधाः ॥ ७६ ॥
वाचस्पतिसममतयो मत्यादिमविजयनामवरविबुधाः । नयविजयनामधेया विपश्चितः परमनयनिपुणाः ॥ ७७॥
यतिजनपोषणदक्षाः कृष्णाद्विजयाभिधानवरविज्ञाः । सुविनीतशिरोमणयो विनीतविजयाश्च विद्वांसः ॥७८॥
श्रीपूज्यचरणसेवारसिका अमरादिविजयवरसुधियः । यतिजनशिक्षादक्षा विचक्षणा वीरविजयाश्च ॥ ७९ ॥
इत्यादिसाधुसाध्वीप्रमुखाणां तातचरणभक्तानाम् । नत्यनुनती प्रसाद्ये श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८० ॥
किञ्चात्रत्या अपि च प्राज्ञाः कनकादिविजयनामानः । गणयश्च ऋद्धिविजया गणयो मेर्वादिविजयाश्च ॥८१॥

लब्धिविजयाश्वगणयो दयादिविजयश्च मुक्तिविजयगणिः ।
भक्तिविजयगणिनामा नयादिविजय-हर्षविजयगणी ॥ ८२ ॥
मुनयश्च धीरविजया मुनी तथा सत्यविजय-सुखविजयौ ।
क्षेमविजयमुनिनामा तेजविजयोदयविजयमुनी ॥ ८३ ॥
सौभाग्यश्रीः साध्वी, साध्वीवृद्धा तथा च राजश्रीः ।
सुमतिश्रीरिति साध्वी, कनकश्रीनाम साध्वी च ॥ ८४ ॥

इत्येवं यति-यतिनीसमुदायोऽत्रत्यसकलसङ्घश्च । श्रीतातचरणचरणाम्बुजरुहयुगं नंनमीति मुदा ॥ ८५ ॥
किञ्च शिशूचितकृत्यं प्रसादनीयं प्रसादमाधाय । पार्वणशशधरसुन्दरवदनैः श्रीतातचरणवरैः ॥ ८६ ॥
श्रीतातचरणनाम्नाऽत्रत्याः श्रीजिनवराः प्रणम्यन्ते । तन्नतिसमये तातैः शिशुलेशश्चेतसि विधेयः ॥ ८७ ॥
लेखं लिखता मयका यदि क्षुण्णं लिपीकृतं भवति । तत् सर्वं क्षन्तव्यं श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८८ ॥
कोशीकृतकरकमलो भूमितलन्यस्तमस्तकः सततम् । शिष्याणुमेरुविजयो विशेषतो नमति सद्भक्त्या ॥ ८९ ॥

विज्ञप्तिपत्री विलसत्कनीयं श्रीतातपाणिग्रहणाभिलाषा ।
विशुद्धवर्णादियुताऽस्ति तस्मात् फलान्विता स्याच्च तथाऽवधार्यम् ॥ ९० ॥

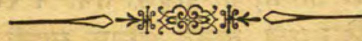
मार्गशीर्षसिते पक्षे पूर्णिमायां लसत्तिथौ । मया सद्भक्तियुक्तेन लेखोऽलेखीति मङ्गलम् ॥ ९१ ॥

॥ योधपुरनगरात् पं० लावण्यविजयगणिप्रेषितो विज्ञप्तिलेखः ॥

*
* *

तपागच्छाधिनायकभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० श्रीआगमसुन्दरगणिलिखिता

[१९] — विज्ञप्तिका —



स्वस्तिश्रीपदपङ्कजामलयुगं भेजे यदीयं मुदा, प्रोज्झ्य स्वं भवनं कुकण्टकयुतं तन्मञ्जिमानं दधत् ।
शश्वत्स्मेरतमश्रिया भवति भृत्कृत्यात्तमामन्वहं, बिभ्राणां भवतां लतां स तमसां स्फातिं स्फुरन्मूर्त्तिभः ॥ १ ॥
चन्द्रो यदंह्रियुगलं समुपैति किं स्म, विज्ञीप्सयेति जगदीशितरं कदम्भात् ।
मद्दूषणं व्यपनय स्वजगत्प्रसिद्धं, जेघ्नीयतां स भवतां रजसां वितानम् ॥ २ ॥
के स्युर्न यत्क्रमपयोजपरिष्ठितोऽत्र, विश्वे कलङ्ककलुषाधिकलङ्ककायाः ।
लक्ष्मच्छलात् किमु विधुर्वरिवस्यतीति, यत्पादद्वन्द्वमनिशं स शिवाय वोऽस्तु ॥ ३ ॥
केषां न युग्ममभवत् क्रमयोर्यदीयं, तत्पक्षताशरणमत्र कलङ्कजातम् ।
मत्वेत्यदो विधुरशिश्रियदङ्कदम्भाद्, भूयात्तमां स भवतां विभुताविभूत्यै ॥ ४ ॥
व्यालग्य यत्क्रमयुगं तपनोऽवतस्थे, लक्ष्मोपधेर्मनसि कृत्य कृतीति मन्ये ।
लब्धिः कुतोऽस्य पुनरत्ररजोभिरुच्चैर्भद्राय मेऽपि विकलङ्कयतः स वः स्तात् ॥ ५ ॥
लोके विभूय सकलङ्क इति द्विजेशोऽवज्ञातिमेष किमु लाञ्छनदम्भतोऽत्र ।
यत्पादपद्ममनिशं परिबाभजीति, श्रेयस्ततिं स भवतामवतन्तनीतु ॥ ६ ॥
पादद्वये विकचवारिजमञ्जिमानं, मोमूषतीह कलहंसितमिन्दुतोच्चैः ।
यस्याङ्कदम्भत उदित्वरकान्तिकान्ते, संजर्हरीतु भवतां वृजिनानि सोऽर्हन् ॥ ७ ॥
यत्पादचारुनखकान्तरुचेह चन्द्रो, निर्माति भक्तिमनिशं व्ययमूषितश्रीः ।
तल्लिप्सयेव वरलाञ्छनदम्भतोऽयं, मालां स वो महयतान्महसां महस्वी ॥ ८ ॥
बिभ्राणमैहिकसुखांहतिवित्ततां तां, स्वर्द्रुं विहाय भजतो भविकान् यदंह्र्योः ।
वीक्ष्य द्वयं तदुभयप्रदमाश्लिषद् ग्लौर्लक्ष्मोपधेः किमु स वः सुषमां वितीर्यात् ॥ ९ ॥
लक्ष्मच्छलाद् विधुरवाप्य न किं यदङ्घ्र्योः, स्पर्शं युगस्य भपतित्वमदादधीन्न ।
विश्वेऽत्र मुत्ततिलसत्तममूर्त्तिकान्तिः, संशोशुषीतु भवतां स कुपङ्कपङ्कम् ॥ १० ॥
लक्ष्मच्छलाद्यदतुलांह्रिपयोजयुग्म-संस्पर्शभूतसुकृतव्रजपूतगात्रः ।
ईशेन किं द्विजपतिर्बिभरांबभूवे, मौलौ निजे स भवतां शिवतातिरस्तु ॥ ११ ॥
यत्पादपद्ममभयप्रदमेष चन्द्रो, भीतोऽङ्कदम्भत इतः शरणीचकार ।
स्वर्भाणुतो विघृणकालकरालकायात्, किं नो ददातु विभयः स मनीषितं वः ॥ १२ ॥
आश्लिष्यदेष विधुरङ्कमिषाद् यदंह्रि-पद्मं सदा स्मितसरोभवकान्तकान्तिम् ।
दश्यां दिदृक्षुरिव जात्वनवेक्षितां तां, नीयत्तमां स भवतां क्षयतामजन्यम् ॥ १३ ॥
लक्ष्मच्छलाद् विधुरदीधरदेष किं नो, यत्पद्युगोपरि सुसूनकलापकान्तिम् ।
पश्यत्तमाम्बकमुदं सततं नयन्तीमर्हन् स लम्भयतु तानवमेन उद्यम् ॥ १४ ॥

लक्ष्मोपधेर्यदतिसुन्दरपादसङ्गं, लब्ध्वाऽपि वीक्ष्य भुवनत्रयकुक्षिगानाम् ।
पुञ्जैर्दृशां कुमुदितं विधुमाशु पश्यैः, सौभाग्यभाग्यचणमीहितदः स वः स्तात् ॥ १५ ॥
दम्भं विधाय न विधुः किमु लाञ्छनस्य, सेवां व्यधत्त भुवि जेतुमनाः स्वशत्रुम् ।
यत्पादपङ्कजयुगस्य विधुंतुदन्तं, हन्यात्तमां स तमसां वितमावितानम् ॥ १६ ॥
संसारजीवननिधौ वरपोतदंह्रियुग्मं विधाय किमु लाञ्छनदम्भमिन्दुः ।
भेजे यदीयमिह तत्परपारलिप्सुः, श्रेयांसि वः प्रदिशतात् स सदा जिनेन्द्रः ॥ १७ ॥
सा सौम्यता न किमधारितमां यदङ्गसङ्गेन्दुना समजनाम्बकमोदिनीयम् ।
पादावुपास्य जगतीह सदङ्कदम्भाज्जीमूततात् स भवतां भविकव्रतत्याम् ॥ १८ ॥
लक्ष्मच्छलादियदयोगिवधूविघातसञ्जातपातकभरैर्मलिनप्रतीकः ।
नो तज्जिहासुरिह किं यदगांह्रियुग्ममङ्गीकरोति शयितोऽस्तु स वोऽथ हन्ता ॥ १९ ॥
भक्त्या नमत्रिदशदैत्यनराधिपानां, मौलौ यदंह्रिजलजन्मरजःकणौघः ।
रम्ये परागतितमां तदुपास्तिमाप्य, लक्ष्मच्छलात् प्रतिदिनैककलाविवृद्धेः ॥ २० ॥
किं नाधरद्विजपतिः स्वविमानमुच्चैः, प्रोल्लालसद्रुचिरकान्तिकलापलीढः ।
श्रेयोजुषो रुचिमुषस्तपनस्य धन्यं-मन्योऽस्तु वो जिनपतिः सततं शिवाय ॥ २१ ॥
यत्पादपङ्कजयुगस्य सुसङ्गमाप्य, नाभूदुडुप्रमुखसंहतिभिः सदा किम् ।
सेव्योऽङ्कदम्भत इहेन्दुरतुच्छकान्तिर्नेनेतु केतुवितर्तिं क्षयतिं स वोऽर्हन् ॥ २२ ॥
सुस्मेरनीरजननाङ्कगतत्रिरेखाशोभां विधुर्जरिहरीति यदंह्रियुग्मे ।
लिं लक्ष्मगः स्म नमदिन्द्रकमौलिचुम्बी, हीरांशुलीढ इह वोऽसुखहानये स्तात् ॥ २३ ॥
यत्पादसङ्गममवाप्य किमङ्कदम्भान्नो श्रीयते स्म विधुनाऽपि सुधाकरत्वम् ? ।
अन्यानवाप्यममलं सुजगत्प्रतीतं, कन्दर्प्पदर्प्पभिदयं भवतात् स वोऽर्हन् ॥ २४ ॥
जर्गर्ढि लाञ्छनमिषाद् विधुरंह्रियुग्मं, यस्येत्यवेत्य जगतीत उदारमन्यत् ।
श्रेयःपदं स्म न मनोरमभाः स नाथं, नाथः स वः सकलमाधिमपाक्रियात्तम् ॥ २५ ॥

कृतं ब्रह्मभूपालपुत्रं पवित्रं, प्रणं नेमिनाथं सनाथं प्रभाभिः ।
सदा तं यदंह्रिद्वयं देवदेवो, मुदा बाभजत्युल्लसन्मानसाब्जः ॥ २६ ॥
यत्पादपाथोजरजःकणान्मुदा, मूर्ध्नि स्वकीये कृतिनः कृतादराः ।
शेषामिवेन्द्राः सुरदैत्यभूस्पृशां, स श्रेयसे वो मुनिसुव्रतो जिनः ॥ २७ ॥

एतान् जिनान् प्रणतिमञ्जुलपङ्कजाङ्के, राजत्तमोऽद्वलसितच्छदकान्तकान्तिम् ।
संबिभ्रतो लसदनन्तमुदा विधाय, नम्रीभवज्जनमनीषितदानदक्षान् ॥ २८ ॥

अथ नगरवर्णनम्—

श्रीमति श्रीमते भ्राजते धोरणी, तत्र सार्वौकसां जीर्णदुर्ग्गे भृशम् ।
मुष्णती मञ्जुलव्योमयानश्रियं, व्योमचुम्ब्युच्चचूलाश्रिया शालिनी ॥ २९ ॥
श्रीजीर्णदुर्ग्गनगरं नकरं पुरोगं, देदीप्यते भृशमनेकधनीश्वराढ्यम् ।
श्रीपूज्यपूज्यचरणामलसद्विकाशि, पाथोजरेणुसुरभीकृतभूमिभागम् ॥ ३० ॥
श्रीमत्तीर्थकृतां सुखोत्करकृतां भास्वत्तराभाभृतां, यत्र श्रीमति भास्वति प्रियसुधाश्वेतीकृते विश्रुते ।
प्रासादद्वयमञ्जुलोच्चशिखरे शश्वज्जगच्छेखरे, राजद्रैकलशायते दिनपतिर्दीप्यत्प्रतापोद्यतः ॥ ३१ ॥

श्रद्धांजुषः श्राद्धगणा विभान्ति, यत्रोच्चकैर्भासुरदेहभासः ।
ऋद्ध्या स्वया तं धनदं तृणाभं, जानन्त आनन्दमयैकचित्ताः ॥ ३२ ॥
यदङ्गनारूपमवेक्ष्य कामं, त्रपाजुषोऽगुस्त्रिदशाङ्गनायाः ।
भूसे दिवन्ता अधुनाऽपि भूमिस्पर्शं न पश्यां दधतीत शोभाः ॥ ३३ ॥

श्रीमन्मालपुरद्रङ्गाच्छिष्यभुजिष्यतां दधत् । **आगमसुन्दरः** पञ्चप्रतीकालिङ्गितोर्वरः ॥ ३४ ॥
विज्ञप्तिं प्रणमत्युच्चैः पुरतः प्रध्वमानसः । भालस्थलविशालाब्जकोशत्तमशयद्वयः ॥ ३५ ॥
प्रातरत्र महेभ्यानां सभ्यानां संसदि ध्रुवम् । **स्थानाङ्गसूत्र**वृत्त्योस्तत्सात्स्वाध्यायादिमे क्षणे ॥ ३६ ॥
जायमाने क्रमोपेतं महामहविराजितम् । सर्वपर्वशिरोरत्नं पर्व पर्युषणाभिधम् ॥ ३७ ॥
कल्पद्रुकल्प-**श्रीकल्पसूत्र**-वृत्तिनवक्षणम् । चारुश्रीफलपूग्यादि-भूतभूरिप्रभावनम् ॥ ३८ ॥
सप्तदशभिदासार्वसपर्याडम्बरान्वितम् । निश्शेषपारणाभोज्यमञ्जुलामोदमोदकम् ॥ ३९ ॥
पक्षक्षपणषष्ठादि-तपोलीननरव्रजम् । मनीषितातिरिक्ताप्तिप्रमोदितवनीपकम् ॥ ४० ॥
प्रत्यूहव्यूहराहित्यं सातसन्ततिसञ्चितम् । श्रीपूज्यवंशसद्वृत्तगानैकतानमानवम् ॥ ४१ ॥
जज्ञनीति स्म जज्ञन्ति धर्मकृत्यं च साम्प्रतम् । श्रीमत्तत्रभवन्नाममन्त्रध्यानानुभावतः ॥ ४२ ॥

अथ गुरुवर्णनम्–

नम्राखण्डलमण्डलीसुकतटीकोटीरकोटिस्फुरत्, नानारत्नमनोरमांशुलहरीप्रक्षालितांह्रिद्वयम् ।
चन्द्राङ्काभयदं मुदा नतिपथं नीत्वा सनाथं श्रियां, स्तोष्ये श्री**विजयप्रभं** गणधरं नाथं तपश्शालिनाम् ॥४३॥

नीलोत्पलीयन्ति दृशो न लोकं, लोकं भृशं ते मुखचारुचन्द्रम् ।
केषां गुरो ! तं तमसां कलापं, प्रोज्झासयन्तं स्फुरदंशुजालैः ॥ ४४ ॥
श्रीमद्गुरो! विकचवक्त्रसरोभवे ते, भृङ्गन्ति लोचनयुगानि सदेह येषाम् ।
सम्बोभुवत्यमलमञ्जुलसम्पदां ते, धामोल्लसत्तमधियां सुनिधेर्द्धरायाम् ॥ ४५ ॥
प्रोल्लालसीति वदनं तव लम्भयित्वा, मार्गं दृशोरवनिनायकमण्डली द्राक् ।
बिम्बं चकोरपटलीवसुधागभस्तेः, प्रोद्दित्वरोज्ज्वलविशालविभासनाथम् ॥ ४६ ॥
नीत्वा दृशोरयनमास्यमभीश्रुसङ्घं, बिभ्राणमाशु तमसां पटलैर्विहीनाः ।
प्रातर्भवन्त्यसुमतां निकराः खरांशोर्बिम्बं यथा तव मुनीश ! महोभिरिद्धम् ॥ ४७ ॥

मन्येऽहं किल विश्वविश्वजनतानन्दप्रणेतुस्तव, शश्वद्दीप्ततराननप्रियतरद्युत्या जितः श्रीगुरो ! ।
लज्जावान्न कलङ्कतां किमु गतश्रीको हिमांशुः सदा, मालिन्यं दधते जगज्जनपते ! भास्वत्प्रतापाकर ! ॥ ४८ ॥
विमलविकसत्सत्पाथोभूद्दलायतलोचन, भविकमनुजाह्लादव्रातप्रणेतृमुखश्रिया ।
तव मुनिपते ! मन्येऽद्यापि व्रतैर्जित एव खे, तुहिनकिरणो न स्थेमानं कदापि सृजत्ययम् ॥ ४९ ॥

अहमवैमि तव व्रतिनां प्रभो !, मधुरदीप्ततराननशोभया ।
कुमुदबान्धव एव तिरस्कृतः, परिकृशत्वमियर्त्ति तथाऽनिशम् ॥ ५० ॥
मुनिगणेन्द्र ! गजेन्द्रसदृग्गते !, तव विकाशिमुखस्य सदोदितेः ।
उपमतामभियातुमवैम्यहं, सुरनरासुरनेत्रसुनन्दिनः ॥ ५१ ॥
परमयोगनिलीनहृदीश्वर !, रुचिरशीर्षसुपर्वसरित्तटे ।
स्थित इति प्रकरोति तपः स्वयं, कृशतनुस्तुहिनांशुरहर्निशम् ॥ ५२ ॥ –युग्मम् ।

सकललोकमनोहरणोद्यत ! मदनमानविमर्दनशङ्कर ! । तव मुनीश ! तपस्तपनोज्ज्वलश्रियमहामहसो रुचिरद्युतेः ॥५३॥
वदनपूर्णनिशाकरशोभया, विजितमम्बुरुहं विविधं तपः । समभिसृत्य सृजत्पद एव हि, ससुरसंसरसंसरसंसरः ॥५४॥

साधुसाधुजनतागणनाथ !, वीक्ष्य वीक्ष्य भवतो भवतोऽलम् ।
कान्तकान्तिसदनं वदनं सद्भव्यभव्यशरणस्य शरण्यम् ॥ ५५ ॥

प्रीतिपुञ्जमनिशं जनवीराः, प्राप्नुवन्ति धृतधर्मसुभाराः । मण्डलं वरनभश्चमसस्य, सचकोरनिकरा इव वीक्ष्य ॥ ५६ ॥

दर्शं-दर्शं तावकीनं तदास्यं, चेतांस्युच्चैरुल्लसन्ति दधन्ते ।
विस्मेरत्वं भव्यजन्तुव्रजानां, भासां नाथं पङ्कजानीव नूनम् ॥ ५७ ॥
श्रावं-श्रावं कीर्त्तिमुच्चैर्मुनीनां, पत्युर्दध्युः के मुदं नो गरिष्ठाम् ।
किं मूषन्तीं विभ्रमं क्षीरनीरपारावारोल्लोलकल्लोलभासाम् ॥ ५८ ॥
कीर्त्तेः सुयोगं समवाप्य विष्टपे, गङ्गाऽपि चङ्गीभवदङ्गका जनान् ।
नापूतयत् सा भुवनत्रयोदरं, किं व्याप्तवत्यास्तव चन्द्रविद्विषः ॥ ५९ ॥
मीमांस्यते तर्कचणैर्मुहुर्यतः, कार्यं निदानानुगुणं तथेति तत् ।
यल्लोकमापत्समम्मात्मसम्भवा, कीर्त्तिस्तवेन्दुद्विजराजसोदरा ॥ ६० ॥
केषां न विश्वोदरवर्त्तिनामलमचर्करीन्मानसपद्ममञ्जसा ।
कीर्त्तिस्तव श्रीव महो ! हरिप्रिया मदाम्बरज्योतिरधीश्वरस्वसा ॥ ६१ ॥
कीर्त्तिस्तवाधिप ! समाधिजुषां न केषां, पैंजूषजाहशुभभूषणभावमायात् ।
लो···जगत्सु सुरमन्दरमध्यमानक्षीरोदसिन्धुभवदुच्चतरङ्गभासाम् ॥ ६२ ॥
सर्वत्र कीर्त्तिरगमत् किमु कान्तकान्तं, न स्वैरिणीव समवाप्य निरर्गला सा ।
त्वां क्षान्तिमन्तममला विकलोद्यतेन्दुं, चन्द्रातपस्य सततं द्विषती मुनीन्दो ! ॥ ६३ ॥
सङ्ख्यायुषीन्द्र ! तव कीर्त्तिपयःसमूहे, विश्वोदरं यमभृतां कमलावलीनाम् ।
लक्ष्मीं दधुः किमु न तारकराजयोऽमूः, शश्वत्प्रबुद्धसुखमाधिकपीधितीनाम् ॥ ६४ ॥
अत्यद्भुतं मुनिपते ! तव कीर्त्तिकान्ता, विश्वत्रये निखिलसङ्गमवत्यपीयम् ।
ख्यातिं सतीति दधते स्म तथातिरम्या, चेतो जगद्विपुलतल्पजुषां हरन्ती ॥ ६५ ॥
द्वे योगिनामधिपते ! सदृशी यमश्री-कीर्ती भवान् युगपदेव सुरूपकन्ये ।
ज्येष्ठे न विश्वसुदृशां किमिहोदवाक्षीत्, तत्रादिमा प्रियतरेति जगत्प्रतीता ॥ ६६ ॥
तल्लीनचित्तमवगत्य भवन्तमेषा, नो बम्भ्रमीति नितरामितरा त्रिलोक्याम् ।
ईर्ष्याकुला सहजचञ्चलदृक् प्रकृत्या, सर्वोंचला निसुमुदं सततं नयन्ती ॥ ६७ ॥
गिरो रसं ते व्रतिनामधीश्वर ! विकस्वरीभूयमभूयतोच्चकैः ।
निपीय नो कैः सुमनोव्रजैरिव, नवाम्बुदस्येह कदम्बभूरुहाम् ॥ ६८ ॥
निपीय वाणीं भवतो महीयसीं, न के सुधां नो गणयन्ति तां भृशम् ।
सदैहिकामुष्मिकशर्मदानतः, श्रियं स्वकर्पूलहरेर्विमुष्णतीम् ॥ ६९ ॥

इत्थं श्रीविजयप्रभो गणधरो नीतः स्तुतेर्योऽयनं, राजद्राजविरोकभासुरयशाः सौभाग्यभाग्यैकभूः ।
सृज्यान्मे सततं मनोरथलतां स्फार्तिं दधानां पराम्, नम्राशेषसुरासुरेन्द्रकलसन्माल्यत्तमांह्रिद्वयः ॥ ७० ॥

तत्र श्रिया सकलपाठकराजमानाः, श्रीमद्विनीतविजयाः सुयशोवितानाः ।
श्रीमद्गुरोः प्रतिभया समतां दधानाः, पादाब्जरेणुभिरिलां सकलां पुनानाः ॥ ७१ ॥

त्रैलोक्यव्याप्तसश्लोकाः श्रीजसविजयाह्वयाः । श्रीमत्तत्रभवच्चारुशिष्टिप्रवर्त्तनोच्चलाः ॥ ७२ ॥
भास्वत्तमप्रतिभा भाः श्रीरविवर्द्धनाह्वयाः । श्रीपूज्यपादपाथोजसेवाहेवाकमानसाः ॥ ७३ ॥
तत्त्वातत्त्वविमर्शज्ञाः श्रीतत्त्वविजयाभिधाः । श्रीतातपादपादाब्जमकरन्दसितच्छदाः ॥ ७४ ॥
अन्ये येऽज्ञातनामानः श्रीपूज्यचरणान्तिके । नंनंमि चानुनंनंमि यथायथं विपश्चितः ॥ ७५ ॥

सौवाङ्गबर्हातिनिरामयत्वतत्काम्यप्रमेयाम्बुभरैः सुमांसलम् ।
लेखाम्बुदं मच्छयशैलशेखरं, संभूषयन्तं तमवेक्ष्य सादरम् ॥ ७६ ॥
मत्स्वान्तमञ्जिष्ठमयूर एषः, बंहिष्ठमामोदभरं प्रदध्यात् ।
तं तं यथा श्रीवरपूज्यपादैः, सद्यः प्रसद्याशु तथा प्रणेयम् ॥ ७७ ॥

अत्रत्याः साधवः सर्वे पुण्यसुन्दरसंज्ञकाः । ज्ञानसुन्दरनामानो महिमासुन्दराभिधाः ॥ ७८ ॥
जयसुन्दरनामानस्तिलकसुन्दराह्वयाः । गङ्गसुन्दरनामानः सौभाग्यसुन्दराह्वयाः ॥ ७९ ॥

श्रीमत्तत्रभवत्पादपाथोजयामलं सदा ।
त्रिसायं नंनमत्युच्चैः प्रोल्लसन्मानसाम्बुजाः ॥ ८० ॥
श्रीमत्कौमुदमासस्य लेखोऽलेखितमां मया ।
वलक्षेतरसप्तम्यामिति स्तान्मञ्जुमङ्गलम् ॥ ८१ ॥

*

॥ पूज्याराध्यध्येयतमसकलसकलभट्टारकमौलिपेशलशतदलमाल्यतमक्रम-कमलयमलभट्टारकश्रीश्री १०५ श्रीविजयप्रभसूरीश्वरचरणसरसिजानामयं विज्ञप्तिलेखः । श्रीमज्जीर्णदुर्गे ॥

* * *

तपागच्छपतिभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० लावण्यविजयगणिप्रेषिता

[२०] — विज्ञप्तिका । —



स्वस्तिश्रीः कमनीयमंह्रिकमलं कल्याणकारस्करोत्कन्दोत्कन्दलनैकनव्यदकमुक्प्रख्यप्रभावाङ्कितम् ।
देवेन्द्रा दिविषद्गणैः परिवृताः सर्वेऽपि सेवां व्यधुर्यस्य श्रीत्रिजगत्प्रभोस्स दिशतात् श्रेयो युगादीश्वरः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीः प्रथमप्रभोः पदपयोजन्मद्वयीमद्वया, ·········त्मचलस्वभावमतुलं संत्यज्य सुस्थैर्यतः ।
भव्याम्भोजवनप्रबोधतरणेः श्रीनाभिपृथ्वीपतिप्रोद्दामान्वयवाहिनीपतिपयःपूरत्रियामापतेः ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीर्व्रततीव पादपवरं गौरीव भूतेश्वरं, दाशार्हं कमलेव सत्कुलवधूः स्वप्राणनाथं यथा ।
नीतिर्न्यायधुरंधरं वसुमतीनाथं यथा संश्रयेत्, भर्तुर्यस्य पदाम्बुजं श्रितवती हर्षप्रकर्षात् तथा ॥ ३ ॥
स्वस्ति क्षीरनिधेः सुतां तनुमतां स श्रीयुगादीश्वरः, कल्याणद्रुमवारिदो वितनुतां विश्वत्रयीवत्सलः ।
यस्य प्रौढपदाम्बुजन्मयुगलं त्रैलोक्यलक्ष्मीगृहं, सेवन्ते स्वककल्मषक्षयकृते सन्तः समग्रा अपि ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीः सकलत्रिलोकतिलकं श्रीनाभिभूपोद्भवं, भव्यालीपरिचिन्तिते हितविधौ सत्कामकुम्भप्रभम् ।
संसारार्णवनीरपूरनिपतज्जन्तुव्रजोत्तारकं, सद्योगीन्द्रमनःसरोजविलसद्भृङ्गं सदैवाभजत् ॥ ५ ॥

स्वस्तिश्रियं कलयतात् कलितो गुणौघैः, श्रीनाभिभूपतिभवो भवभीतिहर्ता ।
सद्भावनाकमलिनीविपिनावबोधोद्गच्छत्सहस्रकिरणः प्रथमप्रभुर्वः ॥ ६ ॥

स्वस्तिश्रियामद्भुतवासगेहं, संतप्तसुस्वर्णसवर्णदेहम् । श्रीमद्धुरीणध्वजतीर्थनाथं, ध्यायामि सन्नम्रसुराधिनाथम् ॥ ७ ॥
स्वस्तीन्दिरा यत्पदपुण्डरीकं, भेजे मुदैवाभ्युदयैकगेहम् । मन्ये किमु स्वीयपतिं पुराणमन्वसूचि जगदर्चनीयम्(?) ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रियामाश्रयमंह्रियुग्मं, यस्य प्रभोर्लक्ष्ममिषान्महोक्षः । संसेवयामास पशुस्वभावप्रस्फोटनायेव किमु प्रकामम् ॥ ९ ॥
स्वस्तीन्दिरामन्दिरमंह्रिपद्मं, संकल्पकल्पद्रुममाश्रयामः । आनम्रवास्तोष्पतिमौलिरत्नप्राञ्चत्प्रभाक्षीरभराभिधौतम् ॥ १० ॥
स्वस्तिश्रियामावसथं यदीयक्रमाब्जमङ्कच्छलतो महोक्षः । किमु प्रधानत्वमवाप्तुकामः समाश्रयामास पशुव्रजेषु ॥ ११ ॥
यदास्यसंपूर्णसुधामयूखं निरन्तरं द्योतकरं निरीक्ष्य । स्वतोऽधिकं क्षुण्ण इव स्वचित्ते निशापतिर्व्योमपथं जगाम ॥ १२ ॥
यदीयवक्त्राभिनवेन्दुनेव पराभिभूतः सततोदयेन । विभावरीशः सततं कलङ्की किमष्टमूर्तेः शरणं चकार ॥ १३ ॥

इक्ष्वाकुवंशमकराकरपूर्णचन्द्रो दद्यादनल्पकमलामृषभो जिनो वः ।
पद्मेशयक्रमकुशेशययुग्मनिर्यद्गङ्गाम्बुपावितसुपर्णसवर्णवर्णः ॥ १४ ॥

यद्रूपमालोक्य [1]पयोधिपुत्रीपुत्रः पवित्रं त्रिजगत्प्रकृष्टम् । भव्यावलीनेत्रसुधाञ्जनाभममूर्तिमत्त्वं किमवाप नूनम् ॥ १५ ॥
प्रथमतीर्थकरः करुणाकरः कलयतात् कमलाममलामलम् । मदनवारण-वारण-केशरी सकलकल्पितकल्पतरूपमम् ॥ १६ ॥
श्रीमन्तमेनं सकलश्रियाढ्यं नाभेयतीर्थेश्वरसप्तसप्तिम् । निर्माय निर्मायप्रणामोदयत्कृत्माचृ(?)च्छिखराधिरूढम् ॥ १७ ॥

॥ इति देववर्णनम् ॥

सर्वाङ्गलक्ष्मीललनाविलासं स्थानं जगन्नेत्रसुधासमानम् । मनोरमं पत्तननामधेयं विभ्राजते सर्वपुरप्रधानम् ॥ १८ ॥

यस्मिन् विभाति त्रिजगत्प्रभूणां प्रासादपङ्क्तिर्विमला विशाला ।
भास्वत्सुधादीप्तिभराभिरामा लोकाम्बकानन्दिविचित्रचित्रा ॥ १९ ॥

---

१ प्रद्युम्नः=काम इत्यर्थः ।

प्रासादराजी विरराज ज्योतिर्भरैः········विश्वविश्वा ।
यस्मिन् पुरे तीर्थकृतां नितान्तसन्तप्तचामीकरचारुकुम्भा ॥ २० ॥
यद्रष्टुकामः किमयं हिमाचलः प्रासादमालाच्छलतः समागतः ।
निर्माय रूपं बहुधाऽऽत्मनीनं सम्भावयामीति हृदि स्वकीये ॥ २१ ॥
सद्वैजयन्त्यो जिनसद्मसंस्थाः कम्पायमानाः किमतीव यत्र ।
वदन्ति लोकानवधूय यूयं प्रमादमेनं जिनपं भजध्वम् ॥ २२ ॥
यच्चैत्यसंस्थातपनीयकुम्भश्रेणिं विलोक्येति वितर्कयन्ति ।
लोकाः स्वरूपं विविधं विधाय सेवार्थमागात् किमयं सुमेरुः ? ॥ २३ ॥

उच्चैस्तरो राजति यस्य वप्रः कैलाशशैलश्रियमादधानः । क्षीराम्बुधिक्षीरतुषाररोचिर्डिण्डीरपिण्डैकसवर्णवर्णः ॥२४॥
कूलङ्कषा यन्नगरोपकण्ठे नित्यावहा निर्मलनीरपूरा । स्तम्बेरमस्तोममनोज्ञलीला विभ्राजमाना वहते निकामम् ॥२५॥
संसारनीरेश्वरमग्नजन्तुश्रेणीसमुद्धारकृतिप्रवीणः । उपाश्रयः पोत इव प्रकामं चकास्ति यस्मिन्नगरे विशालः ॥ २६ ॥
धनीश्वरा यत्र वसन्ति श्राद्धाः पुरंदरश्रीगृहिकोपमानाः । रूपश्रिया न्यक्कृतमाररूपाः सर्वाङ्गसद्भूषणभूषिताङ्गाः ॥२७॥
औदार्य-संतर्जित-देववृक्षाः सुश्रावकौघा विलसन्ति यत्र । जीवादिसत्तत्त्वविदः समग्रा लक्ष्मीभृता देवगुरुप्रभक्ताः ॥२८॥
वनानि यत्र प्रथयन्ति विश्वत्रयीमनस्तोषमनन्यतुल्यम् । सच्चम्पकाशोकरसालसालाद्यनेकसद्वृक्षसुशोभितानि ॥ २९ ॥
अत्यच्छसन्नीरभरैः प्रपूर्णा यस्मिन् पुरे भान्ति सुपुष्करिण्यः । सद्रत्ननीलोत्पलपुण्डरीकसंपूरिताः सर्वजनप्रियाश्च ॥३०॥

यत्पूःसमीपस्थितवाहिनीतटे, नानाविधा वल्गुविलासलीलाः ।
कुर्वन्त्यनेका अपि सत्पुरन्ध्र्यः, संपूर्णपीयूषमयूखवक्त्राः ॥ ३१ ॥
यत्र स्त्रियः सन्ति सुराङ्गनावत्, प्रोत्तुङ्गपीनस्तनशस्तविग्रहाः ।
माधुर्यसौन्दर्यसुरूपलक्ष्मीलावण्यसत्त्वादिगुणाभिरामाः ॥ ३२ ॥
श्राद्धीततिः कल्पलतेव यत्राभाति प्रसर्प्पच्छुभशीलमूलाः ।
दानोल्लसत्स्फारफलाभियुक्ताः, सौभाग्यसद्वासनवासिताङ्गाः ॥ ३३ ॥
श्रीयुक्ततातचरणक्रमपङ्कजन्मयुग्न्यासरेणुघनसारमराभिरामे ।
श्रीपत्तनाभिधपुरे प्रथिते पृथिव्यां, सर्वाङ्गसुन्दरतरे सकलातिरम्ये ॥ ३४ ॥
श्रीमत्तातपदन्यासरजःकर्पूरपाविते । श्रीपत्तनाभिधपुरे तत्र श्रीमति सुन्दरे ॥ ३५ ॥

॥ इति नगरवर्णनम् ॥

श्रीमत्तातपदाम्भोजसक्तश्रावकशोभितात् । श्रीमद्वर्गवटीनामपुरात् कृषिषु सादरात् ॥ ३६ ॥
अमन्दामन्दसन्दोहमेदुरीकृतमानसः । प्रभूतप्रणयप्रादुर्भावसत्पुलकाङ्कितः ॥ ३७ ॥
सुव्यक्तभक्तिसंयुक्तः सोल्लासहृदयाम्बुजः । सरणद्रणकोऽकुण्ठोत्कण्ठोद्रेकसमाकुलः ॥ ३८ ॥
विनयावनमत्काययष्टिर्भून्यस्तमस्तकः । भालस्थलसंयोजितकरयुग्मकुशेशयः ॥ ३९ ॥
प्रमेयप्रमितावर्त्तवदनेनाभिवन्द्य च । **लावण्यविजयः** शिष्यो विज्ञप्तिं तनुतेतमाम् ॥ ४० ॥
यथाप्रयोजनं चात्र प्रोत्तुङ्गोदयभूभृतः । शिरःकोटीरतिप्रोद्यत्पद्मिनीप्राणवल्लभे ॥ ४१ ॥
ध्वस्तान्धतमसव्यूहे विस्तृतातपकुङ्कुमे । कोकाद्यनेकजीवानां हर्षोत्कर्षप्रदायके ॥ ४२ ॥
प्रवृत्तगीतगानादिमाङ्गल्यध्वनिसुन्दरे । पाथोरुहवनव्रातविबोधनकरे वरे ॥ ४३ ॥
प्रातःकाले च संजाते प्रभाशुभ्रितभूतले । महेभ्यसभ्यसन्दोहशोभितायां सुपर्षदि ॥ ४४ ॥
श्रीश्रावकप्रतिक्रान्तिसूत्रवृत्तेः प्रवाचनम् । प्रस्तुतशास्त्राध्ययनाध्यापने च विशेषतः ॥ ४५ ॥

उपधानवाहनादि श्रीयोगोद्वाहनादि च । सानन्दनन्दिमानन्दि पाक्षिकापारणानि च ॥ ४६ ॥
इत्यादिसौकृतकृत्यं निष्प्रत्यूहं प्रवर्त्तते । तथा परंपरायाते सर्वपर्वशिरोमणौ ॥ ४७ ॥
श्रीमत्पर्यूषणापर्वण्यतुच्छोत्सवहारिणि । सप्तदशभेदपूजास्नात्रादीनां प्रवर्तनम् ॥ ४८ ॥
सक्षणैः क्षणनवकैः कल्पसूत्रानुवाचनम् । पूजाप्रभावनापूर्वदुष्टदुष्कृतयाचनम् ॥ ४९ ॥
साधर्मिकजनाकण्ठपोषणं पुण्यजोषणम् । भूरिवित्तप्रदानेनानेकयाचकतोषणम् ॥ ५० ॥
पक्षक्षपणकानेकदुस्तपस्तपसां पुनः । तपनं श्रीजिनगृहोल्लसत्खेलकनर्त्तनम् ॥ ५१ ॥
हस्त्यश्वमनुजयानाद्याऽऽडम्बरपुरस्सरम् । अनेकातोद्यनिर्घोषैश्चैत्ययात्राविधापनम् ॥ ५२ ॥
इत्येवं धर्मकर्माणि सशर्माणि महामहः । निरन्तरमजायन्त संजायन्तेऽधुनापि च ॥ ५३ ॥
नमन्नेकमहीपालाभ्यर्चितांह्रिसरोरुहाम् । श्रीमतां तातपादानां प्रसादोदयतोऽपरम् ॥ ५४ ॥

यस्योल्लसद्भालविशालपट्टं, सदष्टमीकैरवबन्धुरेषः ।
मन्येऽभजद् विष्णुपदं किमीक्ष्य, श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५५ ॥

यदीयनेत्रोपमतामवाप्तुं नीलोत्पलानीव किमाचरन्ति । तपांसि गत्वा सरसीवरेषु श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥५६॥

यदीयवक्त्राभिनवेन्दुमिन्दुः, स्वतोऽधिकज्योतिरितीव चित्ते ।
विचिन्त्य किं क्षीणतनुर्बभूव, श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५७ ॥

यदीयवक्त्राम्बुजमम्बुजाली निरन्तरस्मेरमिवावधार्य । त्रपाभरात् किं विजने जगाम श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥५८
यस्याधरस्पर्द्धनयेव नूनं नवप्रवालं किमचेतनत्वम् । बभाज विश्वाद्भुतकृच्चरित्रः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥५९॥

संपूर्णशीतांशुकलाकलापविराजमानानपि मौक्तिकव्रजान् ।
यद्दन्तपङ्क्तिर्नितरां जिगाय श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६० ॥

आहार्यमाधुर्यभरातिहृद्यं वचोमृतं यस्य निपीय भव्याः । सौहित्यमापुर्वचनातिरेकं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥६१॥
पीत्वा कणेहत्य यदीयवाणीसुधारसं कर्णपुटैः सकर्णाः । सुधा मुधैवेति वितर्कयन्ति श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात्॥६२॥
सितोपला काचघटी निवेशमिषादिवातङ्कभरान्ननाश । यदीयवाणीमधुरत्वतर्जिता श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥६३॥
यदीयकण्ठेन जितः किमेषो नंष्ट्वेव शङ्खं शरणं चकार । करारविन्दं मधुसूदनस्य श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥६४॥

यन्नासिका दीपशिखोपमाना शस्ता तिरस्कारमकारि नूनम् ।
अपि स्फुरच्चञ्चुपटं सुकीरं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६५ ॥

समग्रसत्त्वानुनयावबोधपरागपूर्णं हृदयारविन्दम् । विराजते यस्य वरेण्यवर्णं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६६ ॥

अनन्यसामान्यबलं च यस्योद्दण्डं भुजादण्डमिवावलोक्य ।
अहीश्वरोऽधस्तलमाविवेश श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६७ ॥

यस्याद्भुतश्रीकमवेक्ष्य देहं ममेह किं कृत्यमितीव मत्वा । स्वर्णं पपात ज्वलदग्निकुण्डे श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात्॥६८॥

नितान्तमासेचनकं निरीक्ष्य यद्दर्शनं नेत्रततिर्जनानाम् ।
बिभर्ति विश्वे कमपि प्रमोदं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६९ ॥

सन्नम्रभूशक्रशतोत्तमाङ्गकोटीररत्नद्युतिनीरधौतम् । यत्पादपद्मं प्रयति स्म लक्ष्मीः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥७०॥

विधाय रूपत्रितयं यदीया बभ्राम कीर्त्तिः सुरसिन्धुदम्भात् ।
मन्ये किमन्वेष्टुमिव त्रिविश्वं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७१ ॥
यद्धैर्यगाम्भीर्यगुणेन तर्जितो रत्नाकरोऽप्यम्बुनिधी रसातलम् ।
जगाम किं भीतिभरादिवायं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७२ ॥

यद्धीर्यतस्त्रस्त इव स्वचित्ते रत्नाचलः किं विजहार दूरम् ।
स्थानं सुगुप्तं मनुजैरदृश्यं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७३ ॥
उदारतां यस्य निरीक्ष्य वीक्ष्यापन्ना इवानन्दिनिभावमन्याम् ।
ययुर्दशापि त्रिदिवं सुरद्रुमाः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७४ ॥
यद्बुद्धिसंभारपराभिभूतः पलायितः सर्वसुपर्वसूरिः । शून्येऽन्तरिक्षे भ्रमतीव बाढं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥७५॥
निर्धौतकैलाशसधर्मधामा प्रकाशते यस्य यशःशशाङ्कः ।
विश्वेऽत्र विध्वस्ततमोवितानः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७६ ॥
एवमनेकविवेकिभिरनिशं संस्तूयमानपादानाम् । भुवनत्रितयप्रसन्ननिर्मलतरवर्णवादानाम् ॥ ७७ ॥
सजलाम्बुदनादानां विनिर्जितानेकवादिवादानाम् । निरतिचारचरित्राचरणध्वस्तप्रमादानाम् ॥ ७८ ॥
गतसकलविषादानां सर्वत्र प्राप्तविजयवादानाम् । जितमारोन्मादानां श्रीमत्श्रीतातपादानाम् ॥ ७९ ॥
कोऽपि प्रसादलेशः सौववपुः पाटवादिवाचालः । आनन्दयिष्यति शिशुः स्वान्तमधो भानुरिव कमलम् ॥ ८० ॥
तेन प्रसद्य सद्यः प्रसादनीयः प्रसन्नवदनैः सः । प्रतिसार्थं शिशुमानप्रमोदसंपत्तयेऽभ्यधिकम् ॥ ८१ ॥
किंच शिशोरुपवैणवमवधार्या वन्दना जगद्वन्द्यैः । श्रीमद्वीरजिनेश्वरपट्टोदयभूधरादित्यैः ॥ ८२ ॥
स्वप्रतिभासन्तर्जितधिषणाः श्रीलालकुशलगणिविबुधाः । श्रीतातचरणसेवारसिकाः श्रीहस्तिविजयाख्याः ॥८३॥
अनुपमबुद्धिनिधाना गणयः श्रीऋद्धिसोमनामानः । गजविजयाभिधगणयो गणयः पुनरुदयविजयाश्च ॥८४॥
मुक्तिविजयगणयो गणिगुणविजयश्चापि जीतविजयगणिः ।
सिद्धिविजयगणिनामा सत्यविजयनामगणयश्च ॥ ८५ ॥
इत्यादिसाधुसाध्वीप्रमुखाणां तातचरणभक्तानाम् । नत्यनुनती प्रसाद्ये श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८६ ॥
किंचात्रत्या अपि च गणयः कनकादिविजयनामानः ।
कमलादिविजयगणयो जयविजय······गणयश्च ॥ ८७ ॥
भाविगणिर्जसविजयो मुनी तथाणंदविजय-गुणविजयौ ।
ज्ञानविजयगणिनामा लक्ष्मीविजयस्तथा च मुनिः ॥ ८८ ॥
श्रीविजय-धीरविजयौ मुनी तथा ऋद्धिविजय-मेरुविजयौ च ।
मानविजय-मतिविजयौ रविविजय-दयाविजयगणी ॥ ८९ ॥
लब्धिविजयगणिनामा सुबुद्धि-नय-मुक्ति-भक्तिविजयाश्च ।
रङ्गविजय-नेमिविजयाऽऽणन्दविजय-कुशलविजयाद्याः ॥ ९० ॥
महिमाश्रीवरगणिनी सौभाग्यश्रीस्तथा च वरसाध्वी ।
राजश्रीत्यभिधाना सुमतिश्रीर्नाम साध्वी च ॥ ९१ ॥
इत्येवं यति-यतिनीसमुदायोऽत्रत्यसकलसंघश्च । श्रीतातचरणचरणाम्बुरुहयुगं नंनमीतितमाम् ॥ ९२ ॥
श्रीतातपादनाम्ना श्रीजिनपतयः सदा प्रणम्यन्ते । शिशुरपि तन्नतिसमये श्रीतातैश्चेतसि विधेयः ॥ ९३ ॥
अकूशकूपारसकोशैः श्रीतातैः सर्वदा गतविषादैः । हितशिक्षणादि सर्वं कृत्यभरं च प्रसाद्यं मे ॥ ९४ ॥
यत्किंचिदिह क्षूणं लिखितं रभसेन भवति तत्सर्वम् । क्षन्तव्यं श्रीयुक्तैस्तातपदैः शमरसाम्बुधिभिः ॥ ९५ ॥
कोशीकृतकरकमलो भूमितलन्यस्तमस्तकः सततम् । शिष्याणुकनकविजयो विशेषतो नमति सद्भक्त्या ॥ ९६ ॥
आश्विनस्य सिते पक्षे पूर्णिमास्यां लसत्तिथौ । मया सद्भक्तचित्तेन लेखोऽलेखीति मङ्गलम् ॥ ९७ ॥

* *
*

तपागच्छीयाचार्यश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० रविवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२१] — विज्ञप्तिका —

॥ श्रीशंखेश्वरपार्श्वपरमेश्वराय नमः । ऐं नमः ॥

स्वस्तिश्रियामभयदं समुपास्महे तमेकाश्रयं जिनपतिर्जनपूजनीयः ।
आनन्दयत्यमृतसूरिव यः शिवस्थो दोषाकरः कुवलयं सकलं नितान्तम् ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियः समभजन्त जिनेशितारं, रत्नाकरं जलधिगा इव यं प्रमोदात् ।
भूयिष्ठकष्टदमुनो वरवारिवाहः, सोऽस्तु श्रिये त्रिजगतीपुरुषप्रतीक्ष्यः ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीर्मलिनैर्भृङ्गैस्त्यक्त्वा चुम्बितमम्बुजम् । यदंह्रिमसभाजन्तमर्हन्तं प्रत्यहं स्तुमः ॥ ३ ॥
इत्थं जिनाधीश्वरपद्मनाभं, प्रणामगोवर्द्धनशैलशृङ्गम् । आरोप्य नम्रेन्द्रकिरीटकोटीमणिप्रभाजीवनधौतपादम् ॥ ४ ॥
श्रीगूर्ज्जरो निखिलदेशशिरःकिरीटो, देशोऽद्वितीयमतुलं किल तत्र रत्नम् ।
नाम्नेति **राजनगरं** नगरं गरीयस्तद्धाम **अह्मदपुरं** परमं यदस्ति ॥ १ ॥
अहम्मदावादवरेण्यहारं न्यधत्त धाता क्षितिभीरुकण्ठे । नानापुरीशुक्तिजमेतदस्मिन् धत्ते पुरं नायकरत्नसाम्यम् ॥२॥
भवन्तु भूयांसि निवेशनानि महीतलस्योपरि संस्थितानि । समानतां यत्पुरमस्य धत्ते श्रुतं न कुत्रापि निरीक्षितं तत् ॥३॥
पारावाराम्बराजो(यो)षाविशालभालमण्डनम् । विशेषकं विशेषेण भासते किल यत्पुरम् ॥ ४ ॥
गर्जद्गूर्ज्जरदेश**राजनगरो**त्सङ्गेऽस्ति दीप्तिं दधद्, यः श्रीमद्गुरुपादपद्मविमलीभूतान्तरालः पुरः ।
जाने **राजगृह**स्य पाटकवरो **नालन्द** इत्याख्यया, शोभी वीरजिनेन राष्ट्र**मगधा**लङ्कारभूतस्य किम् ? ॥ ५ ॥
रम्यरामारमाकीर्णं भूभूषणमदूषणम् । यत्पुरं वीक्ष्य लङ्काब्धौ रोषपोषाद् विवेश किम् ? ॥ ६ ॥
पुरीं वरीयसीं वीक्ष्य यां जनैरिति तर्क्यते । श्रीगुरुं नन्तुमायाता संक्रान्तेवामरावती ॥ ७ ॥
यस्याः पुरः पुरः सर्वा नगर्यास्तुच्छसंपदः । यतोऽलीकाऽलका जाता **भोगावती** तु भोगिनी ॥ ८ ॥
यत्रार्हतामालयचक्रवालो नेत्रप्रमोदप्रददो जनानाम् । विराजते शुद्धसुधाभिरामः शशीव भूदेवपतिप्रतीक्ष्यः ॥ ९ ॥
विचित्रचित्राणि जिनेश्वराणां गृहाणि नानोपलनिर्मितानि ।
विभान्ति यत्रोच्चतराणि पुर्यां लसद् ध्वजानीव विमानकानि ॥ १० ॥
यत्र श्रीजिनराजस्य प्रासादो राजतेतराम् । वैजयन्तश्रियं मुष्णन्नभ्रङ्कषमहाध्वजः ॥ ११ ॥
यत्राद्भुतो भाति विहारहारो मुक्ताश्रितः सद्गुणराजमानः । अत्युग्रतेजो बहुभक्तिमध्यसन्नायको दर्शनदर्शनीयः ॥१२॥
संदिद्युते यत्र मुमुक्षुगेहं संसेव्यमानं सुमनःसमूहैः । विचित्रितं चित्रविचित्रचित्रैर्यथा विमानं विहितप्रमोदम् ॥१३॥
यस्मिन् पुरे मुक्तिपुरीं प्रतीष्टं चकास्ति साध्वालययानपात्रम् ।
भव्याङ्गिसांयात्रिकमुत्तमर्षिनियामकं सद्व्रतिकर्णधारम् ॥ १४ ॥
यत्रोत्तमा राजति धर्मशाला श्रीसूरितत्सेवकसङ्घयुक्ताः । विचित्ररत्नैर्घटिता सुधर्मासभेव सत्तत्रयुतेन्द्रदीप्रा ॥ १५ ॥
यत्रार्हताः श्रीगुरुपादसेवाहेवाकिनो निर्मलमूर्त्तयस्तु । श्रद्धान्विता धर्मपरा वसन्ति दिवोऽवतीर्णा इव कामरूपाः॥१६॥
श्रावका यत्र राजन्ते स्थूललक्षा महर्द्धयः । चित्तोदारा इवानेके जङ्गमाऽऽस्रमपादपाः ॥ १७ ॥

श्रद्धालवो यस्य गुणानुरक्ता जीवादितत्त्वैकविचारदक्षाः ।
श्रीपश्चमाङ्गे पुरि तुङ्गिकायाः श्राद्धा इव प्रोक्तगुणा विभान्ति ॥ १८ ॥
सुश्राविका यत्र पवित्रपात्रे दानं ददत्यः शिवसौख्यदातृ । लता इवास्वप्नतरोर्दधत्यः सुशीलमाभान्ति वरं पुरन्ध्र्यः ॥१९॥
यत्रोन्नतानीश्वरमन्दिराणि राजन्ति नानामणिनिर्मितानि ।
दिव्यानि वातायनमण्डलानि कामं गृहाणीव सुधाशनानाम् ॥ २० ॥
यत्र गेहा एकभूमा द्विभूमाः सप्तभूमिकाः । भासन्ते व्यायता वृत्ताश्चतुरस्राः सहस्रशः ॥ २१ ॥
चतुष्पथं यत्र विचित्रहट्टश्रेणीभिरानन्दितसार्थवाहम् । विक्रायकक्रायकवस्तुवृन्दं चकास्ति साक्षादिव कामकुम्भः॥२२॥
सौवर्णो यत्र वप्रोऽस्तीन्द्रनीलकपिशीर्षकः । सखातिकः क्षितिस्त्रीणां मन्ये किं कर्णकुण्डलः ॥ २३ ॥
यत्र श्लोका महालोका मानवा मानवागमाः । नागरा नागराः सन्ति प्रमदाः प्रमदान्विताः ॥ २४ ॥
उद्यानं वर्त्तते यत्र नानावृक्षसमन्वितम् । सर्वर्त्तुफलसूनानि ददत् किं नन्दनं वनम् ॥ २५ ॥
श्रवन्तः करयो दानवारि गर्जन्त उन्नताः । शतशो यत्र भासन्ते कृष्णा जलधरा इव ॥ २६ ॥
कीनाशा राक्षसद्वीपे सरोगास्तु विहङ्गमाः । केशाः सबन्धना दण्डसहिताश्चैत्यपङ्क्तयः ॥ २७ ॥
सच्छिद्रा धनिनां मुक्ता नारायणा जनार्दनाः । कूटयुक्तास्तानभेदा यत्र लोका न केचन ॥ २८ ॥
मूका यत्रान्यदोषोक्तौ परस्त्रीवीक्षणेऽन्धकाः । पङ्गवोऽन्यधनचौर्ये निर्दयाः पापमर्दने ॥ २९ ॥
स्पर्द्धोपेता धर्मकृत्ये दाने व्यसनिनो जनाः । गुणैकभाजनं भान्ति जैनधर्मपरायणाः ॥ ३० ॥
श्रीपूज्यपादराजीवरजःपुञ्जपवित्रिते । तत्र श्रीमति विख्याते अहम्मदपुरे वरे ॥ ३१ ॥
जिनालयद्वयं भाति सुन्दराकृति यत्र किम् । मन्ये मुक्तिपुरीक्षायै भविनां नेत्रयामलम् ॥ ३२ ॥
वसन्ति यत्र धर्मिष्ठा गुरुभक्ता महेश्वराः । विबुधा बहवो लोका देवलोकसुरोपमाः ॥ ३३ ॥
वाग्मिविप्रवशावापीवैद्यवर्णविभूषितात् । धीणोजस्थानतस्तस्मान्महि(ही)स्त्रीतिलकोपमात् ॥ ३४ ॥
सविनयं सहरिषं सायल्लकं सभक्तिकम् । सोल्लासं प्रेमसंयुक्तं ससन्तोषं ससंस्मृति ॥ ३५ ॥
हर्षोत्कर्षोल्लसद्रोमाञ्चितस्वीयशरीरकम् । मोदमेदुरितस्वान्तं विनयानतमस्तकम् ॥ ३६ ॥
भालस्थलतलन्यस्तकरसंपुटकुड्मलः । पश्चाङ्गस्पृष्टभूभागस्तातपादरजस्कणः ॥ ३७ ॥
देवलोकमितावर्त्तवन्दनैरभिवन्द्य सत् । बालको वरविज्ञप्तिं तनुते रविवर्द्धनः ॥ ३८ ॥
यथाऽत्रानुदिनं कृत्यमुदिते भास्करे सति । पद्मकाननसंफुल्ले तमोभरे क्षयङ्गते ॥ ३९ ॥
प्रभातसमये पारिषद्यालङ्कृतपर्षदि । नन्दिस्वाध्यायकरणं नेमिचरित्रवाचनम् ॥ ४० ॥
शास्त्राणां सादरं साधोः पाठनं पठनं स्वयम् । इत्यादिधर्मकृत्यानि प्रवर्त्तन्ते ससंमदम् ॥ ४१ ॥
आनुपूर्व्या समायाते श्रीमद्वार्षिकपर्वणि । सर्वपर्वशिरोरत्ने विविधोत्सवहारिणि ॥ ४२ ॥
जिनेन्द्रभवने सप्तदशप्रभेदपूजया । अर्हतां पूजनं स्नात्रविधानं समहोत्सवम् ॥ ४३ ॥
व्याख्यानैर्नवभिः कल्पसूत्र-तद्वृत्तिवाचनम् । नवप्रभावनायुक्तैर्वित्तं दानार्थितोषणम् ॥ ४४ ॥
साधर्मिकवात्सल्यकरणं पुण्यकारणम् । इत्यादिपर्वसम्बन्धिधर्मकर्म्माण्यनेकशः ॥ ४५ ॥
निर्विघ्नं समजायन्त महामहः पुरस्सरम् । श्रीतातपादसन्नाममहामन्त्रप्रभावतः ॥ ४६ ॥

अपरं श्रीपरमगुरूणां वर्णनम्–

श्रीचन्द्रगच्छशतपत्रविराजिराजीप्रोत्फुल्लताकरणवासरमणिप्रकाशम् ।
स्तोष्ये मुदा विजयदेवगुरुं त्रिलोकीविस्तारिनिर्म्मलतपोमहसा प्रकाशम् ॥ १ ॥

सूरेर्वचोऽमृतरसं सरसं निपीय विश्वे समस्तमनुजा अभवन्नितान्तम् ।
त्यक्तादराः सदमृते मनसेति मत्वा कुण्डानि तस्य नव किं बलिवेश्म जग्मुः ॥ १ ॥
माधुर्यताजितसितां सितकान्तिशुभ्रां सूरे ! गिरं तव सुतृप्तिभृतो निपीय ।
मेधाविनः श्रुतिपुटैर्गणयन्ति नित्यं पेयूषमात्मनि निजे तृणतुल्यमेव ॥ २ ॥
सूरीश ! भूरिभवसञ्चितपापपूरदुर्भेद्यसंतमसराशिविनाशकर्त्री ।
संसारिसत्त्वहृदयाम्बुजबोधदात्री भानुप्रभेव भवदीयसरस्वतीयम् ॥ ३ ॥
निश्शेषभव्यजनगूढपथस्थितोद्यदज्ञानदुष्टगरलं सहसाऽपहर्तुम् ।
वाणीमिषेण विधिना निहिता सुधेयं सूरीशितर्वदनचन्द्रमसि त्वदीये ॥ ४ ॥
नानारसस्फारपयःप्रपूर्णा संसेविता कोविदराजहंसैः । मलापहर्त्री जनचित्तपद्माश्रयेव गङ्गा जयताद् गुरोर्गीः ॥ ५ ॥
वाण्याऽभिभूता भवदीययेयं लज्जाभरात् सारसुधा सुसाधोः ।
प्रभो ! सुधादीधितिसाधुबिम्बमशिश्रियद् व्योम्नि विशुद्धभासा ॥ ६ ॥
सूरे ! गिरां स्वादुतयाभिभूता स्फुटं ह्रिया तेऽद्भुतया प्रणश्य ।
आदाय वंशस्य मुखे शलाकां सितोपला काचघटीं विवेश ॥ ७ ॥
वाणीविलासांस्तव देशनायां गुरोः समाकर्ण्य समस्तभव्याः ।
यन्ति प्रमोदानिव नीलकण्ठा वसुन्धरायां घनगर्जिताश्च ॥ ८ ॥ – गिरामष्टकम् ।
सद्धस्तिमल्लोज्ज्वलचन्द्रशङ्खक्षीराब्धिनागाधिपतिच्छलेन । लोकत्रये श्रीगुरुराजकीर्तिः प्रोज्जृम्भते श्वेतरुचिस्त्वदीया ॥१॥
जगत्त्रयं निर्मलकान्ति सूरे ! यशस्त्वदीयं विदधद्वलक्षम् । चित्रं जनानामसितादिवर्णभेदं भिनत्ति स्म वरिष्ठशक्ति ॥२॥
स्कन्धो भवानीगुरुरंह्रिनाम शेषः शिखा दिक्करिणः प्रशाखाः ।
तद्दन्तपङ्क्तिः कुसुमानि भानि सस्यं विधोर्मण्डलमात्मचित्ते ।
इति प्रतीमः प्रकटं प्रसारिभवद्यशःकल्पतरोर्मुनीश ! ॥ ३ ॥
क्षीरार्णवोल्लोललसद्दुकूला सुपुष्पदन्तोभयताडपत्रम् ।
स्पष्टं वहन्ती रजतोदगद्रिस्तनद्वयी पुष्करमण्डपेऽस्मिन् ।
सूरे ! त्वदीया नरिनर्ति कीर्त्तिसन्नर्त्तकी सुन्दररूपसम्पत् ॥ ४ ॥
कीर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिर्भवतां त्रिलोकीं गन्तुं गरिष्ठा युगपद् बभूव । सूरे ! किमेषा भुजगाधिराजकैलाशशैलेन्द्रगजच्छलेन ॥५॥
मातङ्गमुख्यो यत इन्द्रहस्ती क्षीरोदधिश्चारुकुसङ्गरङ्गः । कुरङ्गसङ्गः शशभृल्लभेत कथं गुरो ! त्वद्वरकीर्त्तिसाम्यम् ॥६॥
दुर्वर्णके नैव न चन्द्रबिम्बे दुग्धे न हारे न सरिद्वरायाम् ।
नो कुन्दपुष्पे न स सूरिसिंह ! त्वत्कीर्त्तिकान्तौ किल शुभ्रिमा यः ॥ ७ ॥
सूरे ! त्वदीयं सुयशः स्वजैत्रमालोक्य दुर्जेयतरं ह्यकस्मात् ।
भीतो विवेशोदकदुर्गमध्यं छायाच्छलात् पार्वण इन्दुरेषः ॥ ८ ॥ – यशोऽष्टकम् ।

॥ श्रीपूज्यलेखे १०० जातमस्ति ॥

* *
*

तपागच्छाधिपतिश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२२] — विज्ञप्तिका —

स्वस्तिश्रियो यान्ति सदाऽतिपुष्टिं यदीयविश्वाद्भुतनामजापात् ।
जीमूतराशेरिव वल्लिमाला सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनशान्तिनाथः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियो यं जिनसार्वभौममशिश्रियन् विश्वविभूतिगेहम् ।
शान्ताशिवः सज्जनशान्तये स्तात् स शान्तिकर्त्ता जिनशान्तिनाथः ॥ २ ॥
भ्राजिष्णुशोभाभरभासमानं मोहान्धकारोत्करभानुकल्पम् ।
पादाम्बुजं यस्य विराजतेऽलं श्रीशान्तिनाथः शिवशर्मणे सः ॥ ३ ॥
पार्श्वः पार्श्वमहापार्श्वो विश्वविश्वेश्वरो जिनः । कर्मवल्लीछिदा पार्श्वः पायात् संसारतो जनान् ॥ ४ ॥
शीर्षे सप्त स्फटा यस्य छत्राणि भान्ति सप्त किम् । श्रेयसे भूयसे भूयात् सप्तभयजयाज्जिनः ॥ ५ ॥
वामेयकेवलादर्शसंक्रान्तविष्टप ! प्रभो ! । अमेयगुणरत्नानां रत्नाकर ! चिरं जय ॥ ६ ॥
शीर्षसर्पमणिज्योतिर्नीलरत्नसमप्रभः । विद्युद्विद्युत्सपानीयधाराधर इवोन्नतः ॥ ७ ॥ —युग्मम् ।
स्वस्तिश्रीवर्द्धमानोऽस्तु वर्द्धमानो जिनेश्वरः । यशोवृद्ध्यै वर्द्धमानो न वर्द्धमानराजितः ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीसंश्रितो देयात् सौख्यसौभाग्यसंपदम् । महावीरो महावीरो दुष्टदौर्भाग्यपर्वते ॥ ९ ॥
महावीरजिनाधीशो महावीरपराक्रमः । कुलाम्बरमहावीरो महावीरवरस्वरः ॥ १० ॥
ज्ञातनन्दन ! सर्वत्रप्रज्ञातनन्दनश्चिरम् । विज्ञातनन्दनाथेन सुज्ञातनन्दनः प्रभो ! ॥ ११ ॥ —युग्मम् ।
त्रैशलेयो जिनो जीयादनल्पकल्पितार्थदः । बाल्येऽप्यकम्पयन्मेरुं लीलया यो बलान्वितः ॥ १२ ॥
तान् प्रणम्य जिनाधीशान् सुरासुरनतक्रमान् । चन्द्रोज्ज्वलयशोव्रातान् सर्वसंपत्तिकारकान् ॥ १३ ॥

अथ पुरवर्णनम्—

विराजते यत्र जिनाश्रयाली संसारसिन्धाविव पोतपङ्क्तिः ।
निर्वाणसौधाश्रयणाय जाने प्रोत्तुङ्गनिःश्रेणिरकारि भव्यैः ॥ १४ ॥
प्रासादा जिनराजस्य द्योतन्ते यत्र भूतले । दातारः कल्पितार्थस्य मन्दारा इव नन्दने ॥ १५ ॥
जिनालयाः स्फाटिकसाश्मबद्धा भूमण्डले यत्र विभान्ति रम्याः ।
राजिस्थिताः सज्जनवर्णनीयाः सुवृत्तताशालिन उच्चतुङ्गाः ॥ १६ ॥
सद्मानि श्रीजिनेशस्य विमानानीव नाकिनाम् । भ्राजन्ते यत्र वादित्रनिर्घोषैः कलितान्यलम् ॥ १७ ॥
श्रीमज्जिनवरेन्द्रस्य प्रासादाः साद्रभेदिनः । यशःस्तम्भा इवाभान्ति कारकाणां महानृणाम् ॥ १८ ॥
विराजते या नगरी विशाला विचित्रवर्णा लसदर्थयुक्ता । निषेविता साधुजनैः प्रकामं विशुद्धसिद्धान्तपदावलीव ॥१९॥
यत्रोन्नता साधुसभा विभाति द्रव्यव्ययेनास्तिकनिर्मिता हि । पापठ्यमानागमशब्दपूर्णा सद्राजधानीव सुधर्मराज्ञः ॥२०॥
यत्रार्हतास्तत्त्वविदो वदान्या उदारचित्ता निवसन्ति सन्तः ।
सभ्या महेभ्या बहुदत्तवित्ताः किमून्नता जङ्गमकल्पवृक्षाः ॥ २१ ॥
स्पर्द्धा जनानां तु मिथोऽस्ति यत्र शक्तोऽहमित्युन्नतधर्मकृत्ये ।
भूयिष्ठसद्भूषणभूषितानां लक्ष्मीश्रितानां पुरुषोत्तमानाम् ॥ २२ ॥

चकास्ति यत्राद्भुतयौवनेन तद् यौवनं विश्वमनोहरं यत् । समीक्ष्य देवप्रमदा मदेन त्वद्यापि नायाति मनुष्यलोके ॥२३॥
प्रत्यर्थिपृथ्वीदयितान्धकारसंघातविध्वंसनचित्रभानुः । प्रीणाति यस्यां वसुधाधिनाथः प्रजां स्वकीयात्मजवज्जितारिः॥२४॥
यत्र चौर्यविनिर्मुक्ते लोललोचनविभ्रमैः । मनांसि केवलं यूनां हरन्ति हरिणीदृशः ॥ २५ ॥
लक्ष्मीवन्तो निरता मर्यादायां गभीरतायुक्ताः । शुद्धहृदयाः सुवृत्ता नदीशवन्नागरा यत्र ॥ २६ ॥
मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । मूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ २७ ॥
पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशूकाः पङ्कसंहारे दानव्यसनिनस्तथा ॥ २८ ॥
मुक्ताफलेषु हि च्छिद्रं वीवाहे करपीडनम् । मारिः शारिषु न(नो) लोके कुसुमेषु च बन्धनम् ॥ २९ ॥
दण्डश्छत्रे तथा चैत्ये खड्गे निस्त्रिंशता स्मृता । मुरुजेषु चपेटादि जडत्वं यत्र पुष्करे ॥ ३० ॥
कैरवानन्ददायी कः का प्रिया स्मरभूपतेः । का पुरी पावनीभूता श्रीगुरुपादपङ्कजैः ॥ ३१ ॥
'सूरतिः' – व्यस्तसमस्तजातिः ।
महेभ्यसभ्यद्रविणादिपूर्णे विराजमाने नृपसौख्यवृन्दैः । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्ये ॥ ३२ ॥
उल्लसन्ति सदा यत्र प्रासादाः श्रीजिनेशितुः । शोभमानसदाकारा नानाचित्रविराजिताः ॥ ३३ ॥
यत्र सिद्धालयश्रेणिनिःश्रेणिः सिद्धिसद्मनः । भाति सिद्धिरिवानन्ददायिनी भव्यदेहिनाम् ॥ ३४ ॥
यस्मिन् पुरे भाति विहारपङ्क्तिर्व्योमान्तसंलग्नसदण्डशृङ्गा । किं दर्शयन् दण्डमिषाज्जनानां गीर्वाणगेहं करशाखयेव ॥३५॥
श्रीसङ्घो राजते यत्र लसद्गुणमणीखनिः । जिनेन्द्रार्चाप्रतिक्रान्तिगुरुभक्तिरतः सदा ॥ ३६ ॥
यत्र सर्वोऽपि वास्तव्यलोकः परमधार्म्मिकः । दृढप्रतिज्ञो निपुणो भद्रकप्रकृतिस्तथा ॥ ३७ ॥
श्रीवीतरागस्मरणप्रवीणसद्धार्म्मिकस्तोमविभूषिताङ्कात् ।
भूभामिनीभालविचित्रभूतात्तस्मान्मुदा विन्धिपुराद् विशिष्टात् ॥ ३८ ॥
सोत्कण्ठितान्तःकरणाभिरामः सन्नीतिरीत्यावनतोत्तमाङ्गः ।
संयोजिताम्बत्करकुड्मलो हि भूरेणुसच्चित्रितभालपट्टः ॥ ३९ ॥
भक्तिव्यक्त्या कृतोत्साहः शिष्यो **विनयवर्द्धनः** । पतङ्गप्रमितावर्त्तवन्दनेनाभिवन्द्य च ॥ ४० ॥
विज्ञप्तिकां वितनुते कामदां कामधेनुवत् । यथा सुकृतसत्कृत्यमिहापि प्रतिवासरम् ॥ ४१ ॥
प्राचीनाचलचूलायामागच्छत्यंशुमालिनि । मण्डितायां महासभ्यैर्महेभ्यैः प्रौढपर्षदि ॥ ४२ ॥
श्रीमद्भगवतीसूत्रदेशना क्लेशनाशिनी । पठनं पाठनं साधोराप्तोक्तियोगवाहनम् ॥ ४३ ॥
इत्यादिकं शोभनधर्मकृत्यं जातं मुदा संप्रति जायते च । श्रीतातपादस्मरणप्रभावप्रोद्भूतपुण्योदयतस्तथा च ॥ ४४ ॥
परिपाट्या समायाते हर्षिताशेषमानवे । सर्वपर्वशिरोरत्ने श्रीमदाब्दिकपर्वणि ॥ ४५ ॥
अमारिपटहोद्घोषः कृपापोषश्च सर्वतः । तोषणं सर्वलोकानां पौषधिकस्य पोषणम् ॥ ४६ ॥
अष्टाहिकापक्षचतुर्थमासाष्टमादिकोत्कृष्टतपोविधानम् । सप्ताधिकैः स्नात्रविधेर्विधानं जिनेन्द्रगेहे दशभिः प्रकारैः ॥४७॥
संकल्पितानल्पविकल्पपूरसंपूरणे कल्पतरूपमस्य । श्रीकल्पसूत्रस्य नवक्षणैः सन्नव्यक्षणैर्वाचनमद्भुतस्य ॥ ४८ ॥
विशेषतः सद्गुरुदेवभक्तिर्भवार्जितांहोहरणे प्रसक्तिः । वाञ्छाधिकं मार्गणमण्डलीनां द्रव्यप्रदानं निजशुद्धभावात् ॥४९॥
इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म । ....संसक्तसद्ध्यानकृतिप्रभावात् ॥ ५० ॥

अथ गुरुवर्णनम् –

श्रीमत्तपागणमहार्णवपूर्णचन्द्रं, सूरीश्वरं विजय० ॥ ५१ ॥ श्रीसूरिनायक ! तव प्रतिभोपमानं० ॥ ५२ ॥
– यावत् – पद्मा० ॥ ५८ ॥ गच्छेशो० – यावत् ॥ ६२ ॥
का मान्या नरनाथसंसदि भवेत् ? कः प्राणिनां धर्मतः ?, किं तिष्ठेत् स्थिरमङ्गिनां ? दिवि सदा के सन्ति ? किं भूधरान् ?।

दीर्घान् हन्ति ? बलात् प्रमोदकरणे कः पङ्कजानां स्मृतः ?, कुम्भो मङ्गलमातनोति पथिकप्रस्थानके कीदृशः ? ॥ ६३ ॥

प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहाद् भवति यो वाचंयमाधीश्वरः,
उद्यत्स्वीयकुलाम्बराम्बरमणिं श्रीगौतमस्वामिनम् ।
लब्ध्या श्रीविजयादिसेनगणभृत्पट्टाब्धिरात्रीश्वरं,
तं श्रीपूर्वकमादरेण { भविनां सौभाग्यदं संस्तुवे ॥
भविका भावाद्भजध्वं जनाः ! ॥ ६४ ॥

कीदृशाः पुद्गला जैने ? का शम्भोः प्राणवल्लभा ? । को वैरी पञ्चबाणस्य प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहात् ॥
श्रीविजयदेवसूरेः सा माता या भवेदहो ॥ ६५ ॥ 'रूपाई' – षट्पदी ।

महाव्रती भवेत् कस्तु ? कोऽप्सराप्राणवल्लभः । कीदृग् मेरुश्च को निष्ठः प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहात् ॥
श्रीविजयदेवसूरेः स पिता यो भवेदहो ॥ ६६ ॥ 'साहस्थिरो' – षट्पदी ।

प्रशस्ता साधुधर्मे का ? सार्वभौमश्रियां नव । के सन्ति भुवि कीदृक्षा विजयदेवसूरयः ॥ ६७ ॥
'कृपानिधयः' – व्यस्तसमस्तजातिः ।

किं श्रवणप्रियं ? मार्गे का दुष्टा ? का प्रिया हरेः ? । कृपणास्येऽक्षरं किं ? का नराणां वल्लभाः कलौ ? ॥
श्रीमन्तः कीदृशाः सन्ति ? विजयदेवसूरयः ॥ ६८ ॥ – 'गम्भीरमानसाः' ।

विदितो यशसा सारनमाया जनता विभो ! । भो वितानजयामानरसासा शयतो दिवि ॥ ६९ ॥ – क्याराबन्धः ।

शीलेन विद्या विभवेन पूर्वं भाग्येन ये सूरिगणा अभूवन् । सूरीश्वरश्रीविजयादिदेवदृष्टे त्वयि प्रष्ठगुणेन दृष्टाः ॥७०॥

विजय देवताधीश ! विजय देवसंस्तुत ! । विजय देवसूरीन्द्र ! विजय [1]देवपाठक ! ॥ ७१ ॥

अगण्यपुण्यपुण्याढ्यो भाग्यसौभाग्यभासुरः । श्रीसूरिर्भूरिसूरीशः प्रसन्नीभवताच्छिशौ ॥ ७२ ॥

तैस्तातपादैर्विगतप्रमादैः प्रगल्भपाथोजसहस्रपादैः । सवारिजीमूतसदृक्षनादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥ ७३ ॥

श्रीपूज्यपादैर्निजकीयकायपरिच्छदारोग्यनिवेदिनी मे । प्रसादपत्री स्वशिशोः प्रसद्य प्रसादनीया प्रभुभिः प्रकृष्टैः ॥७४॥

अथावधार्या प्रणतिस्त्रिसन्ध्यं कृताञ्जलेर्मे नतमस्तकस्य । तथा परेषां मुनिसत्तमानां प्रसादनीया सततं प्रसन्नैः ॥७५॥

॥ इति विज्ञप्तिका ॥

*

---

१ देवपाठकः गुरुः एतावता त्वं गुरुः ।

तपागच्छाचार्यश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२३] — विज्ञप्तिका —

स्वस्तिश्रियं श्रीजिनराट् सिषेवे शान्तीशिता पञ्चमसार्वभौमः ।
षट्खण्डभोक्ता पुरुषोत्तमो हि सौख्यं विधत्तां स शिवङ्करोऽयम् ॥ १ ॥
यदंह्रिपद्मं भजति स्म······ पशुत्वतो रक्ष विभो ! मृगो माम् ।
इत्यात्मना विज्ञपयन्नितान्तं जीयाज्जिनः सर्वजनीन एषः ॥ २ ॥
मिथोऽन्यसत्त्वोद्भवभीतिनश्यच्छरीरिमात्राभयदं यदंह्रिम् ।
विचार्य भीतो हरिणो हरेः किमगादयं लक्ष्ममिषाच्छ्रिये स्तात् ॥ ३ ॥
यद्वक्त्रकान्त्या विजितो मृगाङ्कः परास्ततौल्याप्तिकृते कुरङ्गम् ।
प्रैषीद् यदंह्रिद्वितयेऽङ्कतः किं जगत्त्रयेशोऽस्तु विभूतये सः ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रियालीढमनूननाकिसंस्तूयमानं दितविश्वमानम् ।
श्रीपार्श्वनाथं क्षितिनाथपूज्यं सन्तः ! श्रयध्वं गुणराशिगेहम् ॥ ५ ॥
वामेयदेवेह तवात्मकान्त्या किमिन्द्रनीलो विजितः स्वसाम्यात् ।
पाषाणभावं भजति स्म तीव्रं चिकीर्षया कामितदन्तपो हि ॥ ६ ॥
सुपार्श्वपार्श्वं स्मरताष्टकर्मौलितोग्रपार्श्वं हृदि पार्श्वनाथम् । यत्पादपद्मं फणभृद्गुणज्ञः पूर्वोपकारस्मरणादसेवीत् ॥ ७ ॥
स्वस्तिश्रिये स्ताज्जिनवर्द्धमानः श्रीवर्द्धमानो दलितापमानः ।
सिद्धार्थवन्मङ्गलमालिकां यः सिद्धार्थपुत्रः कुरुते स्मृतः सन् ॥ ८ ॥
श्रीत्रैशलेयस्त्रिजगज्जनानामभ्यर्चनीयो जयताज्जिनेन्द्रः ।
बाल्येऽपि योऽकम्पयदुग्रतेजाः स्वर्णाचलं तत्क्षणमेव लीलया ॥ ९ ॥
आप्तत्रयीं चेतसि तां निधाय रत्नत्रयीं किं जगतस्त्रयीं किम् ।
ब्रह्मत्रयीं किं त्रिपदीं किमिष्टदृष्टित्रयीं किं जगदर्चनीयाम् ॥ १० ॥
स्वस्तिश्रियां वृद्धिरशेषसिद्धिरनुत्तरर्द्धिर्विपुला च बुद्धिः ।
यदीयसत्पादसरोजसेवनात्(?) सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनवर्द्धमानः ॥ ११ ॥

अथ नगरवर्णनम्—

यत्रार्हतां संप्रति मन्दिराणि प्राञ्चत्सुधाभिर्धवलीकृतानि । अभ्रंकषोच्चैश्शिखराणि भान्ति कैलाशकूटानि विभासुराणि ॥ १२ ॥
यत्राप्तगेहं जिनमूर्त्तियुक्तं ध्वजाञ्चलेनाह्वयतीति भव्यान् । मोक्षाग्रमार्गं जयति प्रतीतं भजध्वमेनं मरुताचलेन ॥ १३ ॥
यत्रोच्चसर्वज्ञमनोज्ञवेश्मशृङ्गे समालोक्य सुवर्णकुम्भम् । वदन्त्यहो ! सर्वजनाः परस्परमसौ स्थिरीभूतरविः किमत्र ॥ १४ ॥
सद्मानि श्रीजिनेशस्य विमानानीव नाकिनाम् । भ्राजन्ते यत्र वादित्रनिर्घोषैः कलितान्यलम् ॥ १५ ॥
यत्रोन्नता साधुसभा विभाति द्रव्यव्ययेनास्ति कृनिर्मिता हि । पापठ्यमानागमशब्दपूर्णा सद्राजधानीव सुधर्मराज्ञः ॥ १६ ॥
श्रीप्राज्यरत्नालिविनिर्मितानि विचित्रचित्रैरतिसुन्दराणि ।
कामं गृहाणीव सुधाशनानां विभान्ति यस्यां जिनमन्दिराणि ॥ १७ ॥

यत्रार्हतास्तत्त्वविदो वदान्या उदारचित्ता निवसन्ति सन्तः ।
सभ्या महेभ्या बहुदत्तवित्ताः किमून्नता जङ्गमकल्पवृक्षाः ॥ १८ ॥
यत्रास्तिकानां समवेक्ष्य दानं वृन्दारकानोकहपङ्क्तिरेव । स्वर्गे निवासं किमु तत्र चक्रे यत्रापमानं हि सतां न वासः॥१९॥
विराजते या नगरी गरीयसी विशिष्टधर्म्मिष्ठजनैरलङ्कृता । सुतातपादप्रबलप्रभावतोऽसुखेति दोषादिभयाद्दवीयसी॥२०॥
स्पर्द्धा जनानां तु मिथोऽस्ति यत्र शक्तोऽहमित्युन्नतधर्म्मकृत्ये ।
भूयिष्ठसद्भूषणभूषितानां लक्ष्मीश्रितानां पुरुषोत्तमानाम् ॥ २१ ॥
चकास्ति यत्राद्भुतयौवनेन तद् यौवनं विश्वमनोहरं यत् । समीक्ष्य देवप्रमदा मदेन न्वद्यापि नायाति मनुष्यलोके ॥२२॥
यद्धर्म्यकुड्ये प्रतिरूपितानि मृगेक्षणानां वदनोत्पलानि । सौरभ्यलोभाद्बहुचञ्चरीका विलोक्य सद्मोपरि संभ्रमन्ति ॥२३॥
यत्र चौर्यविनिर्मुक्तैः लोललोचनविभ्रमैः । मनांसि केवलं यूनां हरन्ति हरिणीदृशः ॥ २४ ॥
लक्ष्मीवन्तो निरता मर्यादायां गभीरतायुक्ताः । शुद्धहृदयाः सुवृत्ता नदीशवन्नागरा यत्र ॥ २५ ॥
यत्र प्रजापालनतत्परोऽस्ति क्षितीशिता क्षत्रियवंशदीपः । सन्न्यायमार्गागतवित्तकोशो विपक्षभेदी किल रामचन्द्रः॥२६॥
मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । मूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ २७ ॥
पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशूकाः पङ्कसंहारे दाने व्यसनिनस्तथा ॥२८॥ – यमलम् ।
मुक्ताफलेषु हि च्छिद्रं वीवाहे करपीडनम् । मारिः शारिषु न(नो?) लोके कुसुमेषु च बन्धनम् ॥ २९ ॥
दण्डश्छत्रे तथा चैत्ये खड्गे निस्त्रिंशता स्मृता । मुरुजेषु चपेटादि जडत्वं यत्र पुष्करे ॥ ३० ॥–यमलम् ।
धनदा धनदा यत्र मानवा मानवा अपि । स्त्रियोऽपि हि सदा गौर्यः पुरुषाः पुरुषोत्तमाः ॥ ३१ ॥
ईश्वरा ईश्वरा एव शक्तिमन्तो यशोऽर्जने । कवयः कवयः कामं दृश्यन्ते बहवो नराः ॥ ३२ ॥
सदने सदने सन्ति कमलाः कमलास्तथा । विशिष्यते कथं तन्न पुरं स्वर्गिपुरादिह ॥ ३३ ॥
सौवर्णवप्रो रचनावलीढो रत्नावलीनां कपिशीर्षशोभी । यन्नास्ति कर्णाभरणं किमेष पृथ्वीवशाया जगदुत्तमायाः॥३४॥
मध्ये क्षितिप्रष्ठपुरावतंसे **कृष्णादिकोद्दाख्यपुरे** प्रतीते । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्ये ॥३५॥
सश्रद्धश्राद्धसंदोहात् भूरिभूरिविभूषितात् । श्रीगुरुनाममन्त्रेण सौख्यसौभाग्यसंयुतात् ॥ ३६ ॥
वापीवप्रविहारादिपदार्थसार्थराजितात् । अपूर्वस्वर्गसादृश्यात् **तिरवाडापुरात्** ततः ॥ ३७ ॥

अथ समाचारः–

श्रीगुरुचरणद्वन्द्वपुण्डरीकरजस्कणः । हर्षोत्कर्षभराद् भूरि रोमोद्गमशरीरभाक् ॥ ३८ ॥
संयोजितकरकमलः सूर्यमितावर्त्तवन्दनेनैवम् । वन्दित्वा सप्रणयं सोत्कण्ठं सरणरणकं च ॥ ३९ ॥
धात्रीतलमिलन्मौलिर्नताङ्गो भक्तिभासुरः । विज्ञप्तिकां वितनुते शिष्यो **विनयवर्द्धनः** ॥ ४० ॥
विरोचने दिग्रमणीयरामावक्त्राण्यथो मण्डयतीव रक्ते । मुदा करैः स्वस्य च कुङ्कुमाभैरारूढपूर्वाचलशृङ्गभागे ॥ ४१ ॥
ग्रहण्यमाने रविणा निशायास्तमोभरे दीधितिभिर्घनाभे। श्यामाधिनाथं हसता वशायाः सङ्गात्फलं प्राप्तमिदं त्वयेति॥४२॥
यथाऽत्र कृत्यं प्रतिवासरं तु विराजितायां बहुसभ्यमर्त्यैः । विधीयते श्री**परिशिष्टपर्व**सुवाचनं सच्चतुरैः सभायाम् ॥४३
सिद्धान्तादिकशास्त्राणां पठनं पाठनं तथा । योगोद्वहनमित्यादि धर्म्मकर्म्म मुदाऽभवत् ॥ ४४ ॥
संप्रति जायते चान्यत् तातपादप्रसादतः । पर्वापि वार्षिकं सर्वपर्वगर्वापहारकम् ॥ ४५ ॥
तत्रोपतस्थे सर्वत्र पौषधिकस्य पोषणम् । अमारिपटहोद्घोषपापसन्तापवारणम् ॥ ४६ ॥
मासार्द्धमासक्षपणाष्टमोद्यदष्टाहिकाषष्ठतपोऽभितप्तम् । उपासकैः सप्तदशप्रभेदैर्जिनेन्द्रसुस्नात्रविधेर्विधानम् ॥ ४७ ॥
अर्थिसार्थः कृतार्थत्वमवाप प्रार्थितार्पितः । इभ्येभ्यः श्राद्धवर्गेभ्यः श्राद्धीभ्योऽपि तथा घनम् ॥ ४८ ॥
कल्पितानल्पसंकल्पपूरणे कल्पशाखिनः । वाचना **कल्पसूत्रस्य** नवक्षणनवक्षणैः ॥ ४९ ॥

नवप्रभावना खण्डपुटपूगीफलादिकैः । साधर्म्मिकाणां वात्सल्यं पक्वान्नैर्विविधैः सह ॥ ५० ॥
इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्म्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म्म । श्रीतातपादांह्रिसरोजयुग्मसंसक्तसद्ध्यानकृतिप्रभावात् ॥५१॥

अथ श्रीविराजमानतपागच्छाधिराजश्रीविजयसिंहसूरीश्वरवर्णनम्—

श्रीविजयदेवसूरिपट्टाम्भोधिनिशाकरम् । श्रीविजयसिंहसूरिं स्तविकर्मीं करोम्यहम् ॥ ५२ ॥

सदोन्नतिः श्रीतपागच्छपूर्वाचलोच्चचूलाग्रसहस्रधामा ।
भव्यारविन्दान् कुरुते स्मितास्यो जीयात् स सूरिर्विजयादिसिंहः ॥ ५३ ॥
पारम्परीणाग्र्यगणाधिपानां धर्मोपदेशो दुरितं समग्रम् ।
दीदांसते शोभुशुभो हि येषां जीयात् स सूरिर्विजयादिसिंहः ॥ ५४ ॥
त्वदास्यवाक्सारसुधां निपीय चन्द्रामृतं यद्विबुधा मुधाऽधुः ।
तदूर्ध्वचञ्चच्छितिलक्ष्मदम्भाच्छेवालवल्ली समभूत् ततः किम् ? ॥ ५५ ॥
तपोगणेशस्य समीक्ष्य वक्त्रं किं वा न वाहं विमलप्रभावः ।
परीक्षितुं स्पष्टमितीन्दुरङ्कव्याजेन हस्ते मुकुरो(रं) व्यधात् किम् ? ॥ ५६ ॥
वाचंयमाधीश ! तवासमानदेदीप्यमानास्यरुचं निशम्य ।
गात्रे निशायां निशितामुवाह चन्द्रोऽङ्कदम्भादसुखोदयात् किम् ? ॥ ५७ ॥
विनिर्म्ममे वा विधिना त्वदास्यं सुधां सुधांशोः किमु मध्यगां द्राक् ।
प्रगृह्य सम्यक्कथमन्यथेदं कलङ्करन्ध्रं शशिनः प्रभो ! स्यात् ? ॥ ५८ ॥
त्वद्वक्त्रशोभां समवेक्ष्य राजाऽतिविस्मितः स्माटति किं न वास्ति ।
तद्वस्तु यत्सन्निभतां क्षमायां किमर्हतीतीक्षितुमीश ! शङ्के ॥ ५९ ॥
धाताऽवधार्यासमदीधितीन्दुत्वद्वक्त्रयोः सन्निभतां स्वचित्ते ।
बिम्बे किमिन्दोरुपलक्षितुं चेद् वक्त्रेऽङ्कदम्भादुपलक्षणं हि ॥ ६० ॥
यदि प्रमोदेन निशेशबिम्बं नालीकयुग्मं वहति प्रसन्नम् । तदैति शिष्टां कथमप्यतुच्छनेत्रद्वयं त्वद्वदनोपमां च ॥६१॥
प्राप्नोति चन्द्रः सहयोगिभावं तवाननस्य प्रतिमासभिन्नः ।
संपूर्णमूर्त्तिं विषमैस्तपोभिः कुहूष्वदृश्येन कृशां विधी(धा)य ॥ ६२ ॥

॥ इति मुखाष्टकम् ॥

संविस्तरन् यस्य यशोनदीशो भूमण्डलं वा विमलीकरोति ।
बिभ्राजते यत्र हिमांशुबिम्बं श्वेतावदातोत्पलवन्नितान्तम् ॥ ६३ ॥
तपागणाधीशयशस्कलापपवित्रतां प्राप्तुमिव प्रचण्डः ।
सुरद्विपः स्नाति तवातिकान्तः सदा सिताङ्गोऽपि लिलिम्प नद्याम् ॥ ६४ ॥
यद्यशःक्षीरपाथोधौ शशाङ्ककरसुन्दरे । भ्रमराञ्जनसंकाशमाकाशं शैवलायते ॥ ६५ ॥
राजते यद्यशोराशि[ः] शशाङ्क इव पावनः । प्रीणयन् लोकसंदोहान् समुद्योतितविष्टपः ॥ ६६ ॥
यत्कीर्त्तिव्रततेर्व्योममण्डपे तारकन्ति हि । विस्तृतायाः प्रसूनानि चन्द्रबिम्बायते फलम् ॥ ६७ ॥
यत्कीर्त्त्या धवलीभूतं विष्टपत्रितयं यदा । तदादि शेषदिग्दन्त्यादयो जाताः सिताः ननु ॥ ६८ ॥
यत्कीर्त्तिर्वज्रिभिस्तेन चरन्ती गगनाङ्गणे । वर्द्धापिता सितै रत्नैरुपेतं तारकैर्नभः ॥ ६९ ॥
कुलवधूरिव या परमा सती सकलदक्षजनैरिह मन्यते । पणवधूरिव साऽपि निरङ्कुशा चरति कीर्त्तिवधूर्नु यदीयका ॥७०॥

॥ इति यशोऽष्टकम् ॥

उत्साहवान् लब्धजयप्रवादो येषां प्रतापस्तपनच्छलेन । विलोकितुं नष्टरिपूनिवायं नभोऽङ्गणे भ्राम्यति नित्यमेव ॥७१॥
येषां प्रदीप्तात् प्रबलप्रतापाद् गच्छन्ति नष्टा इव वादिचक्राः ।
जाज्वल्यमानादिव हव्यवाहाद् व्याघ्रादयः श्वापदजन्तवो हि ॥ ७२ ॥ –यमलम् ।
श्रीमत्तपागच्छपतेः प्रभाते ये दर्शनं जङ्गमतीर्थकस्य ।
कुर्वन्ति भव्यास्त एव धन्याः पुण्यीभवन्त्यात्मनि शुद्धभावात् ॥ ७३ ॥
को वर्णः कृपणास्ये तु ? द्विद्धातोः कोऽस्ति प्रत्ययः ? । श्रीविजयसिंहसूरेः कः पिता ? प्रोच्यतामिह ॥ ७४ ॥
को बिभर्त्यस्तनं वक्षः ? सद्भाग्यामत्रणं वद । पूर्ववर्गस्य प्राग्वर्णः किं कामामत्रणं कवेः ? ॥
श्रीविजयसिंहसूरेः का माता प्रोच्यतामिह ॥ ७५ ॥
तीर्थङ्करोपमा यस्य तद्वचोऽर्थप्ररूपणात् । श्रीविजयसिंहसूरिं भव्या ! भजध्वमादरात् ॥ ७६ ॥
लब्धिपात्रं सुरश्रेणीसेवितं तीर्थनायकम् । दितसद्भव्यसन्देहं सर्ववाङ्मयपारगम् ॥ ७७ ॥ –यमलम् ।
तैस्तातपादैर्विगतप्रमादैः प्रागल्भ्यपाथोजसहस्रपादैः । सवारिजीमूतसदक्षनादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥ ७८ ॥
सभासमक्षं जितवादिवादैर्विध्वंसिताशेषविपद्विषादैः । स्वरूपशोभामदनानुवादैः सद्भक्तिभाजां विलसद्रमादैः ॥ ७९ ॥
श्रीपूज्यपादैर्निजकीयकायपरिच्छदारोग्यनिवेदिनी मे । प्रसादपत्री स्वशिशोः प्रसद्य प्रसादनीया प्रभुभिः प्रकृष्टैः ॥८०॥
श्रीतातपादपदपद्मपरप्रणामसंश्लिष्टभूमितलपाणिपुटाग्र्यमौलेः ।
त्रैकालिकी प्रणतिरात्मशिशोः सदैव पूज्यैः पवित्रचरणैरवधारणीया ॥ ८१ ॥
श्रीतातपादपदपावनपुण्डरीकयुग्मोपसेवनपरायणचित्तवित्तः ।
दूरस्थितोऽपि समये स्वशिशुः सदैवाचिन्त्यप्रभावगुरुभिर्ननु चिन्तनीयः ॥ ८२ ॥
वाचकशिरोऽवतंसा निजवचनातिशयरञ्जितनृपनिकराः । अवगतधर्म्माधर्म्मस्वरूपका **धर्मचन्द्र**नामानः ॥ ८३ ॥
विबुधवर**लालकुशलाः** कुशलाः पाषण्डखण्डने मुशलाः । श्रीतातपादसेवाप्तप्राधान्यगणि**हस्तिविजया**ह्वाः ॥८४॥
वरभक्तिभरवशीकृतसद्गुरुहृदयगणि**ऋद्धिसोमा**ख्याः । स्वपरमतशास्त्रसंहतितत्त्वविदो गणि**उदयविजयाः** ॥८५॥
मुक्तिपुरमार्गसाधनतत्परगणि**मुक्तिविजय**नामानः । दर्शनतर्जितनलिना **दर्शनविजया** गणिप्रवराः ॥ ८६ ॥
सत्यवचनसंलीना गणिसिन्धुर**सत्यविजया**ह्वाः । शतदलकोमलतनवो गणयो वर**सिद्धिविजय**नामानः ॥ ८७ ॥
मनुजनलिनदिनमणयो गणयो **रविविजय**नामानः । धिषणासञ्जितधिषणा गणयो वर**विजयसोमा**ह्वाः ॥ ८८ ॥
अन्येऽपि साधवो ये श्रीमद्गुरुपादचरणभक्तिभृतः । तेषां नत्यनुनतिके श्रीतातैर्मम ननु ज्ञाप्ये ॥ ८९ ॥
किञ्चेहत्या गणयो **रविवर्द्धन**नामधारिणो मुनयः । **धनवर्द्धन**नामानः सकलः सङ्घश्च परमतरभक्त्या ॥ ९० ॥
इत्येते प्रणमन्ति कृताञ्जलयोऽवनितलनिहितशिरोब्जाः । श्रीतातपादनाम्ना नम्यन्ते किञ्च जिनपतयः ॥ ९१ ॥
परभृतवन्माकन्दं चलचञ्चुरिव तपसं दिवापुष्टम् । द्वन्द्वचरवदनुदिवसं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ ९२ ॥
औचित्यमात्रार्थसुबिन्दुवर्णसंमुक्तमुक्तं यदवर्णभावात् । किञ्चिद् भवेन्मातृमुखेन तातैः क्षन्तव्यमेतच्छमतारसाप्तैः ॥९३॥
पोषबहुलदशम्यां लिखिता बुधवासरे । श्रीतातपादविज्ञप्तिरिति भूयाच्छ्रेयसे सततम् ॥ ९४ ॥

॥ संवत् १७०३ वर्षे श्रीविजयसिंहसूरीश्वराणामयं लेखः ॥

*

तपागणाधीशश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं० विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२४] — विज्ञप्तिका । —

स्वस्तिश्रियाश्रितपदं विपदन्तकारी, भव्या भजध्वमिह तं महितं यथार्थः ।
तार्त्तीयिको जिनवरो नवरोगहर्त्ता, श्रीशंभवो विभवदो भवदोषभेदी ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियो गृह इहेतिजितारिपुत्रश्चित्रं स्वयं जिनपतिस्तनुते जितारिः ।
जीयाज्जगज्जनसमीहितसिद्धिकर्त्ता, भर्त्ता प्रशस्तजगतां स च विश्वपूज्यः ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीः स्वस्तिसंपृक्तः स्वस्तीव स्वस्तिकारकः । ददातु स्वस्ति सर्वेषां शंभवार्हन्त आदरात् ॥ ३ ॥
अश्वोऽभजद् यस्य पदाब्जयुग्मं सल्लक्षणं लक्षणकैतवाद्धि ।
स्वजातिसौभाग्यकृतेऽवदातो ददातु सौख्यं स जिनो जनानाम् ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यनाथं समवेक्ष्य वज्री भीतोऽग्रतोऽयं तुरगं स्वरीशः ।
प्रैषीद् यदंह्रिद्वितयेऽङ्कतः किं सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनशंभवोऽत्र ॥ ५ ॥
तार्क्ष्यो विचार्येति दिवानिशं मे समागमत् सूर्यविमानतः किम् ? ।
अत्राटनं यच्चरणेऽङ्कदम्भात् स्थिरे प्रशान्ते स जिनो मुदेऽस्तु ॥ ६ ॥
मुक्त्यङ्गनायाः करपीडनाय किं मण्डनाऽलक्तकसद्रसेन । सुशोणिमा भाति यदंह्रियुग्मे कृता जिनेशो भवताच्छिवाय॥७॥
पादद्वये यस्य नखा दशैव वन्दारुदिग्मर्त्त्यमुखेक्षणाय ।
किं दर्पणा भान्ति विशेषदीप्राश्छिन्द्याज्जिनोऽसौख्यमसौ जनानाम् ॥ ८ ॥
पादद्वयी यस्य समीहितार्थदात्री भवाब्धिं भविनां तरीतुम् ।
नौरेव साक्षात् कमनी चकास्ति सेनाङ्गजो जन्तुसुखाय भूयात् ॥ ९ ॥
यदंह्रिपद्मं समवेक्ष्य पद्मा नरेन्द्रपूज्यं सततं विकासि । विमुच्य पद्मं निजमन्दिरं द्रागशिश्रियत् सोऽस्तु जिनो विभूत्यै॥१०
पद्माकरे यत्पदपद्मकान्त्या गत्वा जितं पद्म महातपांसि । तेपे श्रियं प्राप्तुमुदर्कदक्षा जैनांह्रयस्तेऽसुमतां प्रसन्नाः ॥११॥
श्रीशम्भवार्हन्तनिशाकरं तं प्रणामगङ्गाधरभालपट्टे । संस्थाप्य भक्त्या त्रिजगज्जनानां मनोऽरविन्दानि प्रकाशयन्तम् ॥१२

अथ पुरवर्णनम्–

यत्रोन्नतानि प्रवराणि तीर्थकृतां गृहाणि प्रभया विभान्ति ।
मन्ये विमानानि सुनिर्जराणां विचित्रचित्रेण विचित्रितानि ॥ १३ ॥
यच्चैत्यशृङ्गे कलधौतकुम्भः प्रष्ठप्रतिष्ठां प्रकटीकरोति । किं फेनपिण्डः पतितोऽभ्रमार्गखिन्नार्कतार्क्ष्यो न ततोऽवदातः॥१४॥
यच्चैत्यशृङ्गस्थितहेमकुम्भं समीक्ष्य रामास्तनकुम्भयुग्मम् । नंष्ट्वा प्रविष्टं त्रपयाऽसितास्यं विधाय किं कञ्चुलिकान्तराले ॥१५
यच्चैत्यशृङ्गोत्तमकेतुपार्श्वे कुम्भः स्थितो नु प्रकटप्रतिष्ठाम् ।
धत्ते दिवि स्वर्गिसरित्प्रतीरे किं श्वेतकुम्भो हि भृतो विमुक्तः ॥ १६ ॥
अभ्रंकषा शंसति सत्पताका यच्चैत्यशृङ्गोपरि चञ्चलेति । आगत्य भव्याः शिवसार्थवाहं प्रासादसंस्थं जिनपं भजध्वम् ॥१७॥
यच्चैत्यमध्येऽद्भुतरूपकान्तिं पाञ्चालिकां वीक्ष्य युवेति वक्ति ।
विद्याधरी तीर्थकरार्चनायाऽऽयाता स्वयं किं किल पुष्पहस्ता ॥ १८ ॥

चैत्येऽर्हतां यत्र पुरोऽलिनीलां नित्यं जना मेघघटां वदन्ति । सश्रद्धश्राद्धैः कृतकाकतुण्डधूपोत्थधूमैर्गगनाग्रगैस्तु ॥१९॥
श्रीपूज्यपादान् प्रति नन्तुमात्मभक्त्याऽऽगतानेकजनावलीढम् ।
यत्राद्भुतं साधुगृहं चकास्ति पोतं तरीतुं किमदो भवाब्धिम् ॥ २० ॥
श्रीपूज्यपादाश्रितमार्हतानां मुक्त्यर्थिनां साधुगृहं समीक्ष्य ।
यत्र प्रबुद्धाः प्रवदन्ति किन्तु सर्वार्थसिद्धाख्यमिदं विमानम् ॥ २१ ॥
श्रद्धाभुजां चेद्धि भवेन्मणीनां चैतन्यमन्यच्च सुरद्रुमाणाम् । तदा कयातां कथमप्यमू यत् श्रद्धावतां दानसमानभावे ॥२२
यदास्तिकानां समवेक्ष्य दानं सुरार्जनी देवकरालिकाली ।
चक्रे निवासं दिवि लज्जितेव यत्रापमानं हि सतां न वासः ॥ २३ ॥
यत्रार्हता धर्मरता विरक्ता द्विसन्ध्यमावश्यककारकाः किम् ।
श्रीपञ्चमाङ्गोक्तसदास्तिकानां समानभावं प्रगता विभान्ति ॥ २४ ॥
यत्रास्तिका देवगुरुप्रणीतधर्म्मानुरक्तोभयपक्षशुद्धाः । शीलेन सीताऽर्थितदानदात्री पद्मावतारा किमुदारचित्ता ? ॥ २५ ॥
विराजते या नगरी विशाला विचित्रवर्णा लसदर्थयुक्ता । निषेविता साधुजनैः प्रकामं विशुद्धसिद्धान्तपदावलीव ॥ २६ ॥
प्रत्यर्थिपृथ्वीदयितान्धकारसंघातविध्वंसनचित्रभानुः ।
प्रीणाति यस्यां वसुधाधिनाथः प्रजां स्वकीयात्मजवज्जितारिः ॥ २७ ॥
विभान्ति यस्यामलसेक्षणागणाः स्वरूपसंतर्जितनिर्जराङ्गनाः ।
उदारगत्या जितहंसबालिका मुखारविन्दाधरितेन्दुमण्डलाः ॥ २८ ॥
यत्राङ्गनां वीक्ष्य सुराङ्गनाभिः परस्परं भेदकमिच्छतीभिः ।
संपूजितो नाभिरुहः स्वभक्त्या तदा निमेषा विदधे प्रजास्ताः ॥ २९ ॥
कल्याणराजत्कलशोपशोभिता रोचिष्णुरत्नैः प्रतिबद्धभूतलाः ।
अभ्रंकषा उत्तमशिल्पिनिर्मिताः स्फारस्फुरत्स्तम्भशतोपयुक्ताः ॥ ३० ॥
जगत्त्रयश्रीसुविलासगेहा विभान्ति यस्यां नरवृन्दगेहाः ।
सदा विहायोभ्रमणोत्थखेदात् खगा इवैते किमधोऽवतीर्णाः ॥ ३१ ॥ — यमलम् ।
नक्षत्रमालाप्रतियातना हि निर्माल्यलं मुग्धवधूजनानाम् । विचित्रपुष्पप्रकरस्य बुद्धिं गेहाङ्गणे यत्र सुरत्नबद्धे ॥ ३२ ॥
यद्धर्म्यकुड्ये प्रतिरूपितानि मृगेक्षणानां वदनोत्पलानि । सौरभ्यलोभाद्बहुचञ्चरीका विलोक्य सद्मोपरि संभ्रमन्ति ॥ ३३॥
यद्धर्म्यदीप्यन्मणिबद्धचन्द्रशालाप्रदेशे प्रतिबिम्बितं च ।
हारं स्वहस्तं सहसा क्षिपन्तं लातुं प्रियं स्वीयप्रिया जहास ॥ ३४ ॥
विभाति यस्यां कमनीयसालो रत्नोत्कराणां कपिशीर्षशोभी ।
प्रशस्यजाम्बूनदबद्धभित्तिः क्षमाङ्गनायाः करभूषणं किम् ? ॥ ३५ ॥
चकास्ति यस्यां परिखावहन्ती विस्तीर्णसालप्रतिरूपमन्तः । मणिज्वलन्निर्मलनीरपूर्णा किं कङ्कणीभूतसरिद्वरेव ॥३६॥
राजते वाटिका यत्र पुष्पराजिविराजिनी । पौष्यायातयुवश्रेणी यथा नगरनायिका ॥ ३७ ॥
विभासते यत्र वनं कदम्बमालूरमाकन्दफलादिराजितम् । अनल्पजीवासमसौख्यकारि सचन्दनं स्वं किमधोऽवतीर्णम् ३८

अथ विशेषतः काव्यम् —

छिद्रं तु मुक्ताफलके विवाहे छत्रेषु दण्डः करपीडनं च ।
निस्त्रिं(स्त्रिं)शताऽसौ चिकुरेषु बन्धो लोकेषु नासीन्मुदितेषु यत्र ॥ ३९ ॥

मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । मूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ ४० ॥
पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशूकाः पङ्कसंहारे दाने व्यसनिनस्तथा ॥ ४१ ॥
महेभ्यसम्पद्द्रविणादिपूर्णे विराजमाने नृपसौख्यवृन्दैः । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्ये ॥४२॥

अथ विंहदिवर्णनं लिख्यते–

उत्तुङ्गशृङ्गः स्फटिकाश्मबद्धो जिनालयः प्रौढचलत्पताकः ।
कीर्त्तेरिव स्तम्भ इहास्ति यत्र,·········किल कारकाणाम् ॥ ४३ ॥
प्रासादा जिनराजस्य द्योतन्ते यत्र सुन्दराः । दातारः कल्पितार्थस्य मन्दारा इव नन्दने ॥ ४४ ॥
धर्मध्यानपरा यत्र शीलाभरणभूषिताः । श्रावकाः श्रीगुरोर्भक्ता दीनोद्धरणसादराः ॥ ४५ ॥
राजमानगुणग्रामा बहुशास्त्रविचक्षणाः । सद्दानगुणसंयुक्ता धनेन धनदोपमाः ॥ ४६ ॥–यमलम् ।
यत्र सर्वोऽपि वास्तव्यलोकः परमधार्म्मिकः । दृढप्रतिज्ञो निपुणो भद्रकप्रकृतिस्तथा ॥ ४७ ॥
वापीवप्रवनोत्कीर्णाद् विप्रवित्तविभूषितात् । अपूर्वस्वर्गसादृश्याद् विंहदिनगरात्ततः ॥ ४८ ॥
सन्नीतिरीतिविनयावनतोत्तमाङ्गविन्यस्तहस्तपरिदर्शितभक्तिभावः ।
आयल्लकोत्पुलकिताङ्गलताविभागः प्रह्लादमेदुरमना विनयस्वभावः ॥ ४९ ॥
निर्मापितग्रहपतिप्रमितप्रणामं विज्ञप्तिकापुटकिनीमयमेकचित्तः ।
भक्त्याऽवतारयति वर्णविशिष्यमाणां शिष्याणुको **विनयवर्द्धन** आदरेण ॥ ५० ॥
पूर्वाद्रिचूलामवलम्बिनि श्रीदिनाधिनाथे किल कुङ्कुमाभैः । काष्ठामृगाक्षीवदनानि रक्ते मुदा करैर्मण्डयति स्वकीयैः॥५१॥
शब्दायमाने तरुताम्रचूडे जरज्जपापुष्पगणप्रकाशे । कृष्णान्धकारे प्रलयंगतेऽथ यथाऽत्र कृत्यं प्रतिवासरं च ॥ ५२ ॥
पर्षद्यमर्षमुषि हर्षपुषि प्रसिद्धश्रद्धावदिभ्यजनराजिविराजितायाम् ।
श्रीपञ्चमाङ्गवरसूत्रपवित्रवृत्तेर्व्याख्याकृतिः सुकृतिनिर्मितहृत्प्रसत्तेः ॥ ५३ ॥
प्रज्ञापनोपाङ्गविशिष्टसूत्रस्वाध्यायचञ्चत्करणं मुनीनाम् ।
अध्यापनं चाध्ययनं त्रिसायं श्राद्धोपधानोद्वहनं स्वशक्त्या ॥ ५४ ॥
इत्यादिकं शोभनधर्मकार्यं जातं मुदा संप्रति जायते च । श्रीतातपादस्मरणप्रभावप्रोद्भूतपुण्योदयतस्तथा च ॥ ५५ ॥
क्रमागते वार्षिकपर्वणीत्यतिभीत्यभावे समपर्वदीपे । अभून्नवीनक्षणकल्पसूत्रसुवाचनं साधुनवक्षणैश्च ॥ ५६ ॥
अष्टाहिकापक्षचतुर्थमासाऽष्टमादिकोत्कृष्टतपोविधानम् । सप्ताधिकैः स्नात्रविधेर्विधानं जिनेन्द्रगेहे दशभिः प्रकारैः॥५७॥
वाञ्छाधिकं मार्गणमण्डलीनां द्रव्यप्रदानं निजशुद्धभावात् । परस्परोत्पन्नरुषापहारः प्रभावनोद्भूतविभूतिसारः ॥५८॥
विशेषतः सद्गुरुदेवभक्तिः समस्तसाधर्मिकवत्सलत्वम् । पूर्वार्जितांहोहरणे प्रसक्तिः संसारशल्योद्धरणं जनानाम्॥५९॥
इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म । श्रीतातपादांह्रिसरोजयुग्मसंसक्तसद्ध्यानकृतिप्रसादात् ॥६०॥

अथ श्रीगुरुवर्णनम्–

का मान्या नरनाथपर्षदि भवेत्? कः प्राणिनां धर्मतः?, किं तिष्ठेत् स्थिरमङ्गिनां? गजघटाविध्वंसने को बली?* ।
विन्ध्याद्रिं स्मरति प्रमोदकरणे कः पङ्कजानां स्मृतः?, कुम्भो मङ्गलमातनोति पथिकप्रस्थानके कीदृशः? ॥ ६१ ॥
प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहाद् भवति यो वाचंयमाधीश्वरः, उद्यत्स्वीयकुलाम्बराम्बरमणिं श्रीगौतमस्वामिनम् ।
लब्ध्या श्रीविजयादिदेवगणभृत्पट्टाब्धिरात्रीश्वरं, तं श्रीपूर्वकमादरेण भविनां सौभाग्यदं संस्तुवे ॥ ६२ ॥

अथ कमलबन्धः–

भविकाम्बुजसारङ्गं कोविदसंहतिचकोरसारङ्गम् । सुकृतसरःसारङ्गं पापप्रवलतरुसारङ्गम् ॥ ६३ ॥

---

* 'दिवि सदा के सन्ति किं भूधरान् दीर्घान् हन्ति बलात् ।' इति वा पाठः ।

······कुमतरजःसारङ्गं वादिराजगणप्रमथनसारङ्गम् । निश्चलतासारङ्गं मनुजशुभगतिकृशानुसारङ्गम् ॥६४॥ – गीतिः ।
मधुरस्वरसारङ्गं निरञ्जनगुणजितसारङ्गम् । तनुरूपसुसारङ्गं, समस्तसहजगुणसारङ्गम् ॥ ६५ ॥ – उपगीतिः ।
श्वासविजितसारङ्गं शोचनशिशुपालसारङ्गम् । कामक्षयसारङ्गं कुनयमल्लप्रमथसारङ्गम् ॥ ६६ ॥ – उपगीतिः ।
कर्मराशिसूरिसारङ्गं करकमलधृतशमतासारङ्गम् । जिनशासनसारङ्गं नासिकयाजितवरतिलसारङ्गम् ॥६७॥ – गीतिः ।
भ्रूतर्जितसारङ्गं निर्मलताजितसुपर्वसारङ्गम् । जनमनकजसारङ्गं स्वाज्ञाकारितपगणसुसारङ्गम् ॥ ६८ ॥ –गीतिः ।
सुन्दरमुखसारङ्गं ध्याननरोद्वाहितवरसारङ्गम् । लोभार्जुनसारङ्गं कण्ठचमत्कृतसुसारङ्गम् ॥ ६९ ॥ – आर्या ।
मुक्तिस्त्रीसारङ्गं दमितकरणचपलसारङ्गम् । दीक्षास्त्रीसारङ्गं संसृतिमृगहननसारङ्गम् ॥ ७० ॥ – उपगीतिः ।
सकलसुजनसारङ्गं सौवरमादर्शितनरसारङ्गम् । शशधरसमसारङ्गं विबुधसभास्त्रीसुदृष्टिसारङ्गम् ॥ ७१ ॥ – गीतिः ।
क्रीडाधृतसारङ्गं कीलितरोषशितिसारङ्गम् । वाणीगीतलतासारङ्गं पावितनिजवरसारङ्गम् ॥ ७२ ॥ – अर्द्धविपुला ।
दितमायासारङ्गं स्ववशीकृतसुमतिसारङ्गम् । जङ्गमसुरसारङ्गं मृगमदजैत्रवदनाब्जसारङ्गम् ॥ ७३ ॥ – उद्गीतिः ।
मानभुजगसारङ्गं जगज्जनमनःसहकारसारङ्गम् । लोचनजितसारङ्गं निजवशनिर्मितमनःसुसारङ्गम् ॥७४॥ – गीतिः ।
करेखासारङ्गं शुभलेश्यागुणविजितसारङ्गम् । गदितनियतसारङ्गं वचनजलदलीनपुरुषसारङ्गम् ॥ ७५ ॥ – गीतिः ।
व्रतिमृगमदसारङ्गं लुञ्चितनिरुपमशितिसारङ्गम् । भवजलनिधिसारङ्गं धर्मकथालापितसुसारङ्गम् ॥ ७६ ॥ – आर्या ।
सुकृतिसलिलसारङ्गं स्वरमाधुर्यमथितवरसारङ्गम् । भजत गुरुं सारङ्गं मोहरजनिबोधनगुरुसारङ्गम् ॥७७॥ – गीतिः ।

एवं कमलबन्धः ।

सूर्य १ चंद्र २ राजहंस ३ हस्ती ४ वायु ५ सिंह ६ गिरि ७ मेघ ८ वीणा ९ शङ्ख १० कन्दर्प ११ पृथ्वी १२ कर्पूर १३ कृष्ण १४ महादेव १५ जल १६ कुठार १७ खड्ग १८ पीपक १९ कुसुम २० कार्मुक २१ नदी २२ भृङ्ग २३ निर्ग्रन्थ २४ कमल २५ अगुरु २६ अग्नि २७ पिक २८ स्वर्ण २९ अश्व ३० रमण ३१ चितारा ३२ लोचन ३३ चित्र ३४ मुख ३५ कज्जल ३६ सारिका ३७ सर्प ३८ चन्दन ३९ कुल ४० रात्रि ४१ लक्ष्मी ४२ रत्न ४३ सुवास ४४ गरुड ४५ कीर ४६ खंजन ४७ प्लवंग ४८ चक्र ४९ श्वेतवर्ण ५० संफलवाणी ५१ चातक ५२ मृग ५३ वेणी ५४ वाहन ५५ राग ५६ भेक ५७ वांसली ५८ सहर्ष ५९ कुर्कुट ६० एवमनुक्रमतः ।

वक्षो धत्ते स्तनं कः ? शुभतरनियते किंवदामन्त्रणं हि ?, प्राग्वर्गस्याद्यवर्णो भवति विदुषः किं कामसंबोधनं तु ? ।
का संबुद्धिः प्रभूणां ? किमिह सहचरीसप्तमीरूपमैक्यं, मातुः किं नाम गच्छाधिपति**विजयसिंहस्फुरत्सूरिराज्ञः**॥७८॥
– नायकदे । द्विर्व्यस्तसमस्तजातिः ।

कृष्णप्रिया काऽस्ति ? किमव्ययं तु खेदे ? स्तनं को हि बिभर्त्ति वक्षः ? ।
धातोः द्वितः प्रत्यय एति कस्तु ? स्तोत्रार्हतो गच्छपतेः पिता कः ? ॥ ७९ ॥
– साहनाथुः । व्यस्तसमस्तजातिः ।

गच्छाधिनाथो वदतां जनानां, सौख्यानि चित्तार्थितदानदक्षः ।
कल्याणकारी करुणाजलार्द्रः, साक्षादसौ सुन्दरनाकिशाखी ॥ ८० ॥ – निरोष्ठकाव्यः ।

नानाव्यन्तरनागनिर्जरविशां विद्याधरस्वामिनां, सर्वेषां हृदयस्थलेषु रमते संचारिणी स्वेच्छया ।
येषां कीर्त्तिवधूः सतीति बिरुदं संधारयन्ती जने, यत्कोपोपनतेस्तदत्र महतां गम्भीरता काऽप्यहो ! ॥ ८१ ॥

त्वत्कीर्त्तिभासो विमला यतीश ! चन्द्रन्ति कुन्दन्ति हिमाचलन्ति ।
हारन्ति हीरन्ति हलायुधन्ति हसन्ति दीप्यद्रजताचलन्ति ॥ ८२ ॥

विभासते यस्य यशोविसारिकर्पूरपूरो द्विजराजशुभ्रः । मरुत्पथाङ्गारलवश्रिराय ब्रह्माण्डभाण्डोदरसंपुटेऽस्मिन् ॥ ८३ ॥

समन्ततो विष्टपमण्डपोपरि विभ्राजते यद्गुणवल्लयस्तताः ।
फलन्ति नानाफलसंचयैस्तु ताः सिक्ताः प्रशंसासलिलैः सुधोज्ज्वलैः ॥ ८४ ॥
सूरीशितस्त्वद्गुणराशिभारैर्महद्भिराक्रान्तसमस्तगात्रः । भोगीशितात्मीयतनूमनिद्रो यथेप्सितं चालयितुं किमेषः ॥८५॥
श्रीपूज्यपादैर्विगतप्रमादैः सभासमक्षं जितवादिवादैः । भव्यारविन्दोत्करतीव्रपादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥८६॥
श्रीतातपादैरपि तैः स्वकीयवपुःपरीवारशरीरवार्त्तम् । निर्विघ्नजातामलसर्वपर्वस्मयापहृद्वार्षिकपर्ववार्त्ता ॥ ८७ ॥
शिक्षाप्रसादश्च शुभप्रवृद्धिरनेकधर्मोन्नतिकार्यसिद्धिः । इत्याद्युदन्तान् प्रवरान् समस्तान् प्रसादपत्री परिसूचयन्ती ॥८८॥
प्रसादनीया बहुमाननीया मनःप्रमोदाय शिशोः प्रसह्य ।
कुमुद्वनस्याद्भुतकौमुदीव सुमेघमालेव शिखण्डिनो हि ॥ ८९ ॥ – विशेषकम् ।
अथावधार्या प्रणतिस्त्रिसायं कृताञ्जलेर्मे नतमस्तकस्य । श्रीतातपादैः समये स्वशिष्यः दूरस्थितोऽप्येव सुचिन्तनीयः॥९०॥
परमगुरुविनयकरणे तत्परचित्ताः कवि**विनयविजया**ह्वाः । विबुधवर**लालकुशला**: कुशला बहुशास्त्रतत्त्वविदः ॥९१
सकलगणकृत्यनिरता गणयो **वरहस्तिविजय**नामानः । सद्बुद्धि**ऋद्धिसोमा** गणयो गुणरत्नरोहणमहीधराः ॥ ९२ ॥
सद्भाग्योदयविजया भाग्योदयलब्धकविविजयाः । मुक्तिपुरसार्थवाहा गणयो **वरमुक्तिविजया**ह्वाः ॥ ९३ ॥
सत्यवचनसन्तुष्टा गुणपुष्टाः **सत्यविजय**गणयो हि । सिद्धशिलास्वच्छहृदो गणयो वर**सिद्धिविजया**ख्याः ॥९४॥
दर्शननिर्जितकमला गणि**दर्शनविजय**नामानः । गणयो **रविविजया**ख्याः सज्जनमनपद्मरविकिरणाः ॥ ९५ ॥
हर्षितवदना बहुयतिभक्तिकरा गणि**सुहर्षविजया**ह्वाः । सौम्यगुणसोमवदना जयवन्तो **विजयसोमा**ख्याः ॥९६॥
इत्यादिमुनिवराणां श्रीगुरुचरणाब्जयुग्मभृङ्गाणाम् । प्रणतिश्चानुप्रणतिः श्रीतातैर्निजशिशोः प्रसाद्या हि ॥ ९७ ॥
किं चेहत्या गणयो **रविवर्द्धन**नामधारिणः सततम् । मुनि**ऋद्धिवर्द्धना**ख्यो **रूपादिमवर्द्धन-धनवर्द्धन**कौ ॥९८॥
इत्यादिकाः प्रशमिनः सकलः संघश्च तातपादाब्जम् । प्रणमन्ति परमभक्त्या कृताञ्जलयोऽवनिनिहितशिरोब्जाः ॥९९॥
श्रीतातपादनाम्ना नम्यन्ते प्रतिदिनं जिनाः शिशुना । शिष्यस्तन्नतिसमये श्रीतातैश्चेतसि विधेयः ॥ १०० ॥
चातकवज्जलवाहं विषसूचकवन्निशाधिनाथं च । द्वन्द्वचरवदादित्यं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ १०१ ॥
गजवद्विन्ध्याद्रिवनं कलकण्ठ इव सहकारमादरतः । तरुराशिरिव वसन्तं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ १०२ ॥
बिन्द्वर्धवर्णमात्रादीर्घह्रस्वविपरीतसंयुक्तम् । मौर्ख्यादुक्तं शिशुना श्रीतातैस्तत्तु सहनीयम् ॥ १०३ ॥
श्रीगुरुवरविज्ञप्तिः क्षीरकण्ठलिवीकृता । विजयदशमीघस्रे कुरुतामिति मङ्गलम् ॥ १०४ ॥

॥ संवत् १७०४ वर्षे ॥ श्रीः ॥

***

खरतरगच्छीयाचार्यश्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं० दयासिंहप्रेषिता

[२५] — विज्ञप्तिका । —



स्वस्तिश्रियामाश्रयमीशमाश्रयन् सुविश्रुतं जेसलमेरपत्तनम् ।
संश्रित्य सत्यश्रुतसाधुशासनाच्छ्रद्धालुजालं नयतः सतां स्तुतिम् ॥ १ ॥
षट्त्रिंशता सूरिगुणैश्चकासतः सतः पुनानान्निजदर्शनश्रिया ।
युगप्रधानाख्यपदप्रदीपकाँश्छ्रीमज्जिनाद्यान् सुखसूरिगच्छपान् ॥ २ ॥
रूपावसे मासचतुष्टयस्थितिर्दयादिसिंहो यतिराप्तभक्तिभाक् ।
त्रिधा त्रिसन्ध्यं शुभभृत्यताविधिं प्रमाणयन् प्रीणयति प्रणामतः ॥ ३ ॥ — त्रिभिर्विशेषकम् ।

त्वत्कृपासदनुभावभावितं वार्त्तमत्र भवति व्रतीशितः । तच्छिवस्तव गणो यशोगुणैरेधतामिति सदा मदाशिषः ॥ ४ ॥
श्रीमतानुनयनीरदस्रवः सान्द्रमार्द्रयति सन्मनस्तरून् । तान् सकृत्समयसेचनादपि स्फातिरास जनुसद्यशस्करी ॥५॥

जानुदघ्नजलजातसूतयः शालयः किल कलामका इव ।
प्रार्थयन्ति मुनिनाथलालसास्तं मुहुर्मम मनोमनोरथाः ॥ ६ ॥ — युग्मम् ।
तद्व्रतोपचितिरप्युदीक्ष्यते येषु निक्षिपसि सद्दृशं गुरो ! ।
स्थानमाश्रयसि नाम यत्स्वयं तत्प्रियेत कथमद्भुतं यतः ॥ ७ ॥ — ज्यौतिषिकाभिगम्यं द्व्यर्थपद्यम् ।

देवतापचितिरौचितीमती चेतसा सुरुचिना विरच्यताम् । कुर्वन्ती सुकृतिनां शिरस्पदं त्वत्प्रसत्तिमथ मृग्यता सता ॥८॥
राजसे यद् ऋषिराजराजिषु त्रायमाण इति रागिणं गणम् । मामिकाः सकलवृत्तवद्वचोवर्णनास्तदुपकर्णय प्रभो ! ॥९॥

या जैनप्रभ-रूपचन्द्रविदुषोः सामूहिकैः साधुभिः, स्कन्धे धूरधृतात्मसाध्यसुविधेर्धौरेयधीरश्रियोः ।
षण्मासान् गणनाथसद्गुणभृतामादाय साहायकं, नीत्वा तामुपढौकितं हि भवते सोमांशुशुभ्रं यशः ॥ १० ॥
गच्छे कुकुरतुच्छपुच्छकुटिले भावादिहर्षीयके, माहात्म्यं दधताऽपि तेन बहुधा दुर्मेधसा धीप्सता ।
गाहित्वाऽथ यथामतिर्गुरुबलं कृत्वा व्यगृह्णीमहि, प्राबल्येन तथा हि लेखितुमहं वृत्तं विभो ! नोत्सहे ॥ ११ ॥
पापेनापि ततोऽन्वतप्ततरलं तेन प्रतापानलज्वालाभिर्ज्वलयत्यहो त्वयि विभौ प्रत्यर्थिसार्थान्भृशम् ।
उद्यच्छन्ति मनस्विनो हि समये यस्यैव हेतोस्तदा तेषामैक्ष्यत सिद्धमेव सकलं साध्यं विशुद्धात्मभिः ॥ १२ ॥

अपरं च — ग्रामे काष्ठमयूरनामनि तवोद्वोढुं समाज्ञाशासनास्तिष्ठासाऽजनि मे विशिष्टनवतां ग्राम्यैर्गुणैरर्हति ।
श्रुत्वा तं विकिरन्तमेव विकृतग्रामेशयोर्विग्रहादिष्टिः साथ ममापि नाथ ! शिथिलीभूय प्रयाता शमम् ॥ १३ ॥

तथा च — आषाढमासविषयीणि वलक्षपक्षे, चत्वार्यहानि पुरि पूर्त्तवधीन्युषित्वा ।
सिद्धस्पृहोऽथ विरहय्य च योधदुर्गं, स्वामिंश्चतुर्दिनमलं स्थितिमानिहासम् ॥ १४ ॥

विशेषश्च — प्रौढैः समं दधदपि व्रतिचारुवृत्तीर्ग्रामे निदर्श्य गुणमुत्सवने न्यषीदत् ।
नीतो विनीततमजीवसुखोऽपि दैन्यं भूत्वा निदेशकृपणैर्निपुणैर्भवद्भिः ॥ १५ ॥

आगृह्णते हि यतिनायक ! युष्मदीयान्, यद्वासितुं स्ववसतौ वणिजोऽन्यदीयाः ।
तत्रापि वः शुभदृगीक्षणमेव हेतुः, किं वापि वैभवकृपाविभवैरसाध्यम् ॥ १६ ॥

लोलीभवन्ति कति नो बहुलं लुलन्त्या, त्वां लोलयेशमनुकूलयितुं कलाज्ञाः ।
लोके तथापि हृदये हृदयालवोऽस्मिन्, स्वस्वामिधर्ममलं विरला वहन्ति ॥ १७ ॥
ये निर्गुणा विगणयेयुरगण्यभूतेर्लब्ध्वापि ते गणविभोर्गणशः प्रसादान् ।
धिक् तानधन्यमनुजान् भुवि भारभूताँस्तेषामजीवनिरिहैव तु बोभवीतु ॥ १८ ॥
कार्ये महीयसि महीशमते नियुक्ता, यद्यासुमस्तव मुखादपि साधुवादम् ।
लक्षप्रसादमुपलभ्य तदेव देव !, प्रीणीमहे प्रणयमङ्गबहुं वहन्तः ॥ १९ ॥
यः पौरुषं परुषवागपि पौरुषेये, धत्ते भवद्गुणविपक्षवितक्षणाय ।
तस्मै नमोऽस्तु परमस्तुतिरेव तस्य, स्वं रक्षितुं भवति कोऽभिमतं न दक्षः ? ॥ २० ॥

अपरं च – यं **भावहर्षगणनाथ**सतीर्थ्यसत्यादाशः क्षयं व्यतनुतात्मवसुव्ययेन ।
स्वश्राविकालयरिपुः पुरि **मेडितायां** याथार्थ्यमुज्झतु कथं द्रुतमायतौ सः ? ॥ २१ ॥
स्वामिन्निठीव(?) नृपतेः सचिवं सहायीकृत्य न्यपातयत तकद्यशसा तदोकः ।
श्रीलाभवर्द्धनबुधैरधिगत्य सद्माद् विज्ञप्तिमाप्तविजयैर्भवतः प्रतापात् ॥ २२ ॥ – युग्मम् ।

स्वीये स्वीये निवेशे **सुमरुजनपदे** पूज्यराजो निदेशादायन्तायातवर्षास्थितिनिकटफलाः साधवस्तेऽधिवासम् ।
अस्मिन्नुत्सर्गरूपे विलसति च विधौ योऽपवादस्वरूपः, प्रस्तावात्तं विशेषं बहुलमपि दले लेखनार्हं लिखामि ॥२३॥
हट्टे हट्टे **वराकप्रतिम** इति पुरेऽभिक्षमाणो वराटानास्माकोपाश्रयस्य श्रुतमनधिगतोऽपत्रपाहेतुरेषः ।
श्राद्धैः **पंच्याषनाम्नो** महदपवसथाच्चालयां चैव चक्रे, कुप्यद्भिस्ते सकोपैः सकलविदुचितादन्यदेशीयसाधुः ॥२४॥
शिष्यो वैद्याविलासेरपवसथमिदं **रूपमेत्योत्तम**ाख्यश्छेकोऽनेकैर्विवेकैर्व्यतनुत वसतिं तत्र च प्रावृषेण्याम् ।
शिष्योऽथो **वीरचन्द्रः** सरलतरमतिः श्री**दयासागराणां**, **पारीयासं**निवेशे शिवकशिपुकृतेऽवद् चतुर्मासवासम् २५
कालाऊनाभिधानं वरमपि मुनयः क्षेत्रमध्यासते के, निर्देशं ते समग्रश्रुतपठनतया व्यग्रबुद्धेरलब्ध्वा ।
कस्मै कार्याय कस्य प्रभवति भवतो नाथ ! पश्चान्निदेशो, भ्राम्यन्ति क्वापि शून्या बत बहुपशवो दस्यवः क्वापि शून्याः॥२६॥
तथा च – मुक्त्वा **सैन्धवमारोट्ट**मटन्तो भूमिमण्डले । स्थितिं **खेजडला**क्षेत्रेऽवरंश्चारित्रवर्द्धनाः ॥ २७ ॥

अह पाइयकव्वाइँ, जीहाललियत्तणेण भणियव्वाइँ –

अन्ने वि समायारा, जइ सोच्चा लोगओ लिहिज्जंति । तउ वुड्ढइ तह लेहो, जह पढिआ आउला होंति ॥ २८॥
पुज्जो सुलेहणिज्जं, किं पि लिहाणे तहावि संखित्तं । बोल्लंती तुह पुरओ, कहं पि जीहा न थिप्पेइ ॥ २९ ॥
सिरिजीअसंघरण्णा, पेणुविआ जा हि अप्पणो धूआ । **सायंभरीपुरी**ओ, परओ सा णिग्गया सुणिआ ॥३०॥
साहिस्स माउलो वि अ, बेहि सहस्सेहिँ अस्ससाईहिँ । जं दरिअ रायपुत्ती, तं संमुहमागओ झत्ति ॥ ३१ ॥
घेत्तुं सेन्नघडाओ, पच्चालेउं पराण भूमीओ । अलिअही **लाहउरं**, सूरो ढिल्लीसरो साही ॥ ३२ ॥
अवरं – **सुहडउरंमि** बहूओ, णिच्चा धाईवई विराईओ । इण्हिं पुण संपत्तो, सिग्घपयाणेहिँ **जालउरं** ॥ ३३ ॥
गुज्जरकउहाहिमुहं तुवरिहिइ तओ वि उब्भडो राया । वेमयिअ तेणवग्गमदब्भदव्वाइँ विढविहिइ ॥ ३४॥
इगमासं जाव पहू पुडुमं मेहेहिँ पंकिया पुढवी । गयणे उण उड्डंडा उल्ललिआ बोल्लणा वाया ॥ ३५ ॥
पच्छा बगरिंछोली सोहिल्लबलाहयाण मालाहिं । मयमत्ते भद्दवये मासे वासा समाढत्ता ॥ ३६ ॥
नवसाससोहिरेहिँ सव्वउ संवेल्लिएहिँ खित्तेहिं । सुरणयरिं वि विडंबइ अहुणा गामल्लिया भूमी ॥ ३७ ॥
जं दप्पुल्लो लोओ पुज्जो दियहा वि जेण रमणिज्जा । सव्वत्थ तेण होही महिमा पज्जूसणछणस्स ॥ ३८ ॥

अह सूरसेणीभासाए गाहा –

पज्जत्तमदो भयवं ! मणस्सिआ घणपउट्टपढणेहिं । सो दक्खो होदि कथं कधेदि जो अहल-कज्जाइँ ॥ ३९ ॥

अह मागहीभासाए गाहा–

यणवययधाशल्वं तुह पुलदो बज्जलित्तु लेशेण । अहमेशे पुलिशेशल उवस्तिदे तं पहुं नुविदुं ॥ ४० ॥

अह पेसाचीभासाए गाहा–

सोत्तन तुम कुनकित्ति चह हलिसो मातिसान हितपकए । तह पासित्तन मेखं चनिय्यते नापि मोलानं ॥ ४१ ॥

नलवलनतपतनीलच तुं तत्थूनं समक्कलोकस्स । अन्नो न तंसनिचो फविय्यते निच्चलकुलू वि ॥ ४२ ॥

अहावब्भंसभासाए वज्जं–

जिहिं जण तुह मुहु पिक्खियउं सो उ मुणिज्जइ धन्नु । पुव्वभवंतरि तिहिं नरहिं किन्नउ उज्जलु पुन्नु ॥ ४३ ॥

अथ समसंस्कृतश्लोकः–

संबुद्धसमसिद्धान्त-सारबुद्धिधरोत्तम ! । अच्छे खरतरे गच्छे जय भूरिगुणालय ! ॥ ४४ ॥

पुनः संस्कृतम्– खरतरगणराजः पूज्यराड् **जैनचन्द्रो** दिवि वरसुरलीलां लालयन् देवताभिः ।
भुवि च ललितगीतैः सद्गणैः किन्नराणामपि **जिनसुखसूरिर्गीयतां** गच्छनाथः ॥ ४५ ॥
तव विमलगुणालीश्चारुतारानुकारा, गणयितुममितत्वाच्छङ्कते शारदाऽपि ।
अथ कथमभिधत्ते मादृशस्तद्विवेकमिति मम गुणगीतौ श्रेयसी मौनवृत्तिः ॥ ४६ ॥

विशेषश्च– विज्ञस्यालं दीनयाऽऽदेशलिप्सासंबन्धिन्या त्वत्पुरो मादृशानाम् ।
यद्येवं स्याल्लेखमात्रेण सिद्धिस्तन्नोद्घृष्टं किं परुद्धायनेऽपि ॥ ४७ ॥
मन्ये धन्यांस्तान् दविष्ठे विराष्ट्रे सद्यो वन्द्यं ये भवन्तं प्रपद्य ।
अस्मादृक्षेष्वीक्षमाणेषु दक्षाः स्वीयं साध्यं साधवः साधयन्ति ॥ ४८ ॥
यद्वा खेदः कोऽत्र वत्स्यामि यत्र, संपत्स्यन्ते सिद्धयस्तत्र सर्वाः ।
यल्लेखेऽस्मिन् न प्रियं किञ्चि······················· ॥ ४९ ॥
संपदां भवति या खलु हेतुः,······················ ।
·········वतां मयि साधौ, प्रेषितव्यमथ············ ॥ ५० ॥

लेखो मासभाद्रपदशुभ्रदश········

*

बहुद्रव्यव्ययेनापि येऽजायन्त जिगीषवः । श्लाघ्या भवत्प्रसादार्हा वाचकाः **सुमतिप्रियाः** ॥ १ ॥
परम्पर········सिन्धुरा **धर्मसुन्दराः** । दयादत्त-दीपचन्द्र-रूपचन्द्रसमावृताः ॥ २ ॥
······द् भवतां प्रीतिपत्रस्याद्याप्यदर्शनात् । चित्तोल्लासात् प्रफुल्लन्ते सेवकाः स्वामिसदृशाः ॥ ३ ॥
व्यामृश्यन्निति वासं'''स्वामिभिः **सुखसूरिभिः** । पुरे **योधपुरे** ज्ञाताः किं पात्रे समिता वयम् ॥ ४ ॥
–चतुर्भिः कुलकम् ।

धिषणेन सहारब्धस्पर्द्धनान् **धर्मवर्द्धनान्** । उपाध्यायपदख्यातिं चरितार्थां वितन्वतः ॥ १ ॥
लसद्भिर्गुणरत्नौघैर्दधतः सागरोपमाम् । उपाध्यायपदाश्लिष्टान् विशिष्टान् **राजसागरान्** ॥ २ ॥
ख्यातान् श्रीवाचकख्यात्या सुन्दरान् **गुणसुन्दरान्** । तत्रत्यान्यमुनींश्चापि नमस्कुर्वे यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
–त्रिभिर्विशेषकम् ।

॥ पं० रूपचन्द्रस्य त्रैकालिकी नतिरवगन्तव्या ॥ श्रीः श्रीः ॥

***